प्रथम संस्करण, १९५४

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

अवसरें आइय मंदोयरि । सीहहों पासि'व सीह-किसोयरि ।
वर-गणियारि'व लीला-गामिणि । पिय माहवियँ वि महुरालाविणि ।
रंगि'व विप्फारिय-णयणी । सत्तावी संजोयण-वयणी ।
कलहंसि 'व थिर-मंथर-गमणी । लच्छि 'व तिय तू वंजू रवणी ।
अहयो भाणि हि अणुहर-भाणी । जिह सा तिह एहवि पउ' राणी ।
जिह सा तिह एह वि सुमणोहर । जिह सा तिह एह वि पयसुदर ।
जिह सा तिह एह वि जिण-सासणें । जिह सा तिह एह वि ण कुसासणें ।
घत्ता । किं वहु जंपिएण उवमिज्जइ काहे किसोयरि ।
णिय-पडिछंदइ णा थिय, सइँ जेंणाइँ मंदोयरि ॥४॥

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रनिवास—

. . . . । संचल्लिय मंदोयरि राणी ।
ताइ समाणु स-डोरु स-णेउरु । संचल्लिउ सयलु 'वि अंतेउरु ।
जं पप्फुल्लिय पंकय-णयणउ । जं कुवलय-दल-दीहर-णयणउ
जं सुरवर-करि-मंथर-गमणउ । जं पर-णरवर-मण-जूरणवउ ।
जं सुंदरु सोहग्गु 'ग्घवियउ । जं पीणत्थण-भारें णमियउ ।
जं मणहरु तणु-मज्झु सरीरउ । जं उरयट्ठणियं गंभीरउ ।
जं णेउर-रव घणु झंकारउ । जं रंधोलिय मोत्तिय-हारउ ।
जं कंची-कलाव-पब्भारउ । जं विब्भम-भूभंगु-वियारउ ।
घत्ता । तं तेहउ रावणकेरउ, अंतेउरु संचल्लियउ ।
णं सभमरु माणस-सरहेंरें, कमलिणि-वणु पप्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।१

तहिँ पइसंतेंहि दिट्ठु स-णेउरु । रावण-केरउ इट्ठं'तेउरु ।
चिहुरेहि सिहंडि-उलंवु भाइ । कुरुलेहिँ इदिंदिर-विंदु णाइ

अवतरणिका

इस संग्रहमे कवियोकी अधिकसे अधिक कविताओंके देनेका निश्चय किया गया; ऐसी अवस्थामे एक-एक कविकी अलग-अलग आलोचना संभव नही। इसीलिए हमने एक-एक काव्य-युगके समझनेके लिये उसकी पृष्ठ-भूमि दे देने पर ही सन्तोष किया है।

सबसे पहले सवाल आता है इस युग—सिद्ध-सामन्त-युग—के कवियोंकी भाषाके बारेमे।

१. कवियोंकी भाषा

हमारे इस युग (७६०-१३०० ई०)की भाषा और आजकी भाषामे काफी अन्तर है, यह हम मानते हैं; तो भी हम बतलायेगे, कि मूलतः वह भाषा और आजकी भाषा एक है। इस युगमें भी सरहपा (७६० ई०) और राजशेखर-सूरि (१३०० ई०)के बीचकी पाँच सदियोंमे भाषा अचल नही बनी रही। वस्तुतः दुनियामे कोई चीज अचल रह ही नही सकती। वहाँ यदि कोई अचल है, तो यही परिवर्त्तनका नियम। पीढ़ीके बाद पीढ़ी आती गई और भाषा भी उसके साथ बदलती गई। यदि हम सत्तर बरसकी दादीकी भाषाको ही देखें, तो उससे पोतीकी भाषामे परिवर्त्तन साफ़ दीख पड़ेगा। बोल-चालकी भाषाको तो छोड़िये, लेखबद्ध भाषा—जिसे छप जानेसे हम बाज वक़्त अचल समझनेकी ग़लती करते हैं—मे भी परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है; इसे हम भारतेन्दु और राजा लक्ष्मणसिंहकी भाषासे १९४४ की भाषाकी तुलना करके आसानीसे देख सकते हैं। यदि आधी शताब्दीमे इतना अन्तर हो सकता है, तो सरहपा और राजशेखरके बीचकी पाँच शताब्दियोंने भाषामे काफ़ी अन्तर डाला है, यह आश्चर्यकी बात नही है।

पाँच शताब्दियोंमे कितना अन्तर हुआ, इसे हम आसानीसे समझ सकते; यदि कवियोंके हाथके लिखे या उनके समकालीन ग्रन्थ हमारे पास होते। मुश्किल यह है, कि हमारे पास जो हस्तलिखित प्रतियाँ पहुँची है, वह कई-कई शताब्दियों बाद लिखी गई थी। यह भाषा संस्कृतकी तरह व्याकरण द्वारा दृढ़बद्ध कोई मृत-भाषा नही थी। इन हस्तलिखित प्रतियोके लिखनेवाले काव्योंके समझने

दक्षिण-मार्ग देखन्ती भक्तिहिं,
देखें अगस्त्य ऋषी मैं झट्टिहिं।
जानेंउ सो पावसहिं गमायउ,
प्रिय परदेश रहेंउ ना रमियउ ॥१५९॥

गउ फाटियइ वलाहक गगनेहिं,
मनहर तारक लोकिय रजनिहिं।
हुयो वास भूमितलें फणीन्द्रा,
फुरिय जुन्ह निशि निर्मल चन्द्रा ॥१६०॥

सोहै सलिल सरन शतपत्रेंहिं,
विविध तरंग तरंगिहिं जातेंहिं।
जो हत हती ग्रीष्में नवसरसहि,
सा पुनि शोभाँ चढी नवसरसहि ॥१६१॥

ववलित धवल-शंख-संकाशेहिं,
मोहै सरहि तीर संकाशेहिं।
निर्मलनीर सरित प्रवहन्तेहिं,
तट शोभन्त विहंगम-पाँतिहिं ॥१६३॥

प्रतिबिंबउ दरसीयत विमले,
कर्दमभार - प्रमुंचित सलिले।
सहीं न क्रौंच-शब्द शरदागमें,
मरीं मरालागम नहिं ताकीं ॥१६४॥

आछै जहँ नारिहिं नर रमिया,
सोहै सरहिं तीर तेहि भ्रमिया
वालक-वर-युवान खेंल्लन्ते,
दीसै घर - घर पटह वजन्ते ॥१७

दारक कुंडवाल तांडव करि,
भ्रमहिं रथ्यें वादंता सं

और रसास्वादनके लिये लिखते-लिखवाते थे; और जब किसी शब्दके पुराने रूपको कुछ अपरिचित-सा हुआ देखते, तो उसे नवीन रूपमें लिख डालते। इस तरह हस्तलिखित प्रतियोंमें कवि-कालीन भाषासे परिवर्तन हो गया। फिर ये प्रतियाँ यदि किसी "नीम-हकीम खतरा-जान" सम्पादकके हाथमें पड़ गईं, तो क्या गति बनी, इसे मुनि जिनविजय जीके शब्दोंमें कहें तो—"जो कोई एवी जूनी कृति परिमाणमां वधारे लोक-प्रिय बनी होय, तेवी भाषा रचनामां जुदा जुदा जमानाना अनेक जातनां रूपो अने पाठ-भेदो उमेराई ते वधारे अनवस्थित रूप धारण करे छे। अने साथे कोई भाषा-तत्वानभिज्ञ संशोधक साक्षरने हाथे जो तेना जीर्ण-देहनूं कायाकल्प थई जाय, तो तद्दन नूतन रूप प्राप्त करी ले वे।"

"आवी जूनी कृतिओंनूं मूल-स्वरूप मेलववा माटे अधिक संख्यामां अने जेम बने तेम वधारे जूनी लखेली प्रतिओं मेलववी जोइये, अने तेमना सूक्ष्म अवलोकन अने पृथक्करणना आधारे पाठ-विचारणा थवी जोइये। आ पद्धतिए कार्य करवाथीज आवी प्राचीन कृतिओंनों आदर्शभूत पाठोद्धार थई शके, अने कर्त्तानी शुद्ध-भाषानो परिचय मली सके।"

यह तो हस्त-लिखित प्रतियोंके संपादनमें कितनी सावधानीकी जरूरत है, यह बात हुई।

इस संग्रहमें इन पुराने कवियोंकी कविताओंके जो नमूने दिये गये हैं, उनको एक बार देखते ही पाठक समझनेमें असमर्थ हो कह पड़ेंगे, कि यह तो हिन्दी-भाषा है ही नहीं। इसीलिए यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता है, कि वह उससे भी कहीं अधिक हिन्दी-भाषा है, जितनी कि आजकी मालवी, मारवाड़ी, मल्ली (भोजपुरी) और मैथिली। आपको जो दिक्कत हो रही है, वह दादी (पाली)की इस प्रतिज्ञा हीके कारण, कि उनके पास कोई शुद्ध संस्कृत—तत्सम—शब्द फटक नहीं सकता।

दादीकी इस प्रतिज्ञाको चाहे बुढ़भस कह लीजिए, उनके यहाँ गजको गय बोला जायगा; लेकिन गजेन्द्रकी जगह गयंद तो अब भी आप सुनते हैं; मृगांक (चंद्र)के स्थान पर मयंक अब भी प्रयुक्त होता है। इस भाषाके सम-

निष्पल्लव किय करि प्रयत्न कंकेलि - विटप - शत ।
पत्र-त्यक्त किय बाल-कदलि, अ-कुसुम किय तरु-लत ॥
शिशिरोपचार किउ परिजनिहिँ, निर्मुक्तावलि किय भुवन ।
तोपिउ न ताहि विरह तुह भरेँ, खसै दाह-दारुण-विजन ॥४॥
तरुणि हूण-गंड-प्रभ पोँछिय तिमिर-मसि,
उल्क-भलुवका वलन दुसह ना करउ शशि ।
मलयानिल मृग-नयनि घूर्णि कर्पूर-कदलि-वन,
संधुक्षिय मदनाग्नि सखि ! एँह तार तपउ तनु ।
तनु-अंगि ! न खडहडि पहि तुहुं, मदन-वाण-वेदन-कलह ।
त्यजमान मान वल्लभेँहिँ संग, चढि न जीउ संशय-तुलहँ ॥१०॥
लावण्य-विभ्रम-तरंगतिहिँ । निदृड्ढ मन्मथ जियावंतिहिँ ।
प्रेमेँ प्रियाहि जो पुलकिज्जै । तो मर्त्यलोकेँ स्वर्ग पाइज्जै ॥१३॥
मत्त-मधुकरि तार-भंकार कलकंठि-कलकलहिँ, मदनधनु-टंकार-सरिसहिँ ।
किमि जीवहु विरहिनिउ, दूर-देश प्रवसत रमणेँउ ॥२१॥
कुपितउ मदन-महाभटउ, वन-लक्ष्मीउ वसंत-रेखिता ।
किमि जीवउ स्वामि ! विरहिणी, मृदु-मलयानिल-स्पर्श-मोहिता ॥५४॥
ज्वलै यदपि कुसुमलता-धर, तपै चंद्र जिमि ग्रीष्म-दिवाकर ।
तउ ईर्ष्या-भर-तरलिय, प्रिय-सखि-वचनं न मानै बालिका ॥५७॥
ज्वलै सरोवरेँ नीलोत्पल-वन । वनेँ लतों फूलिय नभतलेँ हिमकिरण ।
विरह-धधक्केँ तुह तनु-अंगिहिँ, सुभग ! विनिर्मेउ जल थल नभ ज्वलन ॥३२॥
स्वयं विज्जुल अवियुक्तउ तुहँ जलधर करि, गुदलॆ निष्टों न जानसि विरहियहँ ।
इमि भनि चिंतै किल्लुअ अमंगल दयितहँ, अश्रु-प्रवाह प्रलोटउ पथिकहँ ॥४५॥
विरह धधक्कैँ सुभग न जल्पै, न हसै जीवै केवल प्रिय-प्रत्याशै ।
अथवा काउ अवस्था-वर्णन, करिहउँ निश्चय मरिहहुं तव यश नाशै ॥४६॥

झनेमें जो दिक्कत होती है, वह इसी संस्कृत-रूपके पूरे वायकाट और एकमात्र तद्भव—अपभ्रंश—रूपके प्रचार हीके कारण।

आप जैसे ही तद्भव "मयंक" को तत्सम (मृगांक) रूप देनेकी कुंजी पा जायेंगे, वैसे ही यह भाषा आपके लिए उतनी ही आसान हो जायेगी जितनी सूर और तुलसीकी। आपके लिए यह काम हमने आमने-सामनेके पृष्ठोंपर तद्भव (मूल)-भाषा और तत्सम-भाषा (छाया) देकर कर दिया है। आप अपने किसी मित्रको सामनेका पृष्ठ पढ़नेके लिए कह कर यदि मूलभाषाकी पंक्तियोंको देखते जायें तो खुद समझने लग जायेंगे कि यह भाषा संस्कृत-प्राकृत नहीं, हिन्दी है।

आपने सुन रक्खा होगा, कि इस भाषाको अपभ्रंश कहते हैं, शायद इससे आप समझने लगे होंगे, कि तब तो यह हिन्दीसे जरूर अलग भाषा होगी। लेकिन नाम पर न जाइये, इसका दूसरा नाम "देशी" भाषा भी है। अपभ्रंश इसे इसलिए कहते हैं, कि इसमें संस्कृत शब्दोंके रूप भ्रष्ट नहीं, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—हैं, इसलिए संस्कृत-पंडितोंको ये जाति-भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होंगे। लेकिन शब्दोंका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना—अपभ्रष्ट होना—दूषण नहीं भूषण है; इससे शब्दोंके उच्चारणमें ही नहीं अर्थमें भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता आती है। "माता" संस्कृत शब्द है, उसका "मातु", "माई", और "मावो" तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिए था। खेद है यहाँ भी कितने ही "नीम-हकीमों" ने शुद्ध संस्कृत "माता" को ही नहीं लिया, बल्कि उसमें "जी" लगाकर "माताजी" बना उसके ऐतिहासिक माधुर्य्यको ही नष्ट कर डाला। अस्तु, यह निश्चित है कि अपभ्रंश होना दूषण नहीं भूषण था।

कवियोंकी भाषा पर विचार करते हुए हम तत्कालीन साधारण बोलचालकी भाषापर चले गए, लेकिन हमें फिर सिर्फ साहित्यिक भाषापर विचार करना है। पाँच सदियोंके जिन कवियोंकी कृतियोंका हमने यहाँ संग्रह किया है, वह दो चार जिलेके बराबर किसी छोटेसे प्रदेशके रहनेवाले नहीं थे। जहाँ सरहपा और शबरपा बिहार-बंगालके निवासी थे, वहां अब्दुर्रहमानका जन्म मुल्तानमें हुआ था। स्वयंभू और कनकामर शायद अवधी और बुन्देली, क्षेत्र—युक्त

सहस मदमत्त गज, लाख-लख पक्खरी,
साह दुय साजि खेलंत गेंदू।
कोपि प्रिय ! जाहि तहँ थापि यश-विमल महि,
जिते नहि को तोहि तुरक-हिंदू ॥१५७॥

घर लागै आग जलै धह-धह,
करि दिग-मग नभ-पथ अनल-भरे।
सब दीस पसरि पाइक्क' चलै,
धनि थन-भर-जघन दियेउ करे।

भय लुक्किय थक्किय वैरि तरुणि-
जन भैरव-भेरिय शब्द पड़ै।
महि लोटै-पोटै रिपु-सिर टुट्टै,
जखन वीर हम्मीर चले ॥१६०॥

खुर-खुर खुदि-खुदि महि घघर रव करे,
न न न नगिदि करि तुरग चले।
ट ट ट गिदि परै टाप धँसै धरणि वपु
चकमक करि बहु दिशि चमरे।

चलु दमकि दमकि दल चलै पइक्क'-बल,
घुलुकि घुलुकि करि करि चलिया।
वर मनुष दल कमल विपख' हृदय सल,
हमिर वीर जब रण चलिया ॥२०४॥

यथा भूत-वेताल नाचंत गावंत खाऐं कवंधा,
शिवाकार फेक्कार हक्का रवंता फोटैं कर्ण-रंध्रा।
काँया टुट फोड़ेइ मत्था कवंधा नचंता हसंता,
तथा वीर हम्मीर संग्राम-मध्ये तुरंता जुझंता ॥१८३॥

प्रान्त—के थे, तो हेमचंद्र और सोमप्रभ गुजरातके। और रसिक तथा आश्रयदाता होनेके कारण मान्यखेट (मालखेड) (निजाम हैदराबाद)का भी उस साहित्यके सृजनमें हाथ रहा है।

इस प्रकार हिमालयसे गोदावरी और सिंधसे ब्रह्मपुत्र तकने इस साहित्य-के निर्माणमें हाथ बँटाया है। यह भाषा संस्कृतकी तरह ही मृतभाषा नहीं थी, यह हम कह आये हैं। साहित्यकी भाषा भी कोई मूल बोलचालवाली भाषा होनी चाहिए, और वह भाषा जरूर एक परिमित क्षेत्रकी मातृभाषा हो सकती है। स्वयंभूकी भाषाकी क्रियाओं और कितने ही कुंजीके शब्दोंको देखनेसे वह अवधीके सबसे नजदीक मालूम होती है। यद्यपि ऐसा कहनेसे बहुत दिनोंसे चली आई इस धारणाके हम खिलाफ जा रहे हैं, कि अपभ्रंश साहित्य सौरसेनी और महाराष्ट्री अपभ्रंशों हीमें लिखा गया। लेकिन, जो सामग्री हमारे सामने मौजूद है, वह हमें वही कहनेके लिए मजबूर करती है। हाँ, इसका यह मतलब नहीं कि और भाषाओंके विशेष शब्द उसमें नहीं हैं। 'चंगा' ("अच्छा") शब्द का बहुत अधिक प्रचार अब पंजाबी और मराठीमें ही रह गया है, लेकिन हमारे सामने जो भाषा है, उसमें इसका खूब प्रयोग हुआ है। "थाक" (रहना) जिस अर्थ में यहां प्रयुक्त हुआ है, वह अब बंगलामें ही मिलता है। 'मेल्ही' (छोड़ना) अब राजपूतानामें ही बोली जाती है। 'ढूक' (देखना) अब सिर्फ बुन्देली और ब्रजभाषामें देखनेको मिलता है, और 'एवड़ा' (इतना) 'तेवड़ा' गढवाली और मराठीमें। अछे (हैं) 'छे' के रूपमें बंगला, मैथिली, गोरखा, मेवाड़ी और गुजरातीमें सुननेको मिलता है। इसलिए हम स्वयंभू जैसे कवियोंकी भाषाको जब पुरानी अवधी या कोसली कहते हैं, तो उसका यह मतलब नहीं, कि दूसरी प्रान्तीय भाषाओंसे उसका कोई संबंध नहीं था। वस्तुतः उस वक्त उत्तर-भारत की सारी भाषायें एक दूसरेके बहुत नजदीक थीं। प्रान्तीय भाषायें उस वक्त काफी थीं। "प्राकृत-चंद्रिका"में उनकी एक मोटीसी गणनाकी गई है, जो इस प्रकार है—

आचडी	कैकेयी
लाटी	गौडी

वैदर्भी	ओड्री (उड़िया)
नागरी	सैहली
बर्बरी	गुर्जरी
आवन्ती (मालवी)	आभीरी
पांचाली	मध्यप्रदेशी, आदि
टक्की	

मार्कण्डेयने "प्राकृत सर्वस्व"में जिन अपभ्रंशोंको गिनाया है, उनमेंसे कुछ —

पांचाली (कन्नौज-बरेली)	सैहली
वैदर्भी (बरारी)	आभीरी
लाटी (दक्षिण-गुजराती)	मध्यदेशीया
ओड्री	गुर्जरी
कैकेयी	पाश्चात्या (पछैयां)
गौडी	

"कुवलय-माला"ने भी कितने ही नाम दिये हैं—

गोल्ली (गौड़ी)	लाटी
मध्यदेशीया	मालवी
मागधी	कोसली
अन्तर्वेदी	महाराष्ट्री
कीरी	
टक्की	
सिंधी	
मरुदेशी	
गुर्जरी	

इस प्रकार हिमालय-गोदावरी और सिन्ध-ब्रह्मपुत्रके बीच यद्यपि बहुतसी बोल-चालकी भाषायें थीं, मगर उनके साथ सबकी एक सम्मिलित भाषा भी थी

बोलचालकी भाषाओंमें लिखित साहित्य था या नहीं, इसके बारेमें अ

कुछ कहा नहीं जा सकता। सम्भव है, इन कविताओंको जिस रूपमें हम पेश कर रहे हैं, उसमें बहुत कुछ शताब्दियोंके लेखकों, पाठकोंका हाथ हो।

मूल-रूप में कितने ही कवियों—खास कर सिद्धों—ने अपनी कवितायें अपनी ही मातृभाषामें की होंगी।

ऊपरके कथनसे मालूम होता है, कि हमारे यहाँ सांस्कृतिक और साहित्यिक, राजनीतिक और व्यापारिक प्रयोजनके लिए एक भाषाकी आवश्यकताको बहुत पहिलेसे माना जाता रहा है। इसीलिए आज हिन्दीके राष्ट्रभाषाका सवाल कोई नई चीज नहीं है।

फिर भी सवाल दुहराया जायेगा, कि हमारे इन कवियोंकी भाषा हिन्दी नहीं, बल्कि संस्कृत-प्राकृतकी तरह कोई बिल्कुल ही अलग भाषा है। "अपभ्रंश" नाम सुनते-सुनते इस ग़लत धारणाके शिकार हम जरूर हो चुके हैं; मगर बात ऐसी नहीं है। संस्कृत (छन्दस्), पाली और प्राकृत जितनी एक दूसरेके नजदीक है, अपभ्रंश उतनी नहीं है। पुरानी संस्कृत या छन्दस् (वैदिक)-भाषा १५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक थोड़ा बदलते हुए बोली जानेवाली जीवित भाषा थी।

५०० ई० पू०में बुद्धके समय उसने मूल-पालीका रूप धारण कर लिया और आगे हल्केसे परिवर्त्तनके साथ वह पाँच शताब्दियों तक जारी रही। फिर ईसवी सनके साथ प्राकृतका आरंभ हुआ और वह छठीं सदी तक चलती रही। इन बीस सदियोंमें छन्दस्, पाली, प्राकृतके जो तीन छोटे-मोटे भाषा-स्वरूप हमें मिलते हैं, उनमें परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है। असमानता यही है कि संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको आसान (बालभाषा) बनाकर पालीने तद्भव शब्दोंकी रचना शुरू की। संस्कृतके भारी-भरकम व्याकरण-कलेवरको कम करके उसने द्विवचन और कुछ प्रयोगोंके झंझटसे बोलनेवालोंको बचाया—बोलनेवालोंने खुद अपनेको बचाया, यही कहना अधिक उचित होगा। कितना बचाया यह इसीसे मालूम होगा कि जहाँ शुद्ध संस्कृत बोलनेके लिए छ हजारसे ऊपर सूत्र-वार्त्तिकोंको याद रखनेकी जरूरत है, वहाँ पालीमें वह काम आठ-नौ सौ सूत्रोंसे ही हो जाता है।

प्राकृतने शायद व्याकरणके नियमोंकी संख्याको और कम नहीं किया, लेकिन तद्भव या उच्चारणके सरलीकरणके कामको उसने और जोर-शोरसे किया। उस युगमें स्वर ही नहीं व्यंजनोंकी भी खैर नहीं थी, यदि वह शब्दके आरंभमें न रहे। तद्भव करनेमें पाली और प्राकृत एक-सी रहीं।

लेकिन, इतना होते हुए भी सुबन्त, तिङन्त या शब्द-रूप और धातु-रूपकी शैलीमें दोनों हीने संस्कृतका अनुसरण नहीं छोड़ा, इसीलिए पाली और प्राकृत-को संस्कृत रूप देनेमें बहुत थोड़े श्रमकी जरूरत होती है—तद्भवको तत्सम कर दीजिए, आवश्यकता होनेपर द्विवचन और आत्मनेपद कर दीजिए, बस उसी पुराने ढांचेमें ही संस्कृत रूप तैयार हो गया।

और अपभ्रंश? यहां आकर भाषामें असाधारण परिवर्तन हो गया। उसका ढांचा ही बिल्कुल बदल गया, उसने नये सुबन्तों, तिङन्तोंकी सृष्टि की, और ऐसी सृष्टि की है, जिससे वह हिन्दीसे अभिन्न हो गई है, और संस्कृत-पाली-प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न।

'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ' ये शब्द बतलाते हैं कि अपभ्रंशका स्थान हिन्दीके पास होना चाहिए या संस्कृत-पाली-प्राकृतके पास। वस्तुतः संस्कृतसे पाली और प्राकृत तक भाषा-विकास क्रमिक या अविच्छिन्न-प्रवाह-युक्त हुआ, मगर आगे वह क्रमिक विकास नहीं, बल्कि विच्छिन्न-प्रवाह-युक्त विकास—जाति-परिवर्तन—हो गया। आज अपभ्रंशकी यह अवस्था है कि संस्कृत-प्राकृत-पाली जाननेवाले मद्रास, सिंहल, और कर्नाटकके पंडित इस जाति-परिवर्तनके कारण अपभ्रंशसे बात तक नहीं करना चाहते। यह ठीक भी है, क्योंकि उन्हें इसके लिए हिन्दीकी विभक्तियोंको सीखना पड़ेगा। वहाँ संस्कृत-ज्ञानके बल पर काम नहीं चलेगा। लेकिन दूसरी तरफ हिन्दी-भाषियोंका अपभ्रंशके प्रति क्या कर्त्तव्य है, इसे आप अपने दिलसे पूछ सकते हैं। "जिसके लिये किया वही कहे चोर" वाली कहावत है, बेचारी अपभ्रंश हमारे लिए मारी गई।

मगर तर्क कर देनेसे काम नहीं चलेगा, आखिर पढ़ने-समझनेमें आपकी दिक्कतका ख्याल करना ही होगा। लेकिन दिक्कत है सिर्फ तद्भव और तत्समके झगड़े की। संस्कृत (छान्दस्)की औरस पुत्री पालीने तत्सम (शुद्ध संस्कृत)

शब्दोंका बायकाट शुरू किया, प्राकृतने दादीकी जगह् मांका साथ दिया। बेचारी प्राचीनतम हिन्दी (अपभ्रंश)ने दादी और मांके पल्लेको पकड़े रक्खा, लेकिन आगे चलकर उसके बोलनेवालोंने वास्तविक भाषा (क्रिया, विभक्ति)को तो रक्खा, मगर परदादी—संस्कृत—के शब्दोंके शुद्ध रूप (तत्सम)को खूब तत्परतासे उधार लेना शुरू किया। लोग जितनी मात्रामें तत्सम शब्दोंसे अधिक और अधिक परिचित होते गये, उसी मात्रामें तद्भव रूपोंको भूलते गये, जिसका परिणाम है, यह आजकी दिक्कत।

तत्सम या शुद्ध संस्कृत-शब्दोंका प्रयोग क्यों फिरसे होने लगा? अवतरणिका-का कलेवर इसके विवरणके लिए पर्याप्त तो नही हो सकता। अस्तु, हम देखते हैं, कि चौदहवीं सदीसे तत्सम शब्दोंका प्रयोग बढ़ने लगता है। व्रजभाषा तब भी इस बारेमें कुछ संयमसे काम लेती है, लेकिन तुलसी-बाबाको तो हम अपनी अवधीमें लुटिया ही डुबानेके लिये तैयार दीखते हैं। शायद, बाबाको अपने "मानस"पर विश्वनाथकी मुहर लगवानी थी। अच्छा, तत्समका प्रचार बढ़ा क्यों? तेरहवीं सदीके आरम्भमें इस्लाम-धर्मी तुर्कोंका झंडा उत्तरी भारत-में गड़ गया था। कहा जा सकता है, कि उनके एक सदीके प्रभुत्वकी प्रतिक्रिया भाषा-क्षेत्रमें तत्समके रूपमें आई। लेकिन यही पर्याप्त कारण नहीं मालूम होता। लंकामें तो तुर्कों या इस्लामकी ध्वजा कभी नहीं गड़ी, लेकिन वहाँ भी तत्समकी यह प्रवृत्ति गद्य—भाषामें क्यों हुई? सिंहली-पद्यमें १६३२ तक तत्समका प्रवेश निषिद्ध था। एक और बात भी—इस्लाम शासनकी प्रतिक्रिया-में ही यदि पंडितोंने संस्कृत शब्द-रूपोंको जोड़ना शुरू किया, तो उसका प्रभाव साहित्य और पठित जनता तक ही सीमित होना चाहिए था, लेकिन तत्सम-शब्दों-का प्रचार निरक्षर साधारण जनतामें बहुत दूर तक कैसे घुसा? गाँवका अपठित किसान भी अपने लड़केका नाम 'माहव' नहीं रखता, बल्कि तत्सम-रूप 'माधव'को ही स्वीकार करता है। 'कृष्ण' आदि नामोंको भी वह तद्भवके 'धरम', 'करम' नहीं संस्कृतके नजदीकसे उच्चारण करना चाहता है; 'धम्म', 'कम्म'की जगह कहता है। इसलिए तत्समकी प्रवृत्ति चन्द शिक्षित दिमागोंकी उपज-मात्र नहीं कही जा सकती। तत्सम या परदादीकी पुनः प्राण-प्रतिष्ठा—एक परिमित क्षेत्र

में—के बहुतसे कारण हैं, जिनमें एक कारण यह भी है—समाजके विकासके साथ-साथ उसके लिए शब्दोंकी आवश्यकता भी बढ़ती है। नये शब्द पुरानी धातुओंसे गढ़े जा सकते हैं, या विदेशसे उधार लिये जा सकते हैं। साथ ही कभी-कभी इतिहास-प्रवाहमें छूट गये शब्दोंको भी नया अर्थ दिया जा सकता है। ये छूटे शब्द तद्भव-रूपमें भी हो सकते हैं, और तत्सम-रूपमें भी। जान पड़ता है, जिस वक़्त शब्दोंकी मांग बहुत बढ़ गई थी, उस वक़्त कुछ तत्सम (संस्कृत)-शब्दोंको भी चलाया जाने लगा। नये अर्थोंमें नये शब्दोंका प्रयोग करनेके लिए साधारण लोग भी मजबूर थे और वह जैसे-तैसे संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणपर अधिकार प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे। जब इस तरह अनिवार्य कारणोंसे लोग कितने ही तत्सम शब्दोंको अपना चुके और उन्होंने उसके उच्चारण पर भी कुछ अधिकार प्राप्त किया, तो फिर पण्डितोंकी बन आई और उन्होंने संस्कृत-तत्सम-शब्दोंको खूब ठूंसना शुरु किया। हमने कहा था कि अपभ्रंश और आजकी हिन्दी (खड़ी, अवधी—व्रज लेते)में अन्तर इतना ही है, कि एकमें शुद्ध संस्कृत—तत्सम—शब्दोंका प्रयोग बिल्कुल वर्जित है, जब कि आजकी साहित्यिक भाषामें मुश्किलसे किसी तद्भव-शब्दका प्रयोग होता है। अपभ्रंशमें 'होई', 'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ', आदि तुलसी-रामायण-वाली भाषाके क्रियापदोंका प्रयोग होनेपर भी जब तद्भव-शब्दोंके कारण लोगोंको उसका समझना मुश्किल हो गया, तो स्वयंभू आदि महान् कवियोंकी कृतियोंका पठन-पाठन छूटने लगा, और धीरे-धीरे वह बिल्कुल विस्मृत हो गयीं। संस्कृत-पाली-प्राकृतसे अलग होने तथा हमारी अपनी भाषा होनेपर भी हमने एक तरह इन कवियोंको मार डालना चाहा। शायद, पहले-पहल इन कवियोंका जैन और बौद्ध होना भी इस उपेक्षाका कारण रहा हो, किन्तु आज शेक्सपियर और उमर खैय्यामकी दिल खोलकर दाद देनेवाले हम लोगोंसे तो ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

यहाँ एक बातको हम और साफ़ कर देना चाहते हैं। हम जब इन पुराने कवियोंकी भाषाको हिन्दी कहते हैं, तो इसपर मराठी, उड़िया, बँगला, आसामी, गोरखा, पंजाबी, गुजराती-भाषा-भाषियोंको आपत्ति हो सकती है। लेकिन

हमारा यह अभिप्राय हरगिज नहीं है, कि यह पुरानी भाषा मराठी आदिकी अपनी साहित्यिक भाषा नहीं है। उन्हें भी उसे अपना कहनेका उतना ही अधिकार है, जितना हिन्दी-भाषा-भाषियोंको। वस्तुतः ये सारी आधुनिक भाषायें बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीमें अपभ्रंशसे अलग होती दीख पड़ती हैं। जिस समय (आठवीं सदीमें) अपभ्रंशका साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक़्त बँगला आदि उससे अलग अस्तित्व नहीं रखती थीं। उनके आजके क्षेत्रमें शायद मराठी और उड़ियाकी भूमिमें आखिरी लड़ाई खतम हो चुकी थी, और यह दोनों भाषायें अपने यहाँ पहलेसे चली आई किसी द्राविड़ी भाषाकी चिता शान्त करनेमें लगी थी। गुजरातने तो हमें कई कवि दिये हैं, उनकी कविताओंका आस्वादन आप इस संग्रहमें करेंगे। वस्तुतः, यह सिद्ध-सामंत-युगीन कवियोंकी उपरोक्त सारी भाषाओंकी सम्मिलित निधि है।

सम्मिलित निधि है, अर्थात् बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी तक द्राविड़-भाषा-भाषी आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्णाटकको छोड़कर भारतके सभी प्रान्तोंकी एक सम्मिलित भाषा भी थी। यहाँ कोई-कोई अखण्ड हिन्दी-वादी या एक भाषा-वादी पाठक कह उठेंगे—तब तो अब भी क्यों न अ-द्राविड़ीय प्रान्तोंकी एक भाषा कर दी जाये। लेकिन, यह करना वैसा ही होगा, जैसे वयस्क स्वतन्त्र पोते-पोतियों-को फिर दादीके गर्भमें पहुँचानेकी कोशिश करना। गुजरात यद्यपि तेरहवीं शताब्दी तक आजके हिन्दी-क्षेत्रका अभिन्न अंग रहा है, आज भी होली-दिवाली, नाच-गाने और दूसरी सैकड़ों बातोंमें गुजरात हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंसे एकता रखता है, लेकिन आज उसके साहित्य और कितनी ही दूसरी सांस्कृतिक बातोंने गुजरातको एक स्वतन्त्र राष्ट्रका रूप दिया है, फिर हम क्या उससे वैसी अखंडता-की माँग कर सकते हैं।

अपभ्रंशके कवियोंको विस्मरण करना हमारे लिये हानिकी वस्तु है। यही कवि हिन्दी-काव्य-धाराके प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाणकी सिर्फ़ जूठी पत्तलें नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र-की तरह हमारे काव्य-क्षेत्रमें नया सृजन किया है; नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये, यह स्वयंभू आदिकी कविताओंसे अच्छी तरहसे मालूम हो जायेगा।

नये-नये छन्दोंकी सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नये-नये छन्दोंकी उन्होंने सृष्टि की, जिन्हें हिन्दी कवियोंने बराबर अपनाया है, यद्यपि सबको नहीं। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं। उन्हें छोड़ देनेसे बीचके कालमें हमारी बहुत हानि हुई और आज भी उसकी सम्भावना है।

हमारे मध्यकालीन कवियोंने अपभ्रंशके कवियोंको भुला दिया और वह प्रेरणा लेने लगे सिर्फ़ संस्कृतके कवियोंसे। स्वयंभू आदि कवि अपनी पांच शताब्दियोंमें सिर्फ़ घास नहीं छीलते रहे, उन्होंने काव्य-निधिको और समृद्ध, भाषाको और परिपुष्ट करनेका जो महान् काम किया है, हमारे साहित्यको उनकी जो ऐतिहासिक देन है, उसे भुला कर, कड़ीको छोड़कर सीधे संस्कृतके कवियोंसे सम्बन्ध स्थापित करना हमारे साहित्य और हिन्दी-भाषा दोनोंके लिए हानिकर सिद्ध हुआ है। हम संस्कृत कवियोंसे सम्बन्ध जोड़नेके विरोधी नहीं हैं, लेकिन हमें इस बीचकी कड़ी—जो हमारी अपनी ही कड़ी है—को लेते संस्कृतके प्राचीन कवियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा; तभी हम ऐतिहासिक विकाससे पूरा लाभ उठा सकेंगे।

२. आर्थिक और सामाजिक अवस्था

१—सम्पत्ति और उसके भोक्ता

सिद्ध-सामन्त-युगकी कविताओंकी सृष्टि आकाशमें नहीं हुई। वे हमारे देशकी ठोस धरतीकी उपज हैं। कवियोंने जो खास-खास शैली-भावको लेकर कवितायें कीं, वह देशकी तत्कालीन परिस्थितिके कारण ही। यह बात तब तक साफ़ नहीं होगी, जब तक तत्कालीन भारतकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अवस्थाओंकी पृष्ठ-भूमिमें हम उसे नहीं देखते। पहले हम उस काल—अथवा आठवींसे बारहवीं सदीकी पाँच सदियों—की आर्थिक अवस्थापर विचार करते हैं। उस समय भारत बहुत सम्पन्न था। अकेला रोम अपने यहाँसे हर साल ढाई लाख तोला सोना या साढ़े पाँच लाख सेस्तर्स

(पौने दो करोड़ रुपये) कपड़े और दूसरी चीजोंको खरीदनेके लिए भारत भेजा करता था। प्लीनी (२३-७६ ई०)ने बड़े क्षोभसे लिखा था—"हमें अपनी विलासिता और अपनी स्त्रियोंके लिए कितनी कीमत चुकानी पड़ती है।" उन्नीसवीं सदीके आरम्भके अंग्रेज भी प्लीनीकी तरह भारतीय कपड़ों औ मसालोंके लिए देशसे धन खिंचते देख चिन्तित थे; यद्यपि वह दूसरी ओर भारतको दूह भी रहे थे। भारत उन पांच शताब्दियोंमें शिल्प-व्यवसाय और वाणिज्यमें दुनियाका सबसे समृद्ध देश था। अरब, पश्चिमी-एशिया, उत्तरी अफ़रीका और यूरोपसे अपार धन-राशि खिंच-खिंचकर हमारे देशमें चली आ रही थी। शिल्प और व्यापार ही नहीं, कृषि भी उन पांच शताब्दियोंमें हमारे देशमे वहुत उन्नत-अवस्थामे थी। नदियों और जलाशयों द्वारा सिचाईके प्रवन्धकी प्रथम जिम्मेदारी राज्यके ऊपर थी, इसे पाश्चात्य लेखकोंने भी माना है। इसका यह मतलव नही कि हमारी कृषि साइन्स-युगकी कृषिके समान उन्नत थी। उस वक़्त दुनियाको आधुनिक भौतिक साइन्सका पता ही नही थ और जो कुछ कृषि-विज्ञान सभ्य-संसारको ज्ञात था, भारत भी उसमें किसीसे पीछे नही था।

उस समयकी भारतीय समृद्धिकी वात सुनकर आप शायद सतयुगका ख्वाव देखने लगेंगे, और कह उठेंगे—"वह वस्तुतः राम-राज्य था।" लेकिन यह कहना वहुत ग़लत होगा। चीन, जावा, अफ़्रिका, यूरोपसे जो माया भारतमें आ रही थी उसको भोगनेवाली सारी भारतीय जनता नही थी। कौन भोगनेवाले थे, आइये इसे देखें।

(१) **राजा-सामन्त**—इस सम्पत्तिके सवसे अधिक भागको सामन्त-राजा अपनी मौज और आरामके लिए कितना खर्च किया करते थे, इसकी वहाँ कोई सीमा नहीं थी। आजकी कितनी ही देशी रियासतोंकी तरह सारा राजकोष ही उनका वैयक्तिक कोष नही था, वल्कि व्यापारियों और सेठोंके खजानोंमें भी जो कुछ था, उसे खर्च कर डालनेमें उनका हाथ पकड़नेवाला कोई नहीं था। जिन्होंने हालके वाजिदअली शाह तथा दूसरे विलासी शासकोंके भोग-विलासके वारेमें पढ़ा है, वह आसानीसे समझ सकते है कि उस कालके क़न्नौज, मान्य-

होगा। लेकिन समृद्ध भारतकी सम्पत्तिके अपव्ययका लेखा इतने हीसे समाप्त नहीं होता। पुरोहित और महंथ लोगोंका भी खर्च राजसी ठाटके साथ होता था। उनके पास भी महल, दास, कमकर थे और उसीके अनुकूल उनका खर्च भी था। उस समय धार्मिक मठों और मन्दिरोंमें देशकी सम्पत्तिको खर्च करनेमें बहुत उदारता दिखलाई जाती थी।

सातवीं सदीमें नालन्दाके ताराके सोना, रतन, जवाहिरसे भरे जिस मंदिर-का जिक्र विदेशी तीर्थ-यात्रियोंने किया है, उसमें बारहवीं सदीके अंत तक बराबर वृद्धि ही होती गई और मुहम्मद बिन-बख्तियारको जितना धन वहाँसे मिला उतना किसी राजमहलसे भी नही मिला होगा। राजवंशोंका हर सौ-दो सौ सालमें उच्छेद भी हो जाया करता था, लेकिन ये मंदिर तो चिरकाल तक सुरक्षित निधि बने रहते थे। महमूद राजपूतानेके रेगिस्तानोंकी खाक छानते सोमनाथमें पत्थर तोड़ने नहीं गया था। यह निश्चित है कि देशकी सम्पत्तिका काफ़ी भाग ब्राह्मण, जैन, बौद्ध मठों-मन्दिरोंमें जाता था।

(३) **सेठ**—इसके बाद देशकी सम्पत्तिके भारी हिस्सेके मालिक थे, वह श्रेष्ठी-सार्थवाह (कारवाँ-अध्यक्ष) जिनकी कोठियोंका जाल देशके भीतर ही नहीं, विदेशों तकमें बिछा हुआ था, और जिनके जहाज़ उस समयकी सभ्य दुनियामें सभी जगह पहुँचते थे। इन महासेठों, नगरसेठोंके पास कितनी सम्पत्ति थी, इसका कुछ अनुमान देलवाड़ा (आबू)के संगमर्मरके मन्दिर और उसके बहुमूल्य शिल्पकार्यको देखकर आप आसानीसे लगा सकते हैं।

वस्तुतः तत्कालीन भारतकी अपार सम्पत्तिके मुख्य भोगनेवाले थे, यही सामन्त, पुरोहित और सेठ तथा उनके दरबारी-खुशामदी।

(४) **युद्धका अपव्यय**—अमीर लोग, संगीत साहित्य काम-कलापर ही देशकी सप्पत्तिको स्वाहा नहीं करते थे, बल्कि उनकी फ़जूलखर्चीका एक और भी बहुत भारी क्षेत्र था, वह था युद्ध, दिग्विजय। किसी सामन्त (राजा)के लिए बड़े शर्मकी बात होती यदि वह छोटा-मोटा दिग्विजय न करता या कमसे कम किसी पड़ोसी राजाकी कुमारीको न पकड़ लाता। यह सामन्तयुगके यौवन-का समय था। सामन्तों और उनके योद्धाओंके हाथोंमें लड़नेके लिए खुजली

तेल पेरी जाती थी। इस [illegible] [illegible] उनकी बिल्कुल ही परवाह नहीं करता था। उनकी सारी शिक्षा-दीक्षा इसी बातको सिखलाती थी कि [illegible] [illegible]—[illegible]—उसके लिए [illegible] सब चीजोंमें [illegible] [illegible] चीज है। [illegible] जिस व्यापारके हम गुण गाते हैं, उसमें हमें साफ दिखला दिया है कि उसमें कितना अधिक [illegible] होता है—धातुओंकी सारी [illegible] [illegible] [illegible] और कितनी भारी परिमाणमें [illegible] [illegible] जाती है। [illegible] [illegible] किसान, गड़ेरिए, कारीगर जनताके [illegible] [illegible] [illegible] बहुत भारी [illegible] थे [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया करते थे।

साधारण जनता—लेकिन सम्पत्ति पैदा कौन करता था? वे तीनों नहीं, बल्कि यह थे, किसान, मजदूर और कारीगर। मिट्टीका सोना बनाना इन्हींके हाथका चमत्कार था। चाहे सुहावने गेहूँ और सुगन्धित चावलोंको लीजिए, चाहे [illegible] और दुकूलों, अथवा लोहकुंडोंसे निकलनेवाले फौलादको; ये सभी चीजें किसानों, मजदूरों और कारीगरोंके शारीरिक श्रमकी कुशलतासे पैदा होती थीं। जिस तरह आजके राजाओं, नवाबों और करोड़पति सेठोंके वैभवको देखकर सारा देश सुखी और समृद्ध नहीं कहा जा सकता, उसी तरह उस समयके राजा-पुरोहित-सेठ-सामंत इन्हींके ऐश्वर्यके कारण सारे भारतको स्वर्ग नहीं कहा जा सकता। उस समय शायद सारी जनताका दस सैकड़ेसे अधिक भाग नहीं रहा होगा, जिसके जीवनको मौज-मस्ती और आरामका जीवन कहा जा सकता।

(१) दास-दासी—फिर यह भारत दासप्रथाका भारत था। यदि दस सैकड़ा मौजवाले लोगोंके लिए व्यक्ति पीछे दो-दो दास-दासी रखे जाते थे, तो भारतकी कुल जन-संख्याका बीस सैकड़ा या हर पाँच आदमीमें एक आदमी दास था। दास आदमी नहीं थे, यद्यपि उनकी शकल-सूरत आदमीकी तरह होती थी। वह ढोरोंकी तरह अपने मालिककी जंगम सम्पत्ति थे, जिन्हें मालिक जब चाहें बेंच-खरीद सकते थे। उनका जीवन बिल्कुल अपने मालिककी दयापर निर्भर था। अभी अंग्रेजोंके राज्य स्थापित हो जानेपर अठारहवीं सदीके बाद तक यह दास-प्रथा भारतमें बनी रही थी। अभी भी दरभंगा जिलेमें दासोंकी

विक्रीके कितने ही ताल-पत्र आप देख सकते हैं। और नैपालके स्वतंत्र "हिन्दू राज्य"में तो १९२५ ई० तक बाक़ायदा दास-प्रथा जारी रही। यह ठीक है, दास-प्रथाके लिए हम सिर्फ़ भारत हीको दोषी नहीं ठहरा सकते, उस समय दुनियाके सभी मुल्कोंमें दास-प्रथा मौजूद थी और बाज़ारोंमें गोरे, भूरे, काले सभी रंगोंके ये मानव-पशु मिलते थे।

(२) **किसान, कम्मी, कारीगर**—जनताके बीस सैकड़े भारतीय दास तत्कालीन भारतीय समृद्धिके भोगनेके अधिकारी नहीं थे। बाक़ी सत्तर सैकड़े लोग किसान, कम्मी (अर्द्धदास) और कारीगर थे।—दस सैकड़ा कम्मी, पचास सैकड़ा किसान और दस सैकड़ा कारीगर मौजकी ज़िन्दगी नहीं बिता रहे थे। स्वयंभू और पुष्पदन्तके खेत अगोरनेवालियोंके मोटे गन्ने और द्राक्षा-लताओंको देखकर आप यह समझनेकी ग़लती न करें, कि वह उन्हीं अगोरनेवालियोंके उपभोगके लिए थे। वहाँ सारा शिल्प, सारा व्यवसाय, सारी कृषि मुट्ठी॰ आदमियोंके भोगके लिए होती थी। दूसरोंको तो मुश्किलसे सिर्फ़ जीने और व्या भरका अधिकार था।

(क) **जनताका आत्म-सम्मान**—बीस सैकड़ा दासोंपर तो, नर-पशु होने की वजहसे विचार करनेकी ज़रूरत ही नहीं, लेकिन सत्तर सैकड़ा किसान-कम्मी-कारीगरकी अवस्था? आत्म-सम्मान? ऊपरी वर्गके सामने बिल्कुल शून्य "परम भट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज"के सामने सम्मान-प्रदर्शन करनेके लिए जब दूसरे राजाओं और सामन्तोंको अपने मुकुट उनके चरणोंपर रखने पड़ते थे, तो साधारण जनताको किस तरह जुहार करनी पड़ती होगी, इसे आप वुद समझ सकते हैं। और दूसरी बेबसियाँ? सत्तर सैकड़ा जनताको शरीरसे ज़बूत अपने तरुण पुत्रोंको सामन्तोंके युद्धके लिए भेंट करना पड़ता था—हाँ, दि उनकी जाति छोटी नहीं समझी जाती हो, छोटी जातिके तरुणको बड़ी तिके साथ एक पंक्तिमें लड़कर मरनेका भी अधिकार नहीं था। सत्तर कड़ा जनताको अपनी सुन्दर लड़कियोंको वैध या अवैध रूपसे रनिवासमें नेके लिए भी तैयार रहना पड़ता था। कितनी ही जगह तो नव-विवाहिता- प्रथम रात भी सामन्तके लिए रिज़र्व थी, चाहे वह हाथसे छूकर ही छुट्टी

दे दे। उस वक़्त साधारण जनताके आत्म-सम्मानकी बात करना ही फ़जूल है।

(ख) अकाल आदिमें यातना—उस वक़्त इस आर्थिक हीनताके साथ कुछ सुभीते ज़रूर थे। उस समय भारतकी आबादी आजसे चौथाई या (दस करोड़)से कम ही रही होगी, जिसका मतलब है—लोगोंके पास अधिक खेत, खेत बनानेके लिए अधिक जंगल, जंगलोंमें ज़रूरतके लिए अधिक शिकार। उस समय जैनोंके तीर्थंकरों और देवताओंको छोड़ बाक़ी सभी देवी-देवता—ब्राह्मण बौद्ध दोनों—घास-खोर नहीं थे। यह भी अच्छा था कि अमीरोंकी शौक़ीनीकी प्रायः सारी चीज़ें देशके भीतर तैयार होती थीं। सम्भव है कुछ रेशम और बारीक दुशाले या क़ालीन बाहरसे आते हों। अतएव इनके लिए देशका धन बाहर नहीं जाता था। लेकिन इतना होने पर भी अकाल, बाढ़, युद्ध और महामारीमें साधारण जनताको कीड़े-मकोड़ेकी तरह मरनेसे बचाया नहीं जा सकता था। फ़सल अच्छी हुई, शिल्पकी वस्तुओंकी माँग रही, तो सत्तर सैकड़ा जनताकी साल-की खर्ची ठीकसे चलती रही। उस वक़्तके साधारण किसानोंसे आशा नहीं रखी जा सकती थी कि वे पचासों बँध-अबँध करों, राजकर्मचारियों, पुरोहितों और महाजनोंकी लूट-खसोटके बाद भी एक सालकी उपजको दो साल तक चला लेंगे। जब तक साल दो साल आगे तकके खानेका सामान घरमें नहीं है, तब तक किसान, कम्मी, कारीगर अकाल आदिके चंगुलमें पड़कर बुरी मौत मरनेसे कैसे बचाए जा सकते? जहाँगीरके वक़्त (१६३० ई०) सत्तासिया अकालने दक्षिणी भारत और गुजरातमें क्या ग़ज़ब ढाया, लोगोंपर क्या-क्या बीती, यह समय सुन्दर कविके आँख देखे वर्णनसे मालूम होगा। इस अकालमें मनुष्यकी साधारण मानवता ही नहीं खो गई थी, बल्कि आदमी माँ, बहिन, बेटी, भाई, बाप सबके सम्बन्धको सबके सम्मानको ताक़में रखकर केवल अपने शरीरको बचानेकी कोशिश करता था। मरते इतने थे कि मुर्दोंका हटाना मुश्किल था। १९४२में बरमासे मणिपुरके रास्ते जो भारतीय भाग कर आए, उनकी अवस्थाको हमारे एक मित्रकी भ्रातृ-वधू बतला रही थीं—"चलनेमें असमर्थ या बीमार पड़ जानेपर लोग अपने भाइयों और पुत्रोंको भी वहीं जंगलमें छोड़-कर चल देते थे, हाँ उनके पास एक अच्छी दलील थी—यहाँ रहकर ख़ुद भी

मर जानेके सिवा हम अपने बंधुकी कोई सहायता नही कर सकते। भूखे-प्यासे अपने शरीरको ले चलनेमें असमर्थ लोग अपने दुध-मुँहे बच्चोंको रास्तेके जंगली पेड़ोंपर टाँगकर चल देते थे। ऐसे बच्चे एक दो नहीं, सैकड़ों हमने अपनी आँखों देखे।" उस पुरातन कालके युद्धोंमें भी जब भगदड़ होती होगी, तो लोगों-की अवस्था इससे बेहतर नही रहती होगी। सत्तर फ़ीसदी जनताकी आर्थिक-अवस्था निश्चय ही इतनी हीन थी, कि किसी अकाल, बाढ़ या दूसरी आफ़त आने पर लाखोंकी संख्यामे मरनेके सिवा उनके लिए कोई चारा नहीं था।

हमने उस समयके बहुसंख्यक समाजका यहाँ अतिरंजित चित्र नहीं खींचा है, वस्तुतः उस समयके जीवनकी जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सामग्री जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हमें प्राप्त है, उससे हम यह छोड़ दूसरे निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते।

(३) **कवि जनताकी यातनापर चुप क्यों?**—हमारे इन कवियोंके सामने वे पशु-तुल्य दास-दासी और उनके ऊपर होते पाशविक अत्याचार मौजूद थे। पद-पदपर अपमानित, त्रस्त, पीड़ित, किसान, कम्मी, कारीगर जनता भी उनके सामने मौजूद थी। अकाल महामारी, युद्ध और बाढ़की दारुण-यातना हृदय-द्रावक दृश्य भी उन्होंने आँखोंसे देखे होंगे, फिर भी इन कवियोंकी कृतियोंमें उनके बारेमें इतनी चुप्पी क्यों? सोचे होंगे, अकाल, बाढ़, युद्ध, महामारी सब भगवान्‌के भेजे हुए हैं—लोगोंके पुर्बिले कर्मका यह फल है; इसलिए क्रौंच-मिथुन-मेंसे एकके वधसे तड़प उठनेवाली कविकी आत्माको उधर ध्यान देनेकी ज़रूरत नहीं। शायद ऐसा सोचकर इन कवियोंके बारेमें आप कोई कठोर निर्णय सुनाने लगें; लेकिन यह उचित नहीं होगा। जिस परिस्थितिके कारण कवियोंको यह मौन धारण करना पड़ा, उस परिस्थितिपर भी आपको ध्यान देना होगा। यदि कमाऊ जनताकी सारी यातनाओंके असली कारणको वह चाहे न भी बतलाते और सिर्फ लोगोंकी इन यातनाओंका नग्न चित्र खींच देते तो इससे राजा और उनके ढंगके अमीरोंका भोगमय-जीवन नग्न हो उठता; दोनों-की तुलना होने लगती और फिर जनताके कितने ही लोग वैसे समाजसे क्षुब्ध हो उठते, जिसका परिणाम अवश्य अमीरोंके लिए अच्छा नहीं होता। इसलिए

आपको समझना होगा कि काम-मिथुनोंके गुणके वर्णनके लिए कविता आँसू बहाना जितना आसान था, उतना उस कालके अत्याचारी समाजकी विषमताओंका वर्णन करना आसान नहीं था। यदि कोई आदमी तत्कालीन शोषक समाजके विरुद्ध लिखनेके लिए अपनी कवि-प्रतिभाका कुछ भी दुरुपयोग करता, तो वह केवल पुरोहितोंके धर्म-दण्डका ही भागी नहीं होता, बल्कि उसके सामने खड़ा हुआ राज-दण्ड—जिसका अर्थ था, अर्थात् शारीरिक यातना, सीधे सूली, या और समाजसे निष्कासन और अपमान। इन दण्डोंको सामने रखकर जब आप इन कवियोंकी कृतियोंको देखेंगे, तो मालूम होगा कि उनके वैसा करनेके लिए प्रबल कारण मौजूद थे। उस वक्त अखबार नहीं थे और न देश-देशान्तरोंके उदार-मना पुरुषोंकी सहानुभूति पैदा करनेका वैसा कोई साधन था कि शोषकोंके कठोर दंडके लिए सारी दुनियामें तहलका मचने लगता। यही नहीं, कवियोंने अपनी काव्य-प्रतिभाको जो कलामय दिखलाई है, उसका बचा-खुचा फल भी शायद राजा-पुरोहित-सेठकी कोपाग्निसे न बच पाता। कवि अपने स्थूल शरीर और कीर्ति-शरीर दोनोंहीके नष्ट होनेका भय सोच यदि मौन रहा, तो उसके विरुद्ध किसी कठोर फ़ैसलेके देनेका हमें अधिकार नहीं है।

३. राजनीतिक अवस्था

हर देशकी राजनीतिक अवस्था उसकी आर्थिक अवस्थाके अनुसार ही होती है; बल्कि राजनीति कहते ही है आर्थिक ढाँचे—आर्थिक स्वार्थोंकी रक्षाके लिए तैयार किये गये फ़ौलादी शिकंजे—को। उन पाँच शताब्दियोंमें साधारण जनताकी आर्थिक अवस्था कैसी थी, उसके ऊपर कितने अत्याचार और उत्पीड़न होते थे, इसे हम बतला आए हैं। हम देख चुके है कि जनता किस तरहसे मूक और निरीह बनी हुई थी। राजा सर्वशक्तिमान "परमेश्वर" बन गया था और उसकी निरंकुशताके रोकनेका कोई उपाय बहुसंख्यक जनताके पास नहीं था। लेकिन भारतीय जनता सदासे ही ऐसी नहीं थी। बुद्ध के समय (ई० पू० पाँचवीं सदी-में) भारतके कितने ही भू-भागोंपर लिच्छिवियोंकी तरहके शक्तिशाली प्रजा-तंत्र थे। यूनानियों और शकोंके कालमें भी यौधेयों जैसे प्रजातंत्रोंने अपने

अस्तित्वको ही नहीं बनाये रखा, बल्कि विदेशियोंके शासनको नष्टकर देनेमें इन्हीं-का सबसे पहिला और सबसे अधिक हाथ था। चौथी शताब्दीके अंतमें गुप्तोंकी विजय तो एक तरहसे खून लगाकर शहीद बननी थी। इन प्रजातंत्रोंमें जन-स्वतंत्रता थी, हाँ उतनी ही जितनी धनी-ग़रीब वर्गवाले समाजमें संभव हो सकती है। इन गणों (प्रजातंत्रों)की जन-स्वतंत्रताको देखकर राजाओंको भी अपने राज्यमें "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" बननेकी हिम्मत नहीं होती थी। ४०० ई०के आस-पास चंद्रगुप्त विक्रमादित्यने यौधेय-गणके उच्छेदके साथ भारतसे चिरकालके लिए जन-तंत्रताका उच्छेद कर दिया। इसमें शक नहीं कि गणोंके विनाशमें उनके भीतरकी आर्थिक विषमता, अल्पशक्ति भी कारण थी। तो भी जनताके इस स्वतंत्र शासनके उच्छेद करनेवाले चंद्रगुप्त विक्रमादित्यको क्षमा नहीं किया जा सकता। इस उच्छेदने भारतपर क्या प्रभाव डाला यह इसीसे समझमें आ सकता है, कि वर्त्तमान शताब्दीके आरम्भमें जब इति-हासवेत्ताओं और पुरातत्त्वज्ञोंने भारतके पुराने प्रजातंत्रोंके संबंधमें साहित्यिक और मुद्रा-संबंधी प्रमाण ढूँढ़ निकाले; तो उसकी ओर एक बार हमारे शिक्षित भी आँख मलकर आश्चर्यसे देखने लगे। उनको विश्वास नहीं होता था। कहाँ भारत और फिर वहाँ एथेन्स जैसा प्रजातंत्र—यह हो ही नहीं सकता। यदि बौद्धोंके कुछ पुराने ग्रन्थों तक ही प्रमाण सीमित होते, तो शायद उनको क्षेपक और बाहरी प्रभाव कहकर टाल दिया जाता, मगर ईसाके पहिलेकी शताब्दियों-से लेकर ईसवी चौथी सदी तकके ठोस सिक्कोंसे कैसे इनकार कर दिया जाये? तो भी यह ध्यान रखनेकी बात है कि इन प्रजातंत्रोंके प्रति सारे पुराण-कारों, धर्मशास्त्ररचयिताओं और पीछेके कवियोंकी चुप्पी खास कारणोंसे थी। वह अपने प्रयत्नमें कितने सफल हुए, यह तो प्रजातंत्रोंके बारेमें सदाके लिए हमारा अनभिज्ञ बन जाना ही साबित करता है। पिछली शताब्दियोंकी बात छोड़िये, आज भी जब कि हमारे शिक्षित जनतंत्रताका नाम लेकर विदेशी शासनको हटानेकी बात कर रहे हैं; तब भी किसी लिच्छवि या यौधेय प्रजातंत्रके स्मरण-महोत्सव या कीर्ति-स्तंभकी बात नहीं की जाती। यदि क्रियात्मक प्रस्ताव आता है, तो सर्वगण-उच्छेत्ता चंद्रगुप्त विक्रमादित्यके लिए कीर्ति-स्तंभ स्थापित

पकड़ेगा। हम समझते हैं, यह प्रश्न किसी भौतिकताको शामिल नहीं है, बल्कि इसके भीतर बहुत कुछ छिपा हुआ है।

हमारे कुछ भाई यह कहेंगे, कि भारतकी जनता कभी गुलाम नहीं हुई। यह तो गाँवोंकी पंचायतोंके हाथमें मौजूद रही और इन पंचायतोंको अंग्रेजी शासनने नष्ट किया। लेकिन निरंकुशताओंसे हमारे गाँवोंकी जनतन्त्रता जनताकी भलाईके लिए नहीं होता था। यह जानते हैं कि लाल लाख गाँव, एक दूसरेसे असम्बद्ध सर्वथा स्वतन्त्र प्रजातन्त्र, किसी निरंकुश शासकका मुकाबिला नहीं कर सकते। इसीलिए उन्होंने रुपयोंसे देशोंको विभक्त किया, धारावों बंदोंमें बाँट दिया और इस प्रकार ये ग्राम-प्रजातन्त्र निरंकुश शासकोंके बड़े कामकी चीज बन गए। जनताकी इस विवशता शासकोंकी चेतनाने शक्तियोंके सहारे गजबके बाद तुलसीदासने कहलवाया "कोउ नृप होउ हमैं का हानी। चेरि छाँड़ि ना होउब रानी।"

अब राजा "परम स्वतंत्र न सिर पर कोऊ" बन गए। उनके ऊपर अपनी प्रजाओंका कोई अंकुश न रहा। उनकी निरंकुशतापर यदि कभी कोई दबाव पड़ता था, तो सामन्तोंकी सदा बनी रहती आपसी खटपट का। बंगाला जिस वक्त अपने दोषोंको बता रहा था, उसीके पास-पास बिहारमें यह ऐतिहासिक घटना घटी, जिसमें प्रजाने एक गुमनाम-अशोक बहादुर व्यक्ति गोपालको अपना शासक चुना। उसके बाद फिर भारतीय इतिहासमें ऐसी कोई घटना देखनेमें नहीं आती। हाँ, तो सामन्तोंके ऊपर एक अंकुश आपसी खटपट थी और दूसरा था बाहरी आक्रमण। हमारे इस कालके आरम्भ हीमें अरब, सिंध (७१२ ई०) और मुल्तान (७१३)पर अधिकार जमा लेते हैं और यह भू-भाग हिन्दुस्तानसे बिल्कुल अलग कर लिया जाता है। पीछे ग्यारहवीं सदीके आरम्भके साथ ही महमूद गजनवी (९९७-१०३० ई०)के हमले होने लगते हैं। शायद इन अरब और तुर्क हमलोंने भारतीय नरेन्द्रोंको संयमका कुछ पाठ जरूर पढ़ाया होगा। धर्मको भी राजाओंपर भारी अंकुश बतलाया जाता है; लेकिन राजाओंके टुकड़खोर पुरोहित और महंथ उनपर कितना अंकुश रख सकते हैं, यह आसानीसे समझा जा सकता है; खासकर जब कि उनके पीछे साधारण जनता जैसी कोई

शक्ति सहायता देनेके लिए मौजूद नहीं हो। जन-शक्तिको तो बल्कि पूरी तरह कुचलनेमें राजाके बाद पुरोहितों और भद्दंयोंका ही सबसे अधिक हाथ रहा है। उन्होंने भगवान् और ऋषियों-मुनियोंके नामपर धर्मकी नयी व्यवस्थाएँ गढ़कर जन-शक्ति और जन-चेतनाको बिल्कुल खतम कर दिया। अब उनका राजा पृथ्वीपर विष्णुका अंश था और सारे विलास तथा उत्पीड़न पहले जन्मके कर्मके सुफल थे। धर्माचार्य यदि कुछ अंकुश रख सकते थे, तो शायद भक्ष्या-भक्ष्यपर।

बाहरका खतरा दिखलाई देनेपर जरूर देशके हर्त्ता-कर्त्ता लोग कुछ करनेके लिए मजबूर होते थे, लेकिन छठीं सदीमें हूणोंको परास्तकर भारत कुछ दिनोंके लिए निश्चिन्त हो गया था। ७१२ ई०में अरबोंकी सिन्ध-विजयने फिर खतरेकी घंटी बजाई। इसके लिए जरूरी था, कि देशका अधिकसे अधिक भाग एक शासन-सूत्रमें आ अपनी सैनिक-शक्तिको खूब मजबूत करे। इसके लिए आठवीं सदीसे लेकर अगली सदियोंमें जो प्रयत्न हुए, वह हमारे सामने कन्नौज, मान्यखेट और कभी-कभी पालोंकी प्रभुता या चक्रवर्तीत्वके रूपमें आये।

(१) कन्नौज—कन्नौजने मौखरियों, हर्षवर्धन और उसके सेनापति भंडीके वंशके प्रबल और विशाल राज्योंका प्राय: तीन सौ सालों (५५०-८१५) तक राजधानी रहनेके कारण उसी तरह एक अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था, जिस तरह मुस्लिम-कालमें दिल्लीने जिस वक्त सिंध और पंजाबपर काले बादल मँडरा रहे थे, उस वक्त कन्नौजका भंडी-वंश निर्बल और निकम्मा हो रहा था। कन्नौजके पीछे एक समृद्ध देशकी माया और प्राचीन वैभव था, वह आस-पासके सामन्तोंको आकृष्ट कर रहा था। हर्षवर्धनके साम्राज्यके टुकड़े-टुकड़े होनेपर जो अलग-अलग राज्य क़ायम हुए थे, उनमें बिहार-बंगालके पाल और गुजरात-मालवाके प्रतिहार मुख्य थे। दोनों ही कन्नौजके मालिक बनना चाहते थे। वह कन्नौजके शासक इन्द्रायुध और चक्रायुधमेंसे एकको गुड़िया बनाकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। प्रतिहार वत्सराज (७८३) और गौड़ेश्वर धर्मपाल (७७०-८०६) इसके लिए अपनी सेनाओंके साथ कन्नौज तक दौड़े। वह आपसमें लड़कर किसी स्थायी फ़ैसलेपर पहुँचना ही चाहते थे कि

सुदूर-दक्षिणके राष्ट्रकूट ध्रुव (७८०-९४) का पकड़ा और उसीका बन्दी भागी रहा। क्योंकि, भुवनकी बातका एक सूत्र इधर करना जरूर मालूम होते हैं। यह तो भुवनके किसी बाबाका रचना चलाकर साथ शंकित गए, और यहीं उन्होंने अपनी बहुमूल्य कलाकार कृतियाँ रचीं। पाल, राष्ट्रकूट और प्रतिहार तीनों कन्नौजपर दाँत लगाये थे। कन्नौजकी शक्ति ही बाहरी शत्रुओंसे उत्तरी भारत—अथवा सारे भारत—की रक्षा कर सकती थी। सौभाग्य समझिए कि अरब-तलवार सिंधको पारकर आगे नहीं बढ़ पाई, नहीं तो आठवीं सदीमें उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था उनके लिए बड़ी अनुकूल थी।

कन्नौज नगरी एक ऐसी स्वयंवर-कन्या थी, जिसे राष्ट्रकूट, प्रतिहार और पाल तीनों ब्याहना चाहते थे; लेकिन स्वयंवर-कन्या मौन बनकर नहीं रहना चाहती थी। अब तीनों उम्मेदवारोंको फैसला करना था—कौन अपना बल और पराक्रम दिखानेके लिए तैयार है। प्रतिहार नागभट्टने फैसला किया, वह कन्नौजका स्वामी बन गया, बाकी दोनों मुँह ताकते रह गए। तबसे करीब-करीब महमूदके हमले तक कन्नौज उत्तरी भारत और सारे भारतके लिए जबर्दस्त स्थान बना रहा।

(२) राष्ट्रकूट—हर्षवर्धनको दक्षिणी भारतकी दिग्विजयसे खाली हाथ लौटानेके लिए मजबूर करनेवाले पुलकेशीके चालुक्य-वंशको हटाकर राष्ट्रकूटोंने अपनी जबर्दस्त सत्ता उसी समय (७५३) स्थापित की, जब कि पूरबमें गोपाल पाल-वंशकी नींव रख रहा था। ७५३ ई०से ९७३ ई०की प्रायः दो सदियों तक राष्ट्रकूट-वंशी वल्लभराज भारतके सबसे बलवान् राजा रहे। नर्मदासे कृष्णा और कभी-कभी कांची तक उनका विशाल राज्य फैला हुआ था और सुदूर-दक्षिण रामेश्वर ही नहीं, कभी-कभी तो सिंहल भी उनकी आज्ञाको मानता था। कितनी ही बार उनके घोड़ोंकी टाप यमुना और गंगाके द्वाबे (अंतर्वेद)में प्रतिध्वनित हुई थी। कितनी ही बार उनके सैनिक युक्त-प्रान्तके दुर्गोंमें मालिक बनकर बैठते थे।

(३) पाल—गोपाल और धर्मपालका जिक्र अभी कर चुके हैं। धर्मपाल बंगाल-बिहारसे संतुष्ट न रह कन्नौज तक हाथ फैला रहा था, इसे हम बतला

चुके हैं। धर्मपाल असफल रहा। उसका पुत्र देवपाल (८१५-३४) भी उत्तरका चक्रवर्ती बनना चाहा, मगर अन्तमें जयमाला नागभट्टके गलेमें पड़ी, यह बतला चुके हैं। नवीं-दसवीं सदीमें यही तीनों भारतकी प्रधान शक्तियाँ थीं। देशमें और भी कितने ही राज-वंश थे, लेकिन वह इन्हीं तीनोंमेंसे किसी एकके आधीन रहते थे। गौड़ चक्रवर्त्ती-क्षेत्रने हमें ८४ सिद्धोंके रूपमें पुरानी हिन्दी (अपभ्रंश) के कवि दिए। पाल-वंश बौद्धधर्मानुयायी था, इसलिए लोक-भाषासे उसे थोड़ा-बहुत अनुराग था और वहाँ संस्कृत देश-भाषाके साहित्यका गला घोंटनेकी क्षमता नहीं रखती थी।

राष्ट्रकूट चक्रवर्त्ती-क्षेत्रने भी प्राकृतके कितने ही कवियों तथा स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे हमारी भाषाके सर्व्वोच्च कवियोंको यदि पैदा न किया हो, तो कमसे कम उन्हें आश्रय जरूर दिया। जैन होनेसे राष्ट्रकूट-राजा देश-भाषाके प्रति अधिक उदार विचार रखते थे।

कान्य-कुब्ज चक्रवर्त्ती-क्षेत्र यद्यपि वह क्षेत्र था, जिसके ही भीतर अपभ्रंशका अपना मूल-क्षेत्र था: किन्तु वहाँ हम सदा (तुलसीबाबा तक) संस्कृतको ही सर्वेसर्वा रहते देखते हैं। शायद इसमें ब्राह्मणों और ब्राह्मण-धर्मकी प्रधानता कारण थी, वह नहीं चाहते थे कि संस्कृतसे दस-पाँच हाथ नीचे भी किसी दूसरी भाषाको स्थान मिले। बहुत संभव है, स्वयंभू अवधी भाषा-क्षेत्रके थे और पुष्पदन्त यौधेय (हरियाना, दिल्ली)-क्षेत्रके; इस प्रकार दोनों ही कान्यकुब्ज चक्रवर्त्ती-क्षेत्रके थे, लेकिन उनकी पूछ अपने दरबारमें नहीं बल्कि दूर जाकर दक्षिणापथमें हुई। अपने दरबारमें तो राजशेखर और श्रीहर्ष जैसे संस्कृतके महाकवियोंकी ही एकमात्र पूछ थी।

नवीं शताब्दीमें प्रायः दो शताब्दियोंके लिए राष्ट्रकूट और प्रतिहार दो जबर्दस्त शक्तियाँ तैयार हो गई हैं, जो पश्चिमी यवनोंको रोकनेकी काफ़ी क्षमता रखती थीं। बल्कि राष्ट्रकूटोंको उसमें कुछ अधिक सुभीता था। उनकी तीन तरफ समुद्रकी खाई थी, डर था तो सिर्फ उत्तर-पश्चिममें गुजरातकी ओर से। [illegible] भी था, लेकिन बीकानेरका रेगिस्तान और अरब [illegible] नहीं थे। [illegible] राष्ट्रकूटोंका सैनिक-बल बहुत मजबूत था।

प्रतिहारोंपर उत्तरी भारतकी रक्षाका सवसे अधिक भार था। जव तक उन्होंने इस कर्त्तव्यको पूरा किया, तव तक वह अचल रहे, लेकिन जैसे ही राज्यपाल (१०१८)ने महमूदके सामने सर झुकाया, वैसे ही प्रतिहार-वंशका सितारा डूवने लगा, और उसके आधीनके चन्देल (कालिंजर) कलचुरी (त्रिपुरी) तथा चौहान (सांभर, अजमेर) स्वतंत्र होने लगे। प्रतिहार फिर कुछ दिनों तक मुर्दा अगोरते रहे, क्योंकि उनके प्रवल सामन्त आपसी झगड़ेके कारण कन्नौजके वारेमें कोई फ़ैसला नहीं कर सकते थे। लेकिन, इस डाँवाडोल अवस्थामें कन्नौज सदाके लिए नहीं रह सकता था।

१०८० में गहड़वार चंद्रदेवने कन्नौजपर हाथ साफ किया। यद्यपि गहड़वार वंशको गंगा-यमुनाके वीचका वहुत ही गुंजान और उर्वर प्रदेश मिला और इस प्रकार वह औरोंकी अपेक्षा अधिक वलवान रहा, तो भी उसे प्रतिहार-वंश जैसा वल नहीं प्राप्त हो सका। चौहान, चंदेल, और कलचुरी अपने वलको कन्नौजसे मिलाकर वाहरी शक्तिसे मुकावला करनेके लिए तैयार नहीं थे। तो भी चंद्र देवके पौत्र गोविन्दचंद्रके (१०९३-११३४) समय गहड़वार-वंश उत्तरी भारतका सवसे अधिक वलशाली राज्य था। गोविन्दचंद्रके पौत्र जयचंद्र (११७०-९३) के वक्त गहड़वार शक्ति निर्वल हो चुकी थी। उस वक्त चंदेल परमर्दी (११६७-१२०२) काफी शक्तिशाली था। लेकिन कलचुरी, चौहान या चंदेलोंकी कितनी भी प्रवल शक्ति हो, उनमें किसीके लिए संभव नहीं था, कि प्रतिहारोंके चक्रवर्त्ती-क्षेत्र को फिरसे जीवित करके वाहरी आक्रमणको रोके।

दसवीं सदीका अंत होते-होते उत्तरी भारतमें पालों, गहड़वारों, चालुक्यों, [illegible] मालवाके दो और स्वतंत्र राज्य

थे। गहड़वार-दर्बारमें भी अवश्य कुछ लोक-साहित्यका मान था, जैसा कि काशी-श्वर-संबंधी कविताओं तथा स्वयं जयचन्दके महामंत्री विद्याधरकी स्फुट कविताओं-से मालूम होता है। कलचुरी कर्णके दर्बारमें भी बब्बर और दूसरे कितने ही कवियों-का सम्मान होता दिखलाई पड़ता है। कालिंजरका चन्देल-दर्बार शायद इस बारे-में सबसे पिछड़ा हुआ था। कनकामर मुनि, संभव है, इन्हींके बुन्देलखण्डके हों, मगर उनकी कविताओंको आश्रय देने का श्रेय चन्देल दर्बारको नहीं मिल सकता।

मुंज (९७४-७५) और भोज (१०१०-५६) चचा-भतीजे संस्कृत-प्राकृत-के साथ देशी-भाषाके भी प्रेमी थे और उनकी धाराने अवश्य कितने ही अपभ्रंश कवियोंका स्वागत किया होगा, यद्यपि हमारे पास तक उनकी कृतियाँ बहुत थोड़ी पहुँची हैं। चौहान-दर्बारका कवि सिर्फ चन्द बरदाई हमारे सम्मुख है। यद्यपि उसकी रचना "पृथ्वीराज रासो"की जो प्रति आज उपलब्ध है, वह बहुत विकृत तथा मूलसे चार सदियों बाद की है। हमने उसके कुछ नमूने यहाँ सिर्फ इसी ख्यालसे दिये हैं, कि चन्दकी कविताका कुछ अंश इसमें मौजूद है। उसकी भाषामें खूब मनमानीकी गई है, इसमें संदेह नहीं।

गुर्जर-चालुक्य-क्षेत्र (९६१-१२५७) यही नहीं कि दिल्ली-कन्नौजके काफी पीछे तक स्वतंत्र रहा, बल्कि इसने अपभ्रंश कवियोंको सबसे अधिक पैदा किया। पैदा करनेसे भी ज्यादा उसने जो बड़ा काम किया, वह है अपभ्रंश-कृतियोंका रक्षा करना। शायद दर्बारके जैन होने तथा जैन नागरिकोंके भाषा-प्रेमके कारण ऐसा हो सका।

हमारे इस साहित्यिक युगकी राजनीतिक पृष्ठभूमिकी ओर व्यापक दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा, कि पहले शतक अर्थात् सातवीं-आठवीं सदीमें बाहरी शत्रु अभी उतने प्रबल न थे। नवीं-दसवीं सदीमें हमारा राजनीतिक-संगठन इतना विस्तृत और मजबूत था कि कोई उसका मुकाबला करके सफलताकी आशा नहीं कर सकता था। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दीमें शक्ति आधे दर्जन टुकड़ोंमें बँट गई। और यह था विदेशी आक्रमणकारियोंको न्यौता देना।

तत्कालीन कविताओंमें हमें तीन बातोंकी छाप मिलती है—रहस्यवाद या आध्यात्मिक मन-कल्पना, निराशावाद और युद्धवाद या वीररस। ये तीनों ही

काव्य-भावनाएँ उस वक्तके शासक-समाजकी आवश्यकताके लिए विल्कुल उपयुक्त थीं। उस वक्तके सामन्त वच्चेको तलवारका चरणामृत दिखलावटी नहीं पिलाया जाता था, वल्कि दरअसल उसे वचपनसे ही मरने-मारनेकी शिक्षा दी जाती थी। मौतसे खेल करनेके लिए वह हर वक्त तैयार रहता था। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदियोंके कवियोंने भी अपने आश्रय-दाताओंकी वड़ी-वड़ी वीरताओंका वर्णन किया, लेकिन वह अधिकांश थोथी चापलूसी है, यह हमे मालूम है। हमारी इन पाँच सदियोंमें सामन्त वस्तुतः निर्भय वीर होते थे। उनके देश-विजयोंके वारेमे कवि अतिशयोक्ति भले ही कर सकता है, लेकिन शरीरपर तीरों और तलवारोंके घावोंके चिह्नोंके वारेमें अतिरंजनकी जरूरत नहीं थी। ऐसे समाजके लिए वीर-रसकी कविताएँ विल्कुल स्वाभाविक हैं।

युद्ध एक पासा है, जो कभी चित्त भी पड़ सकता है, कभी पट भी। असफल सामन्तके लिए निराशा आवश्यक है, लेकिन निराशा हर वक्त आदमीके दिलको जलाया करती है, इसलिए सव कुछ भूल जानेके लिए आध्यात्मिक भूल-भुलैया या रहस्यवाद भी उतना ही आवश्यक है। प्रभु-वर्गको छोड़ वाकी अस्सी फीसदी जनताके लिए तो निराशावाद विल्कुल स्वाभाविक है। आध्यात्मिक भूल-भुलैयासे फायदा उठानेवाले साधारण जनतामें शायद ही कोई थे। हाँ, सिद्धोंने सरल जन-भाषामें अपनी कवितायें लिखकर उनके भीतर घुसनेकी कोशिश की। सिद्धोंके वारेमें यहाँ एक वात स्मरण रखनेकी है—उनकी कवितामें रहस्यवाद है मगर निराशावाद उससे छू नहीं गया है। वह कायाको मल-मूत्र-पूर्ण गन्दी चीज नही वल्कि तीर्थकी तरह पवित्र मानते हैं, सव तरहके सांसारिक भोगोंको छोड़ने नहीं ग्रहण करनेकी शिक्षा देते हैं। शायद इसमें उनका क्षणिकवादी दर्शन कारण रहा हो। संसारकी सभी वस्तुएँ क्षण-क्षण वदलती रहती हैं, उनमें संयोग-वियोग होता रहता है, लेकिन जगत्‌की सारभूत यह क्षणिकता वुरी नहीं है, इसीसे जगत्‌का वैचित्र्य, जगत्‌का सौन्दर्य्य कायम है। अतएव क्षणिक होनेसे जगत् उपेक्षणीय नहीं है।

ग्यारहवीं-वारहवी सदीमें महमूद गजनवीके सोमनाथ और वनारस तकके आक्रमणोंके वाद भी उत्तरी भारत कई राज्योंमें वँटा ही रहा। सातों दर्वार आपसमें लड़ते ही रहते, फिर वहाँ आशावाद कहाँ संभव था? अभी सामन्ती

वीरता मौजूद थी, तलवार झनझनाती रहती थी, लेकिन अपनी बिखरी ताकत देखकर निराशावाद उन्हें अपनी ओर खींच रहा था।

(४) **इस्लाम भारतका अभिन्न अंग**—हम पहिले कह चुके हैं, कि जिस वक्त हिन्दीके आदि कवि सरहपा अपनी कविताएँ रच रहे थे, उससे आधी शताब्दी पहिले ही (७१२-१३) सिंध और मुल्तान हिन्दुओंके हाथसे चले गए। तबसे दसवीं सदी तक इस्लामिक राज्य बहुत आगे नहीं बढ़ पाया। अभी काबुलपर भी हिन्दू ही शासन कर रहे थे। लेकिन ग्यारहवींके शुरू हीमें काबुल ही नहीं लाहौर भी हिन्दुओंके हाथसे निकल गया। मुस्लिम-राज्य-स्थापना भारतके इतिहासमें एक बहुत भारी घटना थी। अभी तक जितने भी विदेशी आक्रमणकारी भारतमें आए थे, वह भारतीय संस्कृतिको स्वीकार कर—हाँ उसमें कुछ अपनी ओरसे दे करके भी—हजारों जात-पातोंमें बिखरे भारतीय जन-समुद्रमे मिलते गये। लेकिन अब जिस संस्कृति और धर्मसे वास्ता पड़ा, वह काफी सबल था। उसे हजम करनेकी ताकत ब्राह्मणोंके जीर्ण-शीर्ण ढाँचेमें नहीं थी। हमारे युगसे आगे हिन्दी-कविताका सूफी-युग (चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी) इस बातका साफ सबूत है, कि मुसलमान सूफियोंने हिन्दी-साहित्य और उसकी जनतापर काफी प्रभाव डाला, लेकिन इस्लामने भारतपर अधिकार करके सिर्फ आध्यात्मिक भूल-भुलैयाके कुछ पाठ ही नहीं पढ़ाये, बल्कि कुछ सामाजिक गुत्थियोंको भी हल किया।

'संदेश-रासक'के रचयिता कवि अब्दुर्रहमान (१०१० ई०)का जुलाहा-वंश दसवीं सदीके अंतसे पहिले ही मुसलमान हो चुका था। इस्लाम जब भारतके दूसरे प्रदेशोंमें फैला, तो वहाँपर भी हम प्रमुख शिल्पी जातियोंको बड़ी खुशीसे इस्लाम स्वीकार करते देखते हैं। कपड़े बनानेवाले कारीगर सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक जो इस्लाममें दाखिल हो गये, उनकी संख्या भारतीय मुसलमानोंमें आज यदि दो-तिहाई नहीं तो आधीसे ज्यादा जरूर है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। हम जानते हैं, कपड़ेका व्यवसाय रोमनकालसे अंग्रेजी राज्यके स्थापित हो जाने तककी बीस सदियोंमें हमारे देशका बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यवसाय रहा, यह देशकी आमदनीका एक बहुत जबर्दस्त जरिया था। फिर कपड़े बनाने-

वाले कारीगर हिन्दू-धर्मसे इतने रुठ क्यों गये ? उनकी कारीगरीकी बड़ी माँग थी, वह दास नहीं थे, पैसेके लिए बाजारमें बिकनेकी उन्हें जरूरत न थी, अब्दुर्रहमानकी सुंदर कवितासे पता लगेगा, कि वह निरे निरक्षर गँवार भी नहीं थे। जो कारीगर सूक्ष्म मलमल, उसके ऊपर बेल-बूटे, बनारसी किमख्वाब और उसपरकी अद्भुत चित्रकारी करनेमें सिद्धहस्त हों, वह शिक्षा-संस्कृतिसे बिल्कुल शून्य हो ही नहीं सकते। लेकिन हिन्दुओंकी जाति-प्रथा जिसे बौद्ध और जैन भी व्यवहार रूपमें स्वीकार कर चुके थे—इन शिल्पी-जातियोंको शूद्र बनाकर उनपर सामाजिक अत्याचार करनेके लिए ऊपरी जातियोंको अधिकार देती थी। कोई आश्चर्य नहीं यदि आत्म-सम्मान रखनेवाले पटकार इस्लाम स्वीकार करनेमें अपनी अर्वदासताका अन्त समझने लगे, और वह एक-एक करके नहीं बल्कि श्रेणी (Guild)-रूपेण इस्लामके झण्डेके नीचे चले गये। अरब तथा बाहरसे आनेवाली दूसरी मुसलमान जातियाँ अभी हिन्दुओंकी जाति-प्रथासे प्रभावित नहीं हुई थीं। इसलिए उस समय सहस्राब्दियोंसे पीड़ित इन हिन्दू-जातियोंको हिंदुत्व छोड़ इस्लाममें जाते ही दमघोटू अन्धेरी कोठरीसे खुले प्रकाश, खुली हवामें साँस लेते जैसा मालूम होता था। हिन्दू यह बात नहीं कर सकते थे। इस्लामने आरंभिक शताब्दियोंमें इस कामको बड़ी तत्परतासे किया, लेकिन जैसे-जैसे बड़ी जातियोंके हिन्दू इस्लाममें दाखिल होने लगे; वैसे ही वैसे इस्लामकी वह क्रान्तिकारी भावना नष्ट होती गई और वहाँ भी ऊँच-नीचका बीज बोया जाने लगा।

बारहवीं सदीके अंतमें दिल्ली और कन्नौज भी इस्लामी झण्डेके नीचे चले गये थे। अब हिन्दू सामन्त एक-एक करके आत्म-समर्पण करनेके लिए कालकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महमूद और कितने ही दूसरे मुस्लिम विजेताओंने हिन्दुओंके मन्दिरोंपर भी प्रहार किया; लेकिन जैसा कि हम कह आये हैं, वह इतनी मेहनत सिर्फ पत्थरोंके तोड़नेके लिए नहीं किया करते थे। वह जाते थे, महन्तों और पुजारियों द्वारा वहाँ जमा की हुई अपार मायाको लूटने। इससे यह लाभ जरूर हुआ कि मंदिरों और देवताओंकी हजारों बरससे स्थापित महिमा बहुत घट गई। कोई ताज्जुब नहीं, यदि दिल्ली-विजयके बाद तीन सदियों तक हिन्दू सन्त भी

मूर्त्तियों और देवताओंके पीछे लट्ठ लेकर पड़ गये और चारों ओर निर्गुणवादकी दुंदभी वजने लगी। इस ध्वंस लीलाने कुछ फायदेका भी काम किया और पुरोहितों-महन्तोंके प्रभावको कुछ हल्का किया, यद्यपि वह उतना नही कर सकी, जितना कि ईरान और अफगानिस्तानमें, शायद यदि सारा हिन्दुस्तान इस्लामके अन्दर चला गया होता, तो यहाँकी सैकड़ों समस्यायें खतम हो गई होतीं। मुमकिन है उस वक्त हमारे साहित्य-कलाको और भी क्षति हुई होती और एक वार ईरानकी तरह मुसलमान वने भारतके जातीयता-प्रेमियोंको भी झुंझलाना पड़ता।

सिद्ध-युगकी अन्तिम—वारहवीं-तेरहवीं—सदीमें उत्तरी भारतकी राज-नीतिक अवस्था अधिक डाँवाडोल थी। यद्यपि मालवा और गुजरात अपनी स्वतंत्रताको वचाए हुए थे, मगर वह भी भविष्यके लिए निश्चिन्त नहीं थे। ऐसे कालमें भी महाकवियोंका होना असंभव नहीं है, लेकिन यदि महाकवि अपने पैरोंको धरतीपर रखते तव न। आसमानी नायिका वनाते वक्त उनका स्वप्न वीच-वीचमें पृथ्वीकी विकलताके कारण भग्न हो जाता; इसलिए उनका सृजन भी पूर्ण नहीं भग्न ही हो सकता है। इस कालमें हमें लक्खण तथा दूसरे ऐसे ही छोटे-छोटे कवि मिलते हैं। मुसलमान शरणागतकी रक्षाके लिए रणथम्भोरके राणा हम्मीरने हिन्दू-मुसलमान धर्मका ख्याल न करके जिस तरह अपने सर्वस्वकी वाजी लगाई, उसने कुछ महाकवियोंको जरूर प्रेरणा दी; वाकी कवि वस छोटे-छोटे सामन्तों और सेठोंकी प्रशंसाके पुल वाँधनेमें ही अपनी सारी शक्ति खर्च करते रहे।

४. धार्मिक अवस्था

पहिलेके वर्णनमें जहाँ-तहाँ धर्मके वारेमें भी हम कुछ कह आये हैं, लेकिन वहाँ हमने उनका सिर्फ सामान्यरूपेण जिक्र किया। हमारे इस युगके कवियों-में बौद्ध, जैन, हिन्दू और मुसल्मान चारों धर्मके माननेवाले हैं; इसलिए यहाँ उनके वारेमें कुछ और कहनेकी अवश्यकता है।

मानव-समाजके विकासमें धर्म वहुत पीछे आया है, इसे हम दूसरे स्थानपर

बतला आये हैं। जिस वक्त मनुष्यमें धनी-गरीबका भेद नहीं हुआ था, क्योंकि अभी उसके पास धन-उत्पादन और लड़नेके हथियार बहुत दुर्बल—पत्थर, सींग, लकड़ीके थे; उस वक्त इन धर्मोंकी आवश्यकता नहीं थी। ब्राह्मणों, बौद्धों तथा जैनोंकी देव-माला अपने पुराने रूपमें राजसत्ता नहीं पितृसत्ताका अनुकरण करती है। वेदोंके पुराने देवताओंमें किसी एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका पता नहीं लगता, लेकिन जैसे ही दुनियामें "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" पैदा हुए, वैसे ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर भी आ धमका। गुप्तोंके निरंकुश राजतंत्रने सर्वशक्तिमान् ईश्वर—विष्णु—के महत्त्वको बहुत बढ़ाया। यद्यपि बौद्ध और जैन सृष्टिकर्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वरको नहीं मानते थे। तो भी वह स्थापित समाज-व्यवस्थाके लिए खतरनाक नहीं थे। प्रवाहण जैवलिके समाज-पोषक सामन्त-समर्थक पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकारकर उन्होंने पहिले ही अपने कार्य-क्षेत्रको सीमित कर लिया था। और अब तो वह ब्राह्मणोंके जाति-पाँति, ज्योतिष, सामुद्रिक सबको मानने लगे थे। जिस वक्त ईसाके पहिलेकी दो-तीन सदियोंमें यवन, शक, आभीर, गुर्जर आदि जातियाँ बाहरसे हिन्दुस्तानमें घुस रही थीं, उस वक्त बौद्धोंका ही पलड़ा भारी था; क्योंकि उन्होंने इन जातियोंको समाजमें समानताका स्थान देकर स्वागत किया था। ब्राह्मण इस बलाको बूझ नहीं पाये, वह अभी सबको "म्लेच्छ" "म्लेच्छ" कह तिरस्कार करते थे; लेकिन जब देखा कि ये आगंतुक म्लेच्छ धर्ममें श्रद्धालु बनकर मिनान्दर और कनिष्ककी तरह मठों और मन्दिरोंको सोनेसे पाट देते हैं; तो वह भी सोचनेके लिए मजबूर हुए। यद्यपि वह देरसे होशमें आये, मगर उनका हथियार सबसे जबर्दस्त निकला। बौद्ध आगंतुक जातियोंको सम्मानपूर्ण किन्तु समान स्थान देते थे। ब्राह्मणोंने सम्मानपूर्ण ही नहीं बल्कि बहुत ऊँचा स्थान—सिर्फ अपनेसे एक सीढ़ी नीचे—दिया, पीछे उन्हें *आबूके अग्निकुण्डसे निकली क्षत्रिय-जातियाँ कहा गया।* आबूके अग्नि-कुण्ड और उससे आदमियोंकी बात भले ही बिलकुल झूठी है, मगर ब्राह्मणोंने आगन्तुक म्लेच्छ-जातियोंको क्षत्रिय बनाया, इसमें कोई सन्देह नहीं। और इस प्रकार सामन्ती भारतने चिरकालके लिए ब्राह्मणोंके प्रभावको स्वीकार किया।

(१) **बौद्ध धर्म**—ईसाकी पहिली तीन-चार शताब्दियोंमें जब ये आगंतुक

क्षत्रिय बनाए जा रहे थे, उसी वक्त बौद्ध धर्म निःहत्था कर दिया गया। बौद्ध अब भारतकी किसी सामाजिक समस्याका अपने पास कोई हल नहीं रखते थे, अब उन्हें अपनी पुरानी कमाईको बैठकर खाना था। सामन्त पूरी तौरसे ब्राह्मणोंके हाथमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे चले गये थे। बौद्ध कभी-कभी दिङ्नाग और धर्मकीर्त्तिके प्रौढ़-दर्शनको सामने रखकर लोगोंकी आँखोंमें चकाचौंध पैदा करना चाहते थे; कभी योग-समाधि, तंतर-मंतर डाकिनी-साकिनीके चमत्कारसे लोगोंको अपनी ओर खींचना चाहते थे और कभी सिद्धोंके विचित्र जीवन और लोक-भाषाकी कविताओंको भी इस कामके लिए इस्तेमाल करते थे; मगर यह सब हवामें तीर चलाना था। अब भी बहुसंख्यक जनताकी कितनी ही समस्यायें सामने थीं; लेकिन बौद्धोंके मस्तिष्क और हथियार कुंठित हो चुके थे। उन्होंने चलते-चलाते हमारी भाषाकी कितनी ही सेवा जरूर की। अफसोस है कि उनकी कविताओंका बहुत कम अंश हमारे पास बच रहा। उनकी सैकड़ों छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें किये तिब्बती भाषाके अनुवादोंमें मौजूद हैं, मगर उससे भी अधिक संख्या उन पुस्तकोंकी रही होगी, जो शुद्ध सांसारिक दृष्टिसे लिखी गई थी, अतएव वह भारतसे बाहर नहीं ले जाई गई, और बौद्ध धर्मके साथ वह यहीं नष्ट हो गई।

बौद्ध धर्म चलाचली पर था, उसकी भीतरी कितनी ही कमजोरियाँ उसके हितचिन्तकोंको मालूम होने लगी थीं, तो भी सबसे बड़ी कमजोरी—सामाजिक समस्यासे हाथ खींच लेना—की ओर उनका ध्यान नहीं गया। दूसरे धार्मिक पंथोंकी तरह बौद्ध धर्ममें भी ब्रह्मचर्य और भिक्षु-जीवनपर बहुत जोर दिया गया था, लेकिन बारह शताब्दियोंके तजुर्बेने बतला दिया कि वह ढोंगके सिवाय और कुछ नहीं है। आदमी आहारकी तरह काम-भोगमें भी दूसरे पशुओंसे बहुत भिन्नता नहीं रखता। मठोंके अप्राकृतिक-जीवनमें जो बहुत-सी बुराइयाँ बहुत भारी परिमाणमें घुस आयी थीं, उन्हें देखकर कुछ विचारकोंने सोचा, हमें इस ढोंगको हटाना चाहिए और मनुष्यको सहज-स्वाभाविक जीवनपर लाना चाहिए। इन बातोंको वह खुलकर नहीं कह सकते थे, क्योंकि खुल-कर कहनेपर पन्थ और भक्त ही नहीं सारे बाहरी समाजका विरोध इतना

जवर्दस्त होता, कि उन्हें अपना अस्तित्व भी कायम रखना मुश्किल हो जाता। उन्होंने छिप करके एक सीमित क्षेत्रमें अपने विचारोंका प्रचार करना शुरू किया। मुक्त यौन-संबंधके पोषक चक्र-संवर आदि देवता, उनके मंत्र और पूजा-प्रकार तैयार किये। गुह्य-समाज एकत्रित होने लगे, जहाँ स्त्री-पुरुषोंको मद्य-मैथुनकी पूरी स्वतंत्रता दी गयी। लेकिन जल्दी ही यह सब काम सहज, स्वाभाविक नहीं अस्वाभाविक रूपमें होने लगा। सरहपाके वचनोंसे जान पड़ता है, कि वह भोग-स्वातंत्र्यको अस्वाभाविकता या अतिमें नही ले जाना चाहता था। वह इस वातका समर्थक था, कि सहज मानवकी जो सहज आवश्यकताएँ है, उन्हें सहज रूपसे पूरा होने देना चाहिए। उसने मंतर-तंतर, देवी-देवतापर भी ठोकर लगाए हैं। मगर जान पड़ता है, भीतरी-वाहरी विरोध वहुत जवर्दस्त था, सहज-मार्गसे पाखंड-मार्ग पकड़ना अधिक आसान था, इसलिए सरहपाका सहज-यान, तन्तर-मन्तर, भूत-प्रेत, देवी-देवता-संबंधी हजारों मिथ्या-विश्वासों और ढोंगोके पैदा करनेका कारण वना। ये सारे मिथ्या-विश्वास, सारी दिव्य-शक्तियाँ महमूद और मुहम्मदविन-वख्तियारके सामने थोथी निकलीं और तारा, कुरुकुल्ला, लोकेश्वर और मंजुश्रीके मन्दिरों और मठोंमें हजार-हजार वरसकी जमा हुई अपार संपत्ति अपने मालिकों और पुजारियोंके साथ ध्वस्त हो गयी। वौद्ध भिक्षुओंके रहनेके लिए जव न कोई विहार रहा, न उनके संरक्षक और पोषक सेठ-सामन्त पहिली अवस्थामें रहे, न साधारण जनताका विश्वास पूर्ववत् रहा, तो उन्हें भारतमें दिन काटना मुश्किल होने लगा। पश्चिमकी धरती तो उनके हाथसे पहिले ही निकल चुकी थी; लेकिन उत्तर (तिव्वत), पूरव (वर्मा, चीन) और दक्खिन (सिंहल)में अव भी उनके स्वागत करनेवाले मौजूद थे। इस प्रकार वचे-खुचे वौद्ध भिक्षु—वौद्ध गृहस्थोंके अगुआ—वाहर चले गये। भिक्षुओंके अभावमें गृहस्थ वौद्ध धर्मको भूलने लगे, और जिसकी जिधर सींग समाई, उधर चले गए। इस प्रकार नालन्दा, विक्रमशिलाके ध्वंसके वाद पाँच ही छ पीढ़ियोंमें वौद्ध-धर्म नाम-शेष रह गया।

(२) **जैन धर्म**—सामन्तोंपर जैन धर्मका पुराने समयमें क्या प्रभाव पड़ा था, इसके समर्थनके लिए काफी प्रमाण नहीं मिलते। राष्ट्रकूट (७५३-९७)

और गुर्जर-सोलंकी (६६१-१२५७) राजाओंका जैन धर्मपर वहुत अनुराग था, लेकिन लड़ाकू सामन्तोंके इस अनुरागमें पहिला ही कदम तो यह था, कि वेचारी अहिंसा ताक पर रख दी गई। जैन गृहस्थ ही नहीं जैन मुनि (हेमचन्द्र) भी तलवारकी महिमा गाने लगे भला दिग्विजयोंके जमानेमें अहिंसाको कैसे लेकर चला जा सकता था। वौद्ध धर्मकी तरह जैन धर्म भी जाति-पाँति विरोधी था, लेकिन हमारे युगमें वह भी जाति-पाँतिको वैसे ही मानने लगा था, जैसे ब्राह्मण। इतना ही नहीं हमारे एक जैन कवि मुनिने तो जैन गृहस्थोंको उपदेश दिया है, कि वह अपनी लड़कीको अजैन घरमें न दें। भीतर भिन्न-भिन्न मतोंके रखनेपर भी जो अव तक शादी-व्याह हो सकता था, उसे भी वन्द कर दिया गया, चलो छुट्टी मिली। जैन धर्ममें सृष्टिकर्त्ता ईश्वर नहीं माना जाता, लेकिन अव तो स्वयं महावीरके नामके साथ परमेश्वर लगाया जाने लगा। जैन गृहस्थ और दूसरे लोगोंके लिए पारस-मणि परमेश्वर-शब्द मिल गया। परमेश्वरसे मिन्नत भी मानी जाने लगी। परमेश्वर-शब्द काफी था, साधारण लोग उसीमें सृष्टिकर्त्ता-विधाता सव समझ लेते थे, आगे वालकी खाल खींचनेकी उन्हें जरूरत नहीं थी।

सामन्तोंने जैन धर्मको अपनाकर भी कितना निवाहा, यह आपने देख लिया। हाँ, व्यापार करनेवाली जातियाँ ज्यादा कट्टर वनीं और आज भी जैनोंमे अधिकांश वैश्य ही मिलते हैं। उन्होंने अहिंसाको जरूर कुछ ज्यादा गंभीरताके साथ स्वीकार किया। पश्चिममें भी वनिया-वर्ग जीव-दयाकी ओर वहुत खिंचता है, यद्यपि उसकी दया है—

"जाननहारा जानिया, वनिया तेरी वान।
विन छाने लोहू पिवै, पानी पीवै छान॥"

इसे जैन धर्मकी सफलता कह लीजिए। मगर इस सफलताने हानि कितनी पहुँचाई? पोरवाल, ओसवाल, अग्रवाल, श्रीमाल, आदि जातियाँ मूलतः यौधेय-आर्जुनायन आदि गणोंकी वह वीर-क्षत्रिय जातियाँ थीं जिन्होंने किसी समय यवनों, शकों, गुप्तोंके दांत खट्टे किये और भारतमें जनतंत्रताके प्रदीपको शताब्दियों तक जलाये रखा। अव सिंहोंके नख-दांत तोड़ दिये गए और वे

बकरी बनकर सूद खाने और तराजू तोलनेमें लग गये; उन्हें तीर-तलवारकी जरूरत नहीं रह गई। सवाल हो सकता है, क्षत्रियसे वैश्य होने—ब्राह्मणी व्यवस्थाके अनुसार एक सीढ़ी नीचे गिरने—के लिए ये क्षत्रिय तैयार कैसे हो गए ? हम इसके बारेमें इतना ही कह सकते हैं "व्यापारे वसति लक्ष्मी" अथवा कुछ पीढ़ियों[1] तक अपनी स्वतंत्रताके लिए तलवार चलाकर देख लिया, कि राज-तंत्रके इतने बड़े सैनिक-संगठनके सामने उनका तलवार हिलाना फजूल है। अब वह क्षत्रियकी जगह नगर-सेठ बने। व्यापार खूब चमका। करोड़ों रुपये लगाकर देलवाड़ा जैसे अनगिनत मंदिर बने, परम-त्यागियों—पात्र और वस्त्र तक भी न रखनेवाले यतियों—का जैन धर्म सोने-हीरेकी राशिसे जगमग-जगमग करने लगा। लेकिन, इस नये सभ्य जैन समाजमें बेचारे निर्ग्रन्थों—नग्न साधुओं-की आफत आयी। सम्भ्रान्त परिवारोंके पुत्र मुनि बन नंगे-मादरजाद रहनेसे हिचकिचाने लगे और गृहस्थ भी अपने मुनियोंको इस रूपमें देखनेसे संकोच करने लगे। अब वस्त्रधारी श्वेतांबरोंका पलड़ा भारी हो चला; लेकिन वस्त्र ही तक भले घरोंके लड़के सन्तोष कैसे कर सकते थे ? सवाल उठ खड़ा हुआ, चैत्य-वासी (बस्तीसे बाहर मठोंमें रहनेवाले) और बस्ती-वासीका। लेकिन कुछ ही समय बाद यह भी सवाल व्यर्थ हो गया, और जैन मुनि बस्ती-वास ही नहीं दरबार-वास तक करने लगे।

इस युगमें तंत्र-मंत्र और भैरवी-चक्र या गुप्त यौन-स्वातंत्र्यका बहुत जोर था। बौद्ध और ब्राह्मण दोनों ही इसमें होड़ लगाए हुए थे। भूत-प्रेत, जादू-मन्तर और देवी-देवता-वादमें जैन भी किसीके पीछे नहीं थे, रहा सवाल वाम-मार्गका, शायद उसका उतना जोर नहीं हुआ, लेकिन वह बिल्कुल नहीं था, यह भी नहीं कहा जा सकता। आखिर चक्रेश्वरी देवी वहाँ भी विराजमान हुईं, और हमारे मुनि कवि भी निर्वाण-कामिनीके आलिंगनका खूब गीत गाने लगे,

---

[1] जोहिवार (भावलपुर)के जोहियों तथा मेवोंने मुस्लिम काल तक अपनी तलवार नहीं छोड़ी।

जिससे उसी दिशाका सूक्ष्म संकेत मिलता है।

जैनोंने अपभ्रंश-साहित्यकी रचना और उसकी सुरक्षामें सबसे अधिक काम किया। वह ब्राह्मणोंकी तरह संस्कृतके अंधभक्त भी नहीं थे, क्योंकि वशिष्ठ, विश्वामित्रकी भाँति उनके मुनियोंने संस्कृतमें ही नहीं प्राकृतमें अपने मूलग्रंथ लिखे थे। व्यापारी होनेसे वही-खाता तथा मातृभाषा लिखने-पढ़नेका ज्ञान होना उनके लिए बहुत जरूरी था। ब्राह्मणोंकी समाज-व्यवस्थाके साथ वह बँधे हुए थे। ब्राह्मणोंके महाभारत, पुराण और कथा-वार्त्ताका हर तरफसे प्रभाव पड़ना जरूरी था, क्योंकि वह समुद्रमें बूँदकी तरह थे। इस प्रकार जैन धार्मिक नेताओं-के लिए यह जरूरी हो पड़ा, कि अपने भक्तोंको ब्राह्मणोंका ग्रास बननेसे बचाने-के लिए अपने स्वतंत्र कथा-पुराण तैयार करे। व्यापारीसे यह आशा नहीं रक्खी जा सकती कि वह धर्म जाननेके लिए कठिन-कठिन भाषाएँ सीखता फिरेगा। अतएव जैनोंने देश-भाषामें कथा-साहित्यकी सृष्टि की, जिसके कारण स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे अनमोल अद्वितीय कविरत्न हमें मिले। उस साहित्यकी रक्षाके लिए हम और हमारी अगली पीढ़ियाँ उन जैन नर-नारियोंकी हमेशा कृतज्ञ रहेंगी, जिन्होंने इन अमूल्य निधियोंको नष्ट होनेसे बचाया। याद रखिये इन अमूल्य निधियोंमें सिर्फ जैनोंके ही ग्रन्थ नहीं बल्कि अब्दुर्रहमानके "संदेश रासक" जैसे ग्रन्थ भी है।

(३) ब्राह्मण—हम कह चुके है कि ईसवी सनके शुरु होनेके बाद ही ब्राह्मणों का पलड़ा भारी हो गया। हाँ, उन्होंने सिर्फ सामन्त-वर्गकी म्लेच्छ और आर्य युद्धाग्निकी भीतरी समस्याको ही अग्नि-कुण्डवाले क्षत्रिय बनाकर हल कि था। लेकिन समाजके हर्त्ता-कर्त्ता तो आखिर सामन्त थे। उन्हें जो कुछ मिल जुलना था, वह उन्हीं सामन्तोंसे। बाकी भेड़ोंको भरमाना उनका काम जिसमें कि ब्राह्मणोंके सिरजे ईश्वरकी निरंकुशताकी तरह राजाओंकी नि कुशताके खिलाफ भेड़ें कोई तूफान न खड़ा करें। सामन्त (राजा)-स और ब्राह्मणों—मेरा मतलब धार्मिक नेताओं और पुरोहितोंसे है—का ह चोली-दामनका साथ रहा है। ब्राह्मणोंपर सामन्त जितना विश्वास कर स था, उतना वह अपनी जातिके व्यक्तिपर भी नहीं कर सकता था।

सामंत-वंशी (क्षत्रिय)को राजके प्रधान-मंत्री जैसे बड़े पदको देकर कोई राजा अपने सिंहासनको खतरेमें डाल कैसे सकता था ? विम्बसार (५०० ई० पू०)के ब्राह्मण प्रधान-मंत्री वर्षकारसे लेकर सदा ही हिन्दू-राजाओंके प्रधान-मंत्री ब्राह्मण होते रहे। पुष्पमित्र और पेशवा जैसे दो-एक ही अपवाद हैं, जब कि ब्राह्मणोंने नमक-हरामी की हो। वह कभी सिंहासनपर बैठनेकी कामना नहीं करते थे, इसलिए प्रधान-मंत्रीका पद यदि ब्राह्मणोंके लिए सदा सुरक्षित रहता हो, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।

और ब्राह्मण घाटेमें भी नहीं थे। शुकनासका ऐश्वर्य तारापीडसे कम न था। प्रधान-मंत्रीके महलकी सजावट और अन्तःपुरकी रौनक राजाओंके हरमसे कम न थी। ब्राह्मणोंने जो भारतीय जनतंत्रताके हल्केसे हल्के चिह्नको भी न रहने देनेकी हर तरहसे कोशिश की; उसके लिए उनका स्वार्थ मजबूर करता था। प्रधान-मंत्री और मंत्री ही नहीं दूसरे ब्राह्मणोंके लिए भी सामन्त हर तरहसे पूरी भोग-साधना जुटाते थे। चन्द्रदेवने १०९३ ई०में हाथमें कुश लेकर एक ही बार कटेहली (बनारस)के सारे परगने (पत्तला)को ब्राह्मणोंको दान दे दिया; ११०० ई०में फिर उसने वृहदऋहवरथ पत्तलाको दान किया। राष्ट्रकूट, पाल तथा दूसरे राजवंश भी ब्राह्मणोंके प्रति ऐसी ही उदारता दिखाते रहे। विश्वामित्र-वशिष्ठ-भरद्वाजके समयमें भी ब्राह्मणोंका जीवन भोग-शून्य नहीं था, फिर हमारे इस कालके बारेमें पूछना ही क्या ? ब्राह्मणोंके मंदिरों-पर किस तरह मुक्त-हस्त हो धन खर्च किया जाता था, इसे देखना हो, तो एलौराके कैलाशको देख लीजिए—एक अद्भुत, विशाल शिवालय पहाड़ काट-कर निकाल लिया गया है।

हम कह चुके हैं, कि वाम-मार्गमें ब्राह्मण भी बौद्धोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर खड़े थे। मन्तर-तन्तरकी बात तो खैर आँखमें धूल झोंकनेकी नीतिके कारण हो सकती है, लेकिन चक्र-पूजा। यौन-स्वातंत्र्यकी उन्हें क्या जरूरत थी ? आखिर ब्राह्मण एकपत्नि-व्रत नहीं थे, संपत्तिके अनुसार वह चाहे जितने व्याह कर सकते थे। दासियोंके रखनेमें भी उनके लिए कोई सीमा न थी। बौद्ध भिक्षु तो बेचारे जबर्दस्तीके ब्रह्मचर्यके फन्देको किसी तरह ढीला करना

चाहते थे, जिसकी कि ब्राह्मणोंको जरूरत नहीं थी। हाँ, हो सकता है, मद्य-पानके विरुद्ध जो कड़ाइयाँ पीछेके स्मृतिकारोंने कर दी थीं, उनसे मुक्त होनेके लिए इन्होंने चक्रका आश्रय लिया। मीन-मांस उस युगके ब्राह्मणोंमें वर्जित था ही नहीं और मुद्रा—हाथकी अँगुलियोंको टेढ़ी-मेढ़ी करना—के लिए चक्रकी शरण लेनेकी जरूरत नहीं थी। इस प्रकार मुख्य कारण मद्य रहा होगा और स्त्रीके बारेमें उन्होंने "अधिकस्याधिकं फलं" समझ लिया होगा।

ब्राह्मणोंने सीधे सेवा करके ही सामन्तोंका उपकार नहीं किया, बल्कि उन्होंने उनके फायदेके वास्ते साधारण जनताकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेके लिए खूब हन-हन करके हथियार चलाए। खानेकी छुआछूतमें खूब तरक्की की और "आठ कनौजिया नव चूल्हा" करके उसे अपने घरसे शुरू किया। उस वक्त भारतके जो व्यापारी अरब जाते थे, उनके बारेमें एक अरब लेखक (अलबरूनी) ने लिखा है—वे हमारे (मुसल्मानोंके) ही हाथका खाना खानेसे परहेज नहीं करते, बल्कि आपसमें भी एक दूसरेका छुआ नहीं खाते।" बहुत-सी नीच कही जानेवाली जातियोंके प्रति तो ब्राह्मणोंकी व्यवस्था बहुत क्रूर थी। कितनी क्रूर थी इसका अन्दाजा कुछ-कुछ आपको लग सकता है, यदि परम अद्वैतवादी शंकराचार्यकी जन्मभूमि मलवारके पंचमोंकी बीसवीं शताब्दीकी अवस्थाका आपको थोड़ा-सा परिचय हो। उस युगके नगरोंकी बहुतसी सड़कें उनके लिए वर्जित थीं; कितनी ही सड़कोंपर थूकनेके लिए उन्हें अपने साथ पुरवा रखना पड़ता था। लेकिन ब्राह्मणोंकी एक और भी व्यवस्था थी—"स्त्री-रत्नं दुष्कुलादपि", इसलिए श्रोत्रिय ब्राह्मण भी शूद्रा सुंदरीसे पारशव[1] सन्तान पैदा करनेका पूरा अधिकार रखता था।

ब्राह्मणोंने मिथ्या-विश्वासोंको फैलाने, वयस्क मानवताको बच्चा बनानेके लिए, पुराणोंकी संख्या और कलेवरको इसी कालमें खूब बढ़ाया। बुद्धि रखनेवालोंपर यह हथियार नहीं चलता, इसलिए इसी युगमें बुद्धिको भू

---

[1] ...र पत्र ।

ढैयामें डालनेके लिए शंकर (७८८-८३०) श्री हर्ष (११८० ई०) जैसे दार्श-निकोंने "मुँहमें राम बगलमें छूरी" वाला अद्वैतवाद पैदा किया।

इस कालमें जातीय बिखरावको ब्राह्मणोंने चरम-सीमापर पहुँचाया। अभी तक जातियोंके लिए भाषा या प्रान्तोंका भेद नहीं था, मगर अब ब्राह्मणोंने कनौजिया आदि बिल्कुल अलग-अलग ब्राह्मण जातियाँ तैयार कीं और एक जातिमें भी गोविन्दचंद्र-जयचन्द्र (१११४-९३)के कालमें सरयू-पारियोंमें पंक्ति (उच्चतम) ब्राह्मण और बल्लालसेन (११५८-७९)के समय बंगालमें "कुलीन" ब्राह्मणके नामसे और नये-नये टुकड़े किये गये। दंडीके कुम्हार-ब्राह्मण जहाँ भारतके किसी भी प्रान्तमें जाकर स्वच्छन्दतापूर्वक रोटी-बेटी कर सकते थे, वहाँ अब रास्ता चारों ओरसे बन्द था। ब्राह्मणोंकी व्यवस्थाने देश-रक्षाके कामके लिए क्या-क्या किया? स्त्रियोंके लिए तो युद्धमें कोई स्थान था ही नहीं। ब्राह्मण-देवता युद्ध-सेवासे मुक्त थे। वैश्यका काम था डेढ़ा-सवाई करना। शूद्रोंकी हजार जातियाँ?—उन्हें हथियार लेकर अपनी पाँतिमें लड़नेको कौन क्षत्रिय इजाजत देता। लड़नेका काम था सिर्फ क्षत्रिय-पुरुषोंका, और उनके सामने भी युद्ध करनेके लिए कोई बड़ा आदर्श नहीं था, सिर्फ नमक-हलाली और इसके बाद सामन्तका भय रह गया था। सामन्तके भयसे या "हम मालिकका नमक खाते हैं" इस ख्यालसे लड़नेवाले योद्धा, किस श्रेणीके होंगे, इसे आप खुद समझ लें। आप कहेंगे, इस युगमें अरबों और तुर्कोंसे युद्ध छिड़ता रहता था, जिसमें योद्धाके दिलमें हिन्दू-धर्मकी रक्षाका भी ख्याल आ सकता था। हम इसे मानते हैं, लेकिन कुछ ही हद तक। क्योंकि मुसलमान सामन्तकी सेनामें सिर्फ मुसल्मान ही मुसल्मान और हिन्दू सामन्तकी सेनामें सिर्फ हिन्दू ही हिन्दू सैनिक रहे, इसका कोई नियम नहीं था। अक्सर दोनों हीकी सेनायें मिली-जुली होती थीं।

(४) **इस्लाम**—इस्लामकी इस युगमें क्या अवस्था थी, इसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। अभी सदियोंकी मानसिक और शारीरिक दासताओंको तोड़नेकी उसमें हिम्मत और क्षमता थी। साथ ही अरबी खलीफा (उमैया और अब्बासी) कोई संकीर्ण विचारवाले धर्मान्ध शासक नहीं थे। इस्लामकी

पहिली सदीमें चाहे कुछ तोड़-फोड़ हुआ हो, मगर वादमें दुनियाकी सभी संस्कृतिओं और उनकी देनोंके मुसलमान शासक जवर्दस्त कदरदान संरक्षक थे। अफलातूँ, अरस्तू और दूसरे यूनानी दार्शनिकों—साइंस-वेत्ताओंका पता भी नहीं लगता, यदि वगदादके खलीफोंके समय अनुवाद और टीकाओं द्वारा उनकी रक्षा न की गई होती। उस समय भारतसे भी कितने ही विद्वान वड़े सम्मानपूर्वक वगदाद वुलाये गए थे, जिन्होंने भारतीय दर्शन, वैद्यक, गणित और ज्योतिषके वहुतसे ग्रन्थोंके अरवी अनुवाद करनेमें सहायता की थी। मुस्लिम अरवोंने हिन्दुस्तानी अंकोंको स्वीकार ही नहीं किया, वल्कि उन्हींके द्वारा वह सारे युरोपमें फैला।

अव्दुर्रहमानकी कवितामें जो विल्कुल भारतीय आत्मा वोल रही है वह वनावटी वात नहीं थी। अव्दुर्रहमानने देवताका मंगलाचरण करते वक्त अपने ग्रंथमें अपनेको मुसल्मान भक्त सावित किया है। ग्यारहवीं शताव्दीसे मुस्लिम और हिन्दू सामन्तोंमें राजनीतिक शक्तिको हथियानेके लिए जो भीषण संघर्ष शुरु हुए, उसीके प्रोपेगण्डामें हिन्दू और इस्लाम धर्म घसीटे जाने लगे, जैसे कि आज हॉलिफेक्स और चर्चिल जैसे कट्टर साम्राज्यवादी ईसाई-धर्मको घसीट रहे हैं। यह देशका दुर्भाग्य था कि सामन्तोंके इस झूठे प्रोपेगण्डाका शिकार साधारण जनता भी होती थी और उसने कितने ही समय अपनेको अन्धा सिद्ध किया।

जिस वक्त सामन्त अपने स्वार्थके लिए धर्मकी दुहाई देकर कटुताका वीज वो रहे थे, उसी समय सरल-हृदय मानवता-प्रेमी कुछ दूसरे भी पुरुष हुए थे, जो सामन्तोंकी चालसे क्षुब्ध थे और अपनी शक्ति भर दोनों संस्कृतियों और धर्मोंमें भाई-चारा स्थापित करनेकी कोशिश करते थे। हाँ, वह संख्या और साधन दोनोंमें कमजोर थे। सूफी महात्माओंकी संख्या कभी अधिक नहीं रही और वह जिस तसव्वुफ और अद्वैतका प्रचार करते थे, वह साधारण जनताकी पहुँचसे बाहरकी बात थी। साधारण जनताके समझने और लाभकी बातको लेकर यदि वह कुछ करना चाहते, तो उनकी हालत भी वही हुई होती, जो कि

साम्यवादी सैयद मुहम्मद मेंहदी जौनपुरीकी हुई। सामन्तोंका हथियार सीधा सांसारिक भोगका प्रलोभन था, जब कि दोनों संस्कृतियोंमें समन्वय स्थापित करनेवालोंका हथियार था, अधिकतर परलोकवाद और मानवकी सहज सहृदयताने अपील करना।

तेरहवीं और बादकी भी दो-तीन सदियोंमें हमें यदि खुसरोको छोड़कर कोई मुस्लिम कवि नहीं दिखलाई पड़ता, तो उसका यह मतलब नहीं कि करोड़ों भारतीय मुसल्मान बनते ही कवि-हृदयसे बिल्कुल वंचित हो गए। हिन्दुस्तानकी खाकसे पैदा हुए सभी मुसल्मानोंके लिए अरबी-फारसीका पंडित होना सम्भव नहीं था। अब्दुर्रहमान जैसे कितने ही कवियोंने अपनी भाषामें मानव-समाजकी भिन्न-भिन्न अन्तर्वेदनाओंको लेकर कविताकी होगी। कुछको उन्होंने कागजपर भी लिखा होगा; मगर उनको हम तक पहुँचानेके लिए सहायक नहीं मिले। सुल्तानी दर्बारमें विदेशी भाषाओंकी तूती बोल रही थी। मुस्लिम सामन्तोंके पुस्तकालयोंमें हिन्दुस्तानी लिपि और हिन्दुस्तानी भाषामें लिखी गई कविताएँ पचास-पचास पीढ़ी तक कैसे सुरक्षित रह सकती थीं। उधर हिन्दू सामन्तोंके यहाँ जब स्वयंभू जैसे प्रथम श्रेणीके कवि भी जैन होनेके कारण भुला दिए जा सकते हैं, तो मुसल्मान कविके बारेमें पूछना ही क्या है। यह वजह है जो अब्दुर्रहमान (१०१०)से कुतबन (१४९३) तककी प्रायः पाँच सदियोंमें हम किसी मुसलमान कविकी रचनाका पता नहीं पाते। रचनाएँ काफी रही होंगी, लेकिन परिस्थितियाँ उनके जीवित रहनेके अनुकूल नहीं थीं। उन्हें एक ओर "हिन्दी-गन्दी" समझा जाता था और दूसरी ओर म्लेच्छ कविकी कृति।

५. सांस्कृतिक अवस्था

संस्कृति एक बहुत ही व्यापक शब्द है। यहाँ इस युगकी चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीतकलाके बारेमें ही दो-चार शब्द हम कहना चाहते हैं। पाँचवीं-छठी

---

[1] देखो "मानव-समाज"

सदी भारतीय कलाके मध्याह्नका युग था। सातवीं सदी तक पूर्व-अर्जित मान वना रहा। आठवीं-नवीं सदीमें कुछ ह्रास जरूर होने लगा, लेकिन पतन पूरी तौरसे दसवीं सदीमें दिखलाई पड़ता है। खास करके यह वात चित्र और मूर्त्ति-कलाके वारेमें वहुत देखी जाती है। दसवीं शताव्दी और उसके वादकी मूर्त्तियाँ विल्कुल ही वदसूरत और भावशून्य हैं। वैसे तो तीर्थंकरकी मूर्त्तियोंको वनानेमें पहिलेसे भी कलाकार वेगार-सी टालते दीख पड़ते थे। पाँचवीं, छठीं, सातवीं सदीकी कुछ वुद्ध मूर्त्तियाँ वड़ी सुन्दर हैं, मगर आठवीं सदीके वाद तो वुद्ध और तीर्थंकरोंकी मूर्त्तियाँ निरी पाषाण-सी रह गई हैं। हाँ, वोधिसत्त्वों और ताराकी मूर्त्तियाँ नवीं-दसवीं सदीमें उतनी वुरी नहीं देख पड़ती, वल्कि कोई-कोई तो वहुत सुन्दर हैं, खास करके कुर्किहारकी आठवीं-नवीं सदीकी कितनी ही पीतलकी मूर्त्तियाँ वहुत सुन्दर हैं। दसवीं, ग्यारहवीं सदीके कुछ चित्रपट तिव्वतमें मौजूद हैं। लदाख और स्पितिके वौद्ध मठोंमें कुछ भित्ति-चित्र भी वहुत अच्छे हैं। लेकिन दसवीं-ग्यारहवीं सदीके जो चित्र जैन और वौद्ध ताल-पोथियों-पर मिले हैं, वे जरूर भद्दे हैं। जान पड़ता है नवीं सदीके वाद अपवाद रूपसे ही कोई-कोई अच्छे चित्रकार और मूर्त्तिकार रह गये। कला जितनी दूर तक अव-नत हो चुकी थी और जिस तरहके भद्दे नमूनोंको तैयार किया जा रहा था, उसे देखनेसे महमूदके आक्रमणके वाद—खासकर वारहवीं सदीके वाद—से जो चित्र-मूर्त्तिकलाकी ओरसे उदासीनता वर्त्ती जाने लगी, वह अनुचित नहीं थी। वास्तुशिल्प और खासकर पत्थरोंकी नक्काशी वारहवीं शताव्दीमें उतनी वुरी न थी। देलवाड़ाके जैन मंदिरोंमें संगमर्मरपर खुदे कमल मधुच्छत्र वहुत सुन्दर हैं, यद्यपि उनमें अलंकरणकी मात्रा जरूरतसे ज्यादा दीख पड़ती है, जिससे गुप्तकालीन सादे सौम्य सौन्दर्यकी उसमें कमी है। तो भी, संगमर्मरको मोम या मक्खनकी तरह अपनी छेनियोंसे काट-काटकर कलाकारने जो कौशल दिखाया है, वह सराहनीय है। लेकिन उसी पत्थरमें जो मूर्त्तियाँ वनी हुई हैं, उनसे विश्वास ही नहीं होता, कि उतने सुन्दर कमल और मधुच्छत्र वनानेवाले हाथ उतनी भद्दी मूर्त्तियाँ भी वना सकते हैं। वारहवीं सदीके वाद तो एक तरह चित्र और मूर्त्तिकलाका दिवाला ही निकल जाता है।

इस युगमें संगीतकी ओर भी ध्यान दिया गया था। आजकलकी कितनी ही राग-रागिनियोंका वर्गीकरण और नामकरण अपभ्रंश-साहित्यके आरंभके साथ होता है। नृत्य और संगीतकी ओर यद्यपि सामन्त-वर्ग बहुत ध्यान देता था और सामन्त-कन्याओंकी शिक्षामें वह अनिवार्य विषय था; लेकिन अब राज-कुमारियाँ दंडीके समयकी तरह अपने कौशलका प्रदर्शन खुले आम नहीं कर सकती थीं। खुले आम नृत्य-संगीतकी जिम्मेवारी अब केवल वेश्याओंपर रह गई थी।

यद्यपि हमारे युगमें कालिंजरमें "प्रबोध-चंद्रोदय" जैसे कुछ नाटक लिखे गए, मगर जान पड़ता है, अब नाटकोंका समय बीत चुका था। जहाँ नाटकके लिए जबर्दस्त प्रेरणा स्वाभाविक मानव-जीवन था, वहाँ अब वेदान्त और दर्शन अपने ध्यान-ज्ञान और राग-द्वेष आदिके रूपमें नाटकोंके लिए पात्र देने लगे, फिर वह नाटक कैसा होगा, यह आप खुद समझ सकते हैं।

सामन्तोंकी विलासिताने कुछ नई कलाओंकी भी सृष्टि की। स्वयंभूने राष्ट्रकूट ध्रुव और उसके उत्तराधिकारीके जल-क्रीड़ा-मण्डपमें जो देखा-सुना था, उसीका वर्णन अपने रामायणमें जल-क्रीड़ाके रूपमें किया। उस समय सामन्तोंके स्नान-कुण्ड, स्नान-मण्डप उसके खंभे और दीवारोंके अलंकृत करनेमें जंगम और स्थावर रत्नोंका व्यय दिल खोल कर किया जाता था। सामन्तोंकी कलाका प्रधान उद्देश्य होता ही था कामोद्दीपन। वस्तुतः सामन्तोंके जीवन-का आदर्श ही था—खाओ, पिओ, मौज करो। धर्म, दर्शन सारे उसके लिए दिखावे और जब तब मन बहलावकी चीज थे।

६. साहित्यिक अवस्था

हमारा यह साहित्य-युग उस वक्त आरंभ होता है, जब कि बाण और हर्ष-वर्धनको रंगमंच छोड़े बहुत देर नहीं हुई थी। कवियोंमें अश्वघोष, भास, कालि-दास, दण्डी भवभूति, और बाणकी कृतियाँ बहुत चावसे पढ़ी जाती हैं। स्वयंभू-ने इन पुराने कवियोंके प्रति अपनी कृतज्ञता साफ प्रकट की है। सिद्धोंमेंसे भी सरहपा, तिलोपा, शान्तिपा जैसे कितने ही संस्कृतके बड़े-बड़े पंडित थे; हाँ, जब

वे भाषा-कविता लिखने बैठते, तो अपने संस्कृत-भाषाके ज्ञानको भूल जाते थे तभी वह इतनी सरल भाषामें लिखनेमें सफल हुए।

कविता और कविको सदा आश्रयकी जरुरत होती है। वह युग सामन्तोंक था। जिस काव्य और कविको सामन्त-वर्गका आश्रय प्राप्त था, वह आर्थिक लाभके तौर पर ही सफल नहीं होता, बल्कि वह चिरस्थायी होनेका अधिका रखता था। हर युगकी तरह उस समय भी साधारण जनताकी रुचिको पूर्ण करने के लिए कविताएँ बनती थीं। मगर उनके चिरस्थायी होनेके मार्गमें बहुत सी बाधाएँ थीं। यद्यपि स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे कवि अत्यन्त असाधारण कवि थे, मगर उनके लिए सामन्ती दर्बारोंमें वह भी सुभीता नहीं था, जो कि किसी थर्ड-क्लास संस्कृतके विद्वानका होता था। पुष्पदन्तने तो इसीलिए बल्कि झुँझलाकर कह भी दिया कि जिस वक्त प्रभुवर्गकी यह हालत है, उस वक्त हमारे जैसोंके लिए जंगलमें गुमनाम मारे-मारे फिरते रहना ही अच्छा है। इसीलिए पुष्पदन्तने सामन्तोंके चमर और अभिषेक जलको सज्जनताको धो-बहानेवाला ठहराया। उत्तर-कुरु वैसे भी एक वर्गहीन सुजल, सुफल, सुखी देशके तौरपर प्रसिद्ध था, मगर पुष्पदन्तके पहिले हीसे कवि लोग उसे भूल गए थे। पुष्पदन्तने "न दास न कोउ राज" "मानव दिव्य", "अगर्व सुभव्य, समानहिं सर्व" कहकर "अहो कुरु-भूमि निशंसय स्वर्ग" कहा, इससे भी जान पड़ता है कि देशभाषाके प्रतिभाशाली कवियोंको कितनी प्रतिकूल स्थितिमें रहना पड़ता था। स्वयंभू जैसे महान् कविको भी किसी बड़े दर्बारमें स्थान न पा एक गुमनामसे अधिकारी धनंजय, रयड्डाके आश्रयमें रहकर जिन्दगी गुजार देना भी उसी बातको पुष्ट करता है। अभी चक्रवर्ती लोग संस्कृत और थोड़ा-बहुत प्राकृत—जो कि अब मृत-भाषा बन चुकी थी—पर ही ज्यादा निगाह रखते थे। शायद वह समझते थे, कि देशी-भाषामें गुथी उनकी कीर्ति-माला चन्द ही दिनोंमें कुम्हला जाएगी, अमर कीर्ति तो संस्कृत काव्यों द्वारा ही मिल सकती है, इसीलिए उन्हें अपभ्रंश कवियोंकी ओर ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत नहीं थी।

सिद्धोंके लिए इस बारेमें कोई दिक्कत नहीं थी। उन्हें किसी दर्बारके

आश्रयकी उतनी जरूरत नहीं थी, जितनी कि दर्बारको। जल्द सुना देनेवाली उनकी मीठी गोलियोंका जनतापर बहुत प्रभाव था—विचित्र जीवनके कारण दिव्य चमत्कारके कारण, अथवा ज्ञान-विज्ञानके कारण कह लीजिए; राजा सिद्धोंकी पूजा-अर्चामें सबसे आगे रहना चाहते थे। शान्ति पा या रत्नाकर शान्तिको गौड़ नरेश उसी तरह आँखोंपर रखनेके लिए तैयार थे, जैसे मालव-दर्बार या सिंहलेश्वर।

(१) सिद्धोंकी कविता—शायद कविताके रूढ़ि-बद्ध सकीर्ण लक्षणको लेने-पर कबीरकी तरह सिद्धोंकी कविता भी कविता न गिनी जाए या कमसे कम अच्छी कविता न समझी जाए; लेकिन लाखों नर-नारियोंको उनमें रस, एक तरह-की आत्म-तृप्ति मिलती थी और आज भी उस तरहकी मनोवृत्ति रखनेवाले कितने ही पाठकोंको वह उतनी ही रुचिकर मालूम होती है; इसलिए उन्हें कविता मानना ही पड़ेगा। यह ठीक है, उनकी भाषा सीधी-सादी है समझनेमें बहुत सुगम है, लेकिन यह कविताका कोई दोष नहीं। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए, कि सिद्धोंकी सीधी-सादी भाषाको भी लोगोंने खींचातानी करके दृष्टकूट बना उनकी भाषाको "सन्ध्या-भाषा" बना डाला, और फिर तो वह उतनी ही दुर्बोध और क्लिष्ट हो गयी, जितना कि श्रीहर्षका "नैषध" या माघका "शिशुपाल-वध"।

हम बतला चुके है, आदिम सिद्ध किस तरह कृत्रिम बहु-निर्बन्ध-पूर्ण जीवनको सहज-जीवनका रूप देना चाहते थे और इसके लिए समाजके चौधरियोंकी कितनी ही रूढ़ियोंको वह तोड़-फेंकना चाहते थे। उनका उद्देश्य कभी नहीं था कि लोग सहज-जीवन बितानेके लिए अँधेरी कोठरियों और "गुह्य-समाजों"का आश्रय ले। वह इस बातमें सफल नहीं हुए और उनका सहज-यान भी सामन्त-समाजका एक दूसरा कोढ़ बनकर रह गया। उनके आशावादको भी आगे बढ़नेका अवसर नहीं मिला। हाँ, अलख-निरंजनका जो राग उन्होंने गाया, वह चिरकालके लिए अपना असर छोड़ गया। यद्यपि सिद्धोंके अलख-निरंजनसे राम-रहीम या ईश्वर-परमेश्वरसे कोई संबंध नहीं था। वह तो पंडितों और रूढ़िवादियोंके शास्त्र, वेद, पोथी-पत्रेसे न जाने जा सकनेवाले—अ-लख, विशुद्ध सत्य—को बतलाता

था, जो कि वस्तुतः बौद्धोंके निर्वाणका ही विशेषण है। लेकिन पीछेके चेलों—कबीर नानकसे लेकर राधास्वामी दयाल तक—ने उसका और ही अर्थ लगाकर लोगोंको मुक्तिकी ओर नहीं दिमागी गुलामीकी ओर ढकेला।

सिद्ध पुरानी रुढ़ियों, पुराने पाखण्डोंके बहुत विरोधी थे। आदिम सिद्धोंने तो सरहकी तरह अपने बड़े सम्मान और सुखी जीवनकी भी पर्वाह नहीं की। सरह किसी वक्त नालन्दाके एक बड़े प्रतिष्ठित पंडित थे। मगर जब उन्हें वहाँका जीवन दमघोंटू लगने लगा, तो उन्होंने सब कुछको लात मारा, भिक्षुओंका बाना छोड़ा, अपनी (ब्राह्मण) नहीं किसी दूसरी छोटी जातिकी तरुणीको लेकर खुल्लमखुल्ला सहजयानका रास्ता पकड़ा। सरहने सिर्फ़ दूसरे ही पन्थोंके पाखण्डोंका खण्डन नहीं किया, बल्कि बौद्धोंको भी नहीं छोड़ा। इस बातका अनुकरण पीछेके सन्तोंमें भी पाया जाता है, लेकिन अपने पन्थ और मतको बचाकर। यद्यपि ये पुराने सिद्ध किसी पाखण्डको फैलाना नहीं चाहते थे, लेकिन पीछे उन्हींके नामपर कितने ही मंत्र-तंत्र और पाखण्ड चल पड़े। सिद्धोंने सुख-दुख और दुनियाकी सभी समस्याओंको केवल व्यक्तिके रूपमें देखा। उन्हें ख्यालमें भी नहीं आया, कि समाजकी बुराइयोंको सामाजिक रूपसे ही दूर करनेपर सफलता मिल सकती है। लेकिन जैसा कि हमने पहिले लिखा है, सिद्धोंको निराशावाद छू नहीं गया था। वह निराशावाद, योग-वैराग्यसे लोगोंका पिण्ड छुड़ाना चाहते थे और उन्होंने मरनेके पीछे मिलनेवाले निर्वाणके पीछे भागनेवाले लोगोंकेलिए इसी संसारमें स्वाभाविक भोगमय जीवन बितानेका आदर्श उपस्थित किया। सिद्धोंने आत्मावलंबनको यद्यपि पसन्द किया, मगर साथ ही गुरुकी महिमाको उन्होंने इतना बढ़ाया, कि पीछे वही अन्धेरगरदीका एक भारी साधन बन गया। सिद्धोंके बाद जैन रहस्यवादी कवि, कबीर, दादू, राधास्वामी सबने गुरुकी अनन्य भक्तिका राग अलापा।

सिद्धोंकी कवितामें अधिकतर सहजयान और रहस्यवाद ही मिलता है। जिनकी सामन्त-समाजको कभी-कभी जरूरत पड़ती थी, उनकी आवश्यकता ऐसे काव्योंकी थी, जिनमें शृंगार और वीररसका जोर हो।

(२) शृंगार और वीररस—उस समयके सामन्त-जीवनका उद्देश्य था

चाहे जैसे भी हो दुनियाका आनन्द खूब डटके करके लेना। ऐसा कहनेसे आचारके नियमोंके विरुद्ध जानेकी जरूरत नहीं है; क्योंकि पुरोहित और महन्त अपने मालिकोंकी रुचिके अनुसार हर वक़्त नये धर्मशास्त्र और नये आचार-नियम बनानेके लिए तैयार थे। हां, भोग निष्कंटक नहीं हो सकता था। हर वक़्त एक सामन्तको दूसरे सामन्तसे ही खतरा नहीं था, बल्कि खुद अपने भाई-बहिनोंसे भय लगा रहता था। यदि ज़रा भी चूके, कि भोग और जान दोनोंसे हाथ धोना पड़ा। इसीलिए सामन्तोंको भोगके लिए पूरी क़ीमत अदा करनेको तैयार रहना पड़ता था। स्वयंभू और पुष्पदन्तने सामन्त-जीवनके इन दोनों पहलुओं—भोग भोगना और मृत्युको तृणवत् समझना—का सुन्दर चित्रण किया है, इतना सुन्दर चित्रण पीछेके काव्योंमें हमें नहीं मिलता। सामन्तको मृत्युकी कोई पर्वाह नहीं थी, न मृत्युके बादकी। विजय हुई तो उसके चरणोंमें सारे भोग पड़े हैं। हां, यदि कभी पराजयका मुंह देखना पड़ा, तब या तो सरहपाके पास जाना पड़ता या किसी अपने कविसे निराशावादकी बात सुन सन्तोष करना पड़ता। स्वयंभू और पुष्पदन्तने पराजित सामन्तोंके लिए काफ़ी सन्देश छोड़े हैं।

हेमचन्द्रके संगृहीत एक पदमें "बापकी भूमड़ी" (पितृ-भूमि)के लिए सर्वस्व-उत्सर्ग करनेकी जो भावना दर्शायी गई है, उसे देखकर हमारे कितने ही पाठक शायद उछल पड़ें। लेकिन यह बापकी भूमड़ी साधारण जनताके ख्यालसे नहीं कही गई। यह सामन्तोंकी अपने हाथसे निकल गई बापकी भूमड़ी—निरंकुश राज—को फिरसे लौटानेके लिए आदेश है। अस्सी फ़ीसदी जनता और भविष्यकी सारी पीढ़ियोंके सुख और स्वार्थका वहां कोई ख्याल नहीं था।

तब और पीछेके भी कवि सन्देश देते हैं—काया नरक, संसार तुच्छ, कोई किसीका नहीं। यह कोई उच्च भावनाका परिचायक नहीं है। चूंकि उनके जीवनके कुछ महीने या कुछ बरस दुखमें कटे और जिस दुखका कारण भी बहुत कुछ समाजकी विषमनीति है, जिसे कि हटानेसे बहुतसे दुखोंके कारण खतम हो सकते हैं। लेकिन कविने अपने उस थोड़े समयके दुखको इतना बड़ा करके देखा कि उसे आनेवाली हज़ारों पीढ़ीके सुख-दुखका कुछ भी ख्याल

नहीं आया। एक जीवनके सुख-दुखसे आनेवाली अगनित पीढ़ियोंका सुख-दुख परिमाणमें कहीं अधिक है, लेकिन जो उसका न ख्यालकर सिर्फ़ अपने हीको सब कुछ समझ लेता है, क्या यह उसकी अत्यन्त निम्न कोटिकी स्वार्थान्धता नहीं है? हमारे कवियोंने व्यक्तिके सामाजिक कर्त्तव्यकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसका कारण था, वही सामन्त-समाज, जिसके हाथमें सारे समाजकी नकेल थी और जो व्यक्तिगत आनन्दको ही सर्वोपरि चीज़ समझता था। हमारे आजके भी कवि जब ऐसी ग़लती कर बैठते हैं, तो इन पुराने कवियोंको दोष देनेकी क्या ज़रूरत। वस्तुतः कवियोंने अत्यन्त संदिग्ध परलोकवाद और वैयक्तिक निराशावादपर जितना जोर दिया, उससे ज़्यादा उन्हें चाहिए था, अपनी आगेवाली पीढ़ियोंके मुँहकी ओर देखना—जो पीढ़ियाँ कि संदिग्ध और काल्पनिक नहीं बिल्कुल वास्तविक हैं, यह बात खुद उन्हें अपना अस्तित्व बतला देता। केवल अपने लिए अनन्तजीवनकी मिथ्या आशाकी वेदीपर उन्होंने आनेवाली पीढ़ियोंके वास्तविक अनन्त-जीवनकी बलि चढ़ा देनेमें ज़रा भी आनाकानी नहीं की।

(३) कुछ **कवियोंका मूल्यांकन**—(क) **स्वयंभू**—हमारे इसी युगमें नहीं हिन्दी-कविताके पाँचों युगों (१—सिद्ध-सामन्त-युग, २—सूफ़ी-युग, ३—भक्त-युग, ४—दर्बारी-युग, ५—नवजागरण-युग)के जितने कवियोंको हमने यहाँ संग्रहीत किया है, उनमें यह निस्संकोच कहा जा सकता है, कि स्वयंभू सबसे बड़ा कवि था। वस्तुतः वह भारतके एक दर्जन अमर कवियोंमेंसे एक था। आश्चर्य और क्षोभ दोनों होता है कि लोगोंने कैसे ऐसे महान् कविको भुला देना चाहा। स्वयंभूके रामायण और महाभारत (या कृष्ण-चरित्र) दोनों ही विशाल-काव्य हैं। उनके विशाल आकारको देख-कर सन्देह हो सकता है कि कविने कितनी जगह काव्य-शरीरको जैसे-कैसे भी फुलानेकी कोशिश की होगी, मगर ऐसा प्रयत्न सिर्फ़ वहीं देखनेमें आता है, जहाँ अपने सहधर्मियोंकी जबर्दस्तीके कारण वह जैन-धर्मकी कितनी ही नीरस रूढ़ियोंको बखाननेके लिए मजबूर होता है—ठीक वैसे ही जैसे कुशल चित्रकार और मूर्तिकार तीर्थंकरोंकी मूर्ति बनानेमें बेगार टालने लगते। हम समझते

हैं कि ऐसे बेगारवाले अंश कविके कविता-कलेवरके अभिन्न अंग नहीं हैं। उनके हटा देनेसे न कथानककी शृंखला ही टूटती है और न रसधारा ही।

यद्यपि स्वयंभू बाणसे "घनघनऊ" या समास उधार लेनेकी बात कहता है, लेकिन हर्षचरित और कादंबरीके विकट समासोंका स्वयंभूमें पता नहीं लगता। स्वयंभूकी भाषाका प्रवाह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसने खामख्वाह दुरूहता लानेकी कहीं कोशिश नहीं की। पद्य-स्वर बड़े ही कर्णप्रिय हैं। शब्द बिल्कुल नपे-तुले हैं, और रस-परिपाक तो बराबर ऊपर और और ऊपर उठता जाता है। उसका कवि-कौशल कितना श्रेष्ठ है, यह इसीसे मालूम होगा कि मैंने रामायणसे शृंगार, वीर, बीभत्स, आदिके उदाहरणोंको जब जमा किया, तो ग्रन्थके कलेवरके बढ़ जानेके भयसे उनमेंसे एक ही एकको देना चाहा, मगर फिरसे पढ़नेपर मालूम हुआ, कि स्वयंभूके वर्णनमें हर जगह नवीनता है, इसलिए एकसे अधिक उद्धरण देनेके लिए मजबूर होना पड़ा।

स्वयंभूने प्रकृतिका बहुत गहरा अध्ययन किया है, यह हमारे दिये हुए उद्धरणोंसे मालूम होगा। समुद्र और कितने ही अन्य स्थलों, प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन करनेमें वह अद्वितीय है। और सामन्त समाजके वर्णनमें उसकी किसीसे तुलना नहीं की जा सकती। किसी एक सुन्दरीके सौन्दर्यको जितना अच्छी तरह उसने चित्रित किया है, वह तो किया ही है, लेकिन सुन्दरियोंके सामूहिक सौंदर्यका वर्णन करनेमें उसने कमाल कर दिया है। चित्रकारकी भाँति कविके सामने भी कोई साकार नमूना रहना चाहिए। स्वयंभूने राष्ट्रकूटोंके रनिवास और उनके आमोद-प्रमोदको नजदीकसे देखा था। वहाँ परदा बिल्कुल नहीं था, इसलिए और सुविधा थी। उसी सौन्दर्यको उसने रावण और अयोध्याके रनिवासोंके सौन्दर्यके रूपमें चित्रित किया है।

विलाप-चित्रणमें भी उसने बड़ी सफलता प्राप्त की है। रावणके मरनेपर मन्दोदरी और विभीषणके विलाप सिर्फ़ पाठकके नेत्रोंको ही सिक्त नहीं कर देते, बल्कि उसका मन मन्दोदरी और विभीषण तथा मृत रावणके गम्भीर और उदात्त भावोंकी दाद देता है।

सामन्ती युगमें स्त्रियोंका अधिकार ही क्या हो सकता है? तो भी सिद्ध-

युग, तथा वादकी शताब्दियोंकी अपेक्षा उनकी अवस्था कुछ वेहतर जरूर थी। स्वयंभूने सीताका जो रूप रावणको जवाव देते और अग्नि-परीक्षाके समय चित्रित किया है, पीछे उसका कहीं पता नहीं लगता।

मालूम होता है, तुलसी वावाने स्वयंभू-रामायणको ज़रूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होंने स्वयंभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामें क्यों नहीं डाल दिया। तुलसी वावाने स्वयंभू-रामायणको देखा था, मेरी इस वातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मैं समझता हूँ कि तुलसी वावाने "क्वचिदन्यतोपि"से स्वयंभू-रामायणकी ओर ही संकेत किया है। आख़िर नाना पुराण निगम आगम और रामायणके वाद ब्राह्मणोंका कौनसा ग्रन्थ वाक़ी रह जाता है, जिसमें रामकी कथा आई है। "क्वचिदन्यतोपि"से तुलसी वावाका मतलव है, ब्राह्मणोंके साहित्यसे वाहर "कहीं अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमें रामकथा वड़े सुन्दर रूपमें मौजूद है। जिस सोरों या शूकरक्षेत्रमें गोस्वामी जीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोंमें जैन-घरोंमें स्वयंभू रामायण पढ़ा जाता था। राम-भक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पड़े थे, उससे यह विल्कुल सम्भव है कि उन्हें जैनोंके यहाँ इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामी जीसे आठ सौ वरस पहले वना था किन्तु तद्भव शब्दोंके प्राचुर्य तथा लेखकों-वाचकोंके जव-तवके शब्द-सुधारके कारण अभी आसानीसे समझमें आ सकता था। जो उद्धरण हमने यहाँ दिये हैं, उनमेंसे कितनोंका प्रभाव रामचरितमानसके कई स्थलोंपर दिखलाई पड़ेगा। इसका यह हरगिज मतलव नहीं, कि गोसाईंजीने भाव वहाँसे चुराया, या उनकी प्रतिभा सिर्फ़ नक़ल करनेकी थी; गोस्वामी जीकी काव्य-प्रतिभा स्वतः महान् है। उसे पहलेकी प्रतिभाओंका वैसे ही सहारा मिला होगा, जैसे हरेक वालकको अपने पूर्वजोंकी कृतियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानका विस्तार करना पड़ता है।

(ग) पुष्पदन्त—पुष्पदन्तका नम्वर स्वयंभूके वाद आता है, किन्तु इस युगके वाकी कवियोंमें उनका स्थान वहुत ऊँचा है। पुष्पदन्तकी उपाधियोंमें अभिमान-मेरु विल्कुल यथार्थ मालूम होता है। मंत्री भरतको इस फक्कड़

कविकी बहुत नाजवरदारी करनी पड़ी होगी। अमीरोंके लिए तो उसने पहले ही कह दिया था "चमरानिलही उड्डेउ गुणाइँ"। "अभिषेक धोंयउ-सुजनत्तननाय।" कृष्णराजके दर्बारमें पुष्पदन्त कभी अपने मनसे गया होगा, इसमे सन्देह ही मालूम होता है। पुष्पदन्तने विरहका वर्णन बड़ा सुन्दर किया है और ग़रीबीका भी। अमीरोंके विलासको छोड़कर तो वह महाकाव्यको लिख ही नही सकता था, इसलिए वह तो जरूरी ही था; मगर सामन्तोंकी संक्षिप्त किन्तु अतिकठोर आलोचना की है कुछ ही शताब्दियों पहले अपनी प्रजातंत्रीय स्वतंत्रतासे वंचित मगर अब भी जब-तब लड़ती रहनेवाली यौधेयकी भूमिका इतना आकर्षक वर्णन और अन्तमें उत्तर-कुरुकी धनी-ग़रीब-रहित दास-राजा-शून्य दिव्य-मानववाली भूमिकी भारी तारीफ़ बतलाती है कि पुष्पदन्तका व्यक्तित्व किसी दूसरी ही तरहका था, जिसके लिए उस कालकी परिस्थिति अनुकूल नहीं थी।

(ग) **दो कलिकाल-सर्वज्ञ**—हमारे इस युगमें दो "कलिकाल-सर्वज्ञ" भी हैं। सिद्ध शान्तिपा या रत्नाकरशान्ति (१००० ई०) भारतके शायद सर्व-प्रथम "कलिकाल-सर्वज्ञ" थे। गौड़ नृपतिके राजगुरु और विक्रमशिलाके प्रधान होनेसे भी मालूम हो सकता है, कि वह अपने समयके असाधारण पण्डित थे। शान्तिपाके कुछ दर्शन और एक छन्दःशास्त्र "छन्दो-रत्नाकर" ग्रन्थ अब भी बच रहे है। दूसरे कलिकाल-सर्वज्ञ हैं आचार्य हेमचन्द्रसूरि (१०८८-११७६)। इनके संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। अपनी मातृभाषामें उन्होंने कोई स्वतंत्र काव्य रचा था, इसकी कम सम्भावना है। लेकिन अपने व्याकरण 'छन्दोनुशासन' और "देशी-नाममाला" (कोष) द्वारा जो सेवा उन्होंने हमारी भाषाकी की है, वह स्मरणीय है। अपने व्याकरण और छन्दोनुशासनमें उदाहरणके तौरपर उन्होंने अपभ्रंशके बड़े सुन्दर-सुन्दर सैकड़ों पद्य उद्धृत किये हैं, जिससे मालूम होता है कि वह इस भाषाको लम्बी नाकवाले पंडितोंकी तरह उपेक्षणीय नही समझते थे।

(घ) **कवि अब्दुर्रहमान**—अब्दुर्रहमान हिन्दीका प्रथम मुस्लिम कवि है। (उसकी) भाषा और कलासे मालूम होता है कि कविकी वाणी खूब मँजी

गई है। मधुर शब्दोंके चुनाव तथा सरल और प्रवाहयुक्त भाषा लिखनेमें अब्दुर्रहमानने बड़ी सफलता प्राप्त की है। अफ़सोस है कि इतने सुन्दर कविकी इतनी कम कविता हमें प्राप्त है। वह भी लुप्त हो गई होती, अगर किसी जैन-पुस्तक-भंडारने रक्षा न की होती। मंगलाचरणकी कुछ पंक्तियोंको छोड़कर इसकी कवितामें धर्म कहीं छू नहीं गया। कविके वास्तविक कालके बारेमें हमें कुछ नहीं मालूम, लेकिन जान पड़ता है कविकी जन्म-भूमि मुलतानके महमूदके हाथमें जानेसे पहले अब्दुर्रहमान मौजूद थे।

(४) कवियोंकी अमर कीर्त्ति

कवियोंने संसार तुच्छ, कोई किसीका नहीं, काया नरक आदि बातोंका प्रचार करके सामन्तोंका ही हित किया, साधारण जनता और आगे आनेवाली पीढ़ीका तो इससे घोर अहित हुआ। उन्होंने उत्पीड़ित प्रजाका पक्ष लेना तो दूर, उनके कष्टों तथा कारणोंके चित्रण करनेका भी प्रयास नहीं किया— इत्यादि-इत्यादि कितने ही दोष उनके ऊपर लगाए जा सकते हैं; लेकिन इसकी जिम्मेवारी बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थिति और समाजपर है, इस बातका अपने पुराने महान् कवियोंके संबंधमें कोई फ़ैसला देते वक़्त हमें हमेशा ख्याल रखना होगा। सबसे बड़ी बात यह है, कि दोष भी तभी तक लोग देखेंगे, जब तक हमारी दुनिया नई नहीं बनती, इसकी सारी गंदगियाँ दूर नहीं हो जातीं। एक बार जहाँ हमारे समाजका कलेवर बदला, कि कवियोंकी महिमा सिर्फ़ उनके कवित्वके कारण होगी। रामके हाथों मुक्ति पानेवालोंका जब हमारे देशमें नाम भी नहीं रह जाएगा, तब भी तुलसीकी क़द्र होगी। स्वयंभूके धर्म (जैन)का अस्तित्व भी न रहनेपर स्वयंभू नास्तिक भारतका महान् कवि रहेगा। उसकी वाणीमें हमेशा यह शक्ति बनी रहेगी कि कहीं अपने पाठकोंको हर्षोत्फुल्ल कर दे, कहीं शरीरको रोमांचित बना दे और कहीं आँखोंको भीगनेके लिए मजबूर कर दे। सनातन-तुलामें नापनेपर हमारे कवियोंका सम्मान शताब्दियोंके बीतनेके साथ अधिक और अधिक बढ़ता जाएगा। जिस वक़्त शत-प्रतिशत जनता शिक्षित **और संस्कृत** होगी, जिस वक़्त कलाकी निष्पक्ष परखका मान

और ऊँचा होगा, उस वक़्त हमारे कवियोंका कीर्त्ति-कलेवर, उनका आसन और ऊँचा होगा।

कालने बड़ी बेदर्दीसे हमारे पुराने कवियोंकी छँटाई की है। जाने कितने उच्च काव्योंसे आज हम वंचित हैं। लेकिन इस छँटाईके बाद जो कुछ हमारे पास बचकर चला आया है, उसकी क़द्र और रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा करके ही हम अपने पूर्वजोंका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर सकते हैं।

हम चाहते हैं कि आदिसे लेकर आज तकके सभी महान् कवियोंकी कृतियोंको पाठकोंके सामने इस तरह रखा जाए, जिसमे वह काव्य-रसका अच्छी तरह आस्वादन कर सकें, कवियोंके मुखसे तत्कालीन समाजकी आप-बीती जान सकें और कवि-परंपराने किस तरह आनेवाली पीढ़ियोंको प्रेरणा और सहायता दी, इसे भी अच्छी तरह समझ सकें। हमारे संग्रहका पाँच युगोंवाला वर्त्तमान प्रयास सिर्फ़ बीचवाला भाग है जो चार खंडोंमें समाप्त होगा। बीसवीं सदीके कवियोंका संग्रह पाँचवाँ खण्ड होगा और वेदसे लेकर पीछे तकके संस्कृत-पाली-प्राकृत कवियोंका सूक्ति-संग्रह एक अलग खण्ड। उस खण्डमें छायासे काम नहीं चलेगा और मूल-भाषाका देना भी बेकार होगा, लेकिन हम चाहेंगे कि अनुवाद पद्य-बद्ध हों और जहाँ तक हो सके उन्हीं छन्दोंमें; लेकिन यह काम कवि ही कर सकते हैं। यदि ऐसे कवि उसे अपने हाथमें लेना चाहेंगे, तो हम सहर्ष उनकी यथायोग्य सहायता करेंगे।

प्रयाग
१४-८-४४

राहुल सांकृत्यायन

हुई है। मधुर शब्दोंके चुनाव तथा सरल और प्रवाहयुक्त भाषा लिखनेमें अब्दुर्रहमानने बड़ी सफलता प्राप्त की है। अफ़सोस है कि इतने सुन्दर कविकी इतनी कम कविता हमें प्राप्त है। वह भी लुप्त हो गई होती, अगर किसी जैन-पुस्तक-भंडारने रक्षा न की होती। मंगलाचरणकी कुछ पंक्तियोंको छोड़कर इसकी कवितामें धर्म कहीं छू नहीं गया। कविके वास्तविक कालके बारेमें हमें कुछ नहीं मालूम, लेकिन जान पड़ता है कविकी जन्म-भूमि मुलतानके महमूदके हाथमें जानेसे पहले अब्दुर्रहमान मौजूद थे।

(४) कवियोंकी अमर कीर्त्ति

कवियोंने संसार तुच्छ, कोई किसीका नहीं, काया नरक आदि बातोंका प्रचार करके सामन्तोंका ही हित किया, साधारण जनता और आगे आनेवाली पीढ़ीका तो इससे घोर अहित हुआ। उन्होंने उत्पीड़ित प्रजाका पक्ष लेना तो दूर, उनके कष्टों तथा कारणोंके चित्रण करनेका भी प्रयास नहीं किया—इत्यादि-इत्यादि कितने ही दोष उनके ऊपर लगाए जा सकते हैं; लेकिन इसकी ज़िम्मेवारी बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थिति और समाजपर है, इस बातका अपने पुराने महान् कवियोंके संबंधमें कोई फ़ैसला देते वक़्त हमें हमेशा ख्याल रखना होगा। सबसे बड़ी बात यह है, कि दोष भी तभी तक लोग देखेंगे, जब तक हमारी दुनिया नई नहीं बनती, इसकी सारी गंदगियाँ दूर नहीं हो जातीं। एक बार जहाँ हमारे समाजका कलेवर बदला, कि कवियोंकी महिमा सिर्फ़ उनके कवित्वके कारण होगी। रामके हाथों मुक्ति पानेवालोंका जब हमारे देशमें नाम भी नहीं रह जाएगा, तब भी तुलसीकी क़द्र होगी। स्वयंभूके धर्म (जैन)का अस्तित्व भी न रहनेपर स्वयंभू नास्तिक भारतका महान् कवि रहेगा। उसकी वाणीमें हमेशा यह शक्ति बनी रहेगी कि कहीं अपने पाठकोंको हर्षोत्फुल्ल कर दे, कहीं शरीरको रोमांचित बना दे और कहीं आँखोंको भीगनेके लिए मजबूर कर दे। सनातन-तुलामें नापनेपर हमारे कवियोंका सम्मान शताब्दियोंके बीतनेके साथ अधिक और अधिक बढ़ता जाएगा। जिस वक़्त शत-प्रतिशत जनता शिक्षित और संस्कृत होगी, जिस वक़्त कलाकी निष्पक्ष परखका मान

और ऊँचा होगा, उस वक़्त हमारे कवियोंका कीर्त्ति-कलेवर, उनका आसन और ऊँचा होगा।

कालने बड़ी बेदर्दीसे हमारे पुराने कवियोंकी छँटाई की है। जाने कितने उच्च काव्योंसे आज हम वंचित हैं। लेकिन इस छँटाईके बाद जो कुछ हमारे पास बचकर चला आया है, उसकी क़द्र और रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य हैं। ऐसा करके ही हम अपने पूर्वजोंका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर सकते हैं।

हम चाहते हैं कि आदिसे लेकर आज तकके सभी महान् कवियोंकी कृतियोंको पाठकोंके सामने इस तरह रखा जाए, जिसमें वह काव्य-रसका अच्छी तरह आस्वादन कर सकें, कवियोंके मुखसे तत्कालीन समाजकी आप-बीती जान सकें और कवि-परंपराने किस तरह आनेवाली पीढ़ियोंको प्रेरणा और सहायता दी, इसे भी अच्छी तरह समझ सकें। हमारे संग्रहका पाँच युगोंवाला वर्त्तमान प्रयास सिर्फ़ बीचवाला भाग है जो चार खंडोंमें समाप्त होगा। बीसवीं सदीके कवियोंका संग्रह पाँचवाँ खण्ड होगा और वेदसे लेकर पीछे तकके संस्कृत-पाली-प्राकृत कवियोंका सूक्ति-संग्रह एक अलग खण्ड। उस खण्डमें छायासे काम नहीं चलेगा और मूल-भाषाका देना भी बेकार होगा, लेकिन हम चाहेंगे कि अनुवाद पद्य-बद्ध हों और जहाँ तक हो सके उन्हीं छन्दोंमें; लेकिन यह काम कवि ही कर सकते हैं। यदि ऐसे कवि उसे अपने हाथमें लेना चाहेंगे, तो हम सहर्ष उनकी यथायोग्य सहायता करेंगे।

प्रयाग
१४-८-४४

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

[१]

१—सिद्ध-सामन्त-युग

(७६०—१३०० ई०)

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

काल—७६० ई० (गोपाल-धर्मपाल ७५०-७०-८०६ ई०)। देश—मगध (नालंदा)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (६)। कृतियाँ[1]—कायकोष-अमृत-वज्रगीति, चित्तकोष-अज-वज्रगीति, डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति, दोहाकोष-

१–दोहा[2]

(१) रहस्यवाद

अलिओ ! धम्म-महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ ॥२॥
मन्तह मन्ते सन्ति ण होइ। पडिलभित्ति की उट्ठिउ होइ ॥६॥
तरुफल-दरिसण णउ अग्घाइ। वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ ॥७॥

जाव ण आप जणिज्जइ, ताव ण सिस्स करेइ।
अन्धाँ अन्ध कढाव तिम, वेण्ण 'वि कूव पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष[2]

सङ्क-पास तोडहु गुरु-वअणेँ। ण सुनइ सो णउ दीसइ णअणेँ ॥३॥
पवण वहन्ते णउ सो हल्लइ। जलण जलन्ते णउ सो डज्झइ ॥४॥
घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ। ण उवज्जहि णउ खअहि पइस्सइ ॥५॥

णउ तं वाअहि गुरु कहइ, णउ तं वुज्झइ सीस।
सहजामिअ-रसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस ॥९॥
सअ-संवित्ती तत्तफलु, सरहापाअ भणन्ति।
जो मण-गोअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति ॥१०॥

—सरहपादीय दोहा ७, ८

---

[1] देखो मेरी "पुरातत्त्व-निबंधावलि" पृ० १६६ [2] The Journal of the

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग (७६०-१३०० ई०)

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

उपदेशगीति, दोहाकोष, तत्त्वोपदेश-शिखर-दोहाकोष, भावनाफल-दृष्टिचर्या-दोहाकोष, वसन्ततिलक-दोहाकोष, चर्यागीति-दोहाकोष, महामुद्रोपदेश-दोहाकोष, सरहपाद-गीतिका।

१—दोहा

(१) रहस्यवाद

अलिओ! धर्ममहासुख प्रविशइ। नोन जिमी पानिहीं विलिज्जइ ॥२॥
मंत्रहिं मंत्रे शान्ति न होइ। प्रतिलब्धी का उत्थित होइ ॥६॥
तरुफल-दर्शन नाहि अघाइ। वैद्यहिं देखि कि रोग पराइ ॥७॥
जबलौं आप न जानिये, तबलौं सिख न करेइ।
अन्धा काढे अन्ध तिमि, दोउहिं कूप पडेइ ॥८॥ —दोहाकोर

शंक-पाश तोड़हु गुरु-वचने। न सुनइ सो नहिं दीसइ नयने ॥३॥
पवन वहन्ते ना सो हिल्लइ। ज्वलन जलन्ते ना सो डहियइ ॥४॥
घन वरसन्ते ना सो भीजइ। न उपजै न क्षयहिं पईसइ ॥५॥
ना सो वाचहिं गुरु कहइ, ना सो बूझइ शिष्य।
सहजामृत-रस सकल जग, कासु कहीजै कस्य ॥६॥
स्वक-संवित्ती तत्त्व-फल, सरहापाद भनन्ति।
जो मन-गोचर पाइअइ, सो परमार्थ न होन्ति ॥१०॥

—दोहा ७

Department of Letters, Calcutta University, Vol. XXV

(२) पाखंड-खंडन

वम्हणहि म जाणन्त हि भेउ। एँवइ पढ़िअउ ए चउवेउ ॥१॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त। घरही वइसी अग्गि हुणन्त ॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमें। अक्खि डहाविअ कडुएँ धूयें ॥२॥
एँकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसें। विणुआ होंइअइ हंस-उएसें।
मिच्छेहीं जग वाहिअ भुल्लें। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें ॥३॥
अइंरिएहिँ उद्दूलिअ छारें। सीस सु वाहिअ ए जडभारें ॥
घरही वइसी दीवा जाली। कोणहिँ वइसी घण्डा चाली ॥४॥
अक्खि णिवेसी आसण वन्धी। कण्णेहिँ खुसखुसाइ जण धन्धी ॥
रण्डी-मुण्डी अण्ण 'वि वेसें। दिक्खिज्जइ दक्खिण-उद्देसें ॥५॥
दीहणक्ख जइ मलिणे वेसें। णग्गल होइ उपाडिअ केसें ॥
खवणेहि जाण-विडंविअ वेसें। अप्पण वाहिअ मोक्ख-उवेसे ॥६॥
जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह।
लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्वह ॥७॥
पिच्छी गहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।
उञ्छ-भोअणें होइ जाण, ता करिह तुरङ्गह ॥८॥
सरह भणइ खवणाण मोक्ख, महु किम्पि न भावइ।
तत्त-रहिअ काआ ण ताव, पर केवल साहइ ॥९॥
चेल्लु भिक्खु जे थविर उदेसें। वन्देहिँ आ पव्वज्जिउ-वेसें ॥
कोइ सुतण्त वक्खाण वइट्ठो। कोवि चिण्ते कर सोसइ डिट्ठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता वेकार

जो जसु जेण होइ सन्तुट्ठों। मोक्ख कि लब्भइ झाण पविट्ठो ॥
किन्तह दीवें किं तह णेवेज्जें। किन्तह किज्जइ मंतह सेव्वे ॥१४॥

(२) पाखंड-खंडन

ब्राह्मणहिं ना जानन्ता भेद। यों ही पढ़ेंउ ये चारो वेद ॥१॥
माटि पानि कुश लिये पढ़न्त। घरही बइठी अग्नि होमन्त ॥
कार्य विना ही हुतवह होमैं। आँखि उहावैं कडुये धूयें ॥२॥
ऐकदण्डि त्रिदण्डी भगवा वेषे। ना होइहि विनु हंस-उपदेशे ॥
मिथ्यहि जग बाहेउ भूले। धर्म-अधर्म न जानेंउ तुल्यें ॥३॥
आचरियेहिं लपेटी छारा। सीसहि ढोअत ये जट-भारा ॥
घरहीं बइसे दीपक बारी। कोनहि बइसे घंटा चाली ॥४॥
आँखि निवेशी आसन बांधा। कर्णे खुसखुसाय जन धन्दा ॥
रंडी-मुंडी अन्यहुँ भेषें। दीक्षीयत दक्षिणा-उदेसें ॥५॥
दीर्घनखा जो मलिने भेषे। नंगा होइ उपाडिय केशे ॥
क्षपणक ज्ञान-विडंबित भेषे। अपना बाहर मोक्ष गवेषे ॥६॥

यदि नंगाये होइ मुक्ति, तो शुनक-शृगालहुँ।
लोम उपाटे होइ सिद्धि, तो युवति-नितम्बहुँ ॥७॥

पिच्छि गहे देखेंउ जों मोक्ष, तो मोरहु चमरहुँ।
उञ्छ-भोजने होइ ज्ञान, तो करिहु तुरंगहुँ ॥८॥

सरह भनै क्षपणकी मोक्ष, मोहि तनिक न भावइ।
तत्त्व-रहित काया न ताप, पर केवल साधइ ॥९॥

चेला भिक्षु जे स्थविर-उदेसे। वन्दहि आ प्रव्रजिता-वेसें।
कोइ स्वतंत्र व्याख्यानें बइठो। कोइ चिन्ता करि शोषइ दीठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता वेकार

जो जाँसु जेन होइ सन्तुष्टो। मोक्ष कि लभियइ ध्यान-प्रविष्टो ॥
की तेहिं दीपेहिं की नैवेद्ये। की हि कीजियइ मन्त्रहँ सेवे ॥१४॥

किन्तह तित्थ तपोवण जांई । मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाई ॥१५॥
छाड्हुरे आलीका वन्वा । सो मुंचहु जो अच्छहु धन्वा ॥
तसु परिआणे अण्ण ण कोई । अवरें गणे_ सव्व'वी सोई ॥१६॥
सोवि पढ़िज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणे वक्खाणिज्जइ ॥
णहि सो दिट्ठि जो ताउ ण लक्खइ । एक्कें वर गुरु-पाअे पेक्खइ ॥१७॥
झाण-हीण पव्वज्जे रहिअउ । घरहिं वसन्ते भज्जे सहिअउ ।
जइ भिँड़ि विसअ रमन्त ण मुच्चइ । सरह भणइ परिआण कि मुच्चइ ॥१९॥
जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअअ । जइ परोक्ख अंधार म धीअअ ॥
सरहें णित्ते कड्ढिउ राव । सहज सहाव ण भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जल्लइ मरइ उवज्जइ वज्झइ । तल्लइ परममहासुह सिज्झइ ॥
सरहे गहण गुहिर भग कहिआ । पसू-लोअ निव्वहि जिम रहिआ ॥२१॥
झाण-रहिअ की कीअइ झाणें । जो अवाअ तहि काह वखाणें ॥
भव मुद्दे सअलहि जग वाहिउ । णिअ सहाव णउ केण' वि साहिउ ॥२२॥
मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सव्व' वि रे वढ़ ! विब्भम-कारण ॥
असमल चित्त म झाणें खरडह । सुह अच्छन्त म अप्पणु झगड़ह ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाअन्त पिअन्ते सुहहिं रमन्ते । णित्त पुण्णु चक्का'वि भरन्ते ॥
अइस धँम्म सिज्झइ परलोअह । णाह पाए दलीउ भअलोअह ॥२४॥

जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहि वढ़ !! चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस ॥२५॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिव्वाण ।
एँहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥२७॥

सअ-संवित्ति म करहु रें धन्वा । भावाभाव सुगति रे वन्वा ॥
णिअ मण मुणहुरें णिउणें जोई । जिम जल जलहिं मिलन्ते सोई ॥३२॥

किन्तह तित्थ तपोवण जाई । मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाई ॥१५॥
छाड़हुरे आलीका बन्धा । सो मुंचहु जो अच्छहु धन्धा ॥
तसु परिआणे अण्ण ण कोई । अवरें गणे_ सव्व'वी सोई ॥१६॥
सोवि पढ़िज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणे वक्खाणिज्जइ ॥
णहि सो दिट्ठि जो ताउ ण लक्खइ । एक्कें वर गुरु-पाअे पेक्खइ ॥१७॥
झाण-हीण पव्वज्जे रहिअउ । घर्रहि वसन्ते भज्जे सहिअउ ।
जइ भिँड़ि विसअ रमन्त ण मुच्चइ । सरह भणइ परिआण कि मुच्चइ ॥१६॥
जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअअ । जइ परोक्ख अंधार म धीअअ ॥
सरहें णित्ते कड्ढिउ राव । सहज सहाव ण भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जल्लइ मरइ उवज्जइ वज्झइ । तल्लइ परममहासुह सिज्झइ ॥
सरहे गहण गुहिर मग कहिआ । पसू-लोअ निव्वहि जिम रहिआ ॥२१॥
झाण-रहिअ की कीअइ झाणें । जो अवाअ तहि काह वखाणें ॥
भव मुद्दे सअलहि जग वाहिउ । णिअ सहाव णउ केण' वि साहिउ ॥२२॥
मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सव्व' वि रे वढ़ ! विब्भम-कारण ॥
असमल चित्त म झाणें खरडह । सुह अच्छन्त म अप्पणु झगड़ह ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाअन्त पिअन्ते सुर्हहि रमन्ते । णित्त पुण्णु चक्का'वि भरन्ते ॥
अइस धँम्म सिज्झइ परलोअह । णाह पाए दलीउ भअलोअह ॥२४॥
जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहि वढ़ !! चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस ॥२५॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिव्वाण ।
एँहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥२७॥
सअ-संवित्ति म करहु रें धन्धा । भावाभाव सुगति रे बन्धा ॥
णिअ मण मुणहुरें णिउणें जोई । जिम जल जर्लहि मिलन्ते सोई ॥३२।

ायमे यदि आकाश विशुद्धा । देखत देखत दृष्टि निरुद्धा ॥
ऐसे यदि आयास विकालो । निज मन दोर्षाहि वूझ न वालो ॥३४॥
मूल-रहित जो चिन्तइ तत्त्व । गुरु-उपदेशे अस्तं-व्यस्त ॥
ारह भनै मुढ़ ! जानहु चंगा । चित्त-रूप संसारहु भंगा ॥३७॥
नेज मन सव्वै शोधिय जव्वै । गुरु-गुण हृदये पइसइ तव्वै ॥
ऐस समुझि मन सरहे गाहेँउ । तंत्र-मंत्र नहिं एकहु चाहेउ ॥३९॥
तव्वै मन अस्तमन जाइ, तन टूटइ बंधन ।
तव्वै समरस सहजे, कहियइ शूद्र न ब्राह्मण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एहिँ सों सुरसरि जमुना, एहिँ सो गंगासागर ।
एहिँ प्रयाग वाराणसी, एहिँ सो चंद्र-दिवाकर ॥४७॥
क्षेत्र-पीठ-उपपीठ, एहीँ मैं भ्रमउँ बाहिरा ।
देहा सदृशा तीर्थ, नहीं मैं अन्यहि देखा ॥४८॥
वन-पद्मिनि-दल-कमल-गंध-केसर-वर-नाले ।
छाड़हु द्वैतहि न करहु शोषण, मूढ़ ! न लागहु आरे ॥४९॥
काय तीर्थ क्षय जाय, पूछहु कुलहीनहँ ।
ब्रह्म-विष्णु त्रैलोक्य, सकलहिं निलीन जहँ ॥५०॥
वुद्धि विनासै मन मरै, जहँ टूटै अभिमान ।
सो मायामय परम-फल, तहँ की बाँधिय ध्यान ॥५३॥
भवहीँ उपजै क्षयहि विनाशै । भाव-रहित पुनि का उत्पादै ॥
द्वैत-विवर्जित योगहुँ वर्जै । ऐसो श्रीगुरुनाथ कहीजै ॥५४॥
देखहु सुनहू छूवहु खाहु । सूँघहु भ्रमहु वइठु उट्ठाहु ॥
क्रय-विक्रय व्यवहारे पेल्लहु । मन छाडहु ऐँक-कार न चल्लहु ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उपदेशे अमृत-रस, धाइ न पीयेँउ जेहि ।
वहु-शास्त्रार्थ-मरुस्थलहिं, तृषितैं मरेँऊ तेहि ॥५६॥

पढ़मं जइ आभास विसुद्धो । चाहतें चाहतें दिट्ठि णिरुद्धो ॥
एसें जइ आयास विकालो । णिअ मण दोस ण बुज्झइ वालो ॥३४॥
मूल-रहिअ जो चिन्तइ तत्त । गुरु-उवएसे एत्त-विअत्त ॥
सरह भणइ वढ़ ! जाणहु चंगे । चित्त-रूअ संसारह भंगे ॥३७॥
णिअ मण सव्वे सोहिअ जव्वें । गुरु-गुण हिअए पइसइ तव्वें ॥
एवँ मणे मुणि सरहें गाहिउ । तन्त मन्त णउ एक्क'वि चाहिउ ॥३६॥
जव्वे मण अत्थमण जाइ, तणु तुट्टइ वंधण ।
तव्वे समरस सहजे, वज्जइ सुद्द ण बम्हण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थ से गंगा साअरु ।
एत्थु पआग वणारसि, एत्थु से चन्द दिवाअरु ॥४७॥
खेत्तु-पीठ-उपपीठ, एत्थु मइँ भमइ परिट्ठिओं ।
देहा-सरिसअ तित्थ, मइँ सुह अण्ण ण दिट्ठिओं ॥४८॥
मण्ड-पुअणि-दल-कमल-गन्ध केसर वरणालें ।
छड्डहु वेणिम ण करहु सोसँण लग्गहु वढ ! आलें ॥४६॥
काय तित्थ खअ जाइ, पुच्छह कुल ईणओ ।
.वम्ह-विट्ठु तेलोअ, सअल जाहि णिलीणओ ॥५०॥
वुद्धि विणासइ मण मरइ, जहि तुट्टइ अहिमाण ।
स माआमअ परम फलु, तहि कि वज्झइ झाण ॥५३॥
भवहि उअज्जइ खअहि णिवज्जइ । भाव-रहिअ पुणु काहि उवज्जइ ॥
विण्ण-विवज्जिअ जोऊ वज्जइ । अच्छह सिरि गुरुणाह कहिज्जइ ॥५४॥
देक्खहु सुणहु परीसहु खाहु । जिग्घहु भमहुं वइठ्-उट्ठाहु ॥
आल - माल व्यवहारें पेल्लह । मण छड्ड एक्काकार म चल्लह ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उवएसें अमिअ-रसु, धाव ण पीअउ जेहि ।
बहु-सत्थत्थ-मरुत्थलहिं, तिसिए मरिअउ तेहि ॥५६॥

प्रथमे यदि आकाश विशुद्धा। देखत देखत दृष्टि निरुद्धा॥
ऐसे यदि आयास विकालो। निज मन दोर्षाहि बूझ न वालो॥३४॥
मूल-रहित जो चिन्तइ तत्त्व। गुरु-उपदेशे अस्तं-व्यस्त॥
सरह भनै मुढ़! जानहु चंगा। चित्त-रूप संसारहु भंगा॥३७॥
निज मन सव्वै शोधिय जव्वैं। गुरु-गुण हृदये पइसइ तव्वैं॥
ऐस समुझि मन सरहे गाहेँउ। तंत्र-मंत्र नहिं एकहु चाहेउ॥३६॥
जव्वैं मन अस्तमन जाइ, तन टूटइ वंधन।
तव्वैं समरस सहजे, कहियइ शूद्र न ब्राह्मण॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एहिँ सों सुरसरि जमुना, एहिँ सो गंगासागर।
एहिँ प्रयाग वाराणसी, एहिँ सो चंद्र-दिवाकर॥४७॥
क्षेत्र-पीठ-उपपीठ, एहीँ मैं भ्रमउँ वाहिरा।
देहा सदृशा तीर्थ, नहीं मैं अन्याहि देखा॥४८॥
वन-पद्मिनि-दल-कमल-गंध-केसर-वर-नाले।
छाड़हु द्वैतहि न करहु शोपण, मूढ़! न लागहु आरे॥४९॥
काय तीर्थ क्षय जाय, पूछहु कुलहीनहँ।
ब्रह्म-विष्णु त्रैलोक्य, सकर्लाह निलीन जहँ॥५०॥
वुद्धि विनासै मन मरै, जहँ टूटै अभिमान।
सो मायामय परम-फल, तहँ की वाँधिय ध्यान॥५३॥
भवहीँ उपजै क्षर्याहि विनाशै। भाव-रहित पुनि का उत्पादै॥
द्वैत-विवर्जित योगहुँ वर्जै। ऐसो श्रीगुरुनाथ कहीजै॥५४॥
देखहु सुनहू छूवहु खाहु। सूँघहु भ्रमहु वइठु उट्ठाहु॥
क्रय-विक्रय व्यवहारे पेल्लहु। मन छाडहु ऐंक-कार न चल्लहु॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उपदेशे अमृत-रस, धाइ न पीयेँउ जेहि।
वहु-शास्त्रार्थ-मरुस्थलहिँ, तृपितै मरेँऊ तेहि॥५६॥

चित्ताचित्ति'वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम वालु ।
　　गुरु-वअणें दिढ भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु ॥५७॥
अक्खर वण्ण परमगुण रहिजे । भणइ ण जाणइ एमइ कहिजे ॥
सो परमेसरु कासु कहिज्जइ । सुरअ-कुमारी जीम पड़िज्जइ ॥५८॥
भावाभावे जो परिहीणो । तहिं जग सअलासेस विलीणो ॥
जव्वे तहँ मण णिच्चल थक्कइ । तव्वे भव-संसारह मुक्कइ ॥५९॥
जाव ण अप्पहिं पर परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥
एमइ कहिजे भन्ति ण कव्वा । अप्पहि अप्पा वुज्झसि तव्वा ॥६०॥
घरें अच्छई वाहिरे पुच्छइ । पइ देक्खइ पड़िवेसी पुच्छइ ॥
सरह भणइ वढ़ ! जाणउ अप्पा । णउ सो धेअ ण धारण-जप्पा ॥६२॥
विसअ रमन्त ण विसअँ विलिप्पइ । ऊअर हरइ ण पाणी छिप्पइ ॥
एमइ जोई मूल सरन्तो । विसहि ण वाहइ विसअ रमन्तो ॥६४॥
अणिमिस-लोअण चित्त णिरोहें । पवण णिरूहइ सिरि-गुरु-वोहें ॥
पवण वहइ सो णिच्चलु जव्वै । जोई कालु करइ कि रें तव्वै ॥६६॥
पण्डिअ सअल सत्य वक्खाणइ । देहहिँ वुद्ध वसन्त ण जाणइ ॥
अवणागमण ण तेण विखण्डिअ । तो'वि णिलज्ज भणइ हउँ पण्डिअ ॥६८॥
जीवन्तह जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ ।
　　गुरु-उवएसें विमल-मइ, सो पर धण्णा कोइ ॥६९॥
विसअ-विसुद्धें णउ रमइ, केवल सुण्ण चरेइ ।
　　उड्डी वोहिअ-काउ जिम, पलुटिअ तह'वि पड़ेइ ॥७०॥
विसआसत्ति म वन्ध करु, अरें वढ़ ! सरहे वुत्त ।
　　मीण-पअङ्गम-करि-भमर, पेक्खह हरिणहँ जुत्त ॥७१॥
जत्त'वि चित्तह विप्फुरइ, तत्त'वि णाह सरुअ ।
　　अण्ण तरंग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरुअ ॥७२॥
जत्त'वि पइसइ जलहि जलु, तत्तइ समरस होइ ।
　　दोस-गुणाअर चित्त तह, वढ़ ! परिवक्खण कोइ ॥७४॥

चित्त अचित्तहिं परिहरहु, तिमि अच्छहु जिमि बाल।
गुरु-बचनैं दृढ़ भक्ति करु, ज्यों होइ सहज उलाल ॥५७॥

अक्खर वर्ण परम गुण रहिए। भनइ न जानइ अइसे कहिये ॥
सो परमेश्वर कासों कहिए। सुरत-कुमारी जिमि पतिआंहे ॥५८॥
भावाभावहिं जो परिहीना। तहँ जग सकलाशेष विलीना ॥
जब्बे तहँ मन निश्चल थाकै। तब्बै भव-संसारहिं मुक्कै ॥५९॥
जो लौं ना आपहिं परि-जानै। तो लौं कि देह अनुत्तर पावै ॥
ऐसेहि कहिये भ्रान्ति न कब्बै। आपुहि आपा बूझहि तब्बै ॥६०॥
घरे अच्छो बाहर पूछै। पति देखइ पड़ोसी पूछै ॥
सरह भनै मूढ़! जानहु आपा। नहिं सो ध्येय न धारण जापा ॥६२॥
विषय रमन्त न विषय विलिप्पै। पदुम हरइ ना पानी छीजै ॥
ऐसेहि योगी मूल कुरन्तो। विषय वहै ना विषय रमन्तो ॥६४॥
अनिमिष-लोचन चित्त निरोधै। पवन निरोधै श्री-गुरु-बोधे ॥
पवन वहै सो निश्चल जब्बे। योगी काल करै कि रे तब्बे ॥६६॥
पंडित सकल शास्त्र वखानै। देहहिं बुद्ध बसंत न जानै ॥
अवना-गवन न तेहिं विखंडित। तोपि निलज्ज भनै हौं पंडित ॥६८॥

जीवन्तो जो ना जरै, सो अजरामर होइ।
गुरु-उपदेसे विमल मति, सो पर धन्या कोइ ॥६९॥

विषय विसुद्धे ना रमै, केवल शून्य चरेइ।
उड़िया बोहित-काक जिमि, पलटिय तेहहि पड़ेइ ॥७०॥

विषयासक्ति न बन्ध करु, अरे मूढ़! सरहे उक्त।
मीन-पतंगम-करि-भ्रमर, पेखहु हरिनहु युक्त ॥७१॥

जहँवां चित्ता विस्फुरै, तहँवै नाहि स्वरूप।
अन्य तरंग कि अन्य जल, भव-सम ख-सम स्वरूप ॥७२॥

जहवां पइसै जलहि जल, तहँवा समरस होइ।
दोष-गुणाकर चित्त तहँ, मूढ़! परिवीक्ष न कोइ ॥७४॥

सुण्णहिँ सङ्ग म करहि तुहु, जहिँ तहिँ सम चिन्तस्स ।
तिल-तुस-मत्त'वि सल्लता, वेअणु करइ अवस्स ॥७५॥
सव्व रूअ तहिँ ख-सम करिज्जइ । ख-सम-सहावें मण'वि धरिज्जइ ॥
सो'वी मणु तहिं अमणु करिज्जइ । सहज-सहावें सो परु रज्जइ ॥७७॥
घरें-घरें कहिअइ सोज्झु कहाणा । णउ परि मुणिअइ महसुह ठाणा ॥
सरह भणइ जग चित्तें वाहिअ । सो अचित्त णउ केण'वि गाहिअ ॥७८॥
एक्कु देव वहु आगम दीसइ । अप्पणु इच्छें फुड पड़िहासइ ॥७९॥
अप्पणु णाहो अण्ण' वि रुद्धो । घरें-घरें सोअ सिधन्त पसिद्धो ॥
एक्कु खाइ अवर अण्ण 'वि पोड़इ । वाहिँर गइ भत्तारह लोड़इ ॥८०॥
आवँत ण दिस्सइ जन्त णहि, अच्छन्त ण मुणिअइ ।
णित्तरंग परमेसुरु, णिक्कलङ्क धारिज्जइ ॥८१॥
सोहइ चित्त णिरालं दिण्णा । अउण-रुअ मा देखह भिण्णा ॥
काअ-वाअ-मणु जाव ण भिज्जइ । सहज सहावें ताव ण रज्जइ ॥८३॥
घरवइ खज्जइ घरणिअहि, जहिँ देसहि अविआर ।
माइएँ तहिं की ऊवरइ, विसरिअ जोइणि चार ॥८४॥
घरवइ खज्जइ सहजे रज्जइ, किज्जइ राअ-विराअ ॥
णिअ पास वइट्ठी चित्ते भट्ठी, जोइणि महु पड़िहाअ ॥८५॥

(८) सहज संयम

दस दिवस जिनहिं अहीणमइ, निहू जासु णिमाण ।
सो चित्त सिद्धी जोइणि, सहज संवरु जाण ॥८७॥
अक्खर बाढ़ा सअल जगु, णाहि णिरक्खर कोइ ।
ताव सें अक्खर घोलिआ, जाव णिरक्खर होइ ॥८८॥
जिम बाहिर जिम अब्भन्तर । चउदह भुवणे ठिअउ णिरन्तर ॥
असरिर कोइ सरीरहि लुक्को । जो तहि जाणइ सो तहि मुक्को ॥८९॥
[illegible] सोहि पढ़इ गाहइ । [illegible] गणहि महासुहें गाहइ ॥
जिम [illegible] पावइ । [illegible] कहिं पावइ ॥९१॥

न्यहिं संग न करहुँ तैं, जहँ तहँ सम चिन्तेहि।
तिल-तुष-मात्रउ शल्यता, वेदन करइ अवश्य ॥७५॥
सर्व रूप तहँ ख-सम करीजै। ख-सम स्वभावे मनहुँ धरीजै॥
सो भी मन तहँ अ-मन करीजै। सहज स्वभावे सो पर कीजै॥७७॥
घरें घरें कहियत सोझ कहाना। नहिं पर सुनियत महसुख थाना॥
सरह भनै जग चित्तें वहाई। सो अचित्त ना केंहुहि गहाई॥७८॥
एक देव वहु आगम दीसै। आपन इच्छें स्फुट परिभासै॥७९॥
आपन नाथा अन्यहु रुद्धा। घरें घरें सोंइ सिद्धान्त प्रसिद्धा॥
एक खाइ अरु अन्यहिँ फोड़ै। वाहर जाइ भतारें लोड़ै॥८०॥
अवत न दीसै जात नहिँ, होवत नहिँ जानीजै।
निस्तरंग परमेश्वर, निष्कलंक धारीजै॥८१॥
सोहै चित्त ललाटे दिन्ना। अपन रूप ना देखहु भिन्ना॥
काय-वाक्-मन जौ ना भाँगै। सहज-स्वभावे तौ ना राजै॥८३॥
घरनी खाइस घरपतिहिँ, जहँ देशे अविचार।
मारिय तह की ऊवरै, विसरिय योगिनि चार॥८४॥
घरपति खाइअ सहजै राजै, कीजै राग-विराग।
निज पास वइट्ठी चित्ते भ्रष्टी, योगिनि मधु प्रतिभास॥८५॥

(८) सहज संयम

इमि दिवस निशहिँ अभिमानै, त्रिभुवन जाँसु निर्माण।
सो चित सिद्धा योगिनी, सहज संवरा जान॥८७॥
अक्षर वाढ़ा सकल जग, नाहि निरक्षर कोइ।
तौलौं अक्षर घोलिया, जौ लों निरक्षर होइ॥८८॥
जिमि वाहर तिमि अभ्यन्तर। चौदह भुवने थितउ निरंतर॥
अशरिर कोंई शरीरे लूकेउ। जो तेंहिं जानेंउ सो तहँ मुंचेउ॥८९॥
रूपणें सकलउ जो ना गहियै। कुंदुरु क्षणहिँ महासुख सावै॥
जिमि तृपितो मृगतृष्णे धावै। मरें सोखहि, नभ-जल कहँ पावै॥९१॥

कन्ध-भूअ-आअत्तण इन्दिअ-विसअ-विआर अप हुअ ।
णउ णउ दोहाच्छंदेण, कहवि किम्पि गोप्पु ॥९२॥

पण्डिअ लोअहु खमहु महु, एत्थु ण किअइ विअप्पु ।
जो गुरु वअणे मइ सुअउ, तहि किं कहमि सु गोप्पु ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिस वे'वि मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ-विलास ।
को न रमइ णह तिहुअणहिं, कस्स ण पूरइ आस ॥९४॥

खण-उवाअ सुह अहवा, अहवा वेण्णि'वि सो'वि ।
गुरु-प्पसाएँ पुराण जइ, विरला जाणइ कोवि ॥९५॥

गम्भीरह उआहरणें, णउ पर णउ अप्पाण ।
सहजाणन्द चउट्ठ खण, णिअ-संवेअण जाण ॥९६॥

घोरें न्धारे चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ ।
परम-महासुह एक्कु खणें, दुरिआसेस करेइ ॥९७॥

दुक्ख-दिवाअर अत्थगउ, उवइ तरावइ सुक्क ।
ठिअ-णिम्माणें णिम्मिअउ, तेण'वि मण्डल-चक्क ॥९८॥

चत्तहि चित्त णिहालु वढ़ ! सअल विमुच्च कुदिट्ठि ।
परममहासुहें सोज्झ परु, तसु आअत्ता सिद्धि ॥९९॥

मुक्कउ चित्त-गअंद करु, एत्थ विअप्प ण पुच्छ ।
गअण-गिरी-णइ-जल पिअउ, तहिँ तड़ वसउ सइच्छ ॥१००॥

विसअ-गअन्दें करें गहिअ, जिम मारइ पड़िहाइ ।
जोइ कवड़ीआर जिम, तिम तहों णिस्सरि जाइ ॥१०१॥

जह भव सो णिव्वाण खलु, सो उण मण्णहु अण्ण ।
एक्क सहावें विरहिअ, णिम्मल मइँ पड़िवण्ण ॥१०२॥

म थक्कु म जाहि वणें, जहि तहि मण परिआण ।
सअलु णिरन्तर बोहि-ठिअ, कहिं भव कहिं णिव्वाण ॥१०३॥

स्कन्ध-भूत-आयतन-इन्द्री-विषय-विचार आप हुव ।
नव-नव दोहा-छन्देहिँ, कहव किछु गोप्य ॥९२॥
पडित लोगो क्षमहु मोहि, एहु न कियहु विकल्प ।
जो गुरु-वचने मैं सुनेँउ, तेहि किमि कहव सुगोप्य ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिश दोउ मध्य थित, जो सो सुरत-विलास ।
को तेँहिँ रमै न त्रिभुवने, कासु न पूरै आस ॥९४॥
क्षण-उपाय सुख अथवा, अथवा दोऊ सोइ ।
गुरु-प्रसादे पुण्य यदि, विरला जानै कोइ ॥९५॥
गम्भीरेँहि उदाँहरणे, ना पर ना अप्पान ।
सहजानन्द चतुर्थ क्षण, निज-संवेदन जान ॥९६॥
घोर अन्हारे चन्द्रमणि, जिमि उद्योत करेइ ।
परम-महासुख एक क्षण, दुरित-अशेष करेइ ॥९७॥
दुःख-दिवाकर अस्त गउ, उयेँउ तारपति शुक्र ।
स्थित निर्माणे निर्मियउ, तेहिहिँ मण्डल-चक्र ॥९८॥
चित्तँहि चित्र निहार मुढ़ ! सकल विमुंच कुदृष्टि ।
परम-महासुखे सोध पर, तासु हाथ मोँ सिद्धि ॥९९॥
मुक्तउ चित्त गयंद करु, एहि विकल्प ना पूछ ।
गगन-गिरी-नदि-जल पियहु, तहँ तट वसै स्व-इच्छ ॥१००॥
विषय-गयन्दे कर गही, जिमि मारै प्रतिभास ।
योगी कँडीकार जिमि, तिमि तहँ निस्सरि जाइ ॥१०१॥
जो भव सो निर्वाणहू, सो पुनि मानहु अन्य ।
एक स्वभावे विरहिता, निर्मल मैँ प्रतिपन्न ॥१०२॥
घरहि न रहु ना जाहु वन, जहँ तहँ मन परि-जान ।
सकल निरंतर वोधि थित, कहँ भव कहँ निर्वाण ॥१०३॥

एँहु सो अप्पा एँहु परु, जो परिभावइ को'वि ।
ते विणु वन्धे वेट्ठि किउ, अप्प-विमुक्कउ तो'वि ॥१०५॥
पर-अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
एँहु सो णिम्मल परमपउ, चित्त सहावे सुद्ध ॥१०६॥
अद्दअ-चित्त-तरूअरह, गउ तिहुँवणें वित्थार ।
करुणा फुल्ली फल धरइ, णाउ परत्त उआर ॥१०७॥
सुण्णा तरूवर फुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त ।
अण्णा भोअ परत्त फलु, एहु सो'क्ख परु चित्त ॥१०८॥
सुण्ण तरूवर णिक्करुण, जहिं पुणु मूल ण साह ।
तहि अलमूला जो करइ, तसु पडिभिज्जइ वाह ॥१०९॥
एँक्कें वी' एँक्के'वि तरु, तें कारणें फल एँक्क ।
ए अभिण्ण जो मुणइ सो, भव-णिव्वाण-विमुक्क ॥११०॥
जो अत्थी अणठीअउ, सो जइ जाइ णिरास ।
खण्णु सरावें भिक्ख वरु, त्यजहू ए गिहवास ॥१११॥
पर-ऊआर ण कीअऊ, अत्थि ण दीअउ दाण ।
एँहु संसारे कवणु फलु, वरु छड्डहु अप्पाण ॥११२॥
—दोहाकोष पृ० ८-२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गूजरी)

अपणे रचि रचि भव निव्वाणा, मिच्छें लोअ बंधावइ अपणा ।
अम्हें ण जाणहु अचिन्त जोई, जाम-मरण भव कइसन होई ॥
जइसो जाम मरण बि तइसो, जीवन्तें मअलें णाहि बिशेशो ।
जा एथु जामा मरणें बिशंका, सो करउ रस-रसानें रे कंखा ॥
जे सचराचर तिअस भमन्ति । ते अजरामर किम्पि न होन्ति ।
जामें काम कि कामें जाम । सरह भणइ अचिन्त सो धाम ॥२॥

एँहु सो आपा एहु पर, जो परिभावै कोइ।
सो बिनु बंधे बँध गयउ, आपु विमुक्तउ तोपि ॥१०५॥
पर-आपन ना भ्रान्ति करु, सकल निरंतर बुद्ध।
एँहु सो निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१०६॥
अद्वय-चित्त-तरूवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फल धरइ, ना परत्र उपकार ॥१०७॥
शून्य तरूवर फूलेँऊ, करुणा विविध विचित्र।
अन्या भोग परत्र फल, एँहु सौख्य परचित्त ॥१०८॥
शून्य तरूवर निष्करुण, जेँहि पुनि मूल न शाख।
तहँ अलमूला जो करै, तासुइ भाँगै वाह ॥१०९॥
एक्कै एक्के ही तरु, ते कारण फल एक।
एँहु अभिज्ञता करै सो, भव-निर्वाण-विमुक्त ॥११०॥
जो अर्थी अनर्थीअऊ, सो यदि जाइ निराश।
खंड शरावे भिक्षहू, छाड़हु एँहु गृहवास ॥१११॥
पर-उपकार न कीयेँऊ, अर्थि न दीजेँउ दान।
एहि संसारे कवन फल, वरु छाँडहु अप्पान ॥११२॥
—दोहाकोष पृ० ८—२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुंजरी)

अपने रचि-रचि भव-निर्वाणा, मिथ्यै लोक बँधावै अपना।
मैं ना जानहुँ अचिन्त योगी, जन्म मरण भव कैसन होई॥
जैसो जन्म-मरणहू तैसो, जीवन मरणे नाहिँ विशेषो।
जो यह जन्म-मरण वीशंका, सो कर स्वर्ण-रसायन कांछा॥
सो सचराचर त्रिदश भ्रमन्ति, ते अजरामर किमि ना होंति।
जन्महि कर्म कि कर्महि जन्म, सरह भनै अचित सो धर्म ॥२॥

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल , चीआ राअ - सहावे मूकल।
उजु रे उजु छड़ि मा लेहु वंक , निअड़ि वोहि मा जाहु रे लंक॥
हाथेर कंकण मा लेँहु दप्पण , अपणे आपा बूझतु निअ-मण।
पार - उआरें सोई मजिई , दुज्जण-संगे अवसरि जाई॥
वाम - दहिण जो खाल-विखाला , सरह भणइ वप ! उजु वट भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काअ नावडि खान्टि मण केडुआल। सद् गुरु वअणे धर पतवाल॥
चीअ थिर करि धरहु रे नाई। अण्ण उपाए पार न जाई॥
नौवहि नौका टानअ गुणे। निर्मलि सहजे जाउ ण आणें॥
वाटत भअ खान्ट 'वी वलआ। भव-उल्लोलें सव्व वि' वलिआ॥
कूल लई खरें सोन्तें उजाअ। सरहा भणइ गअणें समाअ॥

(राग मालशी)

सुण्णे हो विदारिअ रे निअ मण तोहोंर दोसे।
गुरु-वअण विहारें रें थाकिव तइँ पुत ! कइसे॥
एकट हु भवइ गअणा।
वंगे जाया नीलेसि पारे, भागेंल तों होंर विणाणा।
अवाभुअ भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाणा।
ए जग जल-बिंबाकारे सहजें सूण अपाणा॥
अमिअ अच्छन्तें विस गीलेसि रे चिअ पर रस अप्पा।
घरें परें का बुज्झीले मारि खदव मद दुठ कुंडवां॥
सरह भणइ वर सून गोंहाली की मो दुठ वलन्दें।
एकेले जग नाशिअ रे विहरहु छन्दें ॥३६॥
—चर्या पद[1]

---

[1] Caryapadas. J.D.L. Cal. vol. XXX, pp. 1—156

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल । चित्ता राग स्वभावे मुंचल ।
ऋजु रे ऋजु छाड़ि ना लेहु वंक । नियरें वोधि न जाहु रें लंक ॥
हाथेइ कंकण ना लेहु दर्पण । अपने आपा वूझहु निज मन ॥
पारे - वारे सोंई मादई , दुर्जन - संगे अवसर जाई ॥
वाम दहिन जो खाल-विखाला , सरह भनै वॉप ! ऋजु वाटें भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काय नावडी नीकी मन केडुवाल[१] । सद्गुरु वचने धरु पतवार ॥
चित्तैं थिर करु धरु रे नाई । अन्य उपाये पार न जाई ॥
नाविक नौकहिं खींच गुनेहि । मेली सहजे जानु न आनहिं ॥
वाटे भय वड़ ही वलवा । भव-उल्लोले सर्वउ कम्पा ॥
कूल लेइ खर स्रोतें वहाय । सरह भनै गगनहीं समाय ॥

(राग मालशी)

शून्य हो ! विदारिउ निज मन तोहरे दोषे ।
गुरु-वचन विहारे रे रहिवे तैं पुत ! कइसे ॥
एकटहु होई , गगना ।
वंके जाइ लीलेसि पारे, भाँगल तोंहर विज्ञाना ।
अद्‌भुत भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाना ॥
ए जग जल-विवाकार सहजे शून्य अपाना ।
अमृत अछते विप गिलेसि रे चित्त पर रस आपा ।
घरे परे का वूझीले मारि खाइव मैं दुष्ट कुटुवा ॥
सरह भनै वर शून्य गोंहारी की मोंर दुष्ट वलद्दे ।
एकले जग नाशेंउ रे विहरहु छन्दे ॥३६॥
—चर्यापद[१]

§ २. शबरपा

काल—८८० ई० (धर्मपाल-७७०-८०६)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—क्षत्रिय, सिद्ध (५)। कृतियाँ—चित्तगुह्यगम्भीरार्थ-

(रहस्यवाद)

(गीत—राग वलाड्डि)

ऊचा ऊचा पावत तहिं वसइ सवरी वाली।
मोरँगि पिच्छ परिहिण शवरी गीवत गुंजरि-माली॥
मत शवरो पागल शवरो मा कर गुली-गुहाडा।
तोहोँरि णिश्र घरिणी नामे सहज-सुन्दरी॥
ना तरुवर मोँउलिल रे गश्रणत लागेँलि डाली।
एकेलि सवरी ए वण हिंडइ कर्ण कुंडल वज्रधारी॥
र-वाउ खाट पडिला सवरो महासुहे सेज छाइली।
सवर भुजंग नैरामणि दारी पेक्ख राति पोहाइली॥
तांबोला महासुहे कापुर खाई।
सुन-नैरामणि कण्ठे लइश्रा महासुहे राति पोहाई॥
ाक-पुंजिश्रा धनु णिश्र-मण वाणे।
एके शर सन्धाने विन्धह विन्धह परम-णिवाणे॥
सबरो गुरुश्रा रोषे गिरिवर-सिहरे संधी।
पइसन्ते सवरो लोडिब कइसे॥२८॥

§ २. शबरपा

गीति, महामुद्रा-वज्रगीति, शून्यतादृष्टि,] षडंगयोग, सहज-संवर-स्वाधिष्ठान, सहजोपदेश-स्वाधिष्ठान ।

(रहस्यवाद)

(गीत--राग वलाड्डि)

ऊँचा ऊँचा पर्वत, तँह वसै शवरी वाली ।
मोर-पिच्छ पहिरले शवरी ग्रीवा गुंजा-माली ॥

उन्मत शवरो पागल शवरो ना करु गुली-गुहाड़ा ।
तोँहार निज घरनी नामे सहज-सुन्दरी ॥

नाना तरुवर मौरिल रे गगन ते लागल डारी ।
एकली शवरी यहि वन हीँड़ै कर्ण कुंडल वज्रधारी ॥

त्रिधातु-खाटे पडल शवरो महाँसुखेँ सेज छाइल ।
शवर भुजंग निरात्मा दारी पेखत राति विताइल ॥

चित्त तांवूला महासुख कपूर खाई ।
शून्य-नैरात्मा कंठे लेई महासुखे राति विताई ॥

गुरु-वाक-पुंज धनुष निज-मन वाणे ।
एँक शर संधाने विधहु परम-निर्वाणे ॥

उन्मत शवरा गुरुआ रोपे गिरिवर-शिखरे सांधी ।
पइठत शवरहिँ लोटाइव कैसे ॥२८॥

—चर्यापद

१२. स्वयंभूदेव

कविराज। काल—७९० ई० (ध्रुव धारावर्ष ७८०-९४ ई०)। देश—कोसल (? मध्यदेश)। कुल—ब्राह्मण (?) कवि माउरदेव और पद्मिनीके

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

वुह-यण सयंभु पइँ विण्णवइ। महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ॥
वायरणु कयाइ ण जाणियउ³। णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ॥
णा णिसुणिउ पंच महाय कव्वु। णउ भरहु ण लक्खणु छंदु सव्वु॥
णउ वुज्झिउ पिंगल-पच्छारु। णउ भामह-दंडिय 'लंकारु॥
वें वेंसाय तो 'वि णउ परिहरमि। वरि रयडा वुत्तु कव्वु करमि॥

---

[1] ९२ संधियाँ या प्रायः १२००० श्लोक स्वयंभूने रचे। आगे ९३—१०८वीं संधितक त्रिभुवन स्वयंभूने रचा। कथा ९२ तकमें ही पूरी हो जाती है।

[2] ८३वीं संधि तक स्वयंभूने रचा। कथा यहीं पूरी हो जाती है, तो भी त्रिभुवन स्वयंभू ने ७ संधियाँ और जोड़ी हैं। स्वयंभू-रामायणकी सबसे पुरानी प्रति भंडारकर इन्स्टीटचुट (पूना)में है। यह गोपाचल (ग्वालियर) में १५६४ ई० (संवत् १५२१ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार) को लिखकर समाप्त की गई। दूसरी प्रति जयपुरमें मिली है। इस प्रकार पहिली प्रति गोस्वामी तुलसीदासके देहान्त १६२३ ई० (संवत् १६८०) से ५९ वर्ष पहिले लिखी गई थी। तुलसीकृत रामायणकी भाँति यह रामायण भी चौपाई (पज्झडिया) में है, और आठ-आठ पाँतियों (अर्धालियों)के बाद दोहा या किसी दूसरे छन्दमें घत्ता (विश्राम) मिलता है। स्वयंभूके उक्त दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

[3] इच्छानुसार ह्रस्वको दीर्घ करके पढ़िये ह्रस्वचिन्ह ˘ है।

§ ३. स्वयंभू*

पुत्र, आदित्यदेवीके पति, त्रिभुवन स्वयंभूके पिता। कृतियाँ—हरिवंशपुराण[1], रामायण (पउमचरिउ[1]), और स्वयंभू-छन्द।

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

वुध-जन स्वयंभु तोँहि बीनवई। मोँहि सरिसउ अन्य नाहि कुकवी॥
व्याकरण किछू ना जानियऊ। ना वृत्ति-सूत्र वक्खानियऊ॥
ना सुनेउँ पाँच महान् काव्य। ना भरत न लक्षण छन्द सर्व॥
ना बूझेउँ पिंगल-प्रस्तारा। ना भामह - दंडि - अलंकारा॥
व्यवसाय तऊ ना परिहरऊँ। वरु रयडा कहेँउ काव्य करऊँ॥

---

*बाण (हर्ष ६०६–४८ ई०) और रविषेण (६७६ ई०)के नाम स्वयंभू-ने अपने ग्रंथमें लिये हैं; उधर पुष्पदंत (९५९–७२ ई०)ने स्वयंभूका नाम लिया है; इस प्रकार स्वयंभू ६७६ और ९५९के बीचमें हुये। वह रयडा (राजश्रेष्ठी ?) धनंजयके आश्रित थे और उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू वंदइ (वंदक)के आश्रित। वंदइका ज्येष्ठ पुत्र गोविंद था। हमारे कवि (स्वयंभू)के नाम, श्रीपाल और धवलइय भी परिचित थे। किंतु उनमें कोई नाम प्रसिद्ध नहीं है। रामायणकी २०वीं संधिमें उन्होंने "धुवराय राय व तइय भुअ-प्पणत्तिणत्तीसु याणुपायेण" पदमें ध्रुव-राज नामक किसी राजाका नाम दिया है। राष्ट्रकूटोंमें तीन ध्रुव हुये हैं, जिनमें एक महान् विजेता ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४ ई०)था, दो उसके पुत्रसे होने वाली गुर्जर-शाखामें हुये, तो भी वह ८६७ ई०से पहिले हुये थे। ध्रुव धारावर्ष सेनाके साथ कन्नोज आया था। जान पड़ता है, उसीके अमात्य रयडाके साथ स्वयंभू दक्षिण गये। ध्रुव धारावर्षके पुत्र इंद्रकी गुर्जर (खेडा) शाखामें दो ध्रुव थे—ध्रुव (प्रथम) धारावर्ष ८३०–३५, और ध्रुव (द्वितीय) ८६७ ई०।

सामाण भास छुड मा विहडउ । छुडु आगम-जुत्ति किंपि घडउ ॥
छुडु होंति सुहासिय-वयणाइँ । गामेल्ल - भास परिहरणाइँ ॥
एँहु सज्जण लोयहु किउ विणउ । जं अवुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
जं एवँवि रूसइ कोवि खलु । तहों हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥
घत्ता। पिसुणें किं अब्भत्थिएण, जसु कोवि ण रुच्चइ ।
किं छण-इन्दु मरुग्गहे, ण कंपंतु विमुच्चइ ॥३॥

—रामायण १।३

इय एत्थ पउमचरिए धणजयासिय सयंभु एव कए ॥

—रामायण (अन्त)

आइच्चएवि पडिमोवमाएँ, आइच्च नामा ए ।
वीअम उज्झा-कंडं सयंभु-घरिणीएँ लेहावियं ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुज्झु जं, तं निसुणहु रामायण ।....
जएँ लोयहु सुयणहु पंडियाहु । सद्दत्थ - सत्थ - परिचंडियाहु ॥
किं चित्तइ गेल्लवि सक्कियाइँ । वासेण वि जाइँ न रंजियाइँ ॥
तो कवणु गहणु अम्हारिसेहिँ । वायरण - विहूणहिँ आरिसेहिँ ॥
कइ अत्थि अणेअ-भेअ भरिया । जे सुयण सहासहिँ आयरिया ।
हुँउ किं वि न जाणमि मुक्खु मणे । णिय-बुद्धि पयासिय तो वि जणे ॥
जं सयलें वि तिहुवणें वित्थरिउ । आरंभिउ पुणु राहव-चरिउ ॥

—रामायण २३।१

तहिँ अवसरि सरसइ धीरवइ । "करि कव्वु दिण्ण मइँ विमल मइ" ॥
इंदेण समप्पिउ वायरणु । रसु भरहें वासे वित्थरणु ॥
पिंगलेंण छन्द - पय - पत्थारु । भम्महँ-दंडिणिहि अलंकारु ॥
बाणेण समप्पिउ घणघणउ । तं अक्खर-डंबर घण-घणउ ॥
हरिसेंण णाणिउ णिउणत्तणउ । अवरेहिँ मि कइहिँ कइत्तणउ ॥

—हरिवंशपुराण १

सामान्य भाप यदि ना गढऊँ। यदि आगम-युक्ति किछू गढऊँ॥
यदि होइँ सुभाषित वचनाईँ। ग्रामीण - भाप - परिहरणाईँ॥
एँहु सज्जन-लोगहँ का विनऊ। जो अवुधि प्रदर्शौँ आपनऊ॥
जो ऐसेँउ रूसै कोइ खला। तो हाथ-उछाला लेउ छल॥
घत्ता। पिशुनहिं का अभ्यर्थना, जासु किछू ना रूचई।
का पूर्णेन्दु मरुद् अहेँ, हिँ कंपंतो विमुच्चई॥३॥

—रामायण १।३

एहु इहँ पद्म-चरिते, धनंजयाश्रित स्वयंभुये हिँ किये।

—रामायण (अन्त)

आदित्यदेवि देवि-प्रतिमा आदित्यदेवीहिँ।
द्वितिय अयोँध्याकांडहिँ लिखेँउ स्वयंभु-घरनीहिँ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुद्धे जो। सोँई सुनहु **रामायण**।
यदि लोग सुजन पंडित अहें। शब्दार्थ-शास्त्र परिचित अहें॥
की चित्तेहिँ ग्रहण न सक्कियाइँ। वासे हूँ होहिं न रंजियाइँ॥
तो कौन ग्रहण हमरे सदृशहिं। व्याकरण - विहून एतादृशहिँ॥
कवि अहे अनेकं-भेद-भरिया। जे सुजन स्वभावहिँ आचरिया॥
हौं किछुअ न जानउँ मूर्ख-मने। निज वुद्धि प्रकासेउँ तोउ जने॥
जो सकलेहिँ त्रिभुवनेँ विस्तरिऊ। आरंभेँउ पुनि राघव-चरिऊ॥

—रामायण २३।१

तेँहि अवसर सरसति धिरजाती। "करु काव्य, दियो मैं विमलमति॥"
इन्द्रेहि समर्पेउ व्याकरणा। रस भरत सु-वासहिं विस्तरणा॥
पिंगलेँहिं छन्द - पद - प्रस्तारा। भामह दंडिनेहि अलंकारा॥
वाणेहिँ समर्पेउ घनघनऊ। सो अक्षर - डंवर घन - घनऊ॥
हरिसेननें पानिउ आपनऊ। अवरेँहिँ कवियेहिँ कवित्वनऊ॥

—हरिवंशपुराण १

छव्वरिसाइँ तिमासा एयारस वासरा सयंभुस्स।
वाणवइ संधि करणे, वोलिणो इत्तिओ कालो ॥
दियहाहियस्स वारे दसमी-दियहम्मि मूल-णक्खत्ते।
एयारसम्मि चंदे' उत्तरकंडं समाढत्तं ॥

—हरिवंशपुराण ६२।३, ४

भद्दमासें विणासिय-भवकलि। हुउ परिपुण्ण चउद्दिसि णिम्मलि ॥

—हरिवंशपुराण (अंत)

धुवराय वंतिइय लु अप्पठत्ति-णत्ती सु याणु पाढेण
णामेण सामि अव्वा सयंभु-घरिणी महासत्ता ॥

—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्खर - वास - जलोह - मणोहर। सुयलंकार -छंद-मच्छोहर ॥
दीह-समास-पवाहा-वंकिय। सक्कय-पायय-पुलिणा-लंकिय ॥
देसी-भासा-उभय-तडुज्जल। कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥
अत्थ-बहल-कल्लोला णिट्ठिय। आसा-सय-सम-ऊह-परिट्ठिय ॥
राम-कहा सरि एँह सोंहती।...............

—रामायण १

२—ऋतु और काल-वर्णन

(१) पावस

गीय मच्छराण दामरहि, तरुवर-मूलें परिट्ठिय जावेंहिं।
पसरइ सुकइहि कव्वु जिह, मेह-जालु गयणंगणें तावेंहिं ॥
पसरइ जेम बुद्धि बहु-जाणहों। पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों ॥
पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहों। पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों ॥
पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों। पसरइ जेम चिंता धणहीणहों ॥
पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों। पसरइ जेम किलेसु णिहीणहु ॥

छं मयं तिनाउ इग्यारह वावरा स्वयंभुले।
वानवे अपि रत्ने हि, वोनिवउ एत्तनो कालो ॥
दिनाधिप को वार, दशमी दिवस मूल-नक्षत्रे।
ग्यारहें नद(माते) उत्तरकाउ समाप्त भयो ॥
—हरिवंशपुराण

भादों मास विनाशित भय कलि, दुम्र परिपूर्ण पक्खल निर्मले।
—हरिवंशपुराण (अन्त)

ध्रुव राजा.......................
नामेन स्वामि......स्वयंभुपरिर्नो महासत्वा ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्षर - वास - जलौघ - मनोहर। सु - अलंकार - छंद - मत्स्योपर ॥
दीर्घसमास-प्रवाहहिं वंकित। संस्कृत-प्राकृत-पुलिनालंकृत ॥
देशी भाषा दोउ-तट उज्ज्वल। कवि-दुष्कर-घन-शब्द-शिलातल ॥
अर्थ-बहुल कल्लोलहिं सज्जित। आशा-शत-सम-ओघ-समर्पित ॥
राम-कथा सरि एह सोहंती।.................
रामायण १

२—ऋतु और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्ष्मण दाशरथि, तरुवर-मूले बैठेउ जबहीं।
पसरे सुकविहिं काव्य जिमि, मेघ-जाल गगनंगणे तबहीं ॥
पसरे जिमि बुद्धी बहु-ज्ञानहें। पसरे जिमि पापा पापिष्टहें।
पसरे जिमि धर्मा धर्मिष्टहें। पसरे जिमि ज्योत्स्ना मृगवाहहें ॥
पसरे जिमि कीर्ती जगनाथहें। पसरे जिमि चिन्ता धनहीनहें ॥
पसरे जिमि कीर्ती सुकुलीनहें। पसरे जिमि किलेश निहीनहें ॥

पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहों । पसरइ जेम रासि णहें सूरहों ॥
पसरइ जेम दवग्गि वणंतरे । पसरिउ मेह-जालु तह अंबरे ॥
तड़ि तड़-तड़इ पड़इ घणु गज्जइ । जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ ।
घत्ता । अमर महद्धणु गहिय करें, मेह-गइन्दे चडिवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिंभ णराहिवहों, पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥१॥
जे पाउस-णरिन्दु गल-गज्जिउ । धूली रउ गिंभेण विसज्जिउ ॥
गंपिणु मेह विंदि आलग्गउ । तड़ि करवालु पहारेंहिँ भग्गउ ॥
जं 'वि वरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ हणु-हणंतु उण्हालउ ॥
धग-धग-धग-धगंतु उद्धाइउ । हस-हस-हस-हसंतु संधाइउ ॥
जल-जल-जल-जलंतु पयलंतउ । जालावलि-फुलिंग मेल्लंतउ ॥
धूमावलि-धय-दंड उभेप्पिणु । वर-वाउल्लि-खग्ग कड्ढेप्पिणु ॥
झड़-झड़-झड़-झड़ंतु पहरंतउ । तरुअर-रिउ भड-थड-भज्जंतउ ॥
मेह-महग्गय-घड विहडंतउ । जं उण्हालउ दिट्ठु भिड़ंतउ ॥
पाउस-राउ ताव संपत्तउ । जल-कल्लोल-संति पयडंतउ ।
घत्ता । घणु अप्फालिउ पाउसेण, तडि-डंकार-फार दरिसंतउ ।
चोइवि जलहर-हत्थि-हड, णीर सरासणि मुक्क तुरंतउ ॥२॥
जल-वाणासणें घायहिँ घाइउ । गिण्हु णराहिउ रणें विणिवाइउ ।
दद्दुर रडेंवि लग्ग णं सज्जण । णं णच्चंति मोर खल-दुज्जण ॥
णं पूरंत सरिउ अक्कंदें । णं कइ किलकिलन्ति आणन्दें ।
णं परहुय विमुक्कु उग्घोसें । णं वरहिण लवंति परिऊसें ।
णं सरवर बहु अंसु-जलोल्लिय । णं गिरिवर हरिसें गंजोल्लिय ।
णं उण्हविय दवग्गि विऊएँ । णं णच्चिय महि विविह-विणोएं ।
णं अत्थविउ दिवायर दुक्खें । णं पइसरइ रयणि सइ सोक्खें ।
रत्तपत्त-तरु-पवणाकंपिय । केण'वि काहेउ गिंभुऊ जंपिय ।
घत्ता । तेहएँ कालें भयाउरयें, विण्णि'वि वासुएव वलएव ।
तरुवर-मूलें स-सीय थिय, जोग लयेविणु मुणिवर जेंव ॥३०॥
—रामायण २८।१-३

पसरै जिमि शब्दा सुर-तूर्यहूँ । पसरै जिमि राशि नभें सूरहँ ॥
पसरै जिमि दावाग्नि वनांतरें । पसरेंउ मेघ-जाल तिमि अंवरें ॥
तड़ि तड़-तड़ै पड़ै घन गरजै । जानकि रामहँ शरणहिं व्रजै ॥
घत्ता । अमर महाधनु गहि करै, मेघ गयंदे चढेंउ यशलुब्धा ।
ग्रीष्म नराधिप कहँ ऊपर, पावस-राज केर दल सज्जा ॥१॥
जनु पावस-नरेन्द्र गल-गर्जेउ । धूली-रज ग्रीष्मेहि विसर्जेउ ॥
जंपिय मेघवृन्द आ-लागेउ । तड़ि करवाल प्रहारेहिँ भागेउ ।
जनु हि पराङ्-मुख चलेंउ विशाला । उट्ठेंउ हनहनंत ऊष्णाला ।
धग-धग-धगंत उद्-धायउ । हस-हस-हस-हसन्त संजायउ ।
ज्वल-ज्वल-ज्वल-ज्वलंत प्रचलंता । ज्वालावलि फुलिंग मेलंता ।
धूमावलि-ध्वज-दंड उठायेउ । वर-वादली खड्ग कड्ढायेउ ।
झड़-झड़-झड़-झड़ंत प्रहरंता । तरुवर-रिपु भट-ठट भज्जंता ।
मेघ महागज-घट विघटंता । जनु उष्णाला दीख भिडंता ।
पावस-राव तवहिं आयंता । जल-कल्लोल शांति प्रकटंता ।
घत्ता । धनु फरकायेउ पावसहिं, तडि टंकार फार दरसंता ।
प्रेरिय जलधर-हस्ति-घट, तीर शरासन मोचु तुरंता ॥२॥
जल-वाणासने घातहिं धायेउ । ग्रीष्म नराधिप रणेहिं निपातेउ ।
दादुर रटन लागु जनु सज्जन । जनु नाचई मोर खल-दुर्जन ।
जनु पूरहिं सरिता आक्रंदे । जनु कपि किलकिलंति आनन्दे ।
जनु परभृत विमोचु उद्धोपे । जनु वहिन लपंति परदोषे ।
जनु सरवर वहु-अश्रु-जलोल्लित । जनु गिरिवर हर्षे गंजोल्लित ।
जनु ऊपमिय दवाग्नि वियोगें । जनु नाचिय महि विविधि-विनोदे ।
जनु अस्तमेउ दिवाकर दुःखे । जनु पइसे रजनी सति सौख्ये ।
रक्तपत्र-तरु-पवना-कंपिय । केंहेंहि कहेउ ग्रीष्मऊ जल्पिय ।
घत्ता । तेहेंहि कालें भयातुरे, दोउहि वासुदेव वलदेव ।
तरुवर-मूलें स-सीय चित, जोग लइय मुनिवर जेम ॥३॥

—रामायण २८।१-३

(२) वसंत

कुव्वर-णयरु पराइय जावेंहि । फागुण-मासु पवोलिउ तावेंहि ।
पइठु वसंत-राउ आणंदें । कोइल-कलयलु मंगल-सद्दें ।
अलि-मिहुणेंहिँ वंदिणेंहिँ पढ़न्तेंहि । वरहिण वावणेहि णंच्चंतेहिँ ।
अंदोला-सय-तोरणवारेंहिँ । ढुक्कु वसंतु अणेय-पयारेंहिँ ।
कत्थइ चूअ-वण इ पल्लवियइँ । णव-किसलय-फल-फुल्लु ,'ब्भवियइँ ।
कत्थइ गिरि-सिहरहिँ विच्छायइँ । खल-मुंह इव मसि-वण्णइँ जायइँ ।
कत्थइ माहव-मासहों मेइणि । पिय-विरहेण 'व सूसइ कामिणि ।
कत्थइ गिज्जई-वज्जइ मंदलु । णर-मिहुणेहिँ पणच्चिउ गोंदलु ।
तं तहों णयरहों उत्तर-पासेंहिँ । जण-मण-हरु जोयण-उद्देसेहिँ ।
दिट्ठु वसंत-तिलउ उज्जाणु । सज्जण-हियउँ जेम अपमाणु ।
—रामायण २६।५

णं दीसर-मइ सारएँ सारएँ । माहव-मासु णाइ हक्कारइ ।
सासय-सिव सं पावणें पावणें । दरिसावियउ फग्गुणे फग्गुणें ।
णव-फल-पारिपक्काणणें काणणें । कुसुमिय साहारएँ साहारएँ ।
रिद्धि गयक्कोक्कणयहि कणयहों । हंस ब्भंसिये कु-वलएँ कुवलएँ ।
महुयर महु मज्जंतएँ जंतएँ । कोइल वासंतएँ वासंतए ।
कीर-वंदि उट्ठंतए-ठंतए । मलयाणिलें आवंतएँ वंतएँ ।
मयुवरि-पडिसंल्लावएँ लावएँ । जहि णवि तित्तिरयहों तित्तिरएँ ।
णाउ ण णावइ किमुइ किमुइ । जहि वसेण गय-णाहहों णाहहों ।
नहि तणु तण्हउ मीयहें मीयहें ।
घत्ता—अच्छउ मामण्णे केणवि अण्णो, जहि अइमुत्तउ रइ करइ ।
तं जण-मण-मज्जावणों, सच्छ-महावणु को महुमासु ण संभरइ ॥१॥
कत्थइ अंगारय-संकासउ । रेहइ तंबिर फुल्ल पलासउ ।
णं दावाणलु आउ गवेसउ । "को मइ दड्ढ ण दड्ढु पएसउ" ।

(२) वसंत

कुब्बर नगर पहूँचेउ जव्वहिं । फागुन-मास पवोलेउ तव्वहिं ।
पइसु वसंत-राव आनन्दें । कोइल-कलयल मंगल-सद्दें ।
अलि-मिथुनेंहिं वंदीहिं पढ़न्तेंहिं । वहिन वामनेहिं नाचंतेहिं ।
अन्दोलित-शत-तोरणवारेंहिं । ढुक्कु वसंत अनेक-प्रकारहिं ।
कहिं कहिं चूत-वनहिं पल्लवितहिं । नव-किसलय-फल फूलु ऊर्वितहिं ।
कहिं कहिं गिरिशिखरा वि-च्छाया । खल-मुख इव मसिवर्णहिं लाया ।
कहिं कहिं माधव-मासहिं मेदिनि । प्रिय-विरहेंहिं जनु दवनहीं कामिनि ।।
कहिं कहिं गावें वाजें मांदर । नर-मिथुनेहिं प्रनाचेंउ गोंदन ।
सो तेहिं नगरहुं उत्तर-पासें । जन-मनहर योजन-उद्देसें ।
दीस वसंत-तिलक उद्याना । सज्जन हियहिं यथा अप्रमाणा ।
—रामायण २६।५

जनु दीवस-पति धीरेंइ धीरे । माधव-मास न्याइं हुंकारे ।
शाश्वत-शिव इव पावन-पावन । दरसायऊ फागुने फा-गुन ।
नव-फल-परिपक्वाननं कानन । कुसुमेंउ सहकारे-सहकारे ।
ऋद्धि गयेउ कोपानद करकहें । हंसा हँसे कुवलय कु-वलय ।
मधुकर मधु मज्जंते यांते । कोकिल वासंतें वासंतें ।
कीर-वंदि उट्ठंते ठंते । मलयानिल आवंते-वंते ।
मधुकरि प्रतिसंलापै लापै । जहं नव-तीतरयें तीतरये ।
नाम न नावें किंशुकि कि-सुकि । जंह वदोहि गजनाथहं नाथहं ।
तहं तनु तप्पै सीतहं शीते ।
घत्ता—आछेउ सामान्ये कौनहुं अन्ये, जहं अतिमुक्तउ रति करइ ।
जन-मन-मज्जावन, स्वच्छ-सुहावन, को मधु-मास न आदरइ ।।१।।
कहिं कहिं अंगारक-संकाशा । राजें तामरु फुल्ल पलाशा ।
जनु दावानल आइ गवेषा । "को में दाहु न दाहु प्रदेशा" ।

कत्थवि माहविए णिय-मंदिरु। यंतु णिवारिउ तं इंदिंदिरु।
ऊसरु ऊसरुतहु अपवित्तउ। अण्णएँ णव पुप्फवइएँच्छित्तउ।
कत्थइ भूय-कुसुम-मंजरियउ। णाइ वसंत वड़ायउ धरियउ।
कत्थइ पवण-हयइ पुण्णायइ। णं जगें उत्थल्लिया पुण्णायइ।
कत्थइ अहिणवाइ भमरउलइ। थियइ वसंत-सिरिहि णं कुरुलइ।
फणसाइ अवुह-मुहा इव जडुइ। सिरि-हलाइ सिरिहल इव वड्डुइ।
—रामायण ७१।१-२

(३) संध्या-वर्णन

उवहसइ संझाराउ सुहु-चंचुरु। विद्दुमयाहरु मोत्तिय-दंतुरु।
छिवइ'व मत्थउ मेरु-महीहरु। तुज्झुवि मज्झुवि कवणु पईहरु।
ज चंद-कंत-सिलाहिं सित्तु। अहिसिय-गणालु'व फुसिय चित्तु।
जं विद्दुम-मरगय-कंतिआहिं। थिउ गयणु'व सुरधणु-पंतिआहिं।
ज इंदणील-माला-अग्गीएँ। आलिहइ [illegible] भित्तीएँ तीए।
जहिं पोमराय-[illegible] णणु [illegible]। थिउ अहिणव-संझाराउ णाइ।
जहिं सूरकंत [illegible]। गउ [illegible] णाइ भाणु।
जहिं [illegible] मणि-[illegible]। [illegible]-भागें संठियाउ।
[illegible] गयणु [illegible]।
[illegible]
—रामायण ७२।[illegible]

३. [illegible] वर्णन

कहिँ कहिँ माधवियाा निज मंदिर । जोउ निवारेउ इंदिंदिरू ।
ऊसर ऊस ऋतुहुँ अपवित्रा । अन्ये नव पुप्पवतिएँ क्षिप्तउ ।
कहिँ कहिँ मूक कुसुम-मंजरिया । न्याइँ वसंत वडापउ धरिया ।
कहिँ कहिँ पवनाहत पुन्नागा । जनु जग ऊछल्लेँउ पुं-नागा ।
कहिँ कहिँ अभिनव-भ्रमर-कुलाऊ । रहेँउ वसंत-सिरिहि इव कुरुलउ ।
पनसा अवुध-मुखा इव जड्डा । सिरि-फल सिरिफलाहि इव वड्डा ।
—रामायण

(३) संध्या-वर्णन

उपहसै संध्या-राग सुख-वंधुर । विद्रुमक-अधर, मौक्तिक-दंतुर ।
छुवइ इव मस्तक मेरु-महीधर । तुम्हरेँउ हमरेँउ कवन पतीघर ।
जनु चंद्रकान्त सलिलाभिषिक्त । अभिषेक-प्रणालि 'व स्पृशित-चित्त ।
जनु विद्रुम-मरकत-कांतियाहि । रहु गगन इव सुरधनु-पंक्तियाहि ।
जनु इंद्रनील-माला-मसीहि । आलिखइ बन्द भित्तीहि ताहि ।
जहँ पद्मराग-प्रभ-तनु विभाहिं । रहु अभिनव-संध्या-राग न्याइँ ।
जहँ सूर्यकांति क्षीइज्जमान । गउ उत्तर-देसहिं न्याइं भानु ।
जहँ चंद्रकांतमणि-चंद्रियाव । नव-चंद्राभासे चंद्रिकाव ।
अँचरजेँउ कुमार च्यवंत एव । वहु चंद्रीभूतउ गगन केम ।
पेखियवउ मुक्ताफल-निभाय । गिरि-निर्झर भनि धोवंत पाय ।
—रामायण ७२।३

२—भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अपभ्रंशेँउ खल-जन-अनवशेष । पहिलेँउ मैं वर्णउँ मगह-देश ।
जहँ पक्व कलम-कमलिनि निपण्ण । अलभंत तरणि थिरवहिँ विपण्ण ।

जहिँ सुय-पंतिउ सुपरिट्ठिआउ। णं वणसिरि-मरगय-कंठियाउ।
जहिँ उच्छु-वणइ पवणाहयाइँ। कंपंति'व पीलणभय-गयाइ।
जहिँ णंदण-वणइँ मणोहराहँ। णच्चंति'व चल-पल्लव-कराइँ।
जहिँ फाडिम-वयणइँ दाड़िमाइँ। णज्जंति ताइ णं कइ-मुहाइँ।
जहिँ महुयर-पंतिउ सुंदराउ। केअइ-केसर-रय-धूसराउ।
जहिँ दक्खा-मंडव परियलंति। पुणु पंथिय रस-सलिलइँ पियंति।
—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता। तहिँ पट्टणु णामें रायगिहु, वण-कणय-समिद्धउ।
णं पुहइएँ णव-जोव्वणाइ, सिरि-सेहरु आइद्धउ ॥४॥
चउ गोउरु-त्ति पायार-वन्तु। हँस इव मुत्ताहल-धवल-दन्तु।
णच्चइ'व मरुद्धुय-धय-करग्गु। वर इव णिवडंतउ गयण-मग्गु।
मूलग्ग-भिण्णु देउल-सिहरु। कण इव पारावय-सद्द-गहिरु।
घुम्मइ'व गएँहि मयभिभलेहिँ। उड्डुइ'व तुरंगहि चंचलेहिँ।
ण्हाइ'व ससिकंत-जलोयरेहिँ। पणवइ'व तार-मेहल-हरेहिँ।
पक्खालइ' व नेउर-णिय-लएहिँ। विफ्फुरइ'व कुंडल-युयलएहिँ।
किलकिलइ 'व सव्व-जणोच्छवेण। गज्जइ इव मुरु-भेरी-रवेण।
गायइ 'व अलाव-णिमुच्छणेहिँ। पुरवइ 'व धम्मु धण-कंचणेहिँ।
—रामायण १।५८-५

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता। गयणंगणें थिएण, विज्जाहर-वइ णरिन्दहों।
[illegible] [illegible]-सिहरेण, अवलोइउ णयरु महिन्दहों ॥१॥
[illegible] । गयण-मग्ग लग्गाहय-धयमालाउरं पुरं।
[illegible] । [illegible]।
[illegible] । [illegible] धरियं।
—रामायण [illegible]

जहँ शुक-पंक्तिउ सुपरि-स्थिताव । जनु वन-श्री-मरकत-कंठियाव ।
जहँ इक्षु-वना पवनाहता । कंपत इव पेलन-भय-भीता ।
जहँ नंदन-वने मनोहरा । नाचत इव चल-पल्लव-करा ।
जहँ फाटे वदन दाडिमा । दीखत से वे जनु कपि-मुखा ।
जहँ मधुकर-पंक्तिउ सुंदराईं । केतकि-केसर-रज-धूसराइँ ।
जहँ दाखा-मंडप परिचलहीं । पुनि पंथिक रस-सलिलहि पियहीं ।
—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहँ पत्तन नामा राजगृह, धन-कनक-समृद्धउ ।
जनु पुहुमिहिँ नवयौवन-श्री-शेखर आदेशितऊ ॥
चौगोपुर चौप्राकार-वन्त । हँस इव मुक्ताफल धवल-दन्त ।
नाचत 'व मरुत-धुत-ध्वज-कराग्र । धारा इव पड़तो गगन-मार्ग ।
शूलाग्र विंधेँउ देवल-शिखर । क्वण इव पारावत शब्द-गहिर ।
घूँवत इव मद-विह्वल-गजेहिँ । ऊड़त इव तुरगेँहिँ चंचलेहिँ ।
न्हावत शशिकांत-जलोदरेहिँ । प्रणमति 'व तार-मेखल-धरेहिँ ।
प्रस्खलइ 'व नूपुर-निजलयेहिँ । विस्फुरइ 'व कुंडल-जुगलऐहि ।
किलकिलति 'व सर्व-जनोत्सवेन । गर्जति 'व मुरज-भेरी-रवेन ।
गायति 'व अलापा-मूर्छनेहिँ । पूरति 'व धर्म-धन-कांचनेहि ।
—रामायण

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गंगनांगणे स्थितउ, विद्याधर-प्रवर-नरेन्द्रहु ।
न्याइँ स-निश्चरहिँ, अवलोकेउ नगर-महेन्द्रकहु ।
चौद्वार चौगोपुर चौप्राकार पांडुरं । गगन लाग पवनाहत-ध्वजमालाकुलं पुरं ।
गिरि-महेन्द्र-शिखरे रमाकुलं । ऋद्धि-वृद्धि-घनधान्य-संकुलं ।
ताहि देखि हनुमंत चिंतयेँउ । सुरपुर किमि इन्द्र धरत्तियउँ ।
—रामायण ४६।१-२

(ग) दधिमुख-नगर

मण-गमणेण तेण णहें जंते। दहिमुह-णयरु दिट्ठु हणुवंते।
दिट्ठु राम-सीमा चउपासेंहि। घरिउ णाइ पुर-रिणिय सहासेंहि।
जहि पफुल्लियाइँ उज्जाणइ। वट्टइ[1] णं तित्थयर-पुराणइ।
जहि ण कयावि तलायइ सुक्कइ। णं सीयलइ सुट्ठु पर-दुक्खइ।
जहि वाविउ वित्थय-सोवाणउ। णं कुगइ'व हेट्ठा-मुह-गमणउ।
जहि पायार ण केणवि लंघिय। जिण-उवएस णाइ गुरु-लंघिय।
जहि देउलइ धवल-पुंडरियइँ। पोत्था वायरणइ बहु-चरियहँ।
जहि मंदिरइँ स-तोरणवारइँ। णं सम-सरणइँ सहपरिवारइँ।
जहि भुव-णेत्त-सुत्त दरिसावण। हरि-हर-वम्हेहि जेहा आवण।
जहि वर-वेसउ तिणयण-भूवउ। पवन-भुयंग-सतहि अणुहूअउ।
जहि गयणत्थ-वसह हर हरसइ। राम-तिलोयण जेहा गहवइ।
घत्ता—तहि पट्टणें बहु उवमह भरिअएँ, णं जगें सुकइ-कव्वि वित्थरियएँ।
सहइ स-परियणु दहिमुहि-राणउ, णं सुरवइ सुरपुरहों पहाणउ॥१॥

रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

णिद्दलिय भुअंग-विसग्गि मुक्कु। मुक्कंत ण वर-सायरहु ढुक्कु[2]।
ढुक्कंतेंहि वहल फुलिंग घित्त। घण सिप्पि-संख-संपुड-पलित्त।
धग-धग-धगंति मुत्ता-हलाइँ। कढ-कढ-कढ़ंति सायर - जलाइँ।
हस-हस-हसन्ति पुलिणंतराइँ। जल-जल-जलन्ति भुवणंतराइँ।

—रामायण २७।५

संचल्लेउ राहव साहणेण। संचट्टिउ वाहणु वाहणेण।
थोवंतरे दिट्ठु महासमुद्दु। संसुयर-मयर-जलयर-रउद्दु।
मच्छोहर-गाह-णक्क-गोहु घोरु। कल्लोलावत्तु तरंग-थोरु।

---

[1] माडे, वाडे, बाव   [2] देख्यो (व्रज और बुंदेली)

(ग) दधिमुख-नगर

मनकी गतिसों सो नभ जंता। दधिमुख नगर देखु हनुमंता।
देखु अराम-सीम चौपासेंहिं। धरेंउ जनू पुर-रणित सहासहिं।
जहँ अफ्फुल्लिताउ उद्याना। वाटें[1] जनु तीर्थंकर[2]-पुराणा।
जहँ न कदापि तलावा सूखहिं। जनु शीतलत सुप्ट पर-दु:खहिं।
जहँ वापी विस्तृत-सोपाना। जनु कुगती हेठे-मुंह जाना।
जहँ प्राकार न कोऊ लंघेंउ। जिन-उपदेश न्याइँ दुलंघेंउ।
जहँ देवलहिं धवल-पुंडरिका। पोथी वाँचै औ वहु-चरिता।
जहँ मंदिरा स-तोरणवारा। जनु शम-शरणा सह-परिवारा।
जहँ भुव-नेत्र-सूत्र-दरसावन। हरि-हर-ब्रह्मा जैसो आवन।
जहँ वर-वेश्या त्रिनयन-भूता। प्रवर-भुजंग[3]-शतेंहिं अनुभूता।
जहँ गगनस्थ वृषभ हर हरपति। राम-त्रिलोचन सरिसो गृहपति।
घत्ता। सो पत्तन वहु-उपमा-भरिया, जनु जग सुकवि-काव्य विस्तरिया।
रहै स-परिजन दशमुख राना। जनु सुरपति सुरपुरहिं प्रधाना॥

—रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

निर्दलेंउ भुजंग विसर्ग मोचु। मोचत जनु वर-सागरहिं ढूकु[4]।
ढूकत हि वहु स्फुलिंग क्षिप्त। घन-सीप-शंख-संपुट-प्रलिप्त।
धग-धग-धगंत मुक्ताफला। कड-कड-कडंत सागर-जला।
हस-हस-हसंत पुलिनांतरा। ज्वल-ज्वल-ज्वलंत भुवनांतरा।

—रामायण २७।५

संचल्लेंउ राघव साधन-सँग। संघट्टेंउ वाहन वाहन-सँग।
थोडान्तरे देखु महासमुद्र। सूंस अवर मकर-जलचरेंहिं रौद्र।
मत्स्योधर-नाका-गोह-घोर। कल्लोलावंत तरंग-जोर।[5]

---

[1] हैं [2] पथप्रवर्त्तक महावीर [3] वेश्यालम्पट [4] देखु [5] थोर

वेला वड्ढंतउ दुहुदुहंतु। फेणुज्जल-तोय तुषार दिंतु।
तहों अवरें पयड़उ राम-सेण्णु। णं मेह-जालु णहयलें णिसण्णु।

—रामायण ५६।९

घत्ता। मण-गमणेंहिं गयणि पयट्टेंहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह।
महि-मंडयहों णह-यल-रक्खसेण, फाडेंउ जठर-पयेसु जिह।२

दीसइ रयणायरु रयण-वाहु। विण्णु'व सवारि छंदु 'व सगाहु।
अत्थहु सुहि'व हत्थि'व करालु। भंडारिउ'व्व वहु-रयण-पालु।
सूहव-पुरिसो'व्व सलोण-सीलु। सुग्गीउ'व पयडिय इंद-लीलु।
जिण-सुव चक्कवइ'व कियव सेलु। मज्झाणु'व उप्परि चड़िय वेलु।
तवसि'व परिपालिय समय-सारु[1]। दुज्जण पुरिसो'व्व सहाव-खारु।
णिद्धण आलाउ'व अप्पमाणु। जोइसु'व मीण-कक्कडय-थाणु।
महकव्व-णिबंधु'व सद्द-गहिरु। चामीयर'व सइय-पीय-मयरु।
तहि जलणिहिउ लंघतएहि। वोहित्थइ दिट्ठइ जंतएहि।
सीह-चडइ लंबिय इलाइं। महरिसि चित्ताइं'व अविचलाइं।

—रामायण ६९।२-३

(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन

थोवंतरे मच्छुत्थल्ल देंति। गोला-णइ दिट्ठ समुव्वहंति।
सुंसुअर घोरघुरु-घुरु-घुरंति। करि-मयर-रडोहिय डुहु-डुहंति।
डिंडीर-संड-मंडलिउ दिंति। दद्दुर यरडिय दुरु-दुरु-दुरंति।
कल्लोलुल्लोहिउ उव्वहंति। उग्घोस-घोस घव-घव-घवंति।
पडिखलण-वलण खल-खल-खलंति। खल-खलिय खडक्कि भडक्क देंति।
ससि-संख-कुंद-धवलो झरेण। कारंडुड्डाविय डंबरेण।

---

[1] प्राधान्य

वेलहिँ वर्धतउ दुह-दुहंत । फेनु-'ज्ज्वल तोय-तुषार देंत ।
तेँहि ऊपर पहुँचेँउ राम-सेन । जनु मेघजाल नभ-तलेँ निषण्ण ।
—रामायण ५६।६

घत्ता । मन-गतिहि गगनेँ चलंतउ, लक्खेउ लवण-समुद्र किमि ।
महि-मंडल नभ-तल राक्सेँहिँ, फाड़ेँउ जठर-प्रदेश जिमि ॥

दीसइ रत्नाकर रतन-चारु । विष्णु'व सवारि छंदि'व सगाथ ।
अर्थहु सुख इव हस्ति'व कराल । भंडारी इव वहु-रतन-पाल ।
सु-भव[1] पुरुप इव सलोन-शील । सुग्रीवि'व प्रकटेँउ इन्द्र-नील ।
जिनसुत चक्रवर्ति'व कियेँउ शैल । मध्यान्हि'व ऊपर चढेँउ वेल ।
तपसी इव पालेँउ समय-सार । दुर्जन-पुरुप इव स्वभाव-खार ।
निर्धन-अलाप इव अ-प्रमाण । जोतिसि 'व मीन-कर्कटक-थान ।
महकव्य-निवँध इव शव्द-गहिर । चामीकरि'व शयित-पीत-मकर ।
तहँ जलनिधिहू लंघंतयेहु । वोहितऊ देखेँउ जांतएहु ।
सिह-वटहिँ लंवित-फलाउ । महऋपि-चित्ता इव अविचलाउ ।
—रामायण ६६।२-३

(४) नदी-वर्णन

थोडांतरे मच्छ-उछल्ल देंत । गोदा-नदि देखु समा-वहंत ।
सूंसउ घोरा घुर-घुर-घुरंत । करि-मद-रड्डोहित डुहु-डुहुंत ।
हिंडीर-खंड मंडलिउ देंत । दादुर-ध्वनियहु दुर-दुर-दुरंत ।
कल्लोलु-'ल्लोहित उद्वहंत । उद्घोष घोप घव्-घव्-घवंति ।
प्रतिखलन-वलन खल-खल-खलंत । खल-खलिउ खडक्कि भटक्कि देंत ।
शशि-शंख-कुंद-धवला भरेण । कारंडव 'डायउ डंवरेण ।

घत्ता। फेणावलि वंकिय-वलयालंकिय, णं महि वहुअहे तणिया।
जल-णिहि भत्तारहों मोत्तिय हारहों, वाह पसारिय दाहिणिया ॥३॥
—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तहि तेहएँ सुंदरें सुप्पवहे। आरण्ण-महग्गय-जुत्त-रहे।
धुर लक्खणु रहवरें दासरहि। सुर-लीलएँ पुणु विहरंत महिं।
तं कण्ह-वण्ण-णइ मुएँ विगया। वण कहिमि णिहालिय मत्तगया।
कत्थवि पंचाणण गिरि-गुहेहिं। मुत्तावलि विक्खिरंति णहेहिं।
कत्थवि उड्डाविय सउण-सया। णं अडविहें उड्डे विणण-गया।
कत्थवि कलाव णच्चंति वणे। णावइ णट्टावा जुयइ-जणे।
कत्थइ हरिणइँ भय-भीयाइं। संसारहों जिह पावइ याइँ।
कत्थवि णाणा-विह रुक्ख-राइँ। णं महि-कुल-वहुअहि रोमराइँ।
—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि (अयोध्या)-प्रशंसा

धूवंत धवल-धय वड-पउरु। पिय पेक्खु अउज्झाउरि णयरु।
घत्ता। किर जम्मभूमि जणणीय सम, अण्णु विहूसिय जिणवरेहि।
पुरि वंदिय सिर सयंभुव करेंहि, जणय-तणय-हरि-हलहरेहि[1] ॥२॥
—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमानकी लंकासे अयोध्याकी यात्रा—

घत्ता। मणगमणेहिं गयणें पयट्टेहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह।...
अण्णुवि थोवंतरु जंतएहि, तिहिमि णिहालिउ गिरि-मलउ।
जो लवली-वलहो चंदण सरहो, दाहिण-पवणहों थाम लउ ॥३॥

---

[1] राम-लक्ष्मण

पुणु वेण्णि पाइण्हिउ वाहिणीउ। णं कुडिल-सहावउ कामिणीउ।
पुणु तावि महाणइ सुप्पवाह। सज्जण-मत्तिव्व अलद्धथाह।
थोवंतरालें पुणु विंझु थाइ। सीमंतउ पि हिमिहितणउ णाइ।
पुणु रेवा णइ हणुवंत एहि। सांणिदिय रोसव संगएहिं।
किं विंझहों पासिउ उवहि चारु। जो सविसु किविणु अभंव खारु।
तं णिसुणेवि सीय-सहोयरेण। विम्मच्छिय णहयल-गोयरेण।
घत्ता। जं विंझु मुए'वि गय सायरहों, मा रूसहि रेवा-णइहें।
णिल्लोणु मुयइ सलोणु सरइ, णिय-सहाउ यहु तिय मइहें॥६॥
साणम्मय दूरवरेण चत्त। पुण उज्जयणें णिविसेण पत्त।
जहि जणवउ सघणु महग्घणो'व्व। रामो वरिवच्छलु लक्खणोव्व।
गुणवंतउ घणु कर-संगहो'व्व। अमुणिय-कर-सिर-तणु वम्महो'व्व।
साविउ महिल'व्व उज्जेणि मुक्क। पुणु पारियत्त मालवु ढुक्कु।
जो धण्णालंकिउ णर-वइ'व्व। उच्छहणु कुसुम-सरु रइवइ'व्व।
तं मेल्लेंवि जउणा णइ पवण्ण। जा अलय'-जलय-गव-लालि-वण्ण।
जा कसिण भुयंगि'व विसहों भरिय। कज्जल-रेहा-वण वरणिएँ धरिय।
थोवंतरें जल-णिम्मल-तरंग। ससि-संख-सम-प्पह दिट्ठ गंग।
घत्ता। अम्हहँ विहि गरुवउ कवणु जइ, जुज्झि वि आयं मच्छरेण।
हिमवंतहों णं अवहरिविणिया, धय-वडाइँ रयणायरेण॥७॥
थोवंतरें तिहि मि अउज्झ दिट्ठ। णं सिद्धिपुरिहि सिद्धव पइट्ठ।
जहि मिहुणइ आरंभिय रयाइ। पंथिय इव उव्वाइय पयाइ।
पाहुण इव अवरुंडण-मणाइ। गिरिवर-गत्ता इव सव्व णाइ।
अविचल-रज्जा इव सुकरणाइ। रिसि-उल इव भाण-परायणाइ।
वणुहर इव गुण-मेल्लिय सराइँ। अहोंरत्ता इव पहराउराइ।.......
घत्ता। महि-मंदरु-सायरु जावणहू, जाव दिसइ महणइ जलइ।
तउ होंति ताव जिणकेराइ, पुण्ण पवित्तइ मंगलइ॥८॥
—रामायण ६९।३-८

स्विनि वाहिनिहिं । जनु कुटिल-स्वभावउ कामिनिहुँ ।
पुनि तापि महानदि-सुप्रवाह । मज्जन-भीती 'व अनन्त-थाह ।
पुनि विन्ध्य जाइ । भीसंकहुँ हिलोरि न्याइँ ।
पुनि रेवा नदि हनुमंत आय । नालन्दिउ सोमउ गनतेहि ।
हु पासे उदधि नार । जो नवहुँ कुगण नांपेउ गार ।
सो मुनि सीय-सहोदरेन । विमरलेँउ नभनन-सोनरेन ।
जो विन्ध्यभूमिहुँ गउ नागनहु, ता रनइ रेवा नदिहि ।
निलंघण सुनइ गनघण नरइ, निज स्वभाव रसीगपहि ॥६॥
मंद दूरतरेण त्यक्त । पुनि उज्जयिनी निमिषेण प्राप्त ।
जहँ जनपद नयन महार्घ इव । रामोपरि वत्सल लक्ष्मण इव ।
उ घन कर-संग्रह इव । असुनिय-कर-शिर तनु मन्मथ इव ।
गापित मलिनि'व उज्जयन सुनु । पुनि पारियात्र मालवहिँ कुगु ।
गन्धालंकृत नरपति इव । उल्लहन कुसुम-शर रतिपति इव ।
सो छाडिय जमुना नदी पहुँच । जो अलक'-जनक गो लाल-वर्ण ।
कृष्णभुजंगि'व विष-भरिया । कज्जल-रेखा-घन धरनि धरिया ।
थोडंतरे जल-निर्मल-तरंग । शशि-शंख-समप्रभ देखु गंग ।
त्ता । हमरो सम गकयो कौन, यदि जूझिव बहु-मत्सरही ।
हिमवंतहु जनु अपहरण किय, ध्वजपताक रतनाकरहीं ॥७॥
थोडंतरे तहँहि अयोध्य दृष्ट । जनु सिद्धिपुरिहि सिद्धप्रविष्ट ।
जहँ मिथुनद्व आरंभेँउ रजाइँ । पंथिक इव उद्घाडय पदाइँ ।
पाहुन इव आलिंगन-मनाइँ । गिरिवर-गात्रा इ सर्व न्याइँ ।
अविचल राज्या इव सु-करणाइँ । ऋषि-कुल इव भांड-परायणाइँ
धनुवर इव गुणेँ मेलेँउ सराइँ । अहोँरात्रा इव प्रहरावराइँ ।.......
घत्ता । महि-मंदर-सागर जावनहूँ, जौ लौं दीसइ महनदि जलइँ ।
ता होंति तौ लौं जिनकेरइ, पुण्य-पवित्र मंगलइ ॥८॥
—रामायण ६९।३

(ख) रामकी लंकासे अयोध्या-यात्रा—

गउ लंक विहीसणु मिच्चवलु। सोलहउमे दिवसें पयट्ट बलु।
स-विमाणु स-साहणु गयण-वहे। दावंतु णिवाणउ पिअय महे।
एहु सुंदर दीसइ मयरहरु। एहु मलय-धराहरु मुरहि-नरु।
किक्किंध-महिंदहों इह सयल। इह तुलिय कुमारें कोटिसिल।
हउँ लक्खणु एण पहेण गय। एत्तहि खर-दूसण-तिसिर हय।
इह संवु कुमारहों खुडिउ सिरु। इह फेडिउ रिसि-उवसग्गु चिरु।
इह सो उद्देसु णिअच्छियउ। जिय मोंम जणणु जहि अच्छियउ।
एहु देसु असेसु विचारु चरिउ। अइवीर णराहिउ जहि धरिउ।
घत्ता। तं सुंदरियउ जियंत उरु, जहि वण वाल समावडिय।
लक्खिज्जइ लक्खण पायवहो, अहिणव वेल्लि णाइ चडिय ॥१९॥
रामउरि एह गुण-गारविय। जा पूयण जक्खें कारविय।
एहु अरुणु गामु कविलहों तणउ। जहि गल-थल्लाविउ अप्पणउ।
एहु दीसइ सुंदरि! विंभ-इरि। जहि वस किउ वालि-खिल्लु वइरि।
वइदेहि! एउ कुव्वर-णयरु। कल्लाण-माल जहि जाउ णरु।
एहु दसउरु जहि लक्खणु भमिउ। सीहोयर सीह समरि दमिउ....
दीसइ सव्वु सुवण्णु भउ। णिब्भविउ विहीसणि णं णवउ।
धूवंत धवल-धय-वड-पउरु। पिय! पेक्खु अउज्झाउरि णयरु।

—रामायण ७८।१९-२०

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लहु भोयणु आणहि सुंदरउ। जं सरस-सलोणउ जेहे सुरउ।
तं णिसुणेंवि वेवि संचल्लिउ। णं सुरसरि-जउणा उत्थल्लिउ।

लंका-अयोध्या

विभीषण-मित्र-चल । सोलहवें दिवस प्रवृत्त वल ।

स-विमान स-सेना गगनगामी । दर्शाते सियाकहँ प्रियकांक्षी ।

८ दीसइ सयलायर । एहु मलय-धराधर सुरभि-तरु ।

किष्किन्ध महेन्द्रहु एहु नगल्ला । एहिँ ठायउ कुमारेँ कोटि-शिला ।

मण जेहि पयहिँ गयउँ । एहिँ ठेंव खर-दूषण विणिर हतेँउँ ।

एहिँ थांव कुमारहु सुटेँउ सिर । एहिँ नासेँउ ऋषि-उपसर्ग निर ।

ओइ देस निरीक्षियऊ । जिन सांभजनन जहँ अच्छियऊ[1] ।

एहु देस असेस विसार नरेँऊ । अतिवीर नराधिप जहँ धरेँऊ ।

। सो सुंदरियउ जयंतपुर, जहँ वनपाल आइ पडिया ।

सरहु एँह लक्ष्मण पादपहु, अभिनव येल्लन-जस नडिया ॥१॥

नपुरि एह गुण-गोरविया । जा पूजन यक्षहिँ कारविया ।

एहु अरुण-ग्राम कपिलहु-तनऊ[2] । जहँ पंक दियेँउ मे आपनऊ ।

हु दीसइ सुंदरि ! विंध्यागिरी । जहँ वस किउ वालखिल्य वैरी ।

वैदेहि ! एहु कुब्बर-नगरु । कल्याण-माल जहँ जनेँउ नरु ।

एहु दसपुर जहँ लक्ष्मण भ्रमेँऊ । सिंहोदर सिंह समरेँ दमेँऊ ।

दीसइ सर्व सुवर्ण भवऊ । निर्मियेँउ विभीषण जनु नयऊ ।

धूवंत धवल-ध्वज-पट-प्रवरु । प्रिये ! अयोध्यापुरि नगरु ।

—रामायण

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

यु[3] भोजन आनहिँ सुंदरऊ । जो सरस-सलोनउ जिमि गुरऊ ।

सो मुनिकर दोऊ संचलियउ । जनु सुरसरि-जमुना उच्छलियउ

---

[1] आछे=हैं   [2] केरउ   [3] तुरंत

रद्धु एक्कु लहु लेविणु आइउ । णं सुरसरि-नन्भिउ विनयाइउ ।
वड्ढिउ भोयणु मोयण-गज्जइ । अच्छइ पच्छइ लहयइ पेज्जइ ।
सक्कर-खंडेंहि पायस-पयसेंहि । लड्डुव-लावण-गुन-उगगु-ग्गेंहि ।
मंडा-सोयवत्ति घीअउरेंहि । मुग्ग-सूप णाणाविह कूरेंहि ।
सालणएहि विवण्ण-विचित्तेंहि । माइणि मायदेहि विचित्तेंहिँ ।
अल्लय-पिप्पलि-मिरिआ-मलयहि । लावण-मानूरेंहि कोमलयहि ।
चिब्भिडिया-कणेर-वासुत्तिहि । पेउव-पप्पडेहि सुपहुत्तेंहि ।
केलय-णालिकेर-जवीरिहि । करभर-करविदेहि करीरिहि ।
तिम्मणेहि णाणाविह-वण्णेंहि । साउव-भज्जिय-सट्टावण्णेंहि ।
अण्णु वि खंड-सोल्ल-गुल-सोल्लिहि । वडवा-इंगणेहि कारेल्लेंहि ।
विंजणेहि स-महिय-दहि-खीरिहि । सिहरणि-चूय-वत्ति-सोवीरिहि ।
घत्ता । अच्छउ एवउ मुह-रसिउ, अविअण्हउ उल्हावणउ किह ।
जहि जि लहिज्जइ तहि जि तहि, गुलियारउ जिणवर-वयणु जिह ॥११॥
—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता—

हरि पहरंतु पसंसिउ जावेंहिँ । जाणइ-णयण कडक्खिय तावेंहिँ ।
सुकइ-सुकव्व-सुसधि सु-संधिय । सुपय-सुवयण-सुसद्द-सुवद्धिय ।
थिर-कलहंस-गमण गइ-मंथर । किस-मज्झारें णियंवें सुवित्थर ।
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी । णं पिंपिलि - रिंछोलि विलिण्णी ।
अहिणव-हुडूपिड-पीणत्थण । णं मयगल-उर-खभणिसुभण ।
रेहइ वयण-कमलु अकलंकउ । णं माणस-सर विअसिउ पंकउ ।
सुललिय-लोयणु ललिय-पसण्णहँ । णं वरइत्त मिलिय वर-कण्णहँ ।
धोलइ पुट्ठिहि वेणि महाइणि । चंदण-लयहिँ ललइ णं णायणि ।
घत्ता । किं वहु जंपिएण तिहिँ भुयणिहिँ जं जं चंगउ ।
तं तं मेलवेवि णं, दइवें णिम्मिउ अंगउ ॥३॥
—रामायण ३८।३

संचल्लें विंभ पहाणयेण । लक्खिज्जइ जाणइ गणयेण ।
पप्फुल्लिय धवलकमल-वयणा । इंदीवर-दल-दीहर-णयणा ।
तणु मज्झें णियंवें वच्छें गरुआ । जं णयण कडक्खिय जणय-सुया ।
उम्मायण मयणहिँ मोयणेहिँ । वाणेंहि संदीवण-मोसणेहिँ ।
आइम्मिय सलिलउ मुच्छियउ । पुणु दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छियउ ।
कर मोडइ अंगु वलइ हसइ । असमइ ससइ पुणु णीससइ ।
घत्ता । मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु, पहु येम पजंपिउ कुइयमणु ।
वलिवंडऍण वसि वणवसहुं, उद्दाले विआणहु यामु महु ॥
—रामायण २७।३

(ख) मंदोदरी—

घत्ता । सहसत्ति दिट्ठु मंदोयरिए, दिट्ठिएँ चल-भउहालइ ।
दूरहों जें समाहउ वच्छयले, ण णीलुप्पल-मालइ ॥२॥
दीसइ तेण वि सहसत्ति वाल । णं भसले अहिणव-कुसुममाल ।
दीसंत चलण-णेउर रसंत । णं महुर-राव वंदिण पठन ।
दीसइ णियंव-मेहल-समग्ग । णं कामएव-अत्थाण-मग्ग ।
दीसइ रोमावलि छुडु चडंति । णं कसण-वाल-सप्पिणि ललंति ।
दीसंति सिहिणि[1] उवसोह देंत । णं उरयलु भिंदिवि हत्थि-दंत ।
दीसइ पप्फुल्लिय वयण-कमलु । णीसासामोवासत्त-भसलु ।
दीसइ सुणा (सु) अणुहुव[2] सगंधु । णं णयण-जलहों किउ सेयउवंधु ।
दीसइ णिट्ठलु[3]-सिरु चिहुर-छण्णु । ससि-विंवु व णव-जलहर-णिमण्णु ।
घत्ता । परिभमइ दिट्ठि तहों तहि जि तहिँ, अण्णहि कहि मि ण थक्कइ ।
रस-लंपडु महुयर-पंति जिम, केयइँ भुइवि ण सक्कइ ॥३॥
—रामायण १०।२-३

गी प्रति का पाठभेद [२] य—पूना [३] निडालु—पूना

गयणंगेंड किसउ परिचवेंहिँ । बोलिज्जइ सालंकिय वयणेंहिँ ।
सत्थुल्लिय-सयल-भवन-रुती । उवेंसिय-कमल-लोयण-नयणी ।
सोहे धीस निवम-णय गणधा । जो नवल पडाविय कनकगुणा ।
उम्मावल भरेहिँ सोहेंहिँ । मारोंहिँ संदीपण-नागेंहिँ ।
पार्बीत्ता मानिन मुखिंगढ । पुनि पहुप पुनः उम्मुदितढ ।
मद सोहे धन वेंनि रमई । धाटयं हाथें पुनि निहमई ।
घत्ता । मकरमय-धाम-अवेलिन-तनु, प्रभु देवि प्रलम्बेंउ मुनि-मना ।
पल्लवमें काल पल पलटु, उद्धवे भागह बाबु(?) समा ॥३॥
—रामायण २८।३

(ग) मंदोदरी

घत्ता । सहसा दृष्ट मंदोदरि, दृष्टिहि मन-मोहन-रूप ।
इन्हुँ हि धारेंउ यथाक्रम, जनु सैलोत्तम-मानई ॥१॥
दीसत नेउरहिँ सहुला हि गात । जनु भमरे परिमल-बहुल मान ।
दीसंत चरण-नूपुर रुनत । जनु मधुर-नाद बोलत मदन ।
दीसत नितंब-बिंबन-सजय । जनु कामदेव-स्थानि-मार्ग ।
दीसत रोमावलि छुट[1] चढंति । जनु कृष्ण-बाल-नागिणि चलति ।
दीसंत थनहू सोहत देत । जनु उत्तम गिरेंउ हथिनदन ।
दीसत प्रफुल्लित वदन-कमल । जिज्ञासागमोदागमन-भ्रमर ।
दीसत सुनाल अनुकुल-सुगंध । जनु नयन-जलगि मिलेंउ सेतुबंध ।
दीसत सिन्दूर सिर चिकुर-ग्रन्थ । शशि-बिंबि'व नव-जलधर-निगम्न ।
घत्ता । पहिलेहि दृष्टि नारि गहेंहि गही, अन्यहि कहहिँ न थक्कई ।[2]
रस-लंपट मधुकर-पंक्ति जिमि, केतकि भूमि न सक्कई ॥२॥
—रामायण १०।२-३

---

[1] तुरंत [2] ठहरती, चंगला—याक

जेहि चम्पक छाय सरोवरहि । जिन-णाहँ जन जिन-सरोवरहि ।
रत-णारि किं गणि गीरावासिनि । त्रिय-मार्गा णहिँ मधुगन्धासिनि ।
माणो इव मालिन-मानी । कणाइँ-कवोलय-माली ।
कन्हारिणि पिय-अधर-मानी । मस्सी इव सा मणहरणी ।
धनया मागी धन्दुर-मानी । जेहिँ सा जोहिहि सो पदमानी ।
जेहिँ सा जेहिँ पुण्णिहि सुमनोहर । जेहिँ सा जेहिँ पुण्णिहि पवनुहर ।
जेहि सा जेहि पुण्णिहि जिन-शासन । जेहिँ सा जेहि पुण्णिहि न सुशासन ।
घत्ता । सा बहु जन्नेहिं उप्पणिउं, एंम कसोवरीं ।
जिन-प्रतिबिंबउ सा हिय, तव त्याहँ सरोवरीं ॥८॥

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रनिवास—

....................। मलन्निय मदोदरि रानी ।
णारि स-मान स-डोर स-नूपुर । गयउँ ढवत्तु अन्तःपुर ।
जो प्रप्फुल्लिय पङ्कज-वयणउ । जो कुवलय-दल-दीहर-णयणउ ।
जो कुच-भार-णाभि-गम्भ-गमणउ । जो पर-णरवर-मन-भूरणउ ।
जो मुख-सोभाग्य-पन्नँ-गमणउ । जो पीणत्थण-भारें णमियउ ।
जो मन-हर तनु-मध्य शरीरउ । जो कणेज कानियउ गभीरउ ।
जो नूपुर-रव-मन-झणारउ । जो कंठोनिय मुत्ता-हारउ ।
जो कान्ती-कल्याण प्राग्-भारउ । जो विभ्रम-भ्रुभंग-विकारउ ।
घत्ता । सो तेहउ रावणकेरउ, अन्तःपुर मलन्नियउ ।
जनु मधुमास मानसरहि, कमलिनि-वन प्रफुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहँ पइसंतहिँ देखु स-नूपुर । रावण-केरउ सब्बु अन्तःपुर ।
णियलेहिँ णिगलहिँ-कुल मनहुँ भाय । फुटिलेहिँ[1] इन्दीवर-वृन्द न्याइँ ।

[1] फुटिलन-प्रकारी

भउहेहिँ अणंग-धणु-लइ वनं'व । णयणिहि णीलुप्पल-काणणं 'व ।
मुह-विंवेँहि मय-लंछण-चलं 'व । कल-वाणिहि कल-कोइल-कुलं 'व ।
कोमल-वाहेँहिँ लयाहरं 'व । पाणिहि रत्तुप्पल-सरवरं 'व ।
णक्खेँहि केअइ-सूई-थलं 'व । सिहिणेँहि सुवण्ण-घड-मंडलं 'व ।
सोहग्गेँ वम्मह-साहणं 'व । रोमावलि णाइणि-परियणं 'व ।
तिवलिहि अणंगपुरि—खाइयं 'व । गुज्झेहि मयण-मज्जण-हरं 'व ।
उरुएहि तरुण-केली-वणं 'व । चलणग्गेहि पल्लव-काणणं 'व ।
घत्ता । हंस-उलु 'व गइएहि, कुंजर-जूहु 'व वर-लीलहि ।
चाव-वलु 'व गुणेहि, छण-ससिविंवु 'व सयल-कलहि ।।५।।
—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

किं चलण-तलग्गइ कोमलाइ । णं णं अहिणव-रत्तुप्पलाइ ।
किं ऊरु परोप्परु भिण्ण-तेय । णं णं वर-रंभा-खंभ येय ।
किं कणय-दोरु धोलइ विसालु । णं णं अहिरयण-णिहाण-पालु ।
किं तिवलिउ जठर पद धाविआउ । णं णं कामउरिहि खाईंआउ
किं रोमावलि घण-कसण एह । णं णं मयणाणल-धूम-लेह ।
किं णव-थण, णं ण कणय-कलस । किं कर णं णं पारोह-सरिर
किं आयंविर-करयल चलंति । णं णं असोय-पल्लव ललंति ।
किं आणणु, णं णं चंद-विंव । किं अहरउ णं णं पक्क-विंवु ।
किं दसणावलिउ स-मुत्तियाउ । णं णं मल्लिय कलियउइ भाउ ।
किं गंड-वास णं दंति-दाण । किं लोयण, णं णं कामवाण ।
किं भउह इमाउ परिट्ठियाउ । णं णं वम्मह-धणु-लट्ठियाउ ।
किं कण्णा कुंडल-हरण एय । णं णं रवि-ससि-विप्फुरिय-तेय
किं भालउ, णं णं ससहरद्धु । किं सिरु, णं णं अलि-उल-णिवद्धु ।
—रामायण ६९।८

भौंहेंहिं अनंग-धनु लता-वन इव । नयनहिं नीलोत्पल-काणन इव ।
सुर-बिंबहिं मृगलांछन-चन्द इव । मन-वाणिहिं मत्त-कोकिल-कुल इव ।
कोमल-बाहेंहिं (काम-)लतापर इव । पाणिहिं रक्तोत्पल-सरवर इव ।
नखहीं केतकी-सूचि-अग्र इव । स्तनहीं सुवर्णघट-मंडल-इव ।
सौभाग्ये मन्मथ-सेना इव । रोमावलि नागिनि-परिजन इव ।
नितम्बहिं अनंगपुरी-खाईं इव । गुल्फेंहिं मदन-मज्जन-गृह इव ।
उरुहिं तरुण-कदलीवन इव । चरणाग्रेंहिं पल्लव-कानन इव ।
घत्ता ।   हंसकुल इव गतिगुहिं, कुंजर-कुल इव चल-लीलहिं ।
नाग-वन इव गुल्फेंहिं, शशि-बिंबिव इव मंगल-शीलहिं ॥५॥
—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

की चरण-नखाग्रा कोमला । जनु जनु अभिनव-रक्तोत्पला ।
की ऊरु परस्पर-भिन्न-तेज । जनु जनु वर-रंभा-खंभ एह ।
की कनकटोरि डोलइ विशाल । जनु जनु अहि रतन-निधान-पाल ।
की त्रिवली जठरपरि आइया । जनु जनु कामपुरिहि खाइँया ।
की रोमावलि घन-कृष्ण एह । जनु जनु मदनानल-धूम-रेख ।
की नव-थन, जनु जनु कनक-कलश । की हार, जनु जनु आरोह-सरिस ।
की आलंबित-करतल चलंति । जनु जनु अशोक-पल्लव ललंति ।
की आनन, जनु जनु चंद्रबिंब । की अधरउ, जनु जनु पक्व-बिंब ।
की दशनावलिउ स-मौक्तिकाउ । जनु जनु मल्लिक-कलियहीं भाउ ।
की गंडपास जनु दन्ति-दान । की लोचन, जनु जनु काम-बाण ।
की भौंहा एह परिस्थिताउ । जनु जनु मन्मथ-धनु-यष्टियाउ ।
की कर्ण कुंडलाभरण एह । जनु जनु रवि-शशि विस्फुरित-तेज ।
की भालउ, जनु जनु शशधरार्ध । की शिर, जनु जनु अलि-कुल-निबद्ध ।
—रामायण ६९।२१

(ङ) भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियां—

घत्ता। तहों वणहों मज्झे हणुवंतेण, सीय णिहालिय दुम्मणिया।
णं गयण-मग्गेउ मेल्लिय, चंदलेह-बीयहें तणिया ॥७॥
सहिय सहासहि परिअरिय, णं वणदेवय अवयरिय।
तिण-मेत्तुवि णवलक्खणु जाहें, णिव्वण्णिज्जइ काइँ तहें ॥
वर-पय-तलेंहिँ पउणारएहिँ। सिंघलणहेंहि दिहि गारएहि।
उच्चंगुलिऍहि वेंडल्लिएहि। वट्टुल्लिएँ गुप्फेंहि गोलएंहि।
वर-पोट्टरिएहि मायंदियेहि। सिरिपव्वय-तणिऍहि मंडियेहि।
ऊरुअ-जुयले णिप्पालएण। कडिमंडलेण करहाडएण।
वरसोणिय कंची-केरियाएँ। तणु-णाहिएण गंभीरियाएँ।
सुललिय-पुट्ठिएँ सीवारियाएँ। पिंडत्थणिअएँ एलउलियाएँ।
वच्छयले मज्झिमएसएण। भुअ-सिहरें पच्छिमएसएण।
वारमईकेरेंहि वाहुलेहि। सिंधव मणिबंधहि वट्टुलेहि।
माणग्गीवेंहि कच्छाणुणेहिँ। उट्ठउडेहि कोकणियहि-तणेहि।
दसणावलियए कण्णाडियए। जीहऍं को रोहणवाडियए।
णासउडें तुंग विसयत्तणेहिँ। गंभीरएहि वर-लोयणेहिँ।
भउहाजुएण उज्जेणएण। भालेण विचित्त उडाणएण।
फासियहि कवोलेहि पुज्जयेहि। कण्णेहि मि कण्णाउज्जयेहि।
काविलेहिँ केस-विसेसएण। विणएण विदाहिण-एसएण।
घत्ता। अह किं वहुणा वित्थरेण, अण्णिवि इणणें सुंदरि-मइण।
एक्केकीवत्थु लएप्पिणु, णावइ घडिय पयावइण ॥८॥
—रामायण ४९।८
दिव्वेहि णाणा-पयारेहि पुप्फेहि। रत्तुप्पलं-दीवरंभोय-पुप्फेहि।
अइउत्तया-सोय-पुण्णाय-णाएहि। सयवत्तिया-मालई-पारिजाएहि।

(ङ) **भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—**

घत्ता । तहँ वनहि मध्ये हनुमंतउ, सीय निहारेँउ दुर्मनिया ।
जनु गगन-मार्गे उन्मीलित, चंद्रलेख दुतियह-तनिया ॥७॥
सखिय सहस्रेहि परिवारिय, जनु वनदेवी अवतरिया ।
तृण-मात्रहु नव-लक्षण जाहि, निर्वणिये काइँ ताहि ॥
वर-पद-तलेहिँ पत्थार-एहिँ । सिंहलिनिएँहिँ दिशि-गौरवेहिँ ।
उच्चांगुलीहि वैपुल्यएहिँ । वाढल्लिए गुल्फेँहि गोलएहिँ।
वर-पेट्ट-एहिँ मार्कंदिएहिँ । **श्रीपर्वत-केरिहिँ** मण्डितेहिँ ।
ऊरुग्र-जुगलेँ **नेपालयेहि** । कटिमंडलेइ **करहाटिकेहि** ।
वरश्रोणिय **कांची-केरियाँ** । सूक्ष्म-नाभिकेहि गंभीरियाँ ।
सुललित-पृष्ठिय **शिवारियेहिं** । पिंड-स्तनियइ **एलकुलियइ** ।
वक्ष-तले **मध्यम-देशिया** । भुज-शिखरे **पच्छिम-देशिया** ।
द्वारवती-केरइ वाहुयहिँ । **सिंधविय** वर्त्तुल-मणिवंधहिँ ।
मान-ग्रीवहिँ **कच्छाणनिया** । ओठउडे[1] **कोँकणि-तनिया** ।
दशनावलिहिँ **कन्नाडिया** । जीभहिँ **रोहण-वाडिया** ।
नासउडे **तुंग-विषय-तनिया** । गंभीरिया वरलोचनिया ।
भौंहा-युगेइ **उज्जेनिया** । भालेहँ विचित्र **ओडियानिया** ।
काशिया कपोलेहिँ पुंजकेहिँ । कर्णेहिँ हि **कनउज्जकेहिँ** ।
केश-विशेषकेहिँ **काविलिया** । विनयेहि हि **दक्षिण-देशिया**
घत्ता । अरु का वहु-विस्तारेहिँ, अन्यान्येहिँ सुंदरिमयी ।
एक-एक वस्तु लेइके, जनु गढेँउ प्रजापति ।

—रामायण ४६।

दिव्येहिँ नाना-प्रकारेहिं पुष्पेहिँ । रक्तोत्पलेंदीवर-भोज-पुष्पेहिँ ।
अतिमुक्तका-शोक-पुन्नाग-नागेहिँ । शतपत्रिका-मालति-पारिजातेहिँ

[1]उड—कोमलालाप में

कणिया (र)-कणवीर-मंदार-कुदेहि । विग्रइल्ल-वर-तिलय-वउलेहि मंदेहि ।
सिंधूर-वंधूक-कोरंट-कुज्जेहि । दमणेण मरुएण पिक्का-तिसंज्झेहि ।
एवं च मालाहि अण्णण्ण-रूवाहि । कण्णाडियाहिं'व्व- सरसार-भूयाहि ।
आहीरियाहि 'व्व वायाल-भसलाहि। वलाडियाहिं' व्व मुह-वण्ण-कुसलाहि ।
सोरट्ठियाहिं'व्व सव्वंग-मउआहि । मालविणिआहि 'व्व मज्झारछउआहि ।
मरहट्ठियाहिं'व्व उद्दाम-वायाहि । गीयज्झुणीहिं'व्व अण्णण्ण-छायाहि ।

—रामायण ७१।६

(३) जल-क्रीडा

घत्ता । तहि सर-णह-यले स-स-कलत्त वेवि हरि-हलहरा ।
रोहिणि'-रण्णहि ण परमिय चंद-दिवायरा ॥१४॥
तहि तेहएँ सरें सलिले तरंतइँ । संचरंति चामीयर-जंतइँ ।
णाइ विमाणइ सग्गहों पडियइँ । वण्ण-विचित्त-रयण-वेयडियइँ ।
णत्थि रयणु जहि जंतु ण घडियउ । णत्थि जंतु जहि मिहुणु ण चडिअउ ।
णत्थि मिहुणु जहि णेहु ण वड्ढिय । णत्थि णेहु जहि सुरउ ण वड्ढिउ ।
तहि नर-नारि-जुवइ जल कीडइ । कीडंताइ ण्हंति सुरलीलइ ।
सलिलु करग्गहि आप्फालंतइँ । मुरय-वज्ज-वायव दरिसंतहँ
[illegible] अहिणव-गेयहि । वढइ मुरयक्खित्तिय तेयहिँ ।
[illegible] तालिहिँ वहुलय-भंगेहि । करणुच्छेत्तिहि णाणा भंगेहिँ
घत्ता । [illegible] स-रागउ, सिंगार-हार-दरिसावणु ।
[illegible], जलकीडणउ सलक्खणु ॥१५॥
[illegible] । [illegible] सारंग-धर ।

—रामायण २६।१४-१६

[illegible] गीयहिँ । वज्जयण्ण-सीहोयर-वीऍहिँ ।
घत्ता । [illegible], [illegible] तरंत-तरंगाइँ ।
[illegible], जल-कील-करंताइँ ॥१०॥

कर्णकार-कर्णवीर-मंदार-कुदेहिँ । वेइल-वगतिलक-वकुलेहिँ मंद्रेहिँ ।
निधूर-चंपूक-कोरंट-कच्चेहिँ । दवनेहिँ मरुएहिँ पिक्का-तिसंध्येहिँ ।
ऐसेहि मालाहिँ अन्यान्य-रूपाहिँ । कन्नाडियहिँ इव सरसार-भूताहिँ ।
आहीरियाहिँ व वाचाल-भमरा[1]हिँ । वाराडियाहिँ व सुवर्ण-कुशलाहिँ ।
सौराष्ट्रियाहिँ व सर्वांग-मृदुकाहि । मालविणियाहिँ व कटिमध्य सूक्ष्माहि ।
मरहट्ठियाहिँ व उद्दाम-वाचाहिँ । गीत-ध्वनिहिँ इव अन्यान्य-छायाहिँ ।
—रामायण ७१।९

(३) जलक्रीडा

घत्ता । तहँ मरु-नभ-तले स्वस्व-कलत्रेहिँ हरि-हलधरा[2] ।
रोहिणि रानिहिँ जनु प्र-रमेंउ चंद्र-दिवाकरा ॥१४॥
तहँ तेहि हि सर सलिल तरंता । संचरहीं चामीकर-यंत्रा ।
नारि-विमाना स्वर्गहँ पड़िया । वर्ण-विचित्र-रत्न-वीजडिया ।
नाहि रतन जहिँ जंतु न गढ़ियउ । नाहि जंतु जहिँ मिथुन[3] न चढियउ ।
नाहि मिथुन जँह नेह न वढियउ । नाहि नेह जँह सुरत न वढियउ ।
तहँ नर-नारि-युवति जलक्रीडें । क्रीडंती नहाइँ सुरलीलें ।
सलिल कराग्रहिँ उच्छालन्ते । मुरज-वाद्य थापा दरसन्ते ।
स्खलितहिँ वलितहिँ अभिनव-गीतेहिँ । वर्द्धे सुरत-समन्वित तेजहिँ ।
छन्देहिँ तालहिँ वहुलय-भंगहिँ । करुण-ऐक्षेपी नाना-भंगहिँ ।
घत्ता । चक्षु सरागउ शृंगार-हार-दरसावन ।
पुष्परज्जु युध्यंत, जलक्रीडनउ सलखावन ॥१५॥
जले जय-जय-शब्देहिँ नहाएँ नर । पुनि निकसे हल-सारंगधर ।
—रामायण २६।१४-१६
सल्लविसल्ला सुंदरि सीतहिँ । वज्रकर्ण-सिहोदर-धीतहिँ ।
घत्ता । वोलै भरंत नराधिप, सर-मध्ये तरंत-तरंताई ।
देवर थोडिवार रहउ, जलक्रीड करंताई ॥१०॥

---

[1]भ्रमर [2]हरि=लक्ष्मण, हलधर=राम [3]जोड़ा

तं पडिवण्णु पइट्ठु महासरु । जल-कीडहें 'वि अचलु परमेसरु' ।
लग्गउ सुंदरीउ चउ-पासेहि । गाढालिंगण-चुंवण-हासेंहि ।
हेला-हाव-भाव-विण्णासेहिँ । किलिकिंचिय विच्छित्ति-विलासेहिँ ।
मोट्टाविय कुट्टमिय वियारेहि । विव्भम वरविव्वोक-पयारेहिँ ।
तो वि ण खुहिउ भरहु सहसुट्ठिउ । अविचलु णं गिरि-मेरु परिट्ठिउ ।
अच्छइ जाव तीरें मुह-दंसणु । ताव महागउ-तिजग-विहीसणु ।
णिय आलाण-खभु उप्पाडेवि । मंदिर सयइ अणेयइ पाडेवि ।
परिभमंतु गउ तं जें महासरु । जलकीलइ जहि भरहु णरेसरु ।
—रामायण ७६।११

(४) प्रेम (काम)-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीयहे देह-रिद्धि पावंतिहे । येक्कु दिवसु दप्पणु जोयंतिहे ।
पडिमाछलेंण महाभयगारउ । आरिस वेस णिहालिय णारउ ।
जणय-तणय [illegible] पणट्ठी । सीहागमणें कुरंगि'व दिट्ठी ।
"हा हा माए" भणतिहिं सहियहिं । कलयलु कियउ भग्ग गह-गाहियहिं ।
[illegible] किंकर । उग्गय'व करवाल भयंकर ।
मिलिवि [illegible] कहमि ण माग्गिउ । लेवि अद्धचंदेंहिं णीसाग्गिउ ।
घत्ता । गउ [illegible], पडे पडिम लिहेवि सीयहे तणिया ।
[illegible] वि, सजुनि णाड-णर धारणिया ॥८॥
[illegible] । पंचहि सरहि विद्धुणं मारें ।
[illegible] । वलिय अंगु मोडिय भुयडालउ ।
[illegible] । दरिसाविय दस कामावत्थउ ।
[illegible] । सीयहे पिय-मुह-दंसणु मग्गइ ।

सो प्रतिपन्न पइमु महासर। जलक्रीडहिँहि अचल परमेश्वर।
लागीं सुंदरी . उ चौपानेहिं। गाढालिंगन-चुंबन-हासेहिं।
हेला-हाव-भाव-विन्यासेहिं। किलकिंचित-विक्षिप्ति-विलासेहिं।
मोट्टायन-कुट्टमन-विकारेहिं। विभ्रम-वरविब्बोक-प्रकारेहिं।
तोउ न क्षुभेँउ भरत भट उद्‌ठेउ। अविचल जनु गिरि मेरु परिट्-ठिउ।
जो लों रहै तीर शुभ-दर्शन। तौ लों महगज-त्रिजग-विभीषण।
निज बंधान-खंभ उप्पाडिय। मंदिर-शतहिँ अनेकहिँ पातिय।
परिभ्रमंत गउ तेँहिहिं महासर। जलक्रीडे जहँ भरत-नरेश्वर।

—रामायण ७६।११

(४) प्रेम-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीता देह ऋद्धि पावंतिह। एक दिवस दर्पण जोयंतिह।
प्रतिमा छलेँइ महाभयकारू। ऐसो वेस निहारेँउ न्यारू।
जनकतनयाँ सहसाही भागी। सिंहागमनेँ कुरंगि'व लागी।
"हा हा माइ" भनंतिहिँ सखियहिँ। कलकल कियेँउ, भागु गहिगहियहिँ।
आमरखी कोपेऊ ! किंकर। उत्क्षिप इव करवाल भयंकर।
मिलव तेहि कहँ कहउँ न मारिउ। लेवि अर्धचंद्रेँहि निस्सारिउ।
घत्ता। गउ सव राघव-देव-ऋषि, पटेँ प्रतिम लिखव सीता-तनिया[1]।
दरसायेँउ भामंडलहुँ, युवित नारि-नर धारणिया ॥८॥
देखु जोहि प्रति-प्रतिम कुमारा। पंचहिँ शरहि वेधु जन मारा।
सुखेँउ वदन घूमिया ललाटउ। कँपेउ अँग मोडेँउ भुजडालउ।
बँधेँउ केश मरोड़िय वक्षा। दरसायेँउ दश कामावस्था।
चित्त प्रथम स्थानंतरेँ लागै। दुसरे प्रियमुख-दर्शन माँगै।

---

[1] सीताकेर

तइयएँ ससइ दीह-णीसासें । कणइ चउत्थइ कर-विण्णासें ।
पंचम डाहें अँगु ण वुच्चइ । छट्ठइ मुहहों ण काइ विरुव्वइ ।
सत्तमि थाणे ण गासु लइज्जइ । अट्ठमे गमणू माएहिँ भिज्जइ ।
णवमएँ पाण-सँदेहहों ढुक्कइ । दसमएँ मरइ ण केम'वि चुक्कइ ।
घत्ता । कहिउ णरिंदहों किंकरिहिँ, पहु दुक्करु जीवइ पुत्तु तउ ।
हा तेहिँ वि कण्णह कारणेण, सो दसमी कामावत्थ गउ ॥९॥

—रामायण २१।८-९

लक्खिउ लक्खणु लक्खण-भरियउ । णं पच्चक्खु मयणु अवयरियउ ।
भू उणियवि सुर-भवणाणंदहों । मणु उल्लोलेंहिँ जाइ णरेंदहों ।
मयण-सरसणें वरें वि ण सविकउ । वम्महों दस ठाणेहि पढुक्कउ ।
पहिलइ कहुवि समाणु ण वोल्लइ । वीयएँ गुरु णीसासु पमेल्लइ ।
तइयए सयलु अंगु परितप्पइ । चउथइ णं करवत्तेंहि कप्पइ ।
पंचमें पुणु पुणु पासेइज्जइ । छट्ठएँ वार-वार मुच्छिज्जइ ।
सत्तमें जलुवि जलद्द ण भावइ । अट्ठमें मरण-लील दरिसावइ ।
णवमएँ पाण पडंत ण वेअइ । दसमएँ सिरु छिज्जंतु ण चेयइ ।
घत्ता । एम वियंभिउ कुसुमाउहु, दसहेंमि थाणेहिँ ।
तं अच्छरिउ जं मुक्कु, कुमारु ण पाणेहिँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-विओएँ दुम्मणिया, अंसु-जलोल्लिय-लोयणिया ।
मोक्कल केस कवोल भुआ, दिट्ठ विसंठुल जणय-सुआ ॥
[illegible] अलंकिउ । मुहु ण देंति फुल्लंधुय पंतिउ ।
[illegible] वि ण करंति णियारिउँ । कण्णंतेहि लग्गंति णिरारिउँ
[illegible] सा णिज्झरा । अण्णु विओय-सोय-संतत्ती ।
[illegible] दिट्ठ पज्जंसणि । मेरु सरिहि मज्जेण सुग्गरि

निसरे श्वसै दीर्घ-निःश्वासैं। कंदै चतुर्थे करविन्यासैं।
पंचम दाहै अंग, न बोलइ। छठये मुखहिं न काहुहि देखइ।
सतयें थान न ग्रास लईजै। अठयें गमनोन्मादे भिज्जैं।
नवयें प्राणनेंदेहहु ढूकै। दसये मरण न कथमपि चूकै।

घत्ता। कहेंउ नरेन्द्रहिं किंकरिन्ह, प्रभु ! दुष्कर जीवै पुत्र तव।
हा ताहिहिं कन्यहिं कारणे, सो दसई कामावस्थ गउ ॥६॥

—रामायण २१।८-६

लखेंऊ लक्ष्मण लक्षण-भरिया। जनु प्रत्यक्ष मदन अवतरिया।
भू आनेउ सुरभवनानंदहु। मन उल्लोलेहिं जाइ नरेंद्रहु।
मदन शरासने धरब न सक्येउ। मन्मथ दश थानेहिं प्रढूकेंउ।
पहिले काहुहि संग ना बोलै। दूजेंहिं बड निःश्वास प्रमेलै।
तीजे सकल अंग परितप्पै। चौथे जनु तरवारहिं कँपै।
पंचयें पुनि पुनि प्रासादिज्जै। छठयें बार-बार मूर्छिज्जै।
सतयें जलहु जलादै न भावै। अठयें मरण-लीलाँ दरसावै।
नवयें प्राण पतंत न वेदै। दसयें शिर छेदत न चेतै।

घत्ता। इमि विजृंभेंउ कुसुमायुध, दसहुहिं थानहँ।
सो अचरज जो छूट, न प्राण कुमारकहँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-वियोगे दुर्मनिया, अश्रु जलोल्लित-लोचनिया।
मुक्तहु केश कपोलें भुजा, देखु विसंस्थुल जनकसुता ॥
जानकि-वदन-कमल अलभंतिउ। मुख न देति फुल्लन्धुक-पंक्तिउ।
हनें तो उ न करंति निवारेंउ। करतलेंहीं लागंति निरालेंउ।
ऐस शिलीमुख सासनयंता। अन्यें वियोग-शोक-संतप्ता।
वनें वसंति दीखु परमेश्वरि। शेष सरिहिं मध्ये (जनु) सुरसरि

हरिसिउ अंजणेउ इत्थंतरे। धण्णउ एक्कु रामु भुवणंतरे।
जो तिय एह आसि माणंतउ। रावणु सइ जि मरइ अलहंतउ।
णिरलंकार जों होंती सोहइ। जइ मंडिय तो तिहुयणु मोहइ।
सीयहों तणउ रूउ वण्णेप्पिणु। अप्पहु णहें पच्छण्णु करेप्पिणु।
घत्ता। जो पेसिउ राहवचंदेण, सो घत्तिउ अंगुत्थलउ।
उच्छंगि पडिउ वइदेहिहे, णावइ हरिसहों पोट्टलउ ॥६॥...
लक्खिय सीया एवि किह। वियसिय सरिया होइ जिह।
णं मय-लंछण ससि-जोण्हा इव। तित्ति-विरहिय गिम्ह-तण्हा इव।
णिव्वियार-जिणवर-पडिमा इव। रइविहि विण्णाणिय-घडिया इव।
अभय-करच्छज्जीव-दया इव। अहिणव-कोमल-वण्ण-लया इव।
स-पउहर पाउस-सोहा इव। अविचल सव्वंसह वसुहा इव।
कंति-समुज्जल-तडिमाला इव। सुट्ठु सलोण उयहि-वेला इव।
णिम्मल-कित्ति व रामहों केरी। तिहुयणुमिवि परिट्ठिय सेरी।

—रामायण ४६।६, १२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहो अहो परमेसर दासरहि। पच्छएँ लंकाउरि पइँसरहि।
मिलि ताव भडारा' जाणइहे। तरु दुत्तरु विरह-महाणइहे।
णाइ ति-जग-विहूसण-कुंभ-यले। मय-परिमल-मेलाविय भसले"।
घत्ता। तं णिसुणे वि हलहर-चक्कहर, सीयहे पासें समुच्चलिया।
अहिणय-समएँ मिग्गिंदयहो, दिग्गय विण्णि णाइ मिलिया ॥६॥
वइदेहि दिट्ठु हरि-हलहरेहिं। णं चंद-लेह विहि-जलहरेहिं।
णं सरय-लच्छि पंकय-सरेहिं। णं पुण्णएँ विहि पक्खंतरेहिं।
णं सुरगिरि हिम-गिरि-सायरेहिं। णं णह-सिरि चंद-दिवायरेहिं।
परिपुण्ण-मणोरह जाणईहि। तरु इव लायण्ण-महाणईहि।

हरषेँउ आंजनेय एँहि अवसरेँ। धन्यउ एक राम भुवनंतरेँ।
जो तिय एहु अहै मानंतिउ। रावण मरै सतिहिँ अलभंतउ।
निरलंकार होति जो सोहै। यदि मंडित तो त्रिभुवन मोहै।
सीयहिँ केर रूप वर्णेविउ। आपुहं नभेँ प्रच्छन्न करेविउ।
घत्ता। जो प्रेषेँउ राघवचंद्रेण, सो डारेँउ अंगुट्ठि लिऊ।
उत्संगेँ पडिउ वैदेहिकहँ, मानो हर्षहँ पोट्टलिऊ ॥६॥
लक्खेउ सीत ऐसु किमि। विकसिउ सरिता होइ जिमि।
जनु मृणलांछन शशि ज्योत्स्ना इव। तृप्ति-विरहित ग्रीष्म-तृष्णा इव।
निर्विकार जिनवर-प्रतिमा इव। रतिपतिहिँ जनु निज गढिया इव।
अभयकर् अच्छ जीवदया इव। अभिनव-कोमल-वर्णलता इव।
स-पयधर पावस-शोभा इव। अविचल सर्वंसह वसुधा इव।
कांति-समुज्ज्वल तडिमाला इव। सुट्ठि सलोन उदधि-वेला इव।
निर्मल कीर्त्ति इव रामहिँ केरी। त्रिभुवनहूँहि परिस्थिय सेरी।
—रामायण ४६।६,१२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहोँ अहोँ परमेश्वर ! दाशरथी। पाछे लंकापुरी पइसैही।
मिलु तव भट्टारक[1] जानकिहीँ। तरु दुस्तर विरह-महानदिहीँ।
चढु त्रिजग-विभूषण कुंभतले। मद-परिमल मेलायेँउ भसले[2]"।
घत्ता। सो मुनियहि हलधर-चक्रधरु, सीतहिँ पास समुच्-चलिया।
अभिषेक समय श्रीदेवियहूँ, दोँउ दिग्गज न्याईँ आमिलिया ॥
वैदेहि दीख हरि-हलधरेहिँ। जनु चंद्रलेख विधु-जलधरेहिँ।
जनु शरद-लक्ष्मि पंकज-सरेहिँ। जनु पूर्णो विधु पक्षांतरेहिँ।
जनु सुरसरि हिमगिरि सागरेहिँ। जनु नभश्री चंद्र-दिवाकरेहिँ।
परिपूर्ण-मनोरथ जानकीहिँ। तरेँ इव लावण्य-महानदीहिँ

---

[1] राजा [2] भ्रमर

णिय-णयण-सरासणि संध इव । पिउ पगुण-गुणेहिँ णिवंध इव ।
जस-कद्दमें णं जगु लिप इव । हस्सिंसु पवाहें सिप्प इव ।
विज्जे इव करयल-पल्लवेहिँ । अंच्वे इव णहकुसुमेंहि णवेहिँ ।
पइसर इव हियएँ हलाउहहों । कर इव उज्जोउ दिसामुहहों ।
घत्ता । मेहलिय[1] मिलंतहों रहुवइहे, सुहु उप्पण्णउ जेत्तडउ ।
इंदहो इंदत्तणु णत्ताहो, होंज्जण होंज्जवें तेत्तडउ ॥७॥
मकलत्तउ लक्खणु पणय-सिरु । पभणइ जलहर-गंभीर-गिरु ।
"जं किउ खर-दूसण-तिसर-वहु । जं हंसदीवें जिउ हंसरहु ।
जं सत्ति पडिच्छिय समर-मुहे । जं लग्गु विसल्ल करंवुरुहे ।
जं रणें उप्पण्णु चक्करयणु । जं णिहिउ वलुद्धरु दहवयणु ।
तं देवि ! पसाएँ तउतणेंण । कुलु धवलिउ जाइ सइत्तणेंण" ।
अहिवायणु किउ लक्खणेण जिह । सुग्गीव-पमुह-णरवरहिँ तिह ।
सयलवि णिय-णिय वाहणेंहिँ थिय । पर-पुर-पवेस-सामग्गि किय ।
जय-मंगल-तूरइ ताडियाइँ । रिउ-घरिणिहिँ चित्तइ पाडियाइँ ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हले सीएँ सीएँ कि मूढ़ी । अच्छहि दुक्खे महण्णवे छूढ़ी । . . . .
हले हले सीएँ ! सीएँ ! महि भुंजहिँ । माणुस-जम्महों अणहुंजहिँ ।
घत्ता । जिउ [illegible] पट्टु पडिच्छहिँ, जइ सब्भावें हसिउ पइँ ।
तो [illegible] पसाहणु, अब्भत्थिय एत्तउ उ मइ" ॥१३॥
तं णिसुणेवि वयणेहि सुया । पभणइ पुनय-विसट्ट भुआ ।

---

[1] [illegible]

निज-नयन-शरासनें संच इव । प्रिय-प्रगुण-गुणेहिं निवंध इव ।
यश-कर्दमें जनु जग लेप इव । हंसियेउ प्रवाहे सीप इव ।
विद्या इव करतल-पल्लवेहिं । अर्चें इव नवकुसुमेंहिं नवेहिं ।
प्रतिसर इव हियइ हलायुधहें । कर इव उज्जोतु निशा-मुखहँ ।
घत्ता । मेहरिहिं मिलंते रघुपतिहिं, सुख उत्पन्नउ जेत्तनऊ ।
इन्द्रहें इन्द्रत्व-प्राप्ति समये, हुयउ न होइहि तेत्तनऊ ॥७॥
स-कलत्रउ लक्ष्मण प्रणत-शिरा । प्रभनें जलधर-गंभीर-गिरा ।
"जो किउ खर-दूषण-त्रिशिर-वधा । जो हंसद्वीपें जिनु हंसरथा ।
जो शक्ति प्रतीच्छेउ समर-मुखे । जो लाग विशल्य करंबुरुहे ।
जो रणें उत्पन्न चक्ररतना । जो निधिउ वलुद्धर दशवदना ।
सो देवि ! प्रसादें तवतनऊ[1] । कुल धवलेंउ जाइ सतित्वनऊ" ।
अभिवादन किउ लक्ष्मणेंहिं यथा । सुग्रीव प्रमुख-नरवरेहिं तथा ।
सकलेंहिं निज-निज वाहनें थितउ । पर-पुर-प्रवेश-सामग्रि[2] कियउ ।
जयमंगल-तूर्या ताड़िया । रिपु-घरिणिहिं चित्ता पाडिया ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हले[3] सीते सीते ! का मूढि । रहहि दुःख-महार्णवें छूटि ।
हले हले सीते सीते ! महि भोगहु । मानुष-जन्महँ फल अनु-भोगहु ।
घत्ता । प्रिय इच्छहिं पट्ट प्रतीच्छहु, यदि सद्भावें हसिउ तैं ।
तो लेहु मम एहु प्रसाधन, अभ्यर्थेंउँ एत्तना मैं" ॥१३॥
सो सुनिया वैदेह-सुता । प्रभणइ पुलक-विसृष्टभुजा ।

---

[1] तवकेरहु [2] जमावड़ा [3] रे रे

सीता—"सच्चउ इच्छमि दहवयणु।............
इच्छमि जइ महु मुहु ण णिहालइ।............
जइ पुणु णयणानंदणहों, ण समप्पिय रहुणंदणहों।
ता हउँ इच्छमि एउ हले, पुरि खिप्पंती उयहि-जले।....
इच्छमि णंदण-वणु मज्जंतउ। इच्छमि पट्टणु पयलहों जंतउ।
इच्छमि दहमुह-तरु छिज्जंतउ। तिलु तिलु राम-सरेंहि भिज्जंतउ।
इच्छमि दस'वि सिरइ णिवडंतइँ। सरें हंसाहय इव सयवत्तइँ।
इच्छमि अंतेउरु रोवंतउ। केस-विसंथुलु धाह मुअंतउ।
इच्छमि छिज्जंतिय धय-चिंधइँ। इच्छमि णच्चंताइँ कवंधइँ।
इच्छमि धूमं वारिज्जंतइँ। चउदिसु सुहड चियाइँ वलंतइँ।
जं जं इच्छमि तं तं सच्चउ। णं तो करमिज्जइ हले पच्चउ"।
—रामायण ४६।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसल-णयरें पराइय जावेहिँ। दिणमणि गउ अत्थवणहों तावेहिँ।
जत्यहों पिययमेण णिव्वासिय। तहों उववणहों मज्झें आवासिय।
कहवि विहाणु भाणु णहि उग्गउ। अहिमुहु सज्जण-लोउ समागउ।
कंतहितणिय कंति पेंक्खेप्पिणु। पभणइ पोमणाहु विहसेप्पिणु।
"जइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ। महिलउ होंति सुट्ठु णिल्लज्जउ।
दरदाविय कडक्ख-विक्खेवउ। कुडिलमइउ वड्ढिय अवलेवउ।
वाहिर धिट्ठउ गुण-परिहीणउ। किह सयखंडु ण जंति तिहीणउ।
णउ गणंति णिय-कुलु मइलंतउ। तिहुयणें अयस-पडहु वज्जंतउ।
अंगु समोड्डेंवि विद्धिक्कारहों। वयणु णिएंति केम भत्तारहों"।
सीय ण भीय सइत्तण गव्वें। वलेंवि पवोल्लिय मच्छर गव्वें
"पुरिस-णिहीण होंति गुणवंतिं'वि। तियहें ण पत्तिज्जंति मरंतिं'वि।

सीता—साँचे इच्छउँ दशवदनू ।.... ।
इच्छउँ यदि मम मुख न निहारै ।
यदि पुनि नयनानंदनहिं, न समर्पेंउ रघुनंदनहिं ।
तो हौं इच्छउँ एहु हले, पुरि फेंकंती उदधि-जले ।......
इच्छउँ नन्दन-वन मज्जंता । इच्छउँ पट्टन पातल जंता ।
इच्छउँ दशमुख-तरु छिद्यंता । तिल-तिल राम-शरेंहिं भिद्यन्ता ।
इच्छउँ दसहु शिरा निपतंता । सरें हंसाहत इव शतपत्रा ।
इच्छउँ अन्तःपुर रोवंती । केश-विसंस्थुल ढाह भरंती ।
इच्छउँ छिद्यंता ध्वज-चिन्हा । इच्छउँ नाचंता कावंधा ।
इच्छउँ धूमा धारिज्जंता । चौदिशि सुहडी चिता वलंता ।
जो जो इच्छउँ सो सो साँचय । जनु तो करऊँ मैं फलें प्रत्यय ।
—रामायण ४९।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसलनगरे पहुँचेउ जव्वहिं । दिनमणि गउ अस्तमनउ तव्वहिं ।
जहँवा प्रियतमेहिं निर्वासिय । तँहि उपवनहि माँझ आवासिय ।
कहव विहान भानु ना उग्गउ । अभिमुख सज्जन लोग समागउ ।
कांतहि-केरि कांति पेखियवी । प्रभणै पद्मनाभ विहसियवी ।
"यदपि कुलग्रताउ निरवद्या । महिलउ होहिं सुघू[1] निर्लज्जा ।
तनिकं दावें कटाक्ष-विक्षेपउ । कुटिलमयिउ वाढिय अवलेपउ ।
वाहर ढीठउ गुण-परिहीना । किमि शतखंड न जांति त्रिहीनउ ।
नहि गणहीं निजकुल मइलंता । त्रिभुवनें अयश-पटह वाजंता ।
अंग समोडेंहु धिक्धिक्कारहँ । वदन नियंति केम भर्तारहँ" ।
सीय न भीत सतीत्वहि गर्वें । वलेंहु प्रवोल्लेंउ मत्सर-गर्वें ।
"पुरुषा हीन होहिं गुणवंतउ । तियहिं न पतियायहीं मरंतिउ ।

---

[1] केवल

घत्ता । खड्डुलक्-कड्डु सलिलु वहंतें यहों, पउराणियहें कुलग्गयहें ।
रयणायरु खारइ देंतउ, तों वि ण थक्कइ णं णेम्मयहें ॥८॥
साणु ण केणवि जणेण गणिज्जइ । गंगा णइहें तंजें ण्हाइज्जइ ।
ससि स-कलंकु तहि जें पह णिम्मल । कालउ मेहु तहि जें तडि उज्जल ।
उवलु अपुज्ज ण केणवि छिप्पइ । ताहि पडिम चंदणें ण विलिप्पइ ।
धुज्जइ पाउ पंकुजइ लग्गइ । कमल-माल पुणु जिणहों वलग्गइ ।
दीवउ होइ सहावें कालउ । वट्टि सिहएँ मंडिज्जइ आलउ ।
णर-णारिहि एवड्डउ अंतरु । मरणें वि वेल्लि ण मेल्लइ तरुवर ।
एह पइ कवण वोल्ल पारंभिय । सइ वडाय मइ अज्जु समुब्भिय ।
तुहु पेक्खंतु अच्छु वीसत्थउ । डहउ जलणु जइ डहिवि समत्थउ ।
घत्ता । किं किज्जइ अण्णइ दिव्वें, जेण विसुज्झहों महु मणहों ।
जिह कणय-लोलि डाहुत्तर, अच्छमि मज्झें उ आसणहों" ॥९॥
—रामायण ८३।७-९

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेप—

परवलें दिट्ठएँ राहव-वीरु पयट्टउ । रइ रण-रहसेण उरे सण्णाहु विसट्टउ ।
सो राहव पहरण-हत्थाएँ । दणुवइ णिद्दलण-समत्थाएँ ।
दीहर-मेहल-गुप्पंताए । चंदण-कद्दमें खुप्पंताए ।
विच्छोइय मणहर कंताए । किय-माया सुग्गीवें ताए ।
रण-रहमुद्धूलिय-गत्ताए । अप्फालिय वज्जावत्ताए ।
आवीलिय तोणा-जुयलाए । किंकिणि ललंत वल-मुहलाए ।
कंकण-णिवद्ध करकमलाए । वित्थिण्णुण्णय वच्छयलाए ।
कुंडल-मंडिय-गंडयलाए । चूडामणि-चुंविय-भालाए ।
भागुन्न-गुनिआगल-वयणाए । रत्तुप्पल-सण्णिह-णयणाए ।
जं सेंन - सण्णद्धएँ दिट्ठाए । तं लक्खणे वि आलुद्धाए ।
—रामायण ६०।१

घत्ता। सडरट सलिल वहंतियहु, पटरानियह कुलग्रयहु।
रतनाकर खारइ देतउ, तोपि न थाकै जनु निमंये ॥८॥
सोउ न कोइहें जनेहिं गणीजै। गंगानदिहिं सोउ नहईजै।
शशि सकलंक ताह प्रभाँ निर्मल। कालउ मेघ ताह तडि उज्वल।
उपल अपूज्य न कोउँ छूवई। तेहि प्रतिमा चंदन लेपइ।
धोइये पाव पंक यदि लागै। कमल-माल पुनि जिनहु समपैं।
दीपउ होहि स्वभावे कालउ। वाति शिखहिं मंडिज्जै आलउ।
नर-नारिहीं एवडउ[1] अंतर। मरतेँउ वेलि न मेलैं[2] तरुवर।
एहु तैं कवन बोलि प्रारंभिउ। सति वड़ाइ मैं आज समुज्भिउ।
तुह देखंत होहु विश्वस्ता। दहउ ज्वलन यदि दहन-समर्था।
घत्ता। का कीजै दूसर दिव्येहिं[3], जाते विशुद्धइ मम मना।
जिमि कणक-लोलें दाहुत्तर, रहहुं मांझहि आसना ॥६॥
—रामायण ८३।१-६

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

पर वले दीख राघववीर। रवि रण लसेहिं उर सन्नाह निबद्धउ।
सो राघव प्रहरण-हस्ताऊ। दनुपति-निर्दलन-समर्थाऊ।
दीरघ-मेखल गोप्यंताऊ। चंदन-कर्दमें लेप्यंताऊ।
वीछोहिउ मनहर-कान्ताहीं। कृत-माया सुग्रीवें ताहीं।
रण-रसेँहि धूसित गात्राए। आस्फालिय वैयावर्त्याए।
आ-वारेँउ तूणी-जुगलाए। किंकिणि-ललंत वल-मुखराए।
कंकण-निबद्ध-करकमलाए। विस्तीर्णु-'व्रत-वक्षतलाए।
कुंडल - मंडित - गंडतलाए। चूडामणि - चुंवित - भालाए।
भासुर - पुलकाकुल - वदनाए। रक्तोत्पल - सन्निभ - नयनाए।
जो सेन-सनद्धा-दीखाए। सो लक्ष्मणेँहू आलुभ्याए।
—रामायण ६०।१

---

[1] एतना [2] छाड़े [3] आगके गोले आदिसे सतीत्व परीक्षा

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

पइजारूढु णराहिउ जावेंहिं । साहणु[१] मिलिउ असेसु'वि तावेहिं ।
लेहु लिहेप्पिणु जग-विक्खायहों । तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहो ।
अग्गएँ घित्तु वद्धलं पिक्खुव । हरिणक्खरहिँ लीण णं डिक्खुव ।
सुंदरु पत्तु वंतु वरसाहु'व । णाव वहुल सरि गंगपवाहु'व ।
दिट्ठु राय तहिँ आय अणंतवि । सल्ल-विसल्ल-सीह-विक्कंतवि ।
दुज्जय-अजय-विजय-जय-जय मुहुँ । णर-सद्दूल-विउल गय-गय मुहुँ ।
रुद्दवच्छ-महिवच्छ-महद्धय । चंदण-चंदोयर-गरु(ड)द्धय ।
केसर-मारि-चंड-जमहंटा । कोंकण-मलएँ-पंडिया-'णट्टा ।
गुज्जर-गंग-वंग-भंगाला । पइविय-पारियत्त-पंचाला ।
सिंघव-कामरूव-गंभीरा । तज्जिय-पारसीय-परतीरा ।
मरु-कण्णाड-लाड-जालंधर । टक्क-हीर-कीर-खस-वब्बर ।
अवरवि जे ऍक्केक्क-पहाणा । ....
—रामायण ३०।२

घत्ता । जे अल मलवल पवल-वले, हरि-वल-वलेहि साहिया ।
ते णरवइ लवणंकुसेहिँ, सवसि करेप्पिणु साहिय ।।५।।
खस-सव्वर-वव्वर-ढक्क-कीर । कउवेर-कुरव-सोंडीर-वीर ।
तुंगं-'ग-वंग-कम्होज्ज-भोट्ट । जालंधर-जवणा-जाण-जट्ट ।
कमीरो-'सीणर-कामरुव । ताइय-पारस-काहार-सूव ।
णेपाल-वट्ट-हिंडीव-'तिसर । केरल-काहल-कइलास-वसिर ।
गंधार-मगह-मद्दा-हिवावि । सक-सूरसेण-मरु-पत्थिवावि ।
एयवि अवरवि किय वस-विहेय । पल्लट्ट पडीवासेहि लेय ।
—रामायण ८२।६

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

परि-आरुढ नराधिप जव्वहिं। साधन[1] मिलेंउ असेसउ तव्वहिं।
लेख लिएवउ जग-विख्यातहु। तुरत विसजउ महिहर-रायहु।
आगे लियउ वद्धलं पेखुंव। हरिणासरहिं लीन जनु डिक्खुंव।
सुंदर पात्रवंत वर साधुंव। नाव-बहुल सरि गंग-प्रवाहुंव।
दीख राय तहँ आय अनंतउ। सल्ल-विसल्ल-सिंह-विक्रांतउ।
दुर्जय-अजय-विजय-जय-जय मुख। नर-शार्दूल-विपुलगज-गजमुख।
रुद्रवत्स-महिवत्स-महाध्वज। चंदन-चंदोदर-गरुडध्वज।
केसर-मारि-चंड-यमघंटा। कोंकण-मलय-पंडिया-'नट्टा।
गुर्जर-गंग-वंग-भंगाला। पह्लविय-पारियात्र-पंचाला।
सिंधव-कामरूप-गंभीरा। ताजिक-पारसीक-परतीरा।
मरु-कर्नाट-लाट-जालंधर। टक्क-अहीर-कीर-खस-ववंर।
अवरहु जे ऍक-एक प्रधाना। ....।

—रामायण ३०।२

घत्ता। जे अलमत वल प्रवलवलें, हरिवल वलेहिं साधिया।
ते नरपति(हूँ) लव-कुशेहिं, स्ववश करीय प्रसाधिया ॥५॥

खस-सवंर-ववंर-ढक्क-कीर। कौवेर-कुरव-शौंडीर-वीर।
तुंग-'ङ्ग-वंग-कंबोज-भोट्ट। जालंधर-यवना-जान-जट्ट।
कश्मीर-उशीनर-कामरूप। ताजिक-पारस-काहार-सूव।
नेपाल-घट्ट-हिंदिव तिसरा। केरल-कोहल-कैलाश-वशिर।
गंधार-मगह-मद्र-आहिवाउ। शक-शूरसेन-मरु-पार्थिवाउ।
एतउ अवरउ किउ वश-विवेय। पलटेंउ प्रतीवासेहिं लेय।

—रामायण ८२।६

---

[1] रण-साधन, सेना

(३) योधाओंकी उमंगें

अण्णेक्क सुहड सण्णद्ध केवि । णिय कंतहु आलिंगणु करेवि ।
अण्णेकहु धण तंवोलु देइ । अण्णेक्क समप्पिउ पिउ ण लेइ ।
मइ कन्तें समाणे'चउदलेहिँ । हयपण्णेंहि रहवर-पोप्फलेहिँ ।
णर-वर संचूरिय-चुण्णएण । रिउ-जयसिरि-वहुअएँ दिण्णएण ।
अण्णेकहों जाइँ सुकंत देइ । ऊहुल्लइँ फुल्लइँ नतरु लेइ[1] ।
ण समिच्छमि हँउ तुहु लेहि भज्जें । एत्तिउ सिरु णिवडइ सामि-कज्जें ।
अण्णेक्कहों धण-भूसणइँ देइ । अण्णेक्कु तंपि तिण-समु गणेइ ।
किं गंधें किं चंदण-रसेण । मइ अंगु पसाहेव्वउ जसेण ।
घत्ता । अण्णेक्कहों धण अप्पाहइ, हिम-ससिकंत-समुज्जलइँ ।
करिकुंभइ णाह दलेप्पिणु, आणेज्जहि मोत्ताहलइँ ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

केवि जस-लुद्ध । सण्णद्ध-कोह । केवि सुमित्त-पुत्त । सुकलत्त-चत्त-मोह ।
केवि णीसरंति वीर[2] । भूवर'व्व तुंगधीर ।
सायर'व्व अप्पमाण । कुंजर'व्व दिण्णदाण ।
केसरि'व्व उद्धकेस । चत्त-सव्व-जीवियास ।
केवि सामि-भत्ति-वंत । मच्छिरग्गि-पज्जलंत ।
केवि आहवे अभंग । कुंकुमं पसाहि-अंग ।
केवि सूर साहिमाणि । सत्ति-सूल-चक्कपाणि ।
केवि गीढ वारुणत्थ । तोण-वाण-चाव-हत्थ ।
कुद्ध लुद्ध-मुद्ध केवि । णिग्गयासु सण्णहेवि ।

—रामायण ५६।२

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता[1]। कोइ पधाइउ हणु हणु सद्दें, परिहइ कोइ कवउ आणंदें।
रण-रसियहों रोमंचुब्भिण्णहों, उरें सण्णाहु ण माइउ अण्णहों ॥२॥
पभणइ कावि "कंत! करि-कुंभे जेत्तडाइँ। मुत्ताहलाइँ लेवि महु आणेज्जहि तेत्तडाइँ"।
कावि कंत-चिंधइ अप्पाहइँ। कावि कंत णिय-कंतु पसाहइँ।
कावि कंत-मुह यंति करावइँ। कावि कंत दप्पणु दरिसावइँ।
कावि कंत पिय-णयणइ अंजइँ। कावि कंत रण-तिलउ पउंजइ।
कावि कंत स-वियारउ जंपइ। कावि कंत तंवोलु समप्पइ।
कावि कंत-विवाहर लग्गइ। कावि कंत आलिंगणु मग्गइ।
कावि कंत ण गणेइ णिवारिउ। सुरयारंभु करेइ णिरारिउ।
कावि कंत-सिरें वंधइ फुल्लइँ। वत्थइ परिहावई अमुल्लइ।
कावि कंत आहरणइ ढोयइँ। कावि 'कंत परमुहइ पजोयइँ।
घत्ता। कहवि अंगे रोसहु ण माइय, पिय रण-वहुअएँ सहुँई सगइया[2]।
जइ तुहु तहें अणुराइउ वट्टइ, तो महुँ ण हवय देवि पयट्टइ ॥३॥
पभणइ कोवि "वीरु जइ चवहि एव भज्जे। तो वरें तहें जें देमि जा जुत्त सामिकज्जे।"
कोवि भणइ "गयगंडवलग्गइ। आणवि मुत्ताहलइँ धयग्गइँ।"
कोवि भणइ "णउ लेमि पसाहणु। जाव ण भंजमि राहव-साहणु।"
कोवि भणइ "मुहवित्ति ण इच्छमि। जाव ण सुहड छडक्क पडिच्छमि।
कोवि भणइ "ण णिहालमि दप्पणु। जाव ण रणि विणिवाइउ लक्खणु।"
कोवि भणइ "णउ अंक्खिउ अंजमि। जाव ण सुरवहु-जण-मण-रंजमि।"....
कोवि भणइ "णउ सुरउ समाणमि। जाव ण भडहु कुलक्खउ आणमि।"
कोवि भणइ "धणि फुल्ल ण वंधवि। जाव ण रणें सर धोरणि संधवि"।
घत्ता। कोवि भणइ "धणें णउ आलिंगमि, जाव ण दंति-दंत आलिंगमि"।
कोवि कयवि ण विन्नि आहारहों, जाव ण दिण्ण सीय दहवयणहों ॥४॥

---

[1] तोमर-छंद [2] सट्टइ-चाहिये

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता । कोइ प्रधायउ हन-हन शब्दें परिहरि कोउ कवहुँ आनंदे ।
रणरसिया रोमांचु-छिद्रहँ । उरें सन्नाह न आयउ अन्यहँ ।।२।।
प्रभणै कोइ "कंत ! करिकुंभें जेत्तनाइं । मुक्ताफलाइं लेवि आनीजै तेत्तनाइं ।"
कोउ कंत चिन्हाई पूजै । कोइ कंत निज-कंत प्रसाधै ।
कोइ कंत-मुख धोवन करावै । कोइ कंत दर्पण दरसावै ।
कोइ कंत-प्रिय-नयनहिं अंजै । कोइ कंत रणतिलक प्रयोगै ।
कोइ कंत सविकारउ जल्पै । कोइ कंत तांबूल समर्पैं ।
कोइ कंत-विंवाधर लागै । कोइ कंत आलिंगन माँगै ।
कोइ कंत न गनेइ निवारिउ । सुरतारंभ करेइ निरारिउ[1] ।
कोइ कंत शिरें बाँधै फूलहिं । वस्त्रहिं पहिरावै अनमोलहिं ।
कोइ कंत आभरणहिं योजै । कोइ कंत परमुखहिं प्रयोगै ।
घत्ता । "कहवि अंगें रोसहु न भाइय, प्रिय रण-वधु-संग ईर्ष्याइय ।
यदि तुहुँ तहँ अनुरागिय वट्टै[2], तो मम न हवै[3] देवि प्र-वट्टै ।।३।।
प्रभनै कोइ "वीर ! यदि वोलु एव भार्ये । तो वरु तेहिहि देउँ जो युक्त स्वामि-कार्ये ।"
कोइ भनै "गजगंड विलग्नहिं । आनवि मुक्ताफलहिं ध्वजाग्रहिं ।"
कोइ भनै "ना लेहुँ प्रसाधन । जौ लों न भंजउँ राघव-साधन ।"
कोइ भनै "मुखवृत्ति न इच्छउँ । जौ लौं न सुभट-छडक्क प्रतीच्छउँ ।
कोइ भनै "न निहारौं दर्पण । जौ लौं न रण विनिपातौं लक्ष्मण ।"
कोइ भनै "ना आँखिहुँ अंजौं । जौ लौं न सुर-वधुजन-मन रंजौं ।
कोइ भनै "न सुरति सम्मानौं । जौ लों न भटहँ कुल-क्षय आनौं ।
कोइ भनै "धनि ! फूल न वाँधव । जौ लों न रणें सर पाँती साँधव ।"
घत्ता । कोइ भनै "धनि ! ना आलिंगौं, जौ लों न दंति-दंत आलिंगौं ।"
कोइ "करवि न वृत्ति आहारहु, जौ लों न दीन सीय दशवदनहुँ ।।४।।

---

[1] अत्यंत [2] वाटै (काशी)=है [3] हौवे (काशी)=है

गरुअ पउन्हरीए अच्चंत णेहिणीए । रणें पइसंतु कोवि सिक्खविउ गेहिणीए ।
णाह णाह ! समरंगणें काले । तूर भेरि-दड़ि-संख-रव-भाले ।
उत्थरंत वर वीर समुद्दे । सीह-णाय णर-णाय-रउद्दे ।
मत्त-हत्थि गल-गज्जिय सद्दे । अब्भिडिज्ज ' पर राहवचंदे ।
कावि णारि परिहासइ एमं । तेम जुज्झु णवि लज्जमि जेवं ।
कावि णारि पडिवोहइ णाहं । भग्गमाणें पइँ जीवमि णाहं ।
कावि णारि पडिचुंवणु देइ । कोवि वीरु अवहेरि' करेइ ।
कंतें कंतें मइ मंदु लएवी । कित्ति-वहुय रणें परिचुंवेवी ।
कावि णाहि णवकारु करेइ । कोवि वीरु रणें-दिक्ख लएइ ।

—रामायण ५९।३-५

थोवंतरु जाव परिभमइ । सहुँ कंतएँ कोवि वीरु चवइ ।
सुंदरि ! मृगणयणे ! मरालगइ ! तं पहु पसाउ कि वीसरइ ।
तं पेसणु तऊ लग्गियउँ । तंजीविउ दाणु अमग्गियउँ ।
तं उच्चासणु मणें वेयडिउ । तं मत्तगइंदें-खंधें चडिउ ।
तं मेहलु तं कंठाहरणु । तं चेलिउँ तं जें समालहणु ।
तं फुल्लु सहत्थें तं तंवोलु । तं असणु स-परियलु कच्चोलु ।
तं चीरु भारु चामीयरहो । अवरवि पसाय लंकेसरहो ।
एयहुँ जसु एक्कइ णावडइ । सो सत्तमि णरयण्णवें पडइ ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेक्खु पेक्खु आवंतउ साहणु । गलगज्जंत महग्गय-वाहणु ।
पेक्खु पेक्खु हिंसंत तुरंगम । णहयलें विउलें भवंति विहंगम ।
पेक्खु पेक्खु निवड़ धूयंतइँ । रह-चक्कइँ महियलें खुप्पंतइँ ।
पेक्ख पेक्खु कड्ढिय असिवत्तइँ । धाणुक्किय फारक्किय पत्तइँ ।

गरुअ पदधरिथि अत्यन्त स्नेहनियहिँ। रणें पइसंत कोइ सिखायउ गेहिनियहिँ।
"नाथ नाथ! समरंगण काले। तूर्य-भेरि-दँडि-शँख-रव-माले।
उत्तरंत वरवीर समुद्रे। सिंहनाद नरनाद रउद्रे।
मत्त-हस्ति-गलगर्जित शब्दे। आभिडिया पर राघवचंदे।"
कोइ नारि परिहासै एवं। "तिमि जूझौ नहि लज्जउँ येवं।"
कोइ नारि प्रतिबोधै नाथहँ। "भागंते तोंहि जीवउँ ना हउँ।
कोइ नारि प्रतिचुंवन देई। कोई भी अवधीर[1] करेई।
"कंत कंत! मैं मृदू लपेवी। कीर्त्ति-वधुअ रणें परिचुंवेवी।"
कोइ नाहिँ नमकार करेई। कोइ वीर रण-दीक्ष लएई।

—रामायण ५९।३-५

थोडंतर यावत् परिभ्रमई। कांतासों कोइ वीरा कहई।
"सुंदरि! मृगनयने! मरालगति। सो प्रभु-प्रसाद का बीसरइ।
सो प्रेषण[2] तऊ लागेऊँ। सो जीवित-दान अमाँगेऊँ।
सो उच्चासन मन वीजडऊ। तेंहि मत्तगयंद-स्कन्धें चढिऊँ।
सो मेहरि सो कंठाभरणू। सो चोलिउ सोंउ संम-लभनू।
सो फूल स्वहत्थें सो तमूल। सो अशन स-परिदल[3] कट्टोर।
सो चीर भार चामीकरहू। अवरो प्रसाद लंकेश्वरहू।
एतहुँ यश एकइ ना वडई। सो सतवें नरकार्णव पडई।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेखु पेखु आवंतउ साधन[4]। गलगर्जंत महागज-वाहन।
पेखु पेखु हिनहिनत तुरंगम। नभतलें विपुल भवंति विहंगम।
पेखु पेखु चिन्हा कंपंता। रथचक्का महितलहिँ खनंता।
पेखु पेखु काढ़िय असिपत्रा। धानुष्केंहिँ फरकायो पत्रा।

---

[1] तिरस्कार [2] आज्ञा [3] थाली [4] सेना

पेक्खु पेक्खु वज्जंतइ तूरइँ। णाणा-विह निनाय-गंभीरइँ।
गलगज्जंत धणुह-टंकारउँ। सुहड विमोक्क पोक्कहक्कारउँ।
पेक्खु पेक्खु सय-संख रसंता। णाइ स दुक्खउ सयणँ रुअंता।
पेक्खु पेक्खु पचलंतउ णरवइ। गह चक्कहहों मज्झेँ सणि णावइ।
दसउर-[1]णाहु णिहालइँ जावेँहिँ। सयलु' वि सेण्णु पराइउ तावेँहिँ।

—रामायण २५।४

घंटा-टंकार-मणोहराइँ। उड्डंत मत्त-महुयर-सराइँ।
ससि-सूर-कंत-कर-णिब्भराइँ। बहु-इंद-णील-किय-सेहराइँ।
पवलय-माला रंखोलिराइ। मरगय-रिंछोलिऍं सोहिराइँ।
मणि-पोमराय-वण्णुज्जलाइँ। वेडुज्ज-वज्ज-पह-णिम्मलाइँ।
मुत्ता-हल-माला धवलियाइँ। किंकिण-घग्घर-सर-मुहलियाइँ।
धूवंत धवल-धुय-धय-वडाइँ। वज्जंत संख-सय-संघडाइँ।
सुग्गीवेँ रयणुज्जोइयाइँ। विहि विण्णि विमाणइ ढोइयाइँ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक वाजे

पडु-पडह-संख-भेरी-रवेण। कंसाल-ताल-दडिरउ रवेण।
कोलाहल काहल-णीसणेण। वड्ढीअ मुउंदा मीसणेण।
धंमुक्क करउ-टिविला-रवेण। झल्लरि-रुंजा-डमरुअ-करेण।
पडिढक्क-हुडुक्का-वज्जिरेण। घुम्मंत-मत्त-गय-गज्जिरेण।
तंउविय-कण्ण-विहुणिय-सिरेण। गुमु-गुमु-गुमंत इंदीवरेण।
पक्खरिय तुरय पवणुज्झडेण। धूवंत-धवल-धय-धूवडेण।
मण-गमणा मेल्लिय संदणेण। जम-वरुण-कुवेर-विमद्दणेण।
वंदिण जयकारु'ग्घोसिरेण। सुर-बहुअ-सत्थ-परितोसणेण
घत्ता। सहु सेण्णेँ सहइ दसाणणु णीसरिउ।
छण-चंदु'व तारा णियरेँ परियरिउ॥१॥

—रामायण ६३

---

[1] मालवा का दशपुर

पेखु पेखु बाजंता तूरइँ। नानाविध निनाद-गंभीरइँ।
गलगर्जंत धनुप-टंकारा। सुभट विमोचु पुक्क हंकारा।
पेखु पेखु शतशंख रसंता। न्याइँ स्वदुःखउ स्वजन रुदंता।
पेखु पेखु प्रचलंतउ नरपति। ग्रह-चक्कहु माँझे स निशापति।
दशपुर-नाथ निहारेँउ जव्वेँ। सकलहु सैन्य पराइउ तव्वेँ।

—रामायण २५।४

घंटा-टंकार मनोहराइँ। उड्डुंत मत्त-मधुकर-स्वराइँ।
शशि-सूर-कांत-कर-निर्भराइँ। बहु-इन्द्रनील-कृत-शेखराइँ।
प्रवलय-माला रंखोलिराइ[1]। मरकत-पक्तीहीँ सोहराइँ।
मणि-पद्मराग-वर्णोज्ज्वलाइँ। वैदूर्य-वज्र-प्रभ-निर्मलाइँ।
मुक्ता-फल-माला-धवलिताइँ। किंकिणि घर्घर स्वर मुखरिताइँ।
कंपंत धवल-धुत-ध्वज-पडाइँ। बाजंत शंख-शत-संघटाइँ।
सुग्रीवेँ रतनोद्योतिताइँ। त्रिधि दोउ विमानइँ ढोइयाइँ।

—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पटु पटह-शंख-भेरी-रवेहिँ। कंसाल-ताल-दडिरव-रवेहिँ।
कोलाहल काहल-निःस्वनेहिँ। वड्ढीय मृदंगा मिश्रणेहिँ।
धंमुक्क-करड-टिविला-रवेहिँ। झल्लरि-हंजा-डमरू-करेहिँ।
प्रतिढक्क-हुडुक्का बाजिरेहिँ। घूमंत मत्तगज-गाजिरेहिँ।
तांडविय कर्ण-विधुनित-शिरेहिँ। गुम-गुम-गुमंत इंदीवरेहिँ।
पाखरिय तुरग-पवनोज्झटेहिँ। धुन्वंत-धवल-ध्वज-घूघटेहिँ।
मनगमना छोडी स्यंदनेहिँ। यम-वरुण-कुवेर-विमर्दनेहिँ।
वंदिन जयकारु-द्घोपणेहिँ। सुर-वधुत्र-सार्थ-परितोपणेहिँ।

घत्ता। सवसेनहिँ सह दशानन नीसरिऊ।
क्षण-चंदि'व तारा-निकरे परिचरिऊ॥१॥

—रामायण ६३।१

[1] सांकल

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहन[1] का युद्ध—

पच्छइ मेहवाहणो गहिय-पहरणे णिग्गउ तुरंतो।
णं जुग-खय-सणिच्छरो भरिय-मच्छरो अहर-विप्फुरंतो।
सो'वि पधाइउ रहवरें चडियउ। णं केसरि-किसोरु णिव्वडियउ।
संचल्लइए तोयदवाहणें। तूरइ हयइ असेस'वि साहणे।
मंणज्झंति केवि रयणीयर। वर-तोणीर-वाण-धणु-वर-कर।
कें वि तिक्खर-खग्गु-'क्खय-हत्था। केवि गुरुहु ऊणमिया-मत्था।
केवि चडिय हिंसंत-तुरंगेंहिं। केवि रसंत-मत्त-मायंगेंहिं।
केवि रहेंहि कें वि सिविया-जाणेहिं। केवि परिट्ठिय-पवर-विमाणेंहिं।
पुच्छिउ णियय-सारही, "अहो महारही।
दिढइँ जाइँ जाइँ, कहि कित्तियहँ।
अत्यइ रणहों समत्थइ, रहिहें चडावियइँ।"

(हथियारोंकी शक्तिकी तुलना—)

तो एत्थंतरि पभणइ सारहिं। "अत्थइँ अत्थि देव ! जइ पहरहिं।
चक्कइ पंच मत्त वर-वायइँ। दस असिवरइँ अणिट्ठिय गावइँ।
बारह भस पण्णारह मोग्गर। सोलह लउडि दंड रणें दुद्धर।
वीस फरसु चउवीस तिसूलइँ। कोंतइ तीस सत्तु-पडिकूलइँ।
धण पणतीस चाउ वमुणंदा। चाल पंचास तीस अद्धंदा।
मेल्लइ सट्ठि खुरुप्पइँ सत्तरि। अण्णइँ कणय-चडिय चउहत्तरि।
असीति सत्तिउ णवइ भुसंढउ। जाउ दिवे दिवें रण-रसि-यट्ठिउ।
सउ णारायहुँ जं परिमाणमि। अण्णहि पुणु परिमाणु ण जाणमि।
घत्ता। बारह णियलइँ सोलह, विज्जउ रह चडिअउ।
जेहि धरिज्जइ समरंगणि, इंदु' वि भिडिअउ ॥५॥

—रामायण ५.३।४-५

---

[1] मेघनाद

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहनका युद्ध—

पाछेइँ मेघवाहन गहिय-प्रहरणा निर्गतउ तुरंता।
जनु युग-क्षय शनिश्चर, भरिय-मत्सर अधर-विस्फुरंता।
मोउ प्रयायउ रथवर चढियउ। जनु केसरि-किशोर नीवड़ियउ।
संचलतेइँ तोयदवाहने। तूर्यहिँ हयहिँ अशेषहु साधनें।
सन्नाहंति कोँइ रजनीचर। वरतूणीर-बाण-धनु-वर-कर।
कोँइ तीव्वर-खड्गु-'घात-हत्था। कोइ गुरुहिँ अवनामिय-मत्था।
कोइ चढिय हिनहिनत तुरंगेहिँ। कोइ रसंत मत्त-मातंगेहिँ।
कोइ रथेहिँ कोँइ शिविका-यानेहिँ। कोइ बैठे प्रवर-विमानेहिँ।
पूछेँउ निजय-सारथी, "अहो महारथी!
दृढ जाइँ जाइँ, कहु केत्तियइँ।
अयंइ रणहु समर्थं, रथिहिँ चढावियइँ"।

हथियारोंकी शक्तिकी तुलना

तो एहीँ विच प्रभणेँ सारथी। "अर्थें अहै देव! यदि प्रहरहिँ।
चक्रेँ पाँच सात वर-वायहिँ[1]। दश असि-वरहिँ अनिष्टित गावँ।
वारह झप पन्नारह मुद्गर। सोलह लउरि-दंड रणेँ दुर्धर।
बीस परशु चौबीस त्रिशूलहि। कुंतहिँ तीस शत्रु-प्रतिकूलहिँ।
धन पैंतीस चाप वसुनेंद्रा। चाल पचास तीस अर्धंदा।
सेलहि साठ क्षुरप्रहिँ सत्तर। अन्यहिँ कनक-चढ़िय चौहत्तरि।
अस्सी शक्तिहि नवे भुसुंडिउ। जाउ दिने दिन रण-रसिकस्थिउ।
सौ नाराचोँ जो परिमाणोँ। अन्येहिँ पुनि परिमाण न जानऊँ।
घत्ता। वारह निगडहिँ सोरह विद्या रथ चढियउ।
जेँहि धरिये समरंगणे, इन्द्रहुँ भिडियउ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

---

[1] हथियार

(ख) मेघवाहन और हनूमान्‌का युद्ध—

एक्कल्लउ सुहडु अणंत-वलु। पप्फुल्लु तोवि तहों मुह-कमलु।
परि-सक्कइ थक्कइ उल्ललइ। हक्कारइ पहरइ दणु दलइ।
आरोक्कइ ढुक्कइ उत्थरइ। परिउंभइ' रुंभइ वित्थरइ।
णवि छिज्जइ भिज्जइ पहरणेहिँ। जिह जिणु संसारहों कारणेहिँ।
हणुयहों पासेंहि परिभमइ वलु। णं मंदल-कोडिहि उयहि-जलु।
घत्ता। धरेंवि ण सक्कइ वलु सयलु 'वि उक्खय-पहरणु।
मारुहें पासेंहि परिभमइ मंदरहों णाइ तारायणु॥६॥
धाइउ पवणणंदणो दणु-विमद्दणो वलहों पुलइ-अंगो।
हउ-रहु रह-वरेण गउ गय-वेरण, तुरएण वर-तुरंगो॥
सुहडें सुहडु कवंध कवंधें। छत्तें छत्तु चिंधुहउ चिंधें।
वाणें वाणु चाउ वर-चावें। खग्गें खग्गु अणिट्ठिय-गव्वें।
चक्कइँ चक्कु तिसूल तिसूलें। मोग्गर मोग्गरेण हुलिहूलें।
कणएँण कणउ मुसलु वर-मुसलें। कोंते कोंतु रणंगणें कुसलें।
सेल्लें सेल्लु खुरुप्पु खुरुप्पें। फलिहि फलिहु गयावि गय-रुप्पें।
जंतें जंतु एंतु पडिखलियउ। वलु उज्जाणु जेण दरमलियउ।
णासइ सयलु'ण्णाविय मत्यउ। णिग्गइ दुण्णि तुरंगु णिरुत्थउ।
विवरामुहुउ हल्लिय-वयणउ। भग्गमडप्फरु मउलिय-णयणउ।
घत्ता। वियलिय-पहरणु णासंतु णिए' वि णिय-साहणु।
रह-वरु वाहेंवि थिउ अग्गएँ, तोयदवाहणु॥७॥
रावण-राम-किंकरा रणे भयंकरा, भिडिय विप्फुरंता।
विउ सुग्गीव-राहवा विजय-लाह-वाणाइँ हणु भणंता॥
वेवि पयंड वेवि विज्जा-हर। वेंण्णि'वि अक्खय-तोण-धणुह-कर।
वेंण्णि'वि वियउ-वच्छ पुलइय-भुअ। वेण्णि'वि अंजण-मंदोयरि-सुअ

(ग) मेघवाहन और हनुमानका युद्ध—

गुल्लन्तउ सुभट बलवन्तु । भणुहन्त गोउ सनु सुर-भग्गनु ।
पवि-सारइ धावइ उच्छलई । रत्थारे श्रानै सत्तु-दलई ।
सा-रोगे सुयै उच्छलई । पवि-संगे संगे विच्छलई ।
जहि जिउँ जिउँ अग्गलोहि । जिमि जिन नगागर कारलोहि ।
हनुमन्त-बाणेहि परिभग्गं बलु । जनु मदन-कोटिहि उदधि-जलु ।
घत्ता । धरेंव न सक्कइ बल मजन्तु उवगाइ-प्रारण ।
मारुति-बाणेहि परिभग्गं मंदर-कोटि'व सागरण ॥६॥
धावेंउ पवननंदनो दनु-विमर्दनो । चलचलु पुलकित-अंगो ।
हय-रथ रथवरेहिं गयेंउ गजवरेहिं तुरंगेहि वरतुरंगा ।
सुभटेहिं सुभट कबंध कबंधेहिं । छत्रें छत्र निकहउँ चिन्हा ।
चापें चाप चाप वर-चापें । खड्गें खड्ग अनिष्ठित-गर्वें ।
चक्रहिं चक्र त्रिशूल त्रिशूलें । मुद्गर मुद्गरेहिं हुल्लिहुलें ।
कनकेहिं कनक मुसल वर-मुसलें । शूलें शूल रणांगण कुशलें ।
सेलें सेल क्षुरप्र, क्षुरप्रें । फरिहिं फरिहु गजाहु गज-रूपें ।
यंत्रें यंत्र श्रावन प्रतिच्चालियेंउ । बल उथाल येन दरमलियेंउ ।
भागै सकल नराधिप सबउ । निर्गत दोउ तुरंग-निरखंउ ।
विवर-मुखाहु म्लानिय-वदनहु । भग्न-'भिमान मुकुलिया-नयनहु ।
घत्ता । विललिउ अक्षरण नासंत निजहु निज-साधन ।
रथवर वाहहु रहु आगे, तोयदवाहन ॥७॥
रावण-राम-किंकरा रण-भयंकरा, भिड़ेंउ विस्फुरंता ।
सुग्रीव-राघव-विजल लाभवाणा हून भनंता ॥
दोउ प्रचंड दोउ विद्याधर । दोऊ अक्षय-तूण-धनुष-कर ।
दोऊ विकट-वक्ष पुलकित-भुज । दोऊ अंजन-मंदोदरि-सुत

वेँण्णि'वि पवण-दसाणण-णंदण । वेण्णि'वि दुद्दम-दाणव-मद्दण ।
वेण्णि'वि पहरण-परवल-चड्डिय । वेण्णि'वि जय-सिरि-वहुअवरुंडिय ।
वेण्णि'वि राहव-रावण पक्खिय । वेण्णि'वि सुर-वहु-णयण-कडक्खिय ।
वेण्णि'वि समर-सएँहिँ जसवंता । वेण्णि'वि पहु-सम्माण-सरंता ।
वेण्णि'वि वीर-धीर भय-चत्ता । वेण्णि'वि परम-जिणिंदहोँ भत्ता ।
वेण्णि'वि अतुल-मल्ल रण-दुद्धर । वेण्णि'वि रत्त-णेत्त-फुरिया-हर ।

घत्ता । विहिमि महाहउ जो असुर-सुरेंदहि दीसइ ।
राहव-रावणहोँ से तेहउ दुक्खरु होसइ ॥८॥

—रामायण ५३।६-८

भिडिअइ वे'वि सेण्णइँ आउ जुज्भु घोरु ।
कुंडल-कडय-मउडणिवडंत कणय-डोरु ।
हण-हण-हणंकारु महारउद्दु । छण-छण-छणंतु गुण-पिंछ-सद्दु ।
कर-कर-करंतु कोयंड-पवरु । थर-थर-थरंतु णाराय-णियरु ।
खण-खण-खणंतु तिक्खग्ग खग्गु । हिलि-हिलि-हिलंतु हय-चंचलग्गु ।
गुलु-गुलु-गुलंत गयवर विसालु । "हणु-हणु" भणंतु णर-वर-विसालु ।
पोप्फम-वसणे गत्तत्त-मालु । धावंत कलेवर सव-करालु ।
झल-झल-झलंतु सोणिय-पवाहु । छिज्जंत चलण तुट्टंत वाहु ।
णिवडंत सीसु णच्चंत रुंड । ऊणल्ल तुरय-धय-छत्त-दंड ।
तेंहि तेहएँ रणे रण-भर-समत्थु । राहव-किंकरु वर-वारणत्थु ।

घत्ता । सीहद्धउ चवल सीह-संदणे चडियउ ।
संतावणु सुहुमारिव्वेँ अब्भिडिउ ॥३॥

वेण्णि'वि सीह-संदणा वेण्णि'वि सीह-चिंधा ।
वेण्णि'वि चाव-करमला वे'वि जगेँ पसिद्धा ।

दोऊ पवन-दशानन-नंदन। दोऊ दुर्दम-दानव-मर्दन।
दोऊ प्रहरण परवल-चढिया। दोऊ जयश्री-वधु आँलिंगिया।
दोऊ राघव-रावण-पक्षिय। दोऊ सुरवधु-नयन-कटाक्षिय।
दोऊ समर-शतेहिँ यशवंता। दोऊ प्रभु-सम्मान स्मरंता।
दोऊ वीर-धीर भय-त्यक्ता। दोऊ परम-जिनेंद्रह भक्ता।
दोऊ अतुल-मल्ल रण-दुर्धर। दोऊ रक्तनेत्र · स्फुरिताधर।
घत्ता। दोंउहि महाहव जो असुर-सुरेंद्रहिँ दीसै।
राघव-रावणँह सो, वैसे दुष्कर होषै[1] ॥८॥

—रामायण ५३।६-८

भिडिया दोऊ सेन आव युद्ध घोर।
कुंडल-कटक मुकुट निपतंत कणक-डोर ·
हन-हन-हनंकार महा-रउद्र। छन-छन-छनंत गुण-पिच्छ-शब्द।
कर-कर-करंत कोदंड-प्रवर। थर-थर-थरंत नाराच-निक
खन-खन-खनंत तीक्ष्णाग्र खड्ग। हिलि-हिलि-हिलंत हय-चंचलाग्र।
गुलु-गुलु-गुलंत गजवर-विशाल। "हन हन" भनंत नरवर-विशा
फुप्फुस, वसने गात्रात्त-माल। धावंत कलेवर शव-कराल।
झल-झल-झलंत शोणित-प्रवाह। छिद्यंत चरण तुट्यंत
निपतंत शीश नाचंत रुंड। फिक्कंत तुरग-ध्वज-छत्र-दंड।
तँह तेहि रणे रणधर-समर्थ। राघव-किंकर वर-वार
घत्ता। सिंहध्वज चपल सिंह-स्यंदन चढियउ।
संतापन सुखमारी इव भिडियउ।
दोऊ सिंहस्यंदना दोऊ सिंहचिन्हा।
दोऊ चाप-करतला दोऊ ज

वेण्णि'वि[1] जस-लुद्ध विरुद्ध कुद्ध । वेण्णि'वि वंसुज्जल कुल-विसुद्ध ।
वेण्णि'वि सुर-वहु-आणंद-जणण । वेण्णि'वि सत्तुत्तम सत्तु-हणण ।
वेण्णि'वि रण-धुर-धोरिय महंत । वेण्णि'वि जिण-सासण-भत्तिवंत ।
वेण्णि'वि दुज्जय जय-सिरि-णिवास । वेण्णि'वि पणई-यण-पूरियास ।
वेण्णि'वि निसियर-णर-वर-वरिट्ठ । वेण्णि'वि रावण-राहवहँ इट्ठ ।
वेण्णि'वि जुज्झंत सिलीमुहेहि । णं गिरि अवरोप्परु सरि मुहेहिँ ।
मारिच्चहों भय भीसावणेण । धणु जीउच्छिण्णु संतावणेण ।
तेण'वि तहों चिर-पेसिय-सरेहिँ । संसारु'व परम-जिणेसरेहि ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्‌का युद्ध

हणुवंत-रणे परिवेढिज्जइ णिसियरेहिँ ।
णं गयण-यले बाल-दिवायरु जलहरेहिँ ।
पर-वलु अणंतु हणुवंतु एक्कु । गय-जूहहों णाइ इंदु थक्कु ।
आरोक्कइ कोक्कइ समुहुँ धाइ । जहि जहि जें थट्ट तहि तहि जें थाइ ।
गय-घड भड-थड भंजंतु जाइ । वंसत्थले लग्गु दवग्गि णाइ ।
एक्कू रहु महाँहवें रस-विसट्टु । परिभमइ णाइँ वलें भइय वट्ट ।
सो णवि, भडु जासु ण मलिउ माणु । सो ण धयउ जासु ण लग्गु वाणु ।. . . .
सो णवि तुरंगु जसु गोंडु ण तुट्टु । सो विण रहु जासु ण रहंगु फुट्टु ।
सो णवि भडु जासु ण छिण्णु गत्तु । तं णवि विमाणु जहि सरु ण पत्तु ।
घत्ता । जगडंतु वलु मारुइ हिंडइ जहिँ जें जहिँ ।
संगाम-महिहें रुंड णिरंतर तहि जें तहिँ ॥१॥
जं जिणेवि ण सक्किउ वर-भडेहि । वेढाविउ मारुइ गय-घडेहि ।
गिरि-सिहिर-गहिर कुंभत्थलेहिँ । अणवरय-गलिय- गंडत्थलेहिँ ।
छण्ण-झंकार-मणोहरेहिँ । घंटा-टंकार-भयंकरेहिँ ।
णंदविय कण्ण उद्ध करेहिँ । मुक्क फुंफेहिं मय-णिज्झरेहिँ ।. . .

---

[1] बंनेदो (गुजराती)

दोऊ यशलुब्ध विरुद्ध क्रुद्ध। दोऊ वंशोज्वल कुल-विशुद्ध।
　　दोऊ सुरवधु-आनंद-जनन। दोऊ सत्त्वोत्तम शत्रु-हनन।
दोऊ रण-धुर-धौरेय महंत। दोऊ जिन-शासन-भक्तिवंत।
　　दोऊ दुर्जय जयश्री निवास। दोऊ प्रणयीजन-पूरिताश।
दोऊ निशिचर-नरवर-वीरष्ट। दोऊ रावण-राघवहँ इष्ट।
　　दोऊ युध्यंत शिलीमुखेहिँ। जनु गिरि अपरोपर सरि-मुखेहिँ।
मारीचहु भय-भीषावणेहिँ। धनुज्या उच्छिन्दु संतापनेहिँ।
　　सोऊ तेहि चिर-प्रेषित-शरेहिँ। संसारि'व परम जिनेवरेहिँ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्‌का युद्ध

हनुमंत-रणे परिवेठिज्जै निशिचरेहिँ।
　　जनु गगनतले वालदिवाकर जलधरेहिँ।
पर-वल अनंत हनुमंत एक। गज-यूथहिँ न्याईँ इंदु थाक[1]
　　आरोकइ कोकइ समुँहे धाइ। जहँ जहीँ ठट्ट तहँ तहीँ थाय[2]।
गज-घट भट-ठट भंजंत जाइ। वंश-स्थले लागि दवाग्नि न्याईं।
　　एको रथ महाहवे रस-विसट्ट। परिभ्रमै न्याईं वले भयावर्त्त।
सो नहिँ भट जासु न मलेँउ मान। सो नहिँ ध्वज जासु न लागु वाण।....
　　सो नहिँ तुरंग जसु गोँड न टूट। सो नहिँ रथ जसु न रथंग फूट।
सो नहिँ भट जासु न छिन्नु गत्त। सो नहिँ विमान जेहि शर न प्राप्त।
　　घत्ता। झगडंत वल मारुति हिंडइ जहँहि जहँ।
　　　　संग्राम-महिहिँ रुंड निरंतर तहँहि तहँ॥१॥
जो जितव न सक्केउ वर-भटेहिँ। वेष्ठाविउ मारुति गजघटेहिँ।
　　गिरि-शिखर-गहिर-कुंभस्थलेहिँ। अनवरत-गलित-गंडस्थलेहिँ।
पट्पद-झंकार-मनोहरेहिँ। घंटाटंकार-भयंकरेहिँ।
　　तांडविय कर्ण ऊर्ध्व-करेहिँ। मुक्त-आंकुशेहिँ मद-निर्भरेहिँ।...

---

[1] ठहरै (वंगला)　　[2] रहै (गुजराती)

रण-रसिऍहि वेहाविद्धएहि । पेल्लिउ पडिवक्खु कइद्धएहि ।
णासइ विहडप्फउ गलिय-खग्गु । चूरंतु परप्फरु चलण-मग्गु ।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जंतउ पेक्खेंवि णियय-सेण्णु । रावणु जयकारेवि कुंभयण्णु ।
धाइउ भय-भीसणु भीम-काउ । णं राम-वलहों खय-कालु आउ ।
परिसक्कइ रण-भूमिहि ण माइ । गिरि-मंदरु-थाणहों चलिउ णाइ ।
जउ जउ जि समच्छरु देइ दिट्ठि । तउ तउ जें पडइ णं पलय-विट्ठि ।
कोंवि वाएँ कोवि भिउडिऍ पणट्ठु । कोंवि ठिउ अवठंभेवि धरणि विट्ठु ।
कोंवि कहवि कडच्छाए णरु णिलुक्कु । कोंवि दूरहोज्जें पाणेहि मुक्कु ।
घत्ता । सुग्गीव वले गरुअउ हुअउ हल्लोहलउ ।
णं अंगरे[1] हत्थि पइट्ठव राउलउ ॥३॥. . .
इत्थंतरे किक्किधाहिवेण । पडिवोहणत्थु आमुक्क तेण ।
उम्मोहिउ उट्ठिउ वलु तुरंतु । कहि कुंभयण्णु वलु वलु भणंतु ।
घत्ता । सयडम्मुहु पुणुवि पडीवउ धावियउ ।
णं उयहि-जलु महि रेल्लंतु पराइयउ ॥५॥
पर-वलु णियेवि समुत्थरंतु । लंकाहिवेण थरहर-थरंतु ।
करि कड्ढिउ णिम्मल चंदहासु । उग्गामिउ णइ दिणयर-सहासु ।
रिउ-साहणें भिडइ ण भिडइ जावँ । सोंडीर-वीर-णर तिण्णि तावँ ।
इंदइ घणवाहण वज्जणक्क । सिर णमिय कियंजलि-हत्थ थक्क ।
"अम्हेंहि जीवंतेंहि किंकरेहिँ । तुहु अप्पणु पहरहि किं करेहिँ" ।
मामिउ सम्माणेवि वद्ध-कोह । तिण्णेंवि समरंगणें भिडिउ जोह ।
चंदोयर-णयहु वज्जणक्कु । घणवाहणु भामंडलहों थक्कु ।
इंदइ सुग्गीवहों समुहु चलिउ । णं मेरु महोयहि पहुँ चलिउ ।
घत्ता । णरु णरवरहों तुरयहों तुरय समावडिउ ।
रहु रहवरहों गयहों महगउ आवडिउ ॥६॥

---

[1] अग्गहरे

रणरसिकेँहिँ वेधा-विद्धएहि । पेल्लेँउ प्रतिपक्ष कपिध्वजेहि ।
नाशइ विहडप्फल गलित-खड्ग । चूरंत परस्पर-चरण-मार्ग ।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जंतउ पेखिय निजय-सैन्य । रावण जयकारहु कुंभकर्ण ।
धायउ भयभीषण भीमकाय । जनु रामवलह क्षयकाल आय ।
परि-सकै न रण-भूमिहि अमाइ । गिरि-मंदर-थानहु चलेउ न्याइँ ।
जेँहि जेहि समक्षहु देइ दृष्टि । सोइ सोइ पडै जनु प्रलय वृष्टि ।
कोइ वाचेँ कोइ भृकुटिहिँ प्रणष्ट । कोइ ठिउ श्रवयंभेहि वराविष्ट ।
कोँइ कोइ कटाक्षहिँ नरउ लूकु । कोइ दूरहीँहि प्राणेहिँ मोचु ।
घत्ता । सुग्रीवहु गरुओ हुयो हल्लाहलउ ।
जनु अग्रहारे पइठउ हस्ति राजुलउ ॥३॥ . .
एहि अन्तर किष्किधाधिपेहिँ । प्रतिवोधनार्थं आमोचु तेहिँ ।
उन्मोहेँउ उठेँऊ वल तुरंत । कहँ कुम्भकर्ण-वलवल भनंत ।
घत्ता । शकट-मुँह पुनि हि प्रतीपउ धावियउ ।
जनु उदधि-जल मही रेल्लंत' परायउ ॥४॥
परवल निजेँहु समुत्थरंत । लंकाधिपेहिँ थर-थर-थरंत ।
करेँ काढेँउ निर्मल चंद्रहास । उग्गियउ जनू दिनकर-सहस्र ।
रिपु-सेना भिडइ न भिडइ याव । शौंडीर-वीर-नर तीन ताव ।
इंद्रजि-घनवाहन-वज्रनाक । शिर नमिय कृतांजलि-हस्त थाक ।
"हम सव जीवंतेहिँ किंकरेहिँ । तुहु अपने प्रहरै किं करेहि ।"
स्वामिय सम्मानेहु वद्ध-क्रोध । तीनौ समरंगणेँ भिडेँउ योध ।
चंद्रोदर-तनयहु वज्रनाक । घनवाहन भामंडलहुँ थाक ।
इन्द्रजि सुग्रीवहि समुह चलिउ । जनु मेरु महोदधि-मथन च्चलिउ ।
घत्ता । नर नरवरहुँ तुरयहु तुरय समापडिऊ ।
रथ रथवरहुँ गजहुँ महागज आभिडिऊ ॥६॥

(ङ) **सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध—**

किंक्किध-णराहिउ धरिउ जाव । घण-वाहण भामंडलहँ ताव ।
अब्भिट्ट परोप्परु जुज्झ घोर । सरि सोत्त स-उत्तरें पहर थोरु ।
छिज्जंत महग्गय गरुअ-गत्तु । णिवडंत समुद्धुय-धवल-छत्तु ।
लोट्टंत महारह-हय-रहंगु । घुम्मंत-पडंत महातुरंगु ।
तुट्टंत कवड तुट्टंत खग्गु । णच्चंत कवंधउ असि-कर-ग्गु ।
आयामें वि रणें रोसिय-मणेण । अग्गेउ मुक्कु घणवाहणेण ।
आमेल्लिउ आयउ धगधगंतु । अंगार वरिसु णहें दक्खवंतु ।
वारुणु विमुक्कु भामंडलेण । णं गिरिहिं वज्जु आखंडलेण ।
उल्हाविउ जलणु जलेण जं जें । सरु णागवासु पम्मुक्क तं जें ।
घत्ता । पुप्फवइ-सुउ दीहर-पवर-महासरेहिँ ।
परिवेंढियउ मलयिंदु'व विसहरेहि ॥६॥

—रामायण ६५।१-६

तार मारिच्च साहण मुसेणाहिवा । सुअपचंडालि संमुच्छ दहिमुह-णिवा ।
घत्ता । अण्णेकहु मि भवणेक्केक्क पहाणहु ।
किं सक्कियउ णाउँ गणेप्पिणु दाणहु ॥८॥
केणवि कोवि दोच्छिउ "मरु सवडम्मुहु थाहि थाहि ।
केणवि कोवि वुत्तु "समरंगणे रहवरु वाहि वाहि ॥"
केणवि कोवि महासर-जालें । छाइउ जिह सुक्कालु दुकालें ।
केणवि कोवि भिण्णु वच्छत्थलें । पडिउ घुलंतु णवरि महि-मंडलें ।
केणवि कहोंवि मरासणु ताडिउ । णं हेट्ठामुहु हिअव उपाडिउ ।
केणवि कहोंवि कवउ णिव्वाट्टिउ । वलि जिह दस-दिसेहि आवट्टिउ ।
केणवि कहोंवि महद्धउ पाडिउ । णं मउ माणु मडप्फरु साडिउ ।
केणवि दंति-दंतु उप्पाडिउ । णावइ जसु अप्पणउ भमाडिउ ।
केणवि भंग दिण्णु रिउ-रहवरें । गरुडें जिह भुयंग-भुअणंतरें ।
केणवि कहिं'वि गीमु अच्छोडिउ । णं अवराह-रुक्खु-फलु तोडिउ ।

(ङ) सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध---

किष्किंध-नराधिप धरेँउ याव। घनवाहण भामंडलहँ ताव।
आभिडेँउ परस्पर युद्ध-घोर। शरस्रोत स्व-उत्तरेँ प्रहर थोर।
छिद्यंत महागज गरुअ-गात्र। निपतंत समुद्धत-धवल-छत्र।
लोटंत महारथ-हय-रथांग। घूमंत पडंत महातुरंग।
टूटंत कवच टूटंत खड्ग। नाचंत कवंधउ असि-कराग्र।
आयामेहु रणेँ रोपितमनेहिँ। आग्नेय मोचु घनवाहनेहिँ।
आमेलेँउ आतप धगधगंत। अंगार वरिसु नभेँ दग्धवंत।
वारुण विमोचु भामंडलेहिँ। जनु गिरिहिँ वज्र आखंडलेहिँ।
वूझायउ ज्वलन जलेहिँ जो हि। शर नागफास प्रम्मोचु सो हि।
घत्ता। पुष्पवती-सुत दीरघ-प्रवर-महाशरेहिँ।
परिवेंठेँउ मलयद्रुम'व विषधरेहिँ ॥९॥

---रामायण ६५।१-

तार मारीच साधन सुसेनाधिपा। सुत प्रचंडालि संमूर्छ दधिमुखनृपा
घत्ता। अन्नेकहुहि भवने एक एक प्रधानहँ।
का सक्किय नाम गनाइव राजहँ।
केहु सँग कोउ दर्शिउ "भर शकटमुँह स्याहि स्याहि।
केहु सँग कोउ कह "समरंगणे रथवर वाहि वाहि
केहु कहँ कोउ महाशर जालेँ। छापेउ जिमि सुक्काल दुकालेँ।
केहु कहँ कोउ भिन्दु वक्षस्थले। पडेँउ घुरंत केँवल महिमंड
केहु कहँ कोउ शरासन ताडेँउ। जनु हेठामुँह हृदय उपाडेँउ।
केहु कहँ कोउ कवच निर्वट्टिउ। वलि जिमि दशदिशेहिँ आवट्टि
केहु कहँ कोउ महाध्वज पातेँउ। जनु मृदु मान'हँकारा साटेँउ।
कोऊ दंति-दंत उप्पाडेउ। मानोँ यश आपनो भ्रमारे
कोउ झंप दियेँउ रिपु-रथवरेँ। गरुडेँ जिमि भुजंग भुवनंतरे।
कोऊ काहहि शीश आछोडिउ। जनु अपराध वृक्ष फल तो

घत्ता। केणवि समरे दिण्णु विवक्खहो हिअउ थिरु।
जीविउ जमहीं गुरु पहरहों सामियहँ सरु ॥६॥

—रामायण ६६।

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कंठेहि दसजें कंठाइँ दस भालहिँ तिलय दस।
दस सिरेहिँ दस मउड पज्जलिय।
दहहिमि कुंडल-ज्जुएहि कण्ण-जुयल-सुकउल मुहलिय।
फुरिउ रयण-संघाउ दसाणण रोसुव। अह थिउ स-त्तारायणु वहल पऊसु'व।
पढम वयणु खय-सूर समप्पहु। सिंदुरारुणु सुरहंमि दूसहु।
वीयउ वयणु धवल-धवलच्छउ। पुण्णिम-यंद-विंव-सारिच्छउ
तइयउ वयणु भुयण-भय-गारउ। अंगारारुणु मुक्कंगारउ।
वयणु चउत्थउ वुह-मुह भासुरु। पंचमएण सइजें णं सुर-गुरु
छट्ठउ सुक्क मुक्क-संकासउ। दाणव-वक्खिउ सुर-संतासउ।
सत्तमु कसणु सणिच्छरु भीसणु। दंतुरु वियडु दाढु दुद्दरिसणु
अट्ठमु राहु-वयणु विकरालउ। णवमउ धूमकेउ धूमालउ।
दसमउ वयणु दसाणणकेरउ। सव्व-जणहों भय-दुक्ख-जणेरउ

घत्ता। वहु-रूवउ वहु-सिरु वहु-वयणु, वहु-विह-कवोलु वहु-विह-णयणु।
वहु-कंठउ वहु-करु वि वहु-पउ, णं णट्ट-पुरिसु रसभाव गउ ॥८

ते णिएप्पिणु णिसियरिंदस्स सीसइं णयणइं मुहइँ पहरणाइँ रयणीयर भीस'
आहरणइं वच्छयलु राहवेण पुच्छिउ विहीस
"किं निकूड सेलोवरि दीसइ णव-घणु। देव देव! एँहु रहें थिउ रावण।
किं गिरि-सिहरइँ, णहि दीसराइँ। णं णं आयइँ दससिर-सिराइँ।
किं पलय-दिवायर-मंडलाइँ। णं णं आयइँ मणि-कुंडलाइँ।
किं कुवलयाइँ माणस-सरहों। णं णं णयणइँ लंकेसरहों
किं गिरि-कंदरइँ भयाणणाइ। णं णं दह-वयणें दसाणणाइँ।
किं सुर-चावइ चाउत्तिमाइ। णं णं कंठाहरणइँ इमाइँ
किं णाग-उलइँ तणुज्जलाइँ। णं णं धवलइँ मुत्ताहलाइँ।

घत्ता। काहुहिँ समरे दीन विपक्षहँ हृदय थिर।
जीवित जमहु पुर प्रहरहु स्वामियहँ शिर ॥६॥

—रामायण ७४।६

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कंठे दसहु कंठा दस भालहिँ तिलक दस।
दस सिरेहिँ दस मुकुट प्रज्वलिय।
दसहिँपि कुंडल-युगेहिँ कर्ण-युगल-शुक-कुल-मुखरिय।
स्फुरे'उ रतनसंघात दशानन रोपि'व।
अथ थिउ स-तारागण वहल प्रदोपि'व।
प्रथम वदन क्षय-शूर समपंहु। सिंदुर-अरुण सुरयउ दुस्सहु।
दूसर वदन धवल-धवलाक्षउ। पूर्णिम-चद्रबिंब-सारिक्खउ।
तीसर वदन भुवन-भयकारउ। अंगारारुण मोचु अँगारउ।
वदन चतुर्थउ बुध-मुख-भासुर। पंचम स्वयं एव जनु सुरगुरु।
छट्ठउ शुक्ल-शुक्र-संकाशक। दानव-पक्षिक सुर-संत्रासक।
सत्तम कृष्ण शनिश्चर भीषण। दंतुर विकट-दाढ दुर्दर्शन।
अष्टम राहु-वदन विकरालउ। नवमउ धूमकेतु धूमालउ।
दसमउ वदन दसाननकेरउ। सर्वजनन्ह भय-दुःख-जनेरउ।
घत्ता। वहु-रूपउ वहु-शिर वहु-वदन, वहु-विध कपोल वहु-विध नयन।
वहु-कंठउ वहु-करहु वहु-पद, जनु नट्ट-पुरुष रसभाय गयउ ॥८॥
सो निजेही निस्चरेन्द्र कर सीसैँ नयनैँ मुखैँ प्रहरणैँ रजनीचर भीषण।
आभरणैँ वक्षतल राघवेहिँ पूछे'उ विभीपण ॥
"का त्रिकूट शैलोपरि दीसै नवघन?" "देव देव! एहु रथैँ हो रावण।"
"का गिरि-शिखरा नहि दीसराइँ?" "ना ना अहैँ दससिर-सिराइँ।"
"का प्रलय-दिवाकर-मंडलाइँ।?" "नाना अहैँ मणि-कुंडलाइँ।"
"का कुवलयाइँ मानससरहू?" "ना ना दसवदने दस आननहू।'
"का सुर-चापा चापोत्तमहू?" "नाना कंठाभरणा एहू।"
"का तारा-गणइँ तनुज्वलाइँ?" "ना ना धवलइँ मुक्ता-फलाइँ।'

किं कसणु विहीसण गंयण-पलु। णं णं लंकाहिव वच्छ-यलु।
किं दिसवे यंड-सोंड-पयरो। णं णं दहकंधर-कर-णियरो।

घत्ता। तं वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण, लोयणइँ विरिल्लेंवि तक्खणेण।
अवलोइउ रावणु मच्छरेण, णं रासि-गयेण सणिच्छरेण ॥९॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करें केरप्पिणु सायरावत्तु थिउ लक्खणु।
गरुड-रहे गारुडत्थु गारुड-मद्धउ।
वलु वज्जावत्तु धरु सीह चिंधु वर-सीह-संदणु।
गयवि हत्थु गय-रह-वरु पमय महद्धउ।
विप्फुरंतु किंक्किधा-हिउ सण्णद्धउ।.........................

घत्ता। सण्णहेंवि पासु ढुक्कइ वलहों, अक्खोहणि वीससयइँ वलहों।
विरएवि वूहु संचल्लियइँ, णं उयहि-मुहइ उत्थाल्लियइ ॥१०॥

घुट्टु कलयलु दिण्ण रणभेरि चिंधाइ समुब्भियइँ,
लइय कवय-किय-हेइ-संगहे।
गय-घडउ पचोइयउ मुयक-तुरय-वाहिय-महारहा,
राम-सेण्णु रण-रहसियउ।
कहिमि ण माइउ जगु गिलेवि,
णं परवलु गिलइ पधाइयउ।
अब्भिट्टु जुज्झु गेमिय-मणाहुँ। रयणीयर-वाणर-लंछणाहुँ।
उमरिय मंख-मय-संघडाहुँ। रण-वहु फेडाविय मुह-वडाहु।
उद्धंकुस-वारिय गय-घडाहुँ। खर-पवणंदोलिय धय-वडाहुँ।
कंपाविय मयल-वसुंधराहुँ। रोसाविय आसीविसहराहुँ।
मेल्लाविय गयगहु वाहणाहुँ। मंजलिय दिमामुहु इंधणाहुँ।
जय-लच्छि-वहुअ-गेण्हण-मणाहु। जूराविय सुर-कामिणि-जणाहु।
उग्गामिय नामिय असि-वराहु। णिव्वट्टिय लोट्टिय हय-वराहु।
णिद्दलिय कुंभ कुंभत्थलाहु। उच्छलिय धवल-मुत्ताहलाहु।

घत्ता । भड-थड गय-घडेहिँ भिडंतएहिँ, रह-तुरयहिँ तुरिउ भिडंतएहिँ ।
रयणियरु समुट्ठिउ भत्तिकिह, णिय- कुलु मइलंतु दुपुत्तु जिह ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाउ सुट्ठु समरंगणु दूसंचारउँ । तहिँ मि केवि पहरंति स-साहुक्कारउँ ।
केहिमि करि-कुंभइ परमट्ठइ । णं संगम-सिरिहेँ थण वट्टइँ ।...
केहिमि लइयइ पर-वल-छत्तइँ । णं जयसिरि-लीला-सयवत्तइँ ।
केहिमि चक्खु पसरु अलहंतेहिँ । पहरिउ वाला लुंचिकरंतेहिँ ।
केण' वि खग्ग-लट्ठि-परियट्टिय । रण-रक्खसहोँ जीँह णं कड्ढिय ।
केण'वि करि-कुंभत्यलु पाडिउ । णं रण-भवण-वारु उग्घाडिउ ।
कत्यइ सुसुमूरिय असि-वारेहिँ । मोत्तिय-दंतुरु हसियउ अहरेहिँ ।
कत्थइ रुहिर-पवाहिणि धावइ । जाउ महाहउ-पाउसु णावइ ।
घत्ता । सोणिय-जल-पहरणग्गिरेहिँ'व, सुहंतराल णह-यल-गएहिँ ।
पज्जलइ वलइ धूमाइ रयणु, णं जुग-खय-काले कालवयणु ॥१२॥
—रामायण ७४।१२

हे णरणाह ! णेह अच्छरियउ । पर-वलु पेक्खु केम जज्जरियउ ।
रुंड-णिरंतरु सोणिय चच्चिउ । णाणा विह-विहंग-परिअंचिउ ।
कोवि पयंड-वीरु वलवंतउ । भमइ कियंतु वरिउ जगडंतउ ।
गय-घड भड-थड सुहड वहंतउ । करि-सिर कमल-संडु तोडंतउ ।
गक्कइ कोक्कइ ढुक्कइ थक्कइ । णं खय-कालु समरेँ परिसक्कइ ।
—रामायण २५।१

घत्ता । तेहएँ समरेँ सूरहँमि भज्जंति मइ ।
गय-गिरिवरेँहि ताव समुट्ठिय रुहिर-णइ ॥२॥
गय-वर-गंडत्थल-सिहर'ग्ग-विणिग्गय णइ तुरंतिया ।
उद्धुव धवल छत्त-डिंडीरु समुव्वहंतिया ।
पवरोज्झर-सोणिय-जल-पवाह । करि-मयर-तुरंगम-णक्क-गाहु ।
णक्कोहर मंडण संसुमार । करवाल मच्छ परिहच्छ चार ।

घत्ता। भटठट-गजघटेहिँ भिडंतएहि, रथ-तुरंगहिँ तुरिय भिडंतएहिँ।
रजनिचर समुट्ठेउ भट्ट किमि, निजकुल मैलंत दु-पुत्र जिमि ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

व मुष्टु समरंगण दुःसंचारा। तहँहि कोइ प्रहरंति स-साधुक्कारा।
कोऊहि करिकुभं परिमींजै। जनु संग्राम-श्री स्तन-वट्टै।
ऊ लेइय पार-वल छत्रहिँ। जनु जयश्री-लीला शतपत्रहिँ।
कोऊ चक्षु-प्रसर अलभंता। प्रहरेउ वाला-लुंचि करता।
ऊ खड्ग यष्टि परि-काढिय। रण-राक्षसहँ जीभ जनु काढिय।
कोऊ करिकुम्भस्थल पाटेँउ। जनु रण-भवन-द्वार उग्घाटेउ।
हिं कहि मुठि काटिय असिधारेहिँ। मौक्तिक-दंतुर हसियउ अधरेहिँ।
कहिँ कहिँ रुधिर प्रवाहिणि धावै। याव महाहव-पावस आवै।
त्ता। शोणित जल-प्रहरणाग्रेहि इव, सुखंतराल नभतल गतेहिँ।
प्रज्वलै वलै धूमै रतन, जनु युगक्षयकाले कालवदन ॥१२॥
—रामायण

नरनाथ ! नेह आश्चर्यउ। पर-वल पेखु केम् जर्जरियउ।
रुंड निरंतर शोणित-चर्चित। नानाविध विहंग परि-अंचित।
गेइ प्रचंड वीर-वलवंता। भ्रमै कृतांत-वरेँउ झगडंता।
गज-घट भट-रुट सुभट वहंता। करि-शिर-कमलपंड-तोडंता।
कै कोकै ढूकै थाकै। जनु क्षयकाल समरेँ परिसक्कै।............
—रामायण २५।१८

घत्ता। तेही समरे सूरहुँहि भज्जंत।
गज-गिरिवरेहिँ तव अमुट्ठिय रुधिरनदी ॥२॥
गजवर-गंड शैल शिखराग्र-विनिर्गत नदी तुरंतिया।
उद्धुत-धवल-छत्र-डिंडीर-समुद्-वहंतिया।
नवरोज्झर-शोणित-जलप्रवाह। करि, मकर, तुरंगम नाक-ग्राह।
चक्कोधर स्यंदन शिशमार। करवाल, मच्छ-परिहस्त चार।

मत्तेभ-कुंभ-भीसण-सिलोह । सिय-चमर-वलाया-पंति सोह ।
तंणइंतरेंवि केंवि वावरंति । वुड्डंति केवि केंवि उव्वरंति ।
केंवि रय-धूसर केवि रुहिर-लित्त । केंवि-हत्थ हडएं-विहुणेंविधित्त ।
केंवि लग्ग पडीवादंत-मुसलें । णं धत्तु विलासिणि-सिहिण-जुअलें ।
केंवि णियय विमाणहों झंप देंति । णहें णिवडेंवि वइरिहि सिरइं लेंति ।
तहिं तेहए रणें सोणिय-जलेण । रउ सोसिउ सज्जणु जिह खलेण ।
—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जं राम-सेण्णु णिम्मल-जलेण । संजीवेंउ संजीवणि-वलेण ।
तं वीरेहि वीर-रसाहिएहि । वग्गंतेंहि पुलय-पसाहिएहि ।
वज्जंतेंहि पडहेंहि मद्दलेहि । गिज्जंतेंहि धवलेंहि मंगलेहि ।
णच्चंतेहि खुज्जय-वावणेहि । जज्जरिय पढते वंभणेहि ।
गायंतेंहि अहिणव-गायणेहि । वायंतेंहि वीणा-वायणेहि ।
—रामायण ६६।२०

तो खर-णहर-पहर-धुव-केसर केसरि-जुत्त-संदणो ।
धवल-महद्धउ समुद्धायउ दसरह-जेट्ठ-णंदणो ॥
जग-धवल-धूरि-धूसरिय-अंगु । धवलंवरु धवला वर-तुरंगु ।
धवलाणणु धवल-पलंव-वाहु । धवलामल-कोमल-कमल-णाहु ।
धवलइ जें महावें धवल-वंसु । धवलच्छि-मरालिहें राय-हंसु ।
धवलाहें लवलु धवलायवत्तु । रहु-णंदणु दणु-पहरंतु पत्तु ।
—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गज्जिय चंद-हासाउहेण । हक्कारिउ लक्खणु दह-मुहेण ।
तउ पहरु पहरु कि करहि खेउ । तुहु एक्कें चक्कें सावलेउ

मत्तेभ-कुंभ-भीषण-शिलोघ । सितचमर बलाकापंक्ति मोह ।
सो नदी तरन कोउ व्यापरंति । बूडंति कोइ कोंइ ऊबरंति ।
कोंइ रजधूसर कोंइ रुधिर-लिप्त । कोंउ हाथहरे विहुणेउ-धित्त ।
कोंइ लाग प्रतीपा दंत-मुसले । जनु वृत्त विलासिनि-स्तन-युगले ।
कोंइ निजह विमानहं झंप देंति । नभें निपतिय वैरिहि शिरहिं लेति ।
नहं तेहि रणे शोणित्त-जलेहिं । रज मोल्ले उ मज्जन जिमि सलेहिं ।
—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जो राम-सैन्य निर्मल-जलेहिं । संजीवेंउ सजीवनि-वलेहिं ।
सो वीरेहिं वीररसाधिकेहि । वल्गंतेंहि पुलक प्रसाधितेहिं ।
बाजंते पटहेंहिं मांदलेहिं । गीयंतेंहि धवलेंहिं मंगलेहिं ।
नाचंते कुब्जक-वामनेहिं । चर्चरी पढंतेहिं ब्राह्मणेहिं ।
गायंते अभिनव-गायनेहिं । बाजंतेहिं वीणावादनेहिं ।
—रामायण ६६।२०

तो खर-नखर-प्रहर धुत केसर केसरियुक्त-स्यंदनेहिं ।
धवल-महाध्वज फहरायेउ दशरथ-ज्येष्ठ-नंदनेहिं ।
यश-धवल-धूरि-धूसरित अंग । धवलावर धवला वरतुरंग ।
धवलानन धवल-प्रलंब-बाहु । धवलामल-कोमल-कमल-नाभ ।
धवलहुहि स्वभावे धवल-वंश । धवलाक्ष-मरालिहें राजहंस ।
धवला लवण्य धवलातपत्र । रघुनंदन दनु-प्रहरंत प्रप्त ।
—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चंद्रहासायुधेहिं । हक्कारेउ[1] लक्ष्मण दशमुखेहिं ।
ले प्रहरु प्रहरु का करहि क्षेप । तुह एको चक्को सावलेप ।

---

[1] पुकारेउ (मैथिली, भोजपुरी, मगही)

महु पइ पुणु आयं कवणु गण्णु । किं सीह(हि) होइ सहाउ अण्णु ।
तं णिसुणेंवि विप्फुरियाहरेण । मेल्लिउ रहंगु लच्छीहरेण ।
घत्ता । उअयइरिहें णं अत्थइरि गउ, सूर-विंबु कर-मंडियउ ।
सइँ मुएँहि हणंतहों दहमुहहों, मंड-उरत्थलु खंडिअउ ॥२२॥
—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम-)सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसंतें वल-णारायणेण । ववचालिय णायरिया-णणेण ।
एँहु सुंदरि ! सोक्खुप्पायणहो । अहिरामु रामु रामायणहो ।
एँहु लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु । जो रावण-रावण-पलयकरु ।
एँहु भामंडलु भाभूसभुउ । वइदेहि-सहोयरु जणय-सुउ ।
एँहु किक्किधाहिउ दुद्दरिसू । तारा-वइ तारावइ-सरिसू ।
एँहु अंगउ जेण मणोहरिहे । केसग्गहु किउ मंदोयरिहे ।
एँहु सुर-वर-करि-कर-पवर-भुउ । णंदण-वण-मद्दण पवण-सुउ ।
—रामायण ७८।६

(२) विभीषणद्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दोव-जल-क्खय-गहिअ-करा । गय तहिँ जहि हलहर-चक्कहरा ।
आसीसेंहि सेसहि पणवणेहिँ । जय णंद वद्ध वद्धावणेहिँ ।
उच्छाहेंहिँ धवलेंहिँ मंगलेहिँ । पडु-पडहहिँ संखेंहिँ मंदलेहिँ ।
कइ-कहएँहिँ णउ-णट्टावएहिँ । गायण-वायण-फंफावएहिँ ।
णर-णायर-वंभण-घोसणेहि । अवरेंहिँमि चित्त-परिऊसणेहिँ ।
—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामागमणें भग्हु णीसरियउ । हय-गय-रह-णरिंद-परियरिउ ।
अण्णे तहि सत्तुहणु स-वाहणु । स-रहु सु-सालंकारु सु-साहणु ।

मम तैं पुनि आहि कवन गण्य। का सिहह होइ स्वभाव अन्य।
सो मुनिया विस्फुरिताधरेहिँ। मेलेँउ रथांग लक्ष्मीधरेहिँ।
घत्ता। उदयगिरिहिँ जनु अस्तगिरि गउ, सूरबिंब-कर-मंडियऊ।
स्वयं मृतहि हनंतहु दशमुखहु, मंडउरस्थल खंडियऊ ॥२२॥

—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम) सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसंते बल-नारायणेहि। व्यवचान्निय नागरिका-ननेहि।
एँहु सुंदरि ! सौख्य-उपायनहू। अभिराम राम रामायणहू।
एँहु लक्ष्मण लक्षण-लक्ष-धरु। जो रावण रावण प्रलय-करु।
एँहु भामंडल भाभूपभुतू। वैदेहि-सहोदर जनकसुतू।
एँहु किष्किंधाधिप दुर्दर्शू। तारा-पति तारापति-सरिसू।
एँहु अंगद जाने मनोहरिहा। केश-ग्रह किउ मंदोदरिहा।
एँहु सुरवर-करि-कर-प्रवर-भुजू। नंदन-वन-मर्दन पवनसुतू।

—रामायण ७८।६

(२) विभीषण द्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दूबि-जल-आक्षत गहिय-करा। गा तहँ जहँ हलधर-चक्रधरा।
आशीषेहिँ शेषहिँ प्रनमनहीं। "जय नंद वर्ध" बद्धावनहीं।
ऊछाहेहिँ धवलेहिँ मंगलेहिँ। पटु पटहेँहिँ शंखेँहिँ मांदलेहिँ।
कवि-कथनेहिँ नट-नट्टावनहीं। गायन-वादन-फप्फावयहीं।
नर-नागर-ब्राह्मण घोषणहीं। औरेँहिउ चित्त-परितोषणहीं।

—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामागमने भरत नीसरेँऊ। हय-गज-रथ-नरेन्द्र परिवरेँऊ।

छत्त-विमाण-महासइ धरियइँ । अंबरें रवि-किरणइ अंतरियइँ ।
तूरइ हयइँ कोडि-परिमाणेंहिँ । दुदुहि दिण्ण गयणें गिव्वाणेंहिँ ।
जणवउ णिरवसेसु संखुब्भइ । रह-गय-तुरयहिँ मग्गु ण लब्भइ ।
णिवडिय एक्कमेक्क भिडमाणेहिँ । पेल्ला-वेल्लि जाय जंपाणहि । . .
घत्ता । केक्कय-सुएण णमंतएण, सिरुरुहु चलणंतरें कियउ ।
दीसइ विहि रत्तुप्पलहैं, णीलुप्पल-मज्झे णाइ थिअउ ॥१॥
जिह रामहों तिह णमिउ कुमारहों । अतेउरहों पहोलिर हारहो ँ ।
वलेंण वलुद्धरेण हक्कारें वि । मरहस णिय-भुय-दंड पसारें वि ।
अवरुंडिउ मायरु बहु-वारउ । मत्थएँ चुम्बिउ पुणु सयवारउ ।
सय-वारउ उच्छगें चडाविउ । सय-वारउ भिच्चहु दरिसाविउ ।
सय-वारउ दिण्णउ आसीसउ । वरिस सरिस हरिसंसु विमीसउ ॥

—रामायण ७६।१-२

जयजयकार करंतेंहि लोगेंहिँ । मगल-धवलु-च्छाह पऊएँहिँ ।
अज्झव सेसासीस महासेहिँ । तारय-णिवह-छडा-विण्णासेहिँ ।
दहि-दोवा-दप्पण-जल-कलसेंहिँ । मोत्तिय-रंगावलि णव-कणिसेंहिँ ।
वमण-वयणु'च्चोसिय वेएँहिँ । कंठिअ जज्जरिव्व' सम-भेएहिँ ।
णड-णट्ट-च्छत्त छत्त-कलावेंहि । लक्खिय ताणरोंहणु विहावेंहि ।
भट्टेंहिँ वयणु'च्छाह पढंतेंहि । वायाली स-विसर सुमरंतेंहि ।
मल्ल-प्फोडण-सरेंहि विणितेंहि । इंदयाल-उप्पाइय चित्तेंहिँ ।
मड फंड वंदेंहिँ कुदंतेंहि । डोम्बेंहि वंसारोंहण करंतेंहि ।
घत्ता । पुरें पइसंतहों राहवहों, णट्ट-कला-विण्णाणइ केवलइँ ।
दहिँ णारिउ घरें हि णरों, अच्छरेंहिँमि गीयइ मंगलइँ ॥४॥

—रामायण ७६।४

(५) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

[illegible] । अज्ज अमंगलु [illegible]-चंगहों ।
[illegible] । अज्ज मणोरह गुरुवर सह्ल

छत्र-वितान-सहस्रें धरिया । चमरें मणिकिरणें धवलिया ।
तूर्यं हतें (हिं)कोटि परिमाणा । दुंदुभि दिण्णेंउ गगनें गीर्वाणा ।
जनपद निर्विशेष संछन्ना । रथ-गज-तुरगहिं मार्ग न लब्धा ।
निपतेंउ एकमेक भिड़माना । पेल्लापेल्लि जायें कम्पाणा ।
घत्ता । कोकसि-तूर्यहिं नवनाएहिं, शिवरह सत्थलहें गियउ ।
दीसै सिंधि-रत्नोत्पलहिं, स्याहें नीलोत्पल मांझ ठियउ ॥१॥
जिमि रामहं तिमि लखेंउ कुमारहु । शत्रुघ्नहु शशांकित हारहु ।
वलेंहि धनुधरेहिं हक्कारिय । स-रथन निज-भुजदंड पसारिय ।
अपराजित माता बहु वारा । मायें चुंबेंउ पुनि शतवारा ।
शतवारउ उत्संगें चढ़ाएउ । शतवारउ भूतहं दरगाहउ ।
शतवारउ दीनेंउ आशीषा । बलि-नारि हरि सं सुविभीषा ।

—रामायण ७६।१-२

जयजयकार करंतेहिं लोगेंहिं । मंगल-धवल-उछाह प्रयोगेंहिं ।
अतिनव दीपादीप-सहस्रेंहिं । तारक-निवह-छटा-विन्यासेंहिं ।
दधि-दूर्वा-दर्पण-जलकलशेंहिं । मौक्तिक रंगावलि नवमंजरिहिं ।
ब्राह्मण-वदन-उद्घोषिय वेदहिं । कंठिक चर्चरि द्रव गमभेदहिं ।
नट-कवि कथैं छत्र फहरावैं । लग्गियत ताराह्लण विभावेंहिं ।
भांटेंहिं वचन-उछाह पढंतेंहिं । वैतालिक विसार गुमरंतेंहिं ।
मल्ल-स्फोटन-शरेहिं विचित्रेंहिं । इंद्रजाल-उत्पादित चित्तेंहिं
मंद फंद वंदेंहि कूदंतेंहि । डोमेंहिं वंशारोह करंतेंहि ।
घत्ता । पुरि पइसंतहं राघवहं, नाटयकला विज्ञानइं केवलइं ।
दुंदुभि ताडित सुरेंहिं नभहु, अप्सरेहि उ गाइय मंगलाइं ।

—रामायण ७६

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सकल-सुरासुर दीन प्रर्याहिं । आज अमंगल राक्षस-वंशहिं ।
खल-क्षुद्रहु पिशुनहु दुविदग्धहु । आज मनोरथ सुरवर सिद्ध

दुद्दुहीं वज्जहु गज्जइ सायरु । अज्ज तवउ सच्छंदु दिवायरु ।
अज्जु मियंकु होउ पहवंतउ । वाउ वाउ जगि अज्जु सइत्तउ ।
अज्जु धणउ धणरिद्धि णियच्छउ । अज्जु जलंतु जलणु जगें अच्छउ ।
अज्जु जमहों णिव्वहउ जमत्तणु । अज्जु करेउ इंदु इंदत्तणु ।
अज्जु धणहु पूरंतु मणोरह । अज्जु णिरग्गलु होंतु महागह ।
अज्जु पफुल्लउ फलउ वणासइ । अज्जु गाउ मोक्कलउ सरासइ ।

—रामायण ७६।४

जो भुवणा-हिंदोलणा, वइरि-समुद्द-विरोलणा ।
सुर-सिंधुर-कर-वंधुरा, परिअट्ठिय रणभरधुरा ॥
जे थिर थोर पलंव-पईहर । सुहि मंभीस वीस-पहरण-धर ।
जे वालत्तणें वालक्कीलइ । पण्णय-मुहें हि छुहंतउ लीलइ ।
जे गंधव्व-वावि-आडंभण । सुर-सुदरि-वुह-कणय-णिरुंभण ।
जे वइ सवण-रिद्धि-विब्भाडण । तिजग-विहूसण गय-मय-साडण ।
जे जम-दंड-चंड-उद्दालण । स-वसुधर कइलासुच्चालण ।
जे सहास-यर मडफर-भंजण । णलकुब्बर¹-गेहिणि-मण-रंजण ।
जे अमरिंद-दप्प-ऊहट्टण । वरुण-णराहिव-बल-दल-वट्टण ।

—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिये

एत्थंतरें लक्खण-मरणेण । धाहाविउ सव्वे परियणेण ।
दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ । णं चप्पिवि चप्पेंवि भरिउ सोउ ।

---

¹ कुबेर (वैश्रवण)-पुत्र

दुंदुभि वाजै गरजै सागर।' आज तपउ स्वच्छंद दिवाकर।
आज मृगांक होउ प्रभवंता। वायु वाहु जग आज स्वतंत्रा।
आज धनप धन-ऋद्धि नियच्छउ'। आज ज्वलंतु ज्वलन जग अच्छउ।
आज यमहु निर्वहउ यमत्त्वा। आज करेउ इंद्र इंद्रत्वा।
आज धनहु पूरंतु मनोरथ। आज निरर्गल होंतु महाग्रह।
आज प्रफुल्लउ फलउ वनस्पति। आज गाउ परिमुक्त सरस्वति।

—रामायण ७६।४

जो भुवना हिंदोलना, वैरिसमुद्र-विरोलना।
सुरसिंधुर करवंधुर, परिआ-ठिउ रणभरधुरा॥
जो थिर थोर प्रलंवपती-हर। सुखि भीडंत वीस-प्रहरणधर।
जो वालत्वेंहि वालक्रीडइ। पन्नग-मुखेंहिं छ्वंता लीलइ।
जो गंधर्व-वापिया-गाहन। सुर-सुंदरि वुधकनक निरूपण।
जो वैश्रवण-ऋद्धि-विभ्राटन। त्रिजग-विभूषण गज-मद-शाटन।
जो यमदंड-चंड-उद्दारण। स-वसुंधर कैलाश-उच्चारन।
जो सहस्रकर-गर्व-विभंजन। नलकूवर-मोहिनि-मनरंजन।
जो अमरेंद्र-दर्प-अवघट्टन। वरुण-नराधिप-वल-दल-वंटन।

—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिए

रोवंते दशरथ-नंदनहीं। धाहावेउ' सर्व परिजनहीं।
दुःखाकुल रोवै सकल लोक। जनु चप्पे चप्पे भरेंउ शोक।

' ले-

रोवइ भिच्च-यणु समुद्द-हत्थु । णं कमल-संडु हिम-पवण-घत्थु ।
रोवइ अंतेउरु सोयवुण्णु । णं(स)ज्जमाणु संख-उलु चुण्णु ।
रोवइ अवरा इव रामजणणि । केक्कय दाइय तरु-मूल-खणणि ।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय । रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय ।
हा पुत्त पुत्त ! केत्तहि गउसि । किह सत्तिएँ वच्छत्थले ँ हउसि ।
हा पुत्त ! मरंतु म जो हउसि । दइवेण केण विच्छो इउसि ।

घत्ता । रोवंतिएँ लक्खण-मायरिएँ, सयल लोउ रोवावियउ ।
कारुण्णइ कव्व कहाएँ जिह, कोव ण अंसु मुआवियउ ॥१३॥

—रामायण ६६।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता । ताव दसाणणु आहयणे ँ पडिउ सुणेवि सदोरु[1] सणेउरु ।
धाइउ मंदोयरि-पमुह, धाहावंतु सयलु अंतेउरु ॥४॥
दुम्मणु दुक्ख-महण्णवे ँ घित्तउ । पिउ-विऊय जालोलिय-लित्तउ ।
मोक्कल-केस विसंठुल-गत्तउ । विहडप्फडु णिवडंतु'द्धंतउ ।
उद्ध-हत्थु उद्धाहावंतउ । अंसु-जलेण वसुह सिंचंतउ ।
णेउर-हार-डोर गुप्पंतउ । चंदण-छड-कद्दमे ँ खुप्पंतउ ।
पीण-पऊहर-भारक्कंतउ । कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ ।
णं कोइल-कुलु कहिमि पयट्टउ । णं गणियारि-जूहु विच्छुट्टउ ।
णं कमिलिणि वणु थाणहो चुक्कउ । णं हंसि-उलु महासर मुक्कउ ।
कलुण-सरेण रसंत पधाइउ । णिविसे ँ रण-धरित्ति संपाइउ

घत्ता । हय-गय-भड-रुहिरारुणिय, समर-वसुंधर सोह ण पावइ ।
रत्तउ परिहवेवि पंगुरेवि, थिय रावणु अणुमरणे ँ णावइ ॥५॥. . .
तहि दहवयणु दिट्ठु वहुवाहउ । कंप्पतरु'व्व पलोट्टिय साहउ ।
रज्ज-गय-गलण-खंभु' च्छिण्णउ । . . . .

---

[1] कटि-आभरण सवर्ण डोरी

रोवै भृत्यगण उठाइ हाथ। जनु कमल-पंड हिमपवन-प्राप्त।
रोवै अन्तःपुर शोकपूर्ण। जनु सज्जमान शंख-कुल-चूर्ण।
रोवै औरहिँ इव रामजननि। केकयि दापित तरुमूल-खननि।
रोवै सुप्रभ विच्छाय जाय। रोवै सुमित्राँ सौमित्र-माय।
हा पुत्र पुत्र ! कहँवा गओसि। किमि शक्तिहिँ वक्षस्थलेँ हतोसि।
हा पुत्र ! मरंत न जोयोसी। दैवेहिँ किमि विच्छोहेओसी।
घत्ता। रोवंती लक्ष्मण-महतारी, सकल लोक रोवावियऊ।
कारुण्यइ काव्यकथाइ जिमि, को ना अश्रु मुचावियऊ ॥१३॥

—रामायण ६९।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता। तव्व दशानन आहवेँ पडेँउ, सुनिय स-डोर स-नूपुर।
धाइउ मंदोदरिप्रमुखा, धाहावंत सकल-अंतःपुर ॥४॥
दुर्मन दुःख महार्णव क्षिप्तउ। प्रिय-वियोग-ज्वालोलिय-लिप्तउ।
मुक्तहु केश विसंस्थुल[१]-गात्रउ। हडवडंत निपतंत उद्भ्रांतउ।
ऊर्ध्वहस्त उद्-धाहावंतउ[२]। अश्रुजलेँहिँ वसुधा सिंचंतउ।
: नूपुर-हार डोर गोप्यंतउ। चंदन-छट-कर्दम मेटंतउ।
पीन-पयोधर-भाराक्रान्तउ। कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ।
जनु कोकिल-कुल कथा-प्रवृत्तउ। जनु गजियार-यूथ-विच्छुट्टउ।
जनु कमलिनि-वन थानहँ चूकउ। जनु हंसीकुल महसर मुंचउ।
करुण-स्वरेहिँ रसंत प्रधाएँउ। निमिषेँ रणधरित्रि संप्राप्तेँउ।
घत्ता। हय-गज-भट-रुधिरारुणित, समर-वसुंधर सोइ न पावै।
रक्तउ परिभवेहु अंकुरेँउ, ठिउ रावण अनुमरणेँ न आवै ॥५॥ . . .
तहँ दशवदन दीस बहुवाँहा। कल्पतरू इव लोटिय शाखा।
राज्यगज-लान-खंभ[३]च्छिन्नउ। . . . .

घत्ता। दह दियहाइ स-रत्तियइँ, जं जुज्झंतु ण णिद्दएँ मुत्तउ।
तेण चक्कु सेज्जहि चडेँवि, रण-वहुअएँ समाणु णं सुत्तउ ॥६॥...

घत्ता। णिएँवि अवत्थ दसाणणहोँ, हा हा सामि भणंतु सवेयणु।
अंतेउरु मुच्छाविहलु, णिवडिउ महिहि झत्ति णिच्चेयणु ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

तारा-चक्कु'व थाणहोँ चुक्कउ। 'दुक्खु दुक्खु' मुच्छएँ आमुक्कउ।
लग्ग रुएँव्वएँ तहि मंदोयरि। उव्वसि-रंभ-तिलोतिम-सुंदरि।
चंदवयण-सिरिकंतणुद्ध(द्द?)रि। कमलाणण-गंधारि'व सुंदरि।
मालइ-चंपय-माल-मणोहरि। जय-सिरि-चंदण-लेह-तणूव(द?)रि।
लच्छि-वसंत-लेह-मिग-लोयण। जोयण-गंध गोरि-गोरोयण।
रयणावलि मयणावलि सुप्पह। काम-लेह काम-लय सइंपह।
मुहय वसंत-तिलय मलयावइ। कुंकुम-लेह-पउम-पउमावइ।
उप्पल-माल-गुणावलि णिरुवम। कित्ति-वुद्धि-जय-लच्छि-मणोरम।

घत्ता। आएहिँ सोआरियहि, अट्ठारह हि'व जुवइ-सहासेँहि।
णव-घण-मालाडंवरेँहिँ, छाइउ विज्जु' जेम चउपासेँहि ॥८॥

रोवइ लंकापुर-परमेसरि। हा रावण! तिहुयण-जण-केसरि।
पइ विणु समर-तूरु-कहोँ वज्जइ। पइ विणु वालकील कहोँ छज्जइ।
पइ विणु णवगह-एक्कीकरणउ। को परिहेसइ कंठाहरणउ।
पइ विणु को विज्जा आराहइ। पइँ विणु चंद-हासु को साहइ।
को गंधव्व-वापि आडोहइ। कण्णहोँ छवि-सहासु संखोहइ।
पइ विणु को कुवेरु भंजेसइ। तिजग-विहुसणु कहोँ वसेँ होसइ।
पइ विणु को जमु विणिवारेसइ। को कइलासु'द्धरणु करेसइ।
सहस-किरणु णलकुव्वर-सक्कहु। को अरि होसइ ससि-वरुणक्कहु।
को णिहाण रयणइ पालेसइ। को वहुरूविणि विज्जाँ लएँसइ।

---

१६ · ७(२)

घत्ता । सामिय पइँ भविएण विणु, पुप्फविमाणे चडेँवि गुरुभत्तिएँ ।
मेरु-सिहरेँ जिण-मंदिरइँ, को मइ णेसइ वंदण-हत्तिए ॥९॥

पुणुवि पुणुवि गयणंगण-गोयरि । कलुणाकंदु करइ मंदोयरि ।
णंदण-वणेँ दिज्जंति मणोहरि । सुमरमि पारियाय-तरु-मंजरि ।

वुड्डुण वाविहेँ थण-परिवट्टुणु । सुमरमि ईसि ईसि अवरुंडणु ।
सयण-भवणेँ णहणियर-वियारणु । सुमरमि लीला-पंकय-ताडणु ।

पणय-रोस-समए मएँ बंधणु । सुमरिम रसणा-दाम-णिबंधणु ।
सुमरमि दिज्जमाण दणु-दावणि । धरणेंदहोँ केरउ चूडामणि ।

सुमरमि सामि कुमारहोँ केरउ । वरहिण पेहुण कण्णेँ ऊरउ ।
सुमरमि सुर-करि-मय-मलु सामलु । हारेँ ठविज्जमाणु मुत्ताहलु ।

घत्ता । सुमरमि सइ सुरयारुहणु, णेउर-वर-झंकार-विलासु ।
तोडइ महारउ वज्जमउ, हिअउ ण वेदलु होइ णिरासु ॥१०॥

पुणुवि पुणुवि मंदोयरि जंपइ । उट्ठेँ भडारा किंत्तिउ सुप्पइ ।
जइ'वि णिरारिउ णिद्दएँ भुत्तउ । तो'वि ण सोहहि महियलेँ सुत्तउ ।

सामिय ! को अवराहु महारउ । सीयहेँ ढुई गय-सय-वारउ ।
तेँहि अकारणिज्जेँ आरुड्ढउ । जेण परिट्ठिउ पाराउट्ठउ ।

तहिँ अवसरेँ पिउ पेक्खेवि धाइउ । कावि करेइ अलीअइ-साडउ ।
आलिंगेवि ण सव्वायामेँ । कावि णिबंधइ रसणा दामेँ ।

कावि वरमुत्तिएण कवि हारें । कावि मुअंव-कुसुम-पब्भारें ।
कवि उरें ताडिवि लीला-कमलें । पभणइ मउलिएण मुहकमलें ।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

[illegible] राम वणें गयहों । गय सोमित्ति राम वण-वासहों ।
ते णिसुणेवि वयणु दुव्वाइउ । पडिउ महीहरो'व्व वज्जाहउ ।

घत्ता। जं मुच्छाविउ राउ, सयलु'वि जणु मुह-कायरु।
पलयाणिल-संतत्तु, रसेवि लग्गु णं सायरु ॥६॥
चंदणेण पव्वालिज्जंतउ। चमरुक्खेविहिँ विज्जिज्जंतउ।
"दुक्खु दुक्खु" आसासिउ राणउँ। जरठ-मियंकु'व थिउ उद्धाणउ।
अविरल अंसु-जलोल्लिय-णयणउँ। एम पजंपिउ गग्गिर-वयणउ।
णिवडिय असणि अज्ज आयासहोँ। अज्ज अमंगलु दसरह-वंसहोँ।
अज्ज जाउँ हउँ सूडिय-वक्खउ। दुह भायणु पर-मुँह हउँ वेक्खउ।
अज्ज णयरु सिय-संपय-मेँल्लिउ। अज्जु रज्जु परचक्केँ पेल्लिउ।
एव पलाउ करोवि सहग्गएँ। राहव-जणणिएँ गउऊ लग्गएँ।
केस-विसंठुल दिट्ठ रुअंती। अंसु-पवाह धाह मेल्लंती।
—रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिये रामका विलाप

घत्ता। सोमित्ति-सोय-परिमाणेण, रहुवइ-णंदणु मुच्छिअउ।
जलु चंदणु चमरुक्खेवएँहिँ, दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छिअउ ॥२॥
हा लक्खण-कुमार ! एक्कोयर[1]। हा भद्दिय उविंद दामोदर।
हा माहव ! महुमह महुसूयण। हा हरि-कण्ह-विण्हु-णारायण।
हा केसव ! अनंत-लच्छी-हर। हा गोविंद ! जणद्दण-महिहर !
हा गंभीर-महाणइ-रुंभण। हा सीहोयर-दप्पणिसुंभण।....
हा हा रुद्द-भुत्ति-विणिवारण। हा हा वालिखिल्ल-संहारण !
हा हा कविल-मरट्ट-विमद्दण। हा वणमाली-णयणाणंदण।
हा अरि-दमण ! मच्छर-भंजण। हा जिय-पोम सोम-मण-रंजण।
हा महगिरि-उवसग्ग-विणासण। हा आरण्ण-हत्थि-संतावण !
हा कल्लाण-णयर-उद्दालण ! संब-कुमार-विलास-णिहालण !
हा खर-दूसण-बलमुसुमूरण ! हा सुग्गीव-मणोरह-पूरण !
हा हा कोडिसिला-संचालण ! हा हा मयरहरो उत्तारण !

[1] सहोदर, भाई

घत्ता। जो मूर्च्छायेँउ राव, सकलहु जन मुंह-कातर।
प्रलयानल-संतप्त, वोँलन लागु जनु सागर ॥६॥
चंदनेहिँ लेप्पाइज्जंतउ। चमरुक्खेपेहिँ वीजायनउ।
"दुःख दुःख" आदवासैं राणा। जरठ मृगाकि 'व ठिउ उद्धाना।
अविरल-अश्रु-जलोलित-नयना। इमि प्रजल्पेउ गद्गद-वयना।
"निपतिय अशनि आज आकाशहैं। आज अमंगल दशरथ-वंशहैं।
आज जाउँ हौँ पीटिय वक्षहु। दोँउ भाइन परंमुंह हौँ पेलउँ।
आज नगर सिय-संपति मेलेँउ। आज राज्य परचक्रैं पेलेँउ"।
इमि प्रलाप करेव सहाग्रइ। राघव-जननिएँ आयउ लग्गेँइ।
केश-विसंस्थुल दीस रोँवंती। अश्रुप्रवाह धाह मेलंती[1]।
—रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिए रामका विलाप

घत्ता। सौमित्र शोकपरितापेँहिँ, रघुपतिनंदन मूर्छियउ।
जल-चंदन-चमर दुलावनहूँ, दुःख-दुःखउ मूर्छियउ ॥२॥
"हा लक्ष्मण कुमार एकोदर ! हा भद्रिय उपेन्द्र दामोदर !
हा माधव मधुमय मधुसूदन ! हा हरि कृष्ण विष्णु नारायण !
हा केशव अनंत लक्ष्मीधर ! हा गोविंद जनार्दन महिधर !
हा गंभीर-महानदि-रुंधन ! हा सिंहोदर-दर्प-निनाशन !
हा हा रुद्र भुक्ति विनिवारण ! हा हा वालिखिल्य-संहारण !
हा हा कपिल-(कु)दर्प-विमर्दन ! हा वनमाली नयनानंदन !
हा अरिदमन-गर्व-धी-भंजन ! हा जितपद्म सोम-मन-रंजन !
हा महाँ ऋषि-उपसर्ग विनाशन ! हा आरण्य-हस्ति-संतापन !
हा करवाल-रतन-उद्धारण ! शांवकुमार-विलास-निहारण !
हा खर-दूषण-वल-मुसमूरण ! हा सुग्रीव-मनोरथ-पूरण !
हा हा कोटिशिला-संचालन ! हा हा मकरधरो उत्तारन[2] !

---

[1] त्यागेउ　[2] शत्रु शासन

घत्ता। कहि तुहुँ कहि हउँ कह पिअय, कहि जणेरि कहि जणणु गउ।
हय-विहि विछोउ करेप्पिणु, कवण मणोरह पुण्ण तउ ॥३॥

हरि-गुण संभरंतु विद्दाणउ। रुवइ स-दुक्खउ राहव-राणउ।
वरि पहिरउँ पर-णरवर-चक्कएँ। वरि खय-कालु ढुक्कु अत्थक्कएँ।
वरि तं कालकुट्टु विसु भक्खिउ। वरि जम-सासणु णयण-कडक्खिउ।
वरि असिपंजरें थिउ थोवंतरु। वरि सेविउ कियंत-दंततरु।
झंप दिण्ण वरि जलण जलंतएँ। वरि वगला-मुहें भमिउ भमंतएँ।
वरि वज्जासणें सिरेंण पडिच्छिय। वरि ढुक्कंति भवित्ति-समिच्छिय।
वरि विसहिउँ जम-महिस-झडिक्किउ। भीसण-काल-दिट्ठि अहिडंकिउँ।
वरि विसहिउ केसरि णह-पंजरु। वरि जोयउ कलि-कालु सणिच्छरु।
घत्ता। वरि दंति-दंतें मुसलग्गेंहि, विणिभिंदाविउ अप्पणउ।
वरि णरय-दुक्खु आयामिउ, णउ विऊउ भाइहिँ तणउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हँउ भामंडलु हणुवंत एहु। एँहु अंगद रहसुच्छलिय देहु।
तिण्णिवि आइय कज्जेण जेण। सुणु अक्खमि किं वहु वित्थरेण।
सीयहि कारणें रोसिय-मणाहँ। रणु वट्टइ राहव-रावणाहँ।
लक्खणु सत्तिएँ विणिभिण्णु तत्थु। दुक्करु जीवइ तें आय इत्थु।
तं वयणु सुणिवि परियालयेलु। णं कुलिस-समाहउ पडिउ सेलु।
णं चवण-कालें सग्गहों सुरेंदु। उम्मुच्छिउ कहवि कहवि णरेंदु।
दुक्खा उर धाहा वणह लग्गु। पुण्णक्खइ हरि व मुयंतु सग्गु।
घत्ता। हा पइ सोमित्ति ! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ दासरहि।
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, अज्जु अणाहीहूय महि ॥१०॥

घत्ता। कहि तुहुँ कहि हउँ कह पिअय, कहि जणेरि कहि जणणु गउ।
हय-विहि विछोउ करेप्पिणु, कवण मणोरह पुण्ण तउ ॥३॥

हरि-गुण संभरंतु विद्दाणउ। रुवइ स-दुक्खउ राहव-राणउ।
वरि पहिरउँ पर-णरवर-चक्कएँ। वरि खय-कालु ढुक्कु अत्थक्कएँ
वरि तं कालकुट्टु विसु भक्खिउ। वरि जम-सासणु णयण-कडक्खिउ।
वरि असिपंजरें थिउ थोवंतरु। वरि सेविउ कियंत-दंततंरु
झंप दिण्ण वरि जलण जलंतएँ। वरि वगला-मुहें भमिउ भमंतएँ।
वरि वज्जासणें सिरेंण पडिच्छिय। वरि ढुक्कंति भवित्ति-समिच्छिय
वरि विसहिउँ जम-महिस-झडिक्किउ। भीसण-काल-दिट्ठि अहिडंकिउँ।
वरि विसहिउ केसरि णह-पंजरु। वरि[1] जोयउ कलि-कालु सणिच्छरु
घत्ता। वरि दंति-दंतें मुसलग्गेंहि, विणिभिंदाविउ अप्पणउ।
वरि णरय-दुक्खु आयामिउ, णउ विऊउ भाइहिँ तणउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हउँ भामंडलु[2] हणुवंत एहु। एँहु अंगद रहसुच्छलिय देहु।
तिण्णिवि आइय कज्जेण जेण। सुणु अक्खमि किं वहु वित्थरेण
सीयहि कारणें रोसिय-मणाहँ। रणु वट्टइ राहव-रावणाहँ।
लक्खणु सत्तिएँ विणिभिण्णु तत्थु। दुक्करु जीवइ तें आय इत्थु।
तं वयणु सुणिवि परियालयेलु। णं कुलिस-समाहउ पडिउ सेलु।
णं चवण-कालें सग्गहों सुरेंदु। उम्मुच्छिउ कहवि कहवि णरेंदु।
दुक्खा उरु धाहा वणह लग्गु। पुण्णक्खइ हरिंव मुयंतु सग्गु।
घत्ता। हा पइ सोमित्ति! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ दासरहि।
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, अज्जु अणाहीहूय महि ॥१०॥

---

[1] यलि [2] सीताका भाई

घत्ता । कहि तुहुँ कहि हउँ कह पिश्रय, कहि जणेरि कहि जणण
हय-विहि विछोउ करेप्पिणु, कवण मणोरह पुण्ण

हरि-गुण संभरंतु विद्दाणउ। रुवइ स-दुक्खउ राहव-राणउ।
वरि पहिरउँ पर-णरवर-चक्कएँ। वरि खय-कालु ढु

वरि तं कालकुट्टु विसु भक्खिउ। वरि जम-सासणु णयण-कडक्खिउ
वरि श्रसिपंजरें थिउ थोवंतरु। वरि सेविउ

झंप दिण्ण वरि जलण जलंतएँ। वरि वगला-मुहें भमिउ भमंतएँ।
वरि वज्जासणें सिरेंण पडिच्छिय। वरि ढुक्कंति भवि

वरि विसहिउँ जम-महिस-झडिक्किउ। भीसण-काल-दिट्ठि श्र
वरि विसहिउ केसरि णह-पंजरु। वरि[1] जोयउ कलि-

घत्ता। वरि दंति-दंतें मुसलग्गेंहि, विणिभिदाविउ श्रप्पण
वरि णरय-दुक्खु श्रायामिउ, णउ विऊउ भाइहिँ तण

—रा

(ग) श्राहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हँउ भामंडलु[2] हणुवंत एहु। एँहु श्रंगद रहसुच्छलिय देहु।
तिण्णिवि श्राइय कज्जेण जेण। सुणु श्रक्खमि वि

सीयहि कारणें रोसिय-मणाहँ। रणु वट्टइ राहव-रावणाहँ
लक्खणु सत्तिएँ विणिभिण्णु तत्थु। दुक्करु जीव

तं वयणु सुणिवि परियालयेलु। णं कुलिस-समाहउ पडिउ सेलु
णं च्चवण-कालें सग्गहों सुरेंदु। उम्मुच्छिउ क

दुक्खा उर धाहा वणह लग्गु। पुण्णक्खड हरिंव मुयंतु
घत्ता। हा पइ सोमित्ति! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, श्रज्जु श्रणाहीहूय

---

[1] श्रनि [2] सीताका भाई

हा भायर ! एँक्कसि देहि वाय । हा पइ विणु जइसिरि-विहव जाय ।
हा भायर ! महु सिरि पडिय गयणु । हा हियउ फुट्टु दक्खहि वयणु
हा भायर ! महुयर-महुर-वाणि । महु णिवडिऊ-सि दाहिणउ पाणि ।
हा ! किं समुद्दु जल-णिवहु खुट्टु । हा ! किह दिढु कुम्भकडाहु फुट्टु
हा ! किह सुरवइ[1] लच्छिएँ विमुक्कु । हा ! किह जमरायहों मरणु ढुक्कु ।
हा ! किह दिणयरु कर-णियरु चत्तु । हा ! किह अणगु दोहग्गु पत्तु
हा ! चंचल हूयउ केम मेरु । हा ! केम जाउ णिद्धणु कुवेरु ।
घत्ता । हा ! णिव्विसु किह धरणेंदु[2] थिउ, णिप्पहु ससि-सिहि-सीयलउ ।
टलटलि हूई केम महि, केम समीरणु णिव्वलउ ॥११॥
लब्भइ रयणायरें रयण-खाणि । लब्भइ कोइल-कुलें महुर-वाणि ।
लब्भइ चंदणु-सिरि मलय-सिंगें । लब्भइ सुहवत्तणु जुवइ-अंगें
लब्भइ धणुधणएँ वरापवण्णु । लब्भइ कंचणें परवएँ सवण्णु ।
लब्भइ पेसेंण सामिएँ पसाउ । लब्भइ किएँ-विणएँ जणाणुराउ
लब्भइ सज्जणें गुण दाणें कित्ति । सिय असिवरें गुरु-उलें परम-तित्ति ।
लब्भइ वसियरणें कलत्त-रयणु । महकव्वें सुहासिउ सुकइ-वयणु
लब्भइउ वयार-मइहि सुमित्तु । मद्दवें हि विलासिणि चारु चित्तु ।
लब्भइ परतीरि महग्घु भंडु । वरवेणु-मूलें वेलुज्ज-खंडु[3]
घत्ता । गय- मोत्तिउ सिंघलदीवें मणि, वइरागरहो वज्ज पउरु ।
आयइ सव्वइ लब्भंति जइ, णवर ण लब्भइ भाइवरु ॥१२॥
—रामायण ६६।१०-११

(घ) कुंभकर्णके लिये रावणका विलाप

तं णिसुणेवि दसाणण हल्लिउ । णं वच्छत्थलें सूलें सल्लिउ ।
थिउ हेट्ठामुंहु रावण-राणउ । हिम-हय-संयवत्तु'व विद्दाणउ
रुवइ सदुक्खउ गग्गर-वयणउ । वाह भरतु णिरंतर वयणउ ।
हा हा कुंभयण्ण ! एक्कोयर । हा हा मय-मारिच्च-सहोयर

[1] इन्द्र [2] शेषनाग [3] हरितकांति वैदूर्यमणिका टुकड़ा

हा इंदइ हा तोयदवाहण। हा जमहंट अणिद्विय-साहण[1]।
हा केसरि-णियंव-दणु-दारण। जंबुमालि हा सुत्र हा सारण।
दुक्खु दुक्खु पुणु मणु विणिवारिउ। सोय-समुद्दहों अप्प उतारिउ।
—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

अप्पणु हणइ विहीसणु जावेंहिं। मुच्छइँ णाइ णिवारिउ तावेंहिं।
णिवडिउ धरणि वट्टि णिव्वेयणु। दुक्खु समुट्ठिउ पसरिय वेयणु।
चरण धरेवि रोएँवएँ लग्गउ। हा भायर महँ मुएँवि कहिं गउ।
हा हा भायर! ण किउ णिवारिउ। जण-विरुद्धु ववहरिउ णिरारिउ[2]।
हा भायर! सरीरें सुकुमारएँ। केम विआरिउ चक्कएँ धारएँ।
हा भायर! दुण्णिद्दएँ मुत्तउ। सिज्जें मुएँवि कि महियलें सुत्तउ।
घत्ता। किं अवहेरि करेवि थिउ, सीसें चडाविय चलण तुहारा।
अच्छमि सुट्ठुम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगि भडारा॥२॥
रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ। तुहु ण'त्थमिउ वंसु अत्थमियउ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु। तुहु ण मुऊसि मुयउ वंदिज्जणु।
तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरंदरु। मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-कंदरु।
दिट्ठि ण णट्ठ णट्ठ लंकाउरि। वयण ण णट्ठ णट्ठ मंदोयरि।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु। हियय ण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु।
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु एक्कंतरु। आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु।
जीउ ण गउ गउ आसापोट्टल। तुहु ण सुत्तु सुत्तउ महिमंडल।
सीय ण आणिय आणिय जमउरि। हरि-वल कुद्ध कुद्ध णं केसरि।
—रामायण ७६।२-३

---

[1] अपार रण साधन वाले [2] निरेही

हा इंदइ हा तोयदवाहण। हा जमहंट अणिट्ठिय-साहण[1]।
हा केसरि-णियंव-दणु-दारण। जंवुमालि हा सुअ्र हा सारण।
दुक्खु दुक्खु पुणु मणु विणिवारिउ। सोय-समुद्दहों अप्प उतारिउ।
—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

अप्पणु हणइ विहीसणु जावेंहिं। मुच्छइँ णाइ णिवारिउ तावेंहिं।
णिवडिउ धरणि वट्टि णिव्वेयणु। दुक्खु समुट्ठिउ पसरिय वेयणु।
चरण धरेवि रोएँवएँ लग्गउ। हा भायर महँ मुएँवि कहिं गउ।
हा हा भायर! ण किउ णिवारिउ। जण-विरुद्धु ववहरिउ णिरारिउ[2]।
हा भायर! सरीरें सुकुमारएँ। केम विआरिउ चक्कएँ धारएँ।
हा भायर! दुण्णिद्दएँ मुत्तउ। सिज्जें मुएँवि किं महियलें सुत्तउ।
घत्ता। किं अवहेरि करेवि थिउ, सीसें चडाविय चलण तुहारा।
अच्छमि सुट्ठुम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगि भडारा॥२॥
रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ। तुहु ण'त्थमिउ वंसु अत्थमियउ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु। तुहु ण मुऊसि मुयउ वंदिज्जणु।
तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरंदरु। मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-कंदरु।
दिट्ठि ण णट्ठ णट्ठ लंकाउरि। वयण ण णट्ठ णट्ठ मंदोयरि।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु। हियय ण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु।
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु एक्कंतरु। आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु।
जीउ ण गउ गउ आसापोट्टल। तुहु ण सुत्तु सुत्तउ महिमंडल।
सीय ण आणिय आणिय जमउरि। हरि-वल कुद्ध कुद्ध णं केसरि।
—रामायण ७६।२-३

---

[1] अपार रण साधन वाले [2] निरेही

हा इंदइ हा तोयदवाहण। हा जमहंट अणिद्धिय-साहण[1]।
हा केसरि-णियंव-दणु-दारण। जंवुमालि हा सुअ हा सारण।
दुक्खु दुक्खु पुणु मणु विणिवारिउ। सोय-समुद्दहों अप्प उतारिउ।

—रामायण ६७।९

.(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

अप्पणु हणइ विहीसणु जावेंहिँ। मुच्छइँ णाइ णिवारिउ तावेंहिँ।
णिवडिउ धरणि वट्टि णिव्वेयणु। दुक्खु समुट्ठिउ पसरिय वेयणु।
चरण धरेवि रोएँवएँ लग्गउ। हा भायर महँ मुएँवि कहि गउ।
हा हा भायर! ण किउ णिवारिउ। जण-विरुद्धु ववहरिउ णिरारिउ[2]।
हा भायर! सरीरें सुकुमारएँ। केम विआरिउ चक्कएँ धारएँ।
हा भायर! दुण्णिद्दएँ मुत्तउ। सिज्जें मुएँवि किं महियलें सुत्तउ।
घत्ता। किं अवहेरि करेवि थिउ, सीसें चडाविय चलण तुहारा।
अच्छमि सुट्ठुम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगि भडारा ॥२॥
रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ। तुहु ण'त्थमिउ वंसु अत्थमियउ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु। तुहु ण मुऊसि मुयउ वंदिज्जणु।
तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरंदरु। मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-कंदरु।
दिट्ठि ण णट्ठ णट्ठ लंकाउरि। वयण ण णट्ठ णट्ठ मंदोयरि।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु। हियय ण भिण्णु भिण्णु गयणंगणु।
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु एक्कंतरु। आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु।
जीउ ण गउ गउ आसापोट्टल। तुहु ण सुत्तु सुत्तउ महिमंडल।
सीय ण आणिय आणिय जमउरि। हरि-वल कुद्ध कुद्ध णं केसरि।

—रामायण ७६।२-३

---

[1] अपार रण साधन वाले　　[2] निरेही

हा इंद्रजि(त्) हा तोयदवाहन ! हा यमघंट अनिष्टित-साधन !
हा केसरि-नितंब-दनु-दारण । जंबुमालि हा शुक हा सारण"।
"दुःख दुःख" पुनि मन विनियारिउ । शोक-समुद्रहों आय उतारिउ ।
—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

आपुहिं हनै विभीषण जव्वें । मूर्छें जनुक निहारिउ तव्वें ।
निपतेँउ धरणि घूमि निर्वेदन । दुःख समुट्ठिउ परसिउ वेदन ।
चरण धरिय रोअयै लागउ । "हा भायर ! मम मुअय कहाँ गउ ।
हा हा भायर ! न किउ निवारेँउ । जनविरुद्ध व्यवहरिउ निरारिउ ।
हा भायर ! शरीर सुकुमारा । केस विसारेउ नअहिं धारा ।
हा भायर ! दुर्निद्रे सुप्तउ । शय्य मुएँउ का महितलें सुत्तउ ।
घत्ता । का अवहेल करेवि ठिय, सीस चढाइय चरण तुहारा ।
रहौं मुठि उन्माथियउ हृदय फूटु आलिगु भट्टारा" ॥२॥
रोवै विभीषण शोक-क्रमियउ । तुहुं न अस्तमिउ वंश'स्तमियउ ।
तुहु न जीवमि सकल जिउ त्रिभुवन । तुहुं न मुयउ मुयेँउ वेंदनिय-जन ।
तुहुँ पडियेउ न पटेँउ पुरंदर । मुकुट न भंगु भंगु गिरिकंदर ।
दृष्टि न नष्ट नष्ट लंकापुरि । वचन न नष्ट नष्ट मंदोदरि ।
हार न टूटु टूटु तारागण । हृदय न भिदु भिदु गगनांगण ।
चक्र न ढुक्कु' ढुक्कु एकंतर । आयु न सुट्टु' सुट्टु रतनाकर ।
जीव न गउ गउ आशा-पोट्टल । तुहुँ न सुत्तु सुत्तु महिमंडल ।
सीय न आनेँउ आनेँउ यमपुरि । हरि-बल क्रुद्ध क्रुद्ध जनु केसरि ।
—रामायण ७६।२-३

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

माणुसु देहु होइ घिणि-विट्टलु। सिरें हि णिवद्धउ हड्डह पोट्टलु।
चलु कुजंतु माय-मउ कुहेंडउ। मलहों पुंजु किमि-कीडहु सूडउ।
पूइगंध[1] रुहिरामिस-भंडउ। चम्म-रुक्खु दुग्गंध-करंडउ।
अंतहों पोट्टलु पक्खिहिँ भोयणु। बाहिहि भवणु मसाणहों भायणु।
आयहु कलुसियऊ जहि अंगउ। कवण पएसु सरीरहों चंगउ।
अण्णु गुणरुव दुप्पेच्छउ। कडियलु पच्छाहर-सारिच्छउ।
जोव्वणु गंडहों अणुहरमाणउ। सिरु णालियर-करंक-समाणउ।

—रामायण ५४।११

एण सरीरें अविणय-थाणे। दिट्ठ णट्ठ जलबिंदु-समाणे।
गुरु-चावेण'व अथिर सहावें। तडि फुरणें'ण'व तक्खण-भावें।
रंभा-गब्भेण'व णीसारें। पक्क-फलेण'व सउणाहारें।
गुणहरेण'व विहडिय-बंधें। पच्छहरेण'व अइदुग्गंधें।
उ[illegible]रें'व [illegible]। अकुलीणेण'व सुकिय-विणासे।
[illegible]ण'व किमि-कोट्ठारें। असुइहि भवणं भूमिहि भारें।
[illegible]-पोट्टलेण [illegible]। पूय-तलाये आमिस-उंडे।
[illegible] रुहिर-जलयरणें। णसि-विवरेण पेम्म-णिज्झरणे।
[illegible] [illegible]। [illegible] कूजंतें।

—रामायण ७७।४

[illegible] भयंकरउ।
[illegible]। किमि [illegible] चिलमावणउँ।

८. कविका संदेश

(१.) काया नरक

नुप देह होइ घृण-विट्टल[1]। गिराइँ बांधेउ हाडह पोट्टल।
चलु सडंत मायामय-कचरउ। मलहँ पुज कृमि-कीटहु सूडउ।
तिगंध रुधिरामिप-भंडा। चर्मवृक्ष दुर्गंध-करंडा।
आंतह पोटल पक्षिहिँ भोजन। काढहिँ भवन मसानेहु भायन।
मायहु कलुपीयहु जहि अंगउ। कवन प्रदेश शरीरह चंगउ।
अन्यइँ शून्य-रूप दुष्प्रेक्ष्यउ। कटितल पच्छाघर सादृश्यउ।
जोवन गंडहु[2] अनुहरमानउ। शिर नारियर-करंक-समानउ।

—रामायण ५४।११

एहि शरीरे अविनय-थाने। दृष्ट-नष्ट जलविंदु-समाने।
सुर-चापा इव अथिर-स्वभावा। तडि-स्फुरणि' इव तत्क्षण भावा।
रंभागर्भ इवा निस्सारा। पक्वफल इव शकुनाहारा।
शून्यघर इव विघटित-बंधा। पच्छा घर[3] इव अतिदुर्गंधा।
कूडापुंजि' इव कीटावासा। अकुलीना इव सुकृत-विनाशा।
परिवाधा इव कृमि-कोट्ठारा। अशुची-भवना भूमिहि भारा।
अस्थिय पोट्टलका वसकुंडा। पूति-तलावा आमिष-कुंडा।
मल-कूटऊ रुधिर-जल छरना। लसि-विवरा पीव-निर्झरणा।
कुथित करंडा[4]ऊ घृणवंता। चर्ममया एते कूजंता।

—रामायण ७७।४

सो चरण-युगल गजमंथरउ। शकुनेहिँ खाद्यंत भयंकरउ।
सो सुरत-नितंव-सोँहावनऊ। कृमि बुजबुजंति चिरसाइनऊ।

---

[1] गंदा विटलाहा (मल्लिका) [2] फोड़ा [3] पाखाना [4] पेटी

तं णाहि-पयेसु किसोयरउ । खज्जंतमाणु थिउ भासुरउ ।
तं जोव्वणु अवरुंडणमणउ । सुज्जंत नवर भीसावणउ ।
तं सुंदरुवयणु जियंताहुँ । किमि कप्पिउ णवर मरंताहुँ ।
तं अहर-विंबु वण्णुज्जलउ । लुंचंतु सिवेँहिँ घिणि-विट्टलउ ।
तं णयणु-जुअलु विब्भम-भरिउ । विच्छायउ कायहिँ कप्परिउ ।
सो चिहुर-भारु कोडावणउ । उड्डंतु णवर भीसावणउ ।
घत्ता । तं माणुसु तं मुह-कमलु, ते थण तं गाढालिंगणउ ।
णवरि धरेविणु णा सउड्ड, वोलिज्जइ धिधि चिलिसावणउ ।।७।।

(२) गर्भवास दुःख

तहिँ तेहइ रस-वस-भूय-भरे । णव मास वसेँव्वउ देहघरे ।
णव णाहिकमलु उत्थल्लु जहिँ । पहिलउ जेँ पिंडु संबंधु तहिँ ।
दस-दिवसु परिट्ठिउ रुहिर-जलु । कणु जेम पईयउ धरणियलु ।
विहि दस-रत्तिहि समुट्ठिअउ । णं जलेँ डिंडीर समुट्ठिअउ ।
तिहि दस-रत्तिहिँ बुव्वुड घडिउ । णं सिसिर-विंदु कंकुम पडिउ ।
दस-रत्ति चउत्थहेँ वित्थरिउ । णावइ पवलंकुरु णीसरिउ ।
पंचमेँ दस-रत्ति जाउ वलिउ । णं सूरण-कंदु चउप्पलिउ ।
दस-दस-रत्तेँहि कर-चरण-सिरु । वीसहि णिप्पण्णु सरीर थिरु ।
णव-मासिउ देहहोँ णीसरिउ । वट्टंतु पडीवउ वीसरिउ ।
घत्ता । जेण दुवारेँ आइयउ, जो तं परिहरे ण सक्कइ ।
पंतिहि जुत्तु वइल्लु जिह, भव-संसारेँ भमंतु ण थक्कइ ।।८।।

(३) आवागमन दुःख

[illegible] मणेँ वि धीरहि अप्पणउँ । करेँ कंकणु जोवहि दप्पणउ ।
चउगइ[1] संसार भमंतएँण । आवंता जंत मरंतएँण ।

सो नाभिप्रदेश कृशोदरऊ। खाद्यंतमान ठिउ भासुरऊ।
सो यौवन अवरुंडन[1]-मनऊ। सुज्जंत अती-भीपावणऊ।
सो सुंदर वदन जियंतेही। कृमि-काटिय तुरत मरंतेही।
सो अधर-बिंब वर्णोज्वलऊ। नोचंत शिवेँहिँ[2] घृण-विट्टलऊ।
सो नयन-युगल विभ्रमभरिऊ। विच्छायउ[3] कायहँ खप्परिऊ।
सो चिकुर-भार हर्षावणऊ। उड्डंत तुरत भीपावणऊ।
घत्ता। सो मानुष सो मुखकमल, सो स्तन सो गाढालिंगनऊ।
तुरत धरंते नासकुटू, वोलिय थिक् चिरसाडनऊ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहँ तेहिहि रस-वस-भूत-भरे। नव मास वसेयउ देहघरे।
नव नाभिकमल उच्छल्ल जहाँ। पहिलहिहि पिंड संबंध तहाँ।
दस दिवस परिट्-ठिउ[4] रुधिर-जलू। कण जेम पडेऊ धरणितलू।
दोउ दशरात्रेँहिँ सम्-उट्ठियऊ। जनु जलेँ डिंडीर[5] सुमुट्ठियऊ।
तेँहि दश रात्रे बुद्बुद गडेँऊ। जनु शिशिरबिंदु कुंकुम पडेऊ।
दशरात्रि चउत्थेहिँ विस्तरिऊ। न्याई प्रवलांकुर निस्सरिऊ।
पँचयेँ दशरात्रे जायोँ वली। जनु सूरन-कंद चऊपहली।
दश दशरात्रेहिँ कर-चरण-शिरू। वीसहिँ निष्पन्न शरीर थिरू।
नवमासे देहा नीसरिऊ। वर्त्तन्त प्रतीउ वीसरिऊ।
घत्ता। जेहि दुवारेँ आयऊ, जो तेहि परि-धारयउ न सक्कै।
पाँतिहि जुतो वइल्ल जिमि, भव-संसार भ्रमंत न थाकै ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

एँहु जानवि धीरेहि आपनऊ। कर-कंकण जोवै दर्पणऊ।
चउगति संसार भ्रमंतएहि। आवंत-जांत-मरतएहिँ।

---

[1] अवरुंडन=आलिंगन [2] सियारों से [3] कुरूप [4] रहेउ [5] कमलनाल

केँवि कड्ढइ सग्गहोँ वरि चडेवि । केँवि खय होणेँइ उप्परेँ चडेवि ।
केवि घारइ थोरइ पाव विसेण । केवि भक्खइ णाणाविहमसेँण ।
घत्ता । तहो कोवि ण चुक्कइ भुक्खियहोँ, काल-भुयंगहोँ दूसहहो ।
जिण-वयण-रसायणु लहु पियहोँ, जिं अजरामर-पउ लइहो ॥२॥
जइ काल-भुअंगु णउव डसइ । तो किं सुर-वइ सग्गहोँ खसइ ।
—रामायण ७८।२,३

विरहाणल-जाल-पलित्त-तणु । चिंतेवएँ लग्गु विसण्ण-मणु ।
सच्चउ संसारि ण अत्थि सुहु । सच्चउ गिरि-मेरु-समाण दुहु ।
सच्चउ जर-जम्मण-मरण-भउ । सच्चउ जीविउ जलबिंद-सउ ।
कहोँ घरु कहो परियणु बंधु जणु । कहोँ माय-वप्पु कहोँ सुहि-सयणु ।
कहोँ पुत्तु-मित्तु कहोँ किर घरिणि । कहोँ भाय-सहोयरु कहोँ वहिणि ।
फलु जाव ताव बंधव-सयण । आवासिय पायवि जिह सउण ।
वलु एम भणेप्पिणु णीसरिउ । रोवंतु पडीवउ वीसरिउ ।
घत्ता । णिद्धणु लक्खण-वज्जिअउ, अण्णु'वि वहु असणेँहिँ भुत्तउ ।
राहउ भमइ भुअंगु जिह, वणेँ "हा हा सीय" भणंतउ ॥११॥
हिंडंतेँ मग्ग मडप्फरेण । वणदेवय पुच्छिय हलहरेण ।
"वणेँ वणेँ वेयारहिँ काइँ मइँ । कहिँ कहिमि दिट्ठ जइ कंतयइँ" ।
वलु एम भणेप्पिणु संचलिउ । ता वग्गएँ वण-गयंदु मिलिउ ।
"हे कुंजर-कामिणि-गइ-गमणा । कहेँ कहिमि दिट्ठ जइ मिगणयणा" ।
णिय-पडिरवेण वेआरियउ । जाणइ सीयएँ हक्कारिअउ ।
कत्थइ दिट्ठइँ इंदीवरइँ । जाणइ-वण-णयणइँ दीहरइँ[१] ।

कोँइ निकसि सर्ग ऊपर चढई। कोँइ क्षय-होवन ऊपर चढई।
　　कोइ धारै थूरै पाप विषहिँ। कोइ भक्खै नानाविध मंसहिँ।
घत्ता। तहँ कोइ न वाँचै भूखियहीँ, काल-भुजंगह दुस्सहहीँ।
　　जिन-वचन-रसायन लघु पियहू, जिमि अजरामर-पद लहहू ॥२॥
यदि काल-भुजंग नहीँ डँसई। तो किमि सुरपति स्वर्गहँ खसई।

—रामायण ७८।२,३

विरहानल ज्वाल-प्रलिप्त तनू। चिता इव लागु विपण्ण-मनू।
　　साँचै संसरै न अहे सुखू। साँचै गिरि-मेरु-समान दुखू।
साँचै जर-जन्मा-मरण-भवा। साँचै जीवित जलविंदु-समा।
　　कहँ घर कहँ परिजन वंधुजना। कहँ माय-वाप कहँ हित-सजना।
कहँ पुत्र-मित्र कहँ पुनि घरिनी। कहँ भाय-सहोदर कहँ वहिनी।
　　फल जवै तवै वांधव-स्वजना। आवासैँ पादपेँ जिमि शकुना।
वल[1] ऐसेँहि भनिया नीसरेऊ। रोवंत पडीयउ वीसरिउ।
घत्ता। निर्धनु लक्ष्मण वर्जितउ, अन्यहु वहुत सनेहि त्यक्तऊ।
　　राघव भ्रमै भुजंग जिमि, वने "हा हा सीय" भनंतऊ ॥११॥
हिंडंतो भग्न गर्वएहिँ। वनदेवत पूछिय हलधरेहिँ[2]।
　　"क्षण-क्षण विकारा काह मई। कहिँ कतहुँ दीस यदि कांतॉ तईँ।"
वल[1] भनिया ऐसे संचलेऊ। तव आगेँइ वन-गयंद मिलेऊ।
　　"हे कुंजर कामिनि-गति-गमना ! कहिँ कतहुँ दीस यदि मृगनयना।"
निज प्रतिरवेहिँ वीचारियऊ। जानै सीता हक्कारियऊ[3]।
　　कतहूँ दीसैँ इंदीवरहीँ। जानै धनि-नयनि-'दीवरहीँ।

---

[1] राम पिछला　[2] राम　[3] पुकारा

कत्थइँ असोय-दलु हल्लियउ। जाणइ धण-वाहा डोल्लिअउ।
वणु सयलु गवेसवि सयल महिँ। पल्लट्टु पडीवउ दासरहि।
—रामायण ३६।७–१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगेँ जीवहो णाहिँ सहाउ कोवि। रइ वंधइ मोह-वसेण तोवि।
इय घरु इउ परियणु इउ कलत्तु। णउ वुज्झइ जिह सयलेहिँ चित्तु।
एक्केण कणुव्वउ विहुरकालेँ। एक्केण सुयेव्वउ जरपयाले।
एक्केण वसेव्वउँ तहि णिगोएँ। एक्केण रुइव्वउ पिय-विऊएँ।
एक्केण भमेव्वउ भवसमुद्देँ। कंमोह मोह जलयर-रउद्देँ।
एक्कहोँ जेँ दुक्खु एक्कहोँ जेँ सुक्खु। एक्कहोँ जेँ वंधु एक्कहोँ जेँ मोक्खु।
एक्कहोँ जेँ पाउ-एक्कहोँ जेँ धम्मु। एक्कहोँ जे मरणु एक्कहोँ जे जम्म।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुणिवर कहिवि लग्गु विउलाइँ। किं जणेण णियहि धम्मे फलाइँ।
धम्मे भड-थड-हय-गय-संदण। पावेँ मरण-विऊय-क्कंदण।
धम्मे सग्गु भोग्गु सोहग्गु। पावेँ रोगु सोगु दोहग्गु।
धम्मेँ रिद्धि-विद्धि सिय-संपय। पावेँ अत्थहीण णर-विद्दय।
धम्मेँ कडय-मउड-कडिसुत्ता। पावेँ णर-दालिद्देँ मुत्ता।
धम्मेँ रज्जु करंति णिरुत्ता। पावेँ परपेसण-संजुत्ता।
धम्मेँ वर-पल्लंकेँ मुत्ता। पावेँ तिण-संथारेँ विभुत्ता।
धम्मेँ णर देवत्तणु पत्ता। पावेँ णरय-घोरेँ संकंता।
धम्मेँ णर रमंति वर-णिलयउ। पावेँ दुह-विऊय दुह-णिलयउ।
धम्मेँ सुंदरु अंगु णिवद्धउ। पावेँ पंगुलउ'वि वहिर'धउ।
—रामायण २८।६

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

काल—८०० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४६)। देश—नालंदा।

(रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेरि घेणि मेलि अच्छहू कीस। वेठिल हाक पडअ चउदीस।
अप्पण मांसे हरिणा वइरी। खणह ण छाडअ भूसुकु अहेरी।
तिण ण छूपइ पिवइ ण पाणी। हरिणा हरिणीर णिलअ ण जाणी।
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तों। ए वन छाडि होहु भान्तो ॥
तरसंत हरिनार खुर न दीसइ। भूसुकु भणइ मुढ ! हिअहिँ ण पइसइ ॥६॥

(२१—राग वराडी)

णिशि अंधारी मूसा करअ अचारा। अमिअ-भखअ मूसा करअ अहारा ॥
मार रे जोइया ! मूसा-पवना। जेण तूटइ अवणा-गवणा ॥
भव विदारअ मूसा खणअ गाती। चंचल मूसा कलिआँ णासअ थाती ॥
काला मूसा उह ण वाण। गअणे उठि करअ अमिअ पाण ॥
तव्वे मूसा अंचल चंचल। सद्गुरु वाहे करह सो निच्चल ॥
जव्वें मूसा अचार तूटअ। भूसुकु भणइ तव्वे बंधण फिट्टइ ॥२१॥

(२३—राग वटारी)

जइ तुम्ह भूसुकु अहेरी जाइव मरिहसि पंच जना।
णलिणीवन पइसन्ते होहिसि एक्कु मणा ॥
जीवंत मा विहणि मएल ण अणिहिलि।
णउ विणु मांसे भूसुकु पउमवण पइसहिलि ॥
मात्राजाल पसारी बाँधेन्ति मात्रा हरिणी।
सदगुरु बोहें बूझि रे कासु (काहिणी ॥)

(अप्पण काये छड्डुवि णउ मइलि खाअइ कालाकालें लेइ ।
पाणी-वेणी णाहि हरिणा पाणि अवेक्खउ ॥
चंचल चंचल चलिआ सुण्ण माँझे अत्थगऊ ॥)२३॥

(२७—राग कामोद)

अव राति भर कमल विकसिउ, वतिस जोइणी तासु अँग उल्हसिउ ।
चालिअउ ससहर मग्ग अवधूई । रअणइ सहज कहेमि ॥
चालिअ ससहर-गउ णिव्वाणे । कमलिनि कमल वहइ पणालें ॥
विरमानंद विलक्खण सुद्ध । जो एथु वुज्झइ सो एथु वुद्ध ।
भूसुकु भणइ मइँ वूझिय मेलें । सहजाणंद महासुह लीलें ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणामेह निरन्तर फारिआ । भावाभाव द्वंदल दालिआ ।
उइउ गअण माज्झ अदभूआ । पेख रे भूसुकु ! सहज सरूआ ॥
जासु सुणन्ते तुट्टइ इँदआल । णिहुए णिज मण देइउ उल्लाल ।
विसअ विसुज्झे मइँ वुज्झिउ आणंदे । गअणहँ जिम उजोली चन्दे ॥
ए निलोए एत वि सारा । जोइ भूसुकु फडइ अँधआरा ॥३०॥

(४१—राग कण्हू-गुंजरी)

आइएँ अनुअनाएँ जग रे भन्तिएँ सो पडिहाइ ।
रज्जु-सप्प देखि जो चमकिउ, साँचे जिम लोअ खाइउ[1] ॥
अकट जोइआरे मा कर हाथ लोण्हा । अइस सहावें जइज वुज्झसि तूटइ वासना तोरा ॥
मरु-मरीचि गंधव-नअरी दापण-पडिविंवु जइसा ।
वातावत्तें सो दिढ भइआ, आयें पाथर जइसा ॥
वाँझिसुआ-जिम केलि करई खेलइ वहुविह खेला ।
वालुअ-तेले सस-सिंगे आकाश फूलिला ॥
राउतु भणइ वट भूसुकु भणइ वट सअला अइस सहावा ।
जइ तो मूढा अच्छसि भान्ती पुच्छतु सदगुरु पावा ॥४१॥

---

[1] साँचे किन वोड़ो खाई J.D.L.

(आपन काये छड़िहा ना मैली। खाय कालाकाले लेई।
पानी-वेणी नहिँ हरिना पानी चाहेउ।
चंचल- चंचल चलि शून्य-मध्ये अथयेउ)[1] ॥२३॥

(२७—राग कामोद)

आधीराति भर कमल विकसेँउ। वतिस जोगिनी तासु अँग हुलसेँउ ॥
चालहु शशधर मग अवधूती। रतने सहज कहौँ मैँ ॥
चालिय शशघर गयेँउ निर्वाणे। कमलिनि कमलहिँ वहै प्रणाले ॥
विरमानंद विलक्षण शुद्ध। जो एहु जानै सो एहिँ बुद्ध।
भूसुक भनै मैं बूझयों मेला। सहजानंद महासुख-लीला ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणा-मेघ निरन्तर फारी। भावाभाव द्वन्दहीँ दारी ॥
उयेँउ गगनमाँझ अदभूता। पेखुं रे भूसुकु सहज-स्वरूपा ॥
जासु सुनत टूटै इन्द्रजाल। नि-धुए निजमन देइ उलास ॥
विषय विशुद्धे मैँ बूझेँउँ आनंदा। गगनहिँ जिमि उजाला चंदा ॥
एहि तिलोके एहुहि सारा। जोइ भूसुकु फटै अँधियारा ॥३०॥

(४१—राग कण्हू गुजरी)

आदिहिँ अजन्मते जग ई भ्रान्ति सोँ प्रतिभाइ।
रज्जु-सर्प देखि चमकेँउ साँचै जिमि लोग खाइ ॥
अहह जोगिया ! न कर हाथ लोना। ऐस स्वभाव यदि बूझसि टुटइ वासना तोरा ॥
मरु-मरीचि गंधर्व-नगरी दर्पण–प्रतिबिंब जैसा।
वातावर्त्त सो दृढ होई, पानिहिँ पाथर जैसा ॥
बाँझसुता जिमि केली करै, खेलै बहुविध खेला।
वालू-तेले शश-शृंगे आकाश फुलेला ॥
राउतु भनै मूढ भूसुकु भनै मूढ सकल ऐस स्वभावा।
यदि तैँ मूढा हवै भ्रान्त पूछहु सद्गुरुपावा ॥४१॥

---

[1] अस्त हो गया

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु फरिअइ तिलोए। खसम सहावे वाणते मुक्क कोइ।
जिम जले पाणिअ टलिआ भेउ न जाअ। तिम मण-रअणा समरसे गअण समाअ॥
यासु णाहि अप्पा तासु परेला काहि। आइ-अन्तअ ण, जाममरण भव नाहि।
भूसुकु भणइ वढ! राउतु भणइ वढ! सअला एह सहाव।
जाइ ण आवइ रे ण तहिँ भावाभाव॥४३॥

(४९—राग मल्लारी)

राअ-नावडी पँउअखँडे वाहिउ। अदअ वँगाल देसह लूटेँउ।
आजि भूसुक वंगाली भइली। णिअ घरिणी चंडाली लेली॥
डहिउ जे पँच पाटन इन्दि-विसआ णठा। ण जानमि चिअ मोर कँहि गइ पइठा॥
सोण-रुअ मोर किंपि ण थाकिउ[1]। णिअ परिवारे महासुह थाकिउ।
चउकोडि भँडार मोर लइउ असेस। जीवँते मइलेँ णाहि विसेस॥४९॥
—चर्यापद

२ : नवीं सदी

§ ५. लुईपा

काल—८३० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४९)
देश—मगध। कुल—कायस्थ, सिद्ध (१)

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काआ तरुवर पंच[1] वि डाल। चंचल चीए पइट्ठा काल॥
दिढ करिअ महासुह परिमाण। लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण॥

सअल-समाहिहि काह करिअइ। सुख-दुखेतें निचित मरिअइ ॥
छडिअउ छंद बांधकरण कपटेर आस। सुण्ण-पक्ख भिडि लेहु रे पास ॥
भणइ लुई आम्हे झाणे दिट्ठा। धमण-चमण वेणि उपरि वइट्ठा ॥१॥

(२९—राग पटमंजरी)

भाव ण होइ अभाव ण जाइ। अइस सँबोहें को पतिआइ ॥
लुई भणइ वढ !· दुलख विणाणा। तिधातुए विलइ ऊह लागेना।
जाहिर वण्ण-चिन्ह-रूअ ण जाणी। सो कइसे आगम-वेएँ वखाणी ॥
काहे रे किस भणि मइँ दिवि पिच्छा। उदक-चंद जिम सांच न मिच्छा।
लुई भणइ मइँ भावइँ कीस। जा लेइ अच्छम ताहेर ऊह न दीस ॥२९॥

—चर्यापद[1]

§ ८. विरूपा

काल ८३० ई० (देवपाल ८०६-४९) देश—त्रिउर (मगध ?)। कुल—भिक्षु, सिद्ध (३)। कृतियाँ—अमृतसिद्धि, दोहा-कोष, कर्मचंडालिका-

रहस्यवाद

(३—राग गवडा)

एक से शौंडिनि दुइ घरे सांधअ। चीअ न वाकलअ वारुणी बाँधअ ॥
सहजे थिर करि वारुणि सांधअ। जें अजरामर होइ दिढ़ काँधअ ॥
दशमी दुआरत चिन्ह देखइआ। आइल गराहक अपने वहिआ ॥
चउशटि घटिये देल पसारा। पइठल गराहक नाहि निसारा ॥
एक घडुली सरु नाल। भणइ विरुआ थिर कर चाल ॥३॥

—चर्यापद

सकल समाधिहिँ काह करिज्जै । सुख-दुःखनते निचित मरिज्जै ॥
छाडि छंद-बंध कर ना कपटकी आश । शून्य-पक्ष भीडि लेहु रे पाश ॥
भनै लुई मैं ध्याने दीठा । धमन-चमन दों उहि ऊपर बैठा ॥१॥

(२९—राग पटमंजरी)

भाव न होइ अभाव न होइ । ऐस सँबोधिहिँ को पतियाइ ।
लूइ भनै मूढ ! दुःलंख विज्ञाना । त्रिधातुहिँ विलसै ऊह लागै ना ॥
जाहि वर्ण-चिन्ह-रूप न जानी । से कैसे आगम-वेद बखानी ।
काहे रे कैसे भनि मैं देवों पूछा । उदक-चंद जिमि साँच न मिथ्या ॥
लूई भनै मैं भावौं कैसे । जे लेइ रही तेहि ऊह न दीसै ॥२९॥

—चर्यापद

§ ६. विरूपा

दोहाकोष, विरूप-गीतिका, विरूप-वज्र-गीतिका, विरूप-पद-चतुरशीति, मार्ग-फलान्विता ववादक, सुनिष्प्रपंचतत्त्वोपदेश ।

रहस्यवाद

(३—राग गवडा)

एक से सूँडिनि[1] दुइ घरे साँधै । चीअ न वाकल वारुणी बाँधै ॥
सहजे थिर करि वारुणि साँधा । जे अजरामर होइ (न) दृढ स्कंधा ॥
दशम दुवारे चिन्ह देखि कहैं । आयउ ग्राहक अपन लेन कहैं ॥
चौंसठ-घडिया देल पसारा । पइठु गराहक नाहिँ निसारा ॥
एक घडल्ली स्वरूपी नाल । भनै विरूपा थिर करु चाल ॥३॥

—चर्यापद

§ ७. डोम्बिपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०)। देश—मगध कुल—क्षत्रिय,

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गंगा-जउँना-माँझे वहइ नाई। तँह बुडिली मातंगी पोइआ लीलें पार करेइ।
वाहतु डोम्वी वाहलो डोम्वी, वाट भइल उछारा।
सदगुरु-पाअ-प(सा)ए जाइव पुनु जिनउरा॥
पाँच केडुआल पड़न्ते माँगे पीठत काच्छी वाँधी।
गअण-दुखोलें सिञ्चहू पाणी न पइसइ साँधी॥
चंद-सूज्ज दुइ चक्का सिठि-संहार-पुलिन्दा।
वाम दहिन दुइ भाग न चेवइ वाहतु छन्दा॥
कवड़ी न लेइ वोडी न लेइ सुच्छड़े पार करई।
जो एथे चड़िया वाहव न जा(न)इ कूलें कूल बुड़ाई॥१४॥
—चर्यापद

§ ८. दारिकपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०)। देश—सालिपुत्र (उड़ीसा)

रहस्यवाद

(३४—राग वराडी)

सुन-करुण अभिन्ने चारें काअवाअचीअें।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकूले॥
[illegible] [illegible] चिए महासुहे।
विलसइ दारिअ गअणत पारिम कूलें॥

किन्तो मन्तो किन्तो तन्ते किन्तो झाण-वखाणे ।
अप्प पइट्ठा महासुह लीलें दुलक्ख परम-निवाणे ॥
दुःखें सुखें एकू करिआ भुञ्जइ इन्दी जानी ।
स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तर मानी ।
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे बाधा ।
लुइपाअ-पए दारिक द्वादश भुअणे लाधा ॥३४॥
—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९) । देश—डिसुनगर ।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तिअड्डा चापि जोइनि दे अँकवाली । कमल-कुलिश घोंटि करहु विआली ॥
जोइनि तइँ विनु खनहि न जीवमि । तो मुह चुम्बि कमल-रस पीवमि ।
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ । मणि-कुले वहिआ उडिआने समाअ ॥
सासु घरें घालि कोंचा-ताल । चाँद-सूज वेणि पखा फाल ।
भणइ गुन्डरी अम्हे कुन्दुरे वीरा । नर अ नारी माझे उभिल चीरा ॥४॥
—चर्यागीति

§ १०. कुक्कुरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९) । देश—कपिलवस्तु । कुल—ब्राह्मण

रहस्यवाद

(२—राग गवडा)

दुलि दुहि पिटा धरण न जाइ । रुखेर तेंतुलि कुँभीरे खाइ ।
आंगन घर पण सुन हे भोविआती । कानेट चोरी निल अधराती ॥

की तोर मंत्रे की तोर तंत्रे की तोर ध्यान वखाने।
आप पइठा महासुख लीले दुलंख परम-निवाणे॥
दुख-सुख एक करी नहिं इन्द्रजाली।
स्व-परापर न चीन्हि दारिक सकल अनुत्तर मानी॥
राजा राजा राजा अवर राजा मोह बँधाया।
लुइपाद-प्रसादे दारिक द्वादश भुवनहिं पाया॥३४॥

—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

कुल—लोहार, सिद्ध (४)। कृतियाँ—गीति।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तिपड़ा चाँपि जोगिनि दे अँकवारी। कमल-कुलिश घोंटि करहु वियाली॥
जोगिनि तोहि बिनु छणहुँ न जीयौं। तव-मुख चूमि कमल-रस पीयौं॥
फेंकहु जोगिनि लेप न जाय। मणि-कुंडल वहि उड्याने समाय॥
सासु घरे डाली कुंजी-ताल। चाँद-सूर्य दोउँ पाखहिं फाल॥
भनै गुंडरी मैं कुन्दुरे वीरा। नर-नारी-माँझे दीनेउँ चीरा॥४॥

—चर्यागीत

§ १०. कुक्कुरीपा

सिद्ध (३४)। कृतियाँ—योगभावनोपदेश, स्रवपरिच्छेदन।

रहस्यवाद

(२—राग गवड़ा)

कूर्म दूहि पात्र धरन न जाय। वृक्षेर इमली कुंभीर खाय।
आँगन घर पुनि सुनु कुविज्ञाती। कानेट चोरि लियेउ अधराती॥

ससुरा निँद गेल वहुडी जागअ । कानेट चोरे निल का गइ मागअ ।।
दिवसइ वहुडी काग-डरे भाअ । राति भइले कामरू जाअ ।
अइसन चर्या कुक्कुरिपाए गाइउ । कोड़ि माझे एकु हिअहिँ समाइउ ।।२।।

(२०—राग पटमंजरी)

हँउ निरासी खमन भतारी । मोँहोर विगोआ कहण न जाई ।
फिटल गो माए ! अन्तउडि चाहि । जा एथु वाहम सो एथु नाहि ।।
पहिल विआण मोर वासना पूडा । नाडि विआरन्ते सेव वापुडा ।
जाण जौवण मोर भइले से पूरा । मूलन खलि बाप संघारा ।।
भणथि कुक्कुरीपाए भवथिरा । जो एथु बूझइ सो एथु वीरा ।।२०।।

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

काल ८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०) । देश—उडीसा । कुल—राजकुमार

रहस्यवाद

(८—राग देवक्री)

सोने भरिती करुणा नावी ।
रूपा थोइ नाहिक ठावी ।।
वाहतु कामलि गअण-उवेसेँ ।
गेला जाम वाहुडइ कइसेँ ।।
खुंटि उपाड़ी मेलिलि काच्छि ।
वाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि ।।
माँगत चढ़िले चउदिस चाहअ ।
(नाव-पीठ चढि विलहिँ पडअ) ।
केडुआल नाहि केँ कि (नाविक) वाहव के पारअ ।।
वाम दाहिण चाँपि मिलि मिलि (चढ़ि) माँगा ।
वाटत मिलिल महासुह साँगा ।।८।।

—चर्यापद

§१२. कराहपा

(कृष्णपाद, चर्यापाद, कृष्णवज्रपाद), काल—८४० (देवपाल ८०६-४९ ई०)। देश—कर्नाटक : निवास—विहार और बंगाल (सोमपुरी)।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोअह गव्व समुव्वहइ, हँउ परमत्थें पवीण।
कोडिअ-मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण-लीण ॥१॥
आगम-वेअ-पुराणें (ही), पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क-सिरीफलें अलिअ जिम, वाहेरीअ भमन्ति ॥२॥
खिति-जल-जलण-पवण-गअण वि माणह।
मण्डल-चक्क विसअ-वुद्धि लइ परिमाणह ॥६॥

(२) सहज-मार्ग

णित्तरंग-सम सहज-रूअ सअल-कलुस-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहिए कुच्छ णाहि काण्ह फुट कहिए ॥१०॥
वहिण्णिक्कालिआ सुण्णासुण्ण पइट्ठ।
सुण्णासुण्ण-वेणि मज्झें रे वढ़! किम्पि ण दिट्ठ ॥११॥
महज एक्कु पर अत्थि तहि फुड़ काण्ह परिजाणइ।
सत्थागम वहु पढइ सुणइ वढ़! किम्पि ण जाणइ ॥१२॥
अह ण गमइ ऊह ण जाइ। वेण्णि-रहिअ तसु णिच्चल ठाइ।
भणइ काण्ह मण कहवि ण फुट्टइ। णिचल पवण घरिणि-घर वट्टइ ॥१३॥
वरगिरिकन्दर गुहिरे जगु तहिँ सअल' वि तुट्टइ।
विमल सलिल सोंस जाइ, कालग्गि पइट्ठइ ॥१४॥
एह वहन्ते णिअ-मणा, वन्धण किअऊ जेण।
तिहुअण सअल' वि फारिआ, पुणु संहरिअ तेण ॥१७॥

'The Jour of the Department of Letters, Cal. Uni.

§ १२. कण्हपा

कुल—ब्राह्मण-भिक्षु, सिद्ध (१७)। कृतियाँ—गीतिका, महाढुंढन, वसंत तिलक, असंबंध-दृष्टि, वज्रगीति, दोहाकोष[1]।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोगा गर्व समुद्वहै, हौं परमार्थ-प्रवीण।
कोटी-मध्ये एक यदि, होइ निरंजन-लीन ॥१॥
आगम-वेद-पुराणहीं, पण्डित मान वहंति।
पक्व-सिरीफल अलिय जिमि, वाहरहीँहि भ्रमन्ति ॥२॥
क्षिति-जल-ज्वलन-पवन, गगनहु मानहु।
मंडल-चक्र विषय-बुद्धि लेइ परिमाणहु ॥६॥

(२) सहज-मार्ग

निस्तरंग सम सहज रूप, सकल-कलुष-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहित किछु नाहि, काण्हे फुर कहिये ॥१०॥
वाहर निकालिय शून्याशून्य प्रविष्ट।
शून्याशून्य दोउ मध्ये, मूढ़ा! किछुअ न दृष्ट ॥११॥
सहज एक पर अहै तहँ फुर काण्ह परि-जानै।
शास्त्रागम वहु पढै सुनै मूढ! किछुउ न जानै ॥१२॥
अधो न जाइ ऊर्ध्व न जाइ। द्वैत-रहित तासु निश्चल ठाइ।
भनै काण्ह मन कैसहु न फूटै। निश्चल पवन घरनी-घरे वाटै ॥१३॥
वर-गिरि-कन्दर-कुहरे, जग तँह सकलउ टूटै।
विमल-सलिल सुखि जाइ, काल-अगिन पइट्ठै ॥१४॥
प्रभा वहन्ता निज मन, वंधन कियेऊ जेहिं।
त्रिभुवन सकलउ फारिया, पुनि संहारिय तेहिं ॥१७॥

---

[1] Vol. XXVIII, pp. 24-27

सहजे णिच्चल जेण किअ, समरसें णिअ-मण-राअ।
सिद्धो सो पुण तक्खणे, णउ जरामरणह भाअ ॥१९॥

(३) निर्वाण-साधना

णिच्चल णिव्विअप्प णिव्विआर। उअअ-अत्थमण-रहिअ सुसार।
अइसो सो णिव्वाण भणिज्जइ। जहिँ मण माणस किम्पि ण किज्जइ ॥२०॥
जइ पवण-गमण-दुआरे, दिढ तालावि दिज्जइ।
जइ तसु घोरान्धारें, मण दिवहो किज्जइ ॥
जिण-रअण उअरें जइ, सो वरु अम्वरु छुप्पइ।
भणइ काण्ह भव भुञ्जन्ते, णिव्वाणो'वि सिज्झइ ॥२२॥
वर-गिरि-सिहर उतुग मुणि, सवरें जहिँ किअ वास।
णउ सो लंघिअ पँचाणणेहि, करि-वर दुरिआ आस ॥२५॥
एहु सो गिरिवर कहिअ मँइ, एहु सो महसुह ठाव।
एक्कु रअणी सहज-खण, लब्भइ महसुह जाव ॥२६॥
सव जगु काअ-वाअ-मण मिलि विफुरइ तहि सो दूरे।
सो एहु भंगे महासुह णिव्वाण एक्कु रे ॥२७॥
एक्कु ण किज्जइ मन्त ण तन्त। णिअ-घरणी लइ केलि करन्त ॥
णिअ-घरे घरणी जाव ण मज्जइ। ताव कि पञ्च वण्ण विहरिज्जइ ॥२८॥
एसो जप-होमे मण्डल कम्मे। अणुदिण अच्छसि काहिउ धम्मे ॥
तो विणु तरुणि णिरन्तर णेहें। वोहि कि लब्भइ एण'वि देहें ॥२९॥
जें किअ णिच्चल मण-रअण, णिअ-घरणी लइ एत्थ।
सोह वाजिरा-णाहु रे, मयिँ वुत्तो परमत्थ ॥३१॥
जिमि लोण विलिज्जइ पाणिएँहि, तिम घरिणी लइ चित्त।
समरस जाई तक्खणे, जइ पुणु ते सम णित्त ॥३२॥

सहजे निश्चल जें हिं किय, सम-रस निज-मन राग।
सिद्धा सो पुनि तत्क्षणे, न जरामरणहँ भाग ॥१६॥

(३) निर्वाण-साधना

निश्चल निर्विकल्प निर्विकार। उदय-अस्तमन-रहित सु-सार।
ऐसो सो निर्वाण भनिज्जै। जँह मन-मानस कछुउ न किज्जै ॥२०॥
यदि पवन-गमन-दुआरें, दृढ तालाहू दीजै।
यदि तँह घोर अन्हारे, मन-दीपहु कीजै ॥
जिन-रतन उये यदि, सो वर-अंवर छूवै।
भनै काण्ह भव भोगतहिँ, निर्वाणहु सीझै ॥२२॥
वर-गिरि-शिखर-उतुंग मुनि, शवरा' जँह किउ वास।
ना सो लाँघेँउ पांच मुख, करिवर दूरेँउ आस ॥२५॥
एहु सो गिरि-वर कहेँउँ मैँ, एहु सो महसुख-ठाँव।
एक रजनि सहज क्षणे, लभै महासुख जाव ॥२६॥
सव जग काय-वाक्-मन मिलि , स्फुरै नाहि सो दूरे।
सो एहि भंगेँ महासुख निर्वाण एक रे ॥२७॥
एक न कीजै मन्त्र न तन्त्र। निज घरनी लेइ केलि करन्त।
निज घरे घरनी जौ न मज्जै। तौ की पंच वर्ण विहरीजै ॥२८॥
ऐँहु जप-होमे मंडल कर्मे। अनुदिन रहो काहे धर्मे।
तो विनु तरुणि निरन्तर स्नेहे। वोधि कि लब्भै अन्यहिँ देहे ॥२९॥
जो किद निश्चल मन-रतन, निज घरनी लेइ एत्थ।
सोँई वज्जरनाथ रे, मैँ वोलेँउँ परमार्थ ॥३१॥
जिमि नोन विलाय पानियहिँ, तिमि घरनी लेइँ चित्त।
सम-रस जाये तत्क्षण, यदि पुनि सो सम नित्त ॥३२॥
—दोहाकोष

(४) रहस्य-गीत

(२) गीते[1]

(९—राग पटमंजरी)

एवंकार दिढ़ बाखोड़ मोड्डिउ । विविह विश्रापक बाँधन तोडिउ ॥
काण्ह विलसिश्रा श्रासव-माता । सहज-नलिनि-वन पइसि निवाता ॥
जिम जिम करिणा करिणिरें रीभश्र । तिम तिम तथता-मश्रगल वरिसश्र ॥
छड गइ सश्रल सहावे सुद्ध । भावाभाव वलाग न छुद्ध ॥
दशवल रश्रण हरिश्र दश दीसें । श्रविद्यकरिकूं दम श्रकिलेसें ॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर वाहिरे डोम्वि तोहोरि कुडिश्रा । छाइ छोंइ जाइ सो वाम्हण नाडिया ।
श्रालो डोम्वि तोए सम करिव म संग । निघिण काण्ह कपालि जोई लाँग ॥
एक सो पदुम चौपठि पाखुड़ी । तहिँ चडि णाचश्र डोम्वि वापुड़ी ॥
हालो डोम्वि तो पूछमि सद्भावे । श्राइससि जासि डोम्वि काहरि नावें ॥
ताँति विकणश्र डोम्वी श्रवर न चँगेडा । तोहोर श्रन्तरे छड़ि नड़ पेड़ा ॥
तूं लो डोम्वी हाँउ कपाली । तोहोर श्रन्तरे मोए घेणिलि हाडेरि माली ॥
सरवर भाँजिश्र डोम्वी खाश्र मोंलाण । मारमि डोम्वी लेमि पराण ॥१०॥

(११—राग पटमंजरी)

नाडि शक्ति दिढ धरिश्रा खाटे । श्रनहा डमरु वजइ विरनाटे ॥
काण्ह कपाली जोइ पइठ श्रचारे । देह न श्ररि विहरइ एककारें ॥
श्रनि-कलि घंटा नेउर चरणे । रवि-शशि-कुंडल किउ श्राभरणे ॥
राग-दोष-मोहे लाइश्र छार । परम मोख लवएँ मुत्ताहार ॥
मारिश्र शासु नणँद घरें शाली । मा मरिश्र काण्ह भइल कपाली ॥११॥

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतें

(९—राग पटमंजरी)

एँहि विधि दोउ खम्भा मोडी । विविध-व्यापक बंधन तोडी ।
काण्ह विलासै आसव-माता । सहज नलिन-वन पइठि नि-वाता ॥
जिमि जिमि करिणा करिणिहिँ रीझै । तिमि तिमि तथता मद-कण वरसै ।'
षड्गति सकल स्वभावे शुद्ध । भावाभाव वालाग्र न शुद्ध ॥
दशवल-रतन-भरित दश दीसा । अविद्या-करिहिँ दम अक्लेशा ॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर-बाहिरे डोम्बी[1] तोहर कुटिका । छुइ छुइ जाइ सो बाभन-लडिका ।
अरे डोम्बी तोरे साथ करव न संग । निर्घृण काण्ह कपाल-जोगि नंग
एकउ पदुम चौंसठ पाँखुरी । तँह चढि नाचै डोम्बि बापुरी ।
हे रे डोम्बी ! तोहिँ पूँछौँ सद्भावे । आवै जाय डोम्बी ! केकरि नावे
तंत्री विकिनै डोम्बी और चंगेरा । तोहर कारण छाडी नल पेरा ।
तैँ रे डोम्बी मैं कपाली । तोहोँर कारण मैं लेलोँ हाडकै मार
सरवर भाँगि डोम्बी खाइ मृणाल । मारहुँ डोम्बि लेई पार ॥१०॥

(११—राग पटमंजरी)

नारी शक्ति दृढ धरिके खाटे । अनहद डमरू बजै वीर-नादे ॥
काण्ह कपाली जोगी पइठो आचारे । देह-नगरी विहरै एका
आली-काली-घंटा-नूपुर चरणे । रवि-शशि-कुंडल कियउ आभरणे ॥
राग-द्वेष-मोहे लाई छार । परम-मोक्ष लिये मुक्त
मारेँ उसासु-ननद घरेँ साली । मातु मारि काण्ह भइल कपाली ॥११॥

---

[1] सुरति=चित-एकाग्रता

(१८—राग गउडा)

तीन-भुअण मइँ वाहिअ हेलें। हँउ सूतेलि महासुह लीलें॥
कइसनि डोम्बि तोहोंरि भाभरि आली। अन्ते कुलिण जण माँझें कवाली॥
तँइ लो डोम्बी सअल विटालिउ। काज ण कारण ससहर टालिउ।
केहों केहों तोंहोंरे विरुआ बोलइ। विदु जन लोअ तोरे कण्ठ न मेलइ॥
काण्हे गाइ तू कामचँडाली। डोम्बि तआगलि नाहि छिनाली॥१८॥

(१९—राग भैरवी)

भव-णिव्वाणे पड़इ माँदला। मण-पवण-वेण्णि करँउ कशाला॥
जअ जअ दुन्दुहि सद्द उछलिला। काण्हे डोम्बि-विवाहे चलिला॥
डोम्बि विवाहिअ अहारिउ जाम। जउतुके किअ आणूतू धाम॥
अहणिसि सुरअ-पसंगे जाअ। जोइणि जाले रअणि पोंहाअ॥
डोंबिएँ - संगे जोई रत्तो। खणह ण छाडअ सहज-उमत्तो॥१९॥

(३६—राग पटमंजरी)

सुण्ण वाह तथता पहारी। मोह-भँडार लइ सअल अहारी॥
घुमइ न चेवइ स-पर-विभागा। सहज-निदालु काण्हिला लाँगा॥
चेअण ण वेअण भर निद गेला। सअल मुकल करि सुहे सुतेला॥
सुअने मइँ देखिल तिहुअण सुण्ण। घोलिअ अवनागवण विहूण॥
साखि करिब जालंधरि-पाए। पाखि न चहइ मोंरि पँडिआचाए॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चिअ सहजे सुण्ण सँपुण्णा। काँधवियोएँ मा होहि विसन्ना॥
भण कइसे काण्हा नाही। फरइ अणुदिण तिलोएँ समाई॥

मूढा दिठ नाठ देखि काअर । भाँग तरंग कि सोषइ साअर ॥
मूढ ! अच्छन्ते लोअण पेक्खइ । दूव माँझें लउ अच्छन्ते ण देक्खइ ॥
भव जाई ण आवइ ण एथु कोई । अइस भावे विलसइ काण्हिल जोई ॥४२॥

(४५—राग मल्लारी)

मण-तरु पाँच इन्दि तसु साहा । आसा-वहल पात फल वाहा ॥
वर-गुरु-वअणें कुठारें छिज्जअ । काण्ह भणइ तरु पुण ण उइजअ ॥
वढइ सो तरू सुभासुभ पाणी । छेवइ विदु-जन गुरु-परिमाणी ॥
जो तरु छेवइ भेउ ण जाणइ । सड़ि पडिआँ मुढ ! ना भव माणइ ॥
सुण्णा तरुवर गअण-कुठार । छेवइ सो तरु-मूल ण डाल ॥४५॥

—चर्यापद[1]

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला ।
घणे किपिट्टहों वज्जइ, करुणेकि अई न रोला ॥
तहि बल खज्जइ गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई ।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुरु वज्जिअई ॥
चउसम कस्तुरि सिह्ला कप्पुर लाइअई ॥
मालइ-इंधन सलील तहि भरु खाइअई ॥
पेंखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ ॥
निरँसुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ ॥
मलअज कुन्दुरु वट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ ॥

—चर्यापद[2]

---

[1] J.D.L. Cal. XXX, p. 36 [2] J.D.L. Cal. XXVIII, p. 36

मूढ ! दृष्ट नष्ट देखि कातर। भांग तरंग कि सोखै सागर॥
मूढ ! अछतै लोग न पेखै। दूध मांझ घृत अछत न देखै॥
भव जाइ न आवै न एँहि कोई। ऐस भावहिं विलसै काण्हिल योगी ॥२४॥

(४५—राग मल्लारी)

मन तरु पांच इन्द्रि तसु साखा। आसा-बहुल पत्र-फल-वाहा॥
वरगुरु-वचन कुठारें हिं छीजै। काण्ह भनै तरु पुनि न उपजै॥
बढै सो तरु शुभाशुभ पानी। छेवै विदु-जन गुरु-परिमाणी॥
जो तरु छेवै भेद न जानै। सड़ पड़ें ज्यो मुढ ! न भव मानै॥
शून्या तरुवर गगन-कुठार। छेवै सो तरु-मूल न डार॥

—चर्यापद

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला।
घणे किपिट्टहों वज्जइ, करुणेकि अई न रोला
तहि वल खज्जइ गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुदुर वज्जिअ
चउसम कस्तुरि सिह्ला कप्पुर लाइअई।
मालइ-इँधन सलील तहि भरु खाइ
पेंखण खेट करन्ते मुद्धासुद्ध ण माणिअइ।
निरें सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणि
मलअज कुन्दुरु वट्टइ, डिडिम तहिँ णा वज्जिअइ॥

—

[1] J.D.L. Cal XXVIII, p. 36

§१३. गोरखनाथ (गोरक्षपा)

काल—८४५ (देवपाल ८०९-४९)। देश—गोरखपुर(?)। कुल····
कृतियां—(१) गोरखवानी[1], (२) वायुतत्त्वोपदेश[2]

१. आत्म-परिचय[3]

(१) मछेन्द्र (मत्स्येन्द्र)के शिष्य—

प्यंडे होइ तो मरै न कोई। ब्रह्मंडे देषै[4] सब लोई।
प्यंड ब्रह्मंड निरंतर वास। भणंत गोरष मछचंद्रका दास ॥ (२५।७०)
गुदडी जुग च्यारि तैं आई। गुदडी सिध-साधिकां चलाई।
गुदडीमें अतीतका वासा। भणंत गोरख मछचंद्रका दासा ॥ (६६।१९७)[5]

(२) चौरासी सिद्धोंसे संबंध

मन मछिंद्रनाथ पवन ईस्वरनाथ चेतना चौरंगीनाथ।
ग्यान श्रीगोरखनाथ। (पृष्ठ २०४)
नाद हमारै वाहै कवन। नाद बजाया तूटै पवन।
अनहद सबद बाजत रहै। सिध-संकेत श्रीगोरख कहै ॥ (३७।१०६)
नो नाथा नै चौरासी सिधा, आसणधारी हूव ॥ (१३३।५)
आदिनाथ[6] नाती मछिंद्रनाथ पूता। व्यंद तोलै गपीले गोरष अवधूता ॥ (पृ० ९१)

---

[1] डाक्टर पीतांबरदत्त बड़थ्वाल सम्पादित—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (संवत् १९९९) [2] भोट-भाषानुवाद (तनजुर ४८।१५१)
[3] सब उद्धरण गोरखवाणी से पृष्ठ और पद्यांक
[4] ष का उच्चार ख और श दोनों होता है, यहां ख है।
[5] गोरखबानीकी भाषा ९वीं सदी नहीं पंद्रहवीं-सोलहवीं की है।
[6] [illegible] (दे० पुरातत्त्व-निबंधावली, पृ० १६३)

२. दर्शन (चौरासी सिद्धोंका)

(१) सहजयान

हबकि न बोलिबा ठबकि न चालिबा धीरै धरिबा पांव ।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरषराव ॥ (११।२७)
गिरही सो जो गिरहै काया । अभि-अंतरकी त्यागै माया ।
सहज-सीलका धरै सरीर । सो गिरही गंगाका नीर ॥ (१७।४५)
निद्रा सुपनैं बिन्दु कूं हरै । पंथ चलंतां आतमां मरै ।
बैठां पटपट ऊभां उपाधि । गोरष कहै पूता सहज-समाधि ॥ (७०।२१२)
जिहि घर चंद-सूर नहिं ऊगै, तिहि घरि होसी उजियारा ।
तिहां जे आसण पूरो तो सहजका भरो पियाला मेरे ज्ञानी ॥ (६०।४)
सहज-पलांण पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित चबका ।
चेतनि असवार ग्यान गुरू करि, और तजो सब ढबका ॥ (१०३।२)
सहज गोरखनाथ बणिजे कराई, पंच बलद नौ गाई ।
सहज सुभावै बापर ल्याई, मोरे मन उड़ियानी आई ॥ (१०४।१)
भणंत गोरखनाथ मछिंद्रका पूता, एहा बणिज ना अरथी ।
करणी अपणी पार उतरणां, बचने लेणां माथी । (१०४।३)
काया गढ़ लेवा जुगे-जुग जीवा ॥टेक॥
काया गढ़ भीतरि नौ लष खाई , जंत्र फिरै गढ़ लिया न जाई ।१।
ऊंचे नींचे परवत झिलमिल पाई, कोठड़ीका पाणी पूरण गढ़ जाई ।
इहां नहीं उहां नहीं त्रिकुटी-मंझारी, सहज-सुनि मैं रहनि हमारी ।३।
आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता, कायागढ़ जीति ले गोरष अवधूता ।४। (१४३।३९)
त्रिभुवन डसती गोरखनाथ डीठी ॥टेक॥
मारो सपणीं जगाई ल्यौ भौरा,
जिनि मारी सपणीं ताकौं कहा करै जौरा ।१।
सपणी कहै मैं अबला बलिया,
ब्रह्मा बिस्न महादेव छलिया ।२।

माती माती स्रपनीं दसौ दिसि धावै,
गोरखनाथ गारुड़ी पवन वेगि ल्यावै। (१३९।३)

अवधू सहज हंसका षेल भणीजै, सुंनि हंसका वास।
सहजैं ही आकार निराकार होइसी, परम-ज्योति हंसका निवास। (१९१।४०)

अवधू सहज-सुनि उतपना आइ। समि सुनि सतगुरु बुझाइ।
अतीत सुनिमें रह्या समाइ। परम-तत्व मैं कहूं समझाइ। (१९३।६२)

वांफ न निकसै बूंद न ढलके, सहजि अंगीठी भरि भरि रांधै।
सिव-समाधि योग-अभ्यासी, तब गुरु परचै साधै। (२१८।४४)

(२) मध्य-मार्ग

षांयें भी मरिये अणषांयें भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरिये।
मधि निरंतर कीजै वास। निहचल मनुवां थिर होइ सांस। (५१।१४६)

(३) अलख और निरंजन-तत्त्व—

घरवारी सो घरकी जाणै। बाहरि जाता भीतरि आणै।
सरब निरंतरि काटै माया। सो घरबारी कहिये निरंजनकी काया। (१६।४४)

पंच तत ले सिवा मुडाया, तब भेंटि ले निरंजन-निराकारं।
मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू, तब लूटि ले अपै भंडार। (२७।७७)

अनेग नेपंन अदेष देषंत, अरस-परस ते दरस जाणी।
सुनि गरजंत बाजंत नाद, अलेष लेषंत ते निज प्रवाणी। (३२।९१)

उदय न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन्न।
सोई निरंजन डाल न मूल, सर्वव्यापिक सुषम न अस्थूल। (३९।१११)

माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरंजन-निराकारं।
गुरु हमारे प्रतीत बोलिये, जिन किया पिण्डका उधारं। (६७।२०२)

[illegible] नाटि अखानां। कवण घटि जोति कवण अस्थानां।
कहां निरंजन बाला बरहीं। कहां कालीं नागनी मींडक बरहीं॥ (१६६।१०)

[illegible] पाता लेना। ऊंट कहां [illegible] घेग।
[illegible] नाद कहां कोणी [illegible]। [illegible] संग्राम पृथ्य भया [illegible]॥ (१६६।११)

(४) शून्य और आकाशतत्त्व

पाखंड-रूप सदा-निर जाग । गनि पनिअर्ना पद-निरवाण ।
कहै फरमानें गुरुमुखि जोइ । याहि आवागवन न होइ । (५७।१९८)
जोगी सो जो राखै जोग । जिभ्या इन्द्री न करै भोग ।
अंजन छोड़ि निरंजन रहै । ताकू गोरख जोगी कहै ॥ (७३।८३०)
सुनि ज माई सुनि ज बाप । सुनि निरंजन आपै आप ।
सुनिकै परचै भया सथीर । निहचल जोगी गहर-गंभीर ॥ (७३।८३१)
अवधू सहजे सुनि रूप, पवनता निरालंभ धारा ।
उलटी पवन दुआ, साधिया रहै ज्ञान ॥ (१८७।८)
अवधू जिभ्या न होता तब सुनि होता मन ।
नासी न होती तब निराकार होता पवन ॥
रूप न होता तब परमान होता सबद ।
गगन न होता तब अंतर होता नाद ॥ (१८९।२८)
स्वामी कौण तेज थैं जोति प्रगटै । कौण सुनि थैं वाया फूटै ।
कौण सुंनि थैं त्रिभुवन सार । कौण सुनि थैं उतरिवा पार ॥ (१९४।६९)
अवधू सुंनै आवै सुंने जाइ । सुंने रहिया सुंनै समाइ ।
सहज-सुंनि मन-मन थिर रहै । ऐसा बिचार मछिन्द्र कहै ॥ (१९५।७८)
अवधू सबद अनाहद सुरति सोचिन्त । निरति निरालंभ लागै बंध ।
दुबध्या मेटि सहजमें रहै । ऐसा बिचार मछिन्द्र कहै । (१९६।८४)

(५) रहस्यवाद

सिष्टि-उतपती बेली प्रकास, मूल न थी, चली आकास ।
उरध गोड़ कियो विसतार, जाणनै जोगी करै बिचार । (११६।१)
भणत गोरखनाथ मछिंद्रना पूता, मारयो मृघ भया अवधूता ।
याहि ह्यिाली जे कोई बूझै, ता जोगीको त्रिभुवन सूझै । (११६।५)

गुरु जी ऐसा करम न कीजै, ताथैं अमी-महारस छीजै ॥ टेक ॥
दिवसै वाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै ।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि-घरि बाघणि पोषै ॥
नदी तीरै विरषा नारी संगै पुरषा अलप-जीवनकी आशा ।
मनथैं उपज मेर षिसि पड़ई ताथैं कंध विनासा ॥
गोड़ भये डगमग पेट भया डीला, सिर वगुलाकी पँखियाँ ।
अमी-महारस वाघणी सोष्या घोर मथन जैसी अंखियां ॥
बाँघिनीको निदिलै वाघनीको विदिलै वाघनी हमारी काया ।
वाघनी घोपि घोपि सुंदर पाये भणत गोरखराया ।३।
(१३७।४३)

वांधौ बांधौ वछरा पीओ पीओ पीर । कलि अजरावर होइ सरीर । टेक ।
आकासकी धेन वछा जाया । ता धेनकै पूछ न पाया ।१।
बारह वछा सोलह गाई । धेन दुहावत रैन बिहाई ।२।
अचरा न चरै धेन कटरा न पाई । पंच ग्वालियाँको मारण धाई ।
याही धेनक दूध जु मीठा । पीवै गोरखनाथ गगन वईठा ॥ (१४७।५१।)
मांभन्दि राजा बोल्या रे अवधू । सुणै अनोपम वाणी जी ।
निग्गुण नारी मूं नेह करंता । भत्रकै रैणि विहाणी जी । टेक ।
डाल न मूल पत्र नहि छाया । विण जल पिगुला सीचै जी ।
झिंगरी मढ़ीयां मंदला वाजै । यण विधि लोका रीझै जी ।१।
चींट्यां परवत ढोल्या रे अवधू । गायां वाघ विडारचा जी ।
सुसलै ममदा नाहरि मनाई । मृघा चीता मारचा जी ॥
कर्महि मारगि जाता रे अवधू । गुर विन नहीं प्रकासा जी ।
गीता गोरष अब नहीं हारै । समझि खालै पासा जी । (१५३।५७।)
गोरष बालक बोलै सतगुर वाणी रे ।

जोगिया न ... धरणि न पाणी रे ॥ टेक ॥
रांडी रूठै, गैंनि छिपै, सासूड़ी पासन पाणी लिखै ।१।
मंदिर जोगी आयो, ... आयो ।२।
... पाप ... पाप, ... सासूड़ी पाप ।३।
... पूत, गोरखनाथ ... पूत । (१५।१६०)

३—साधना और उलटबाँसी

(१) साधना

बैठा अवधू लोहै की खूंटी, चलता अवधू पवन की मूठी ।
सोवता अवधू जीवता मूवा, बोलता अवधू प्यंजरै सूवा । (२५।७१)
दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा सुरति लुकाइबा कान ।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा, तब रहि गया पद निरबांन । (२७।७५)
उलटिया पवना गगन समोइ, तब बालरूप परतषि होइ ।
इहै ग्रहि मन तहाँ ग्रहि पवन मेला, दोंधिलै ... निज गगन मेला ॥ (३१।८८)
अहंकार तुटिबा निराकार फुटिबा, सोखिबा गंग-जमुन का पानी ।
चंद-सूरज दोऊ सनमुखि राखिबा, कहौ हो अवधू तहाँ कि सहिनाणी ॥
(३६।११३)
अवधू मन्य अमावस पंथ सु पड़िया । अग्यनका महारस ऊरध लै चढ़िया ॥
गगन अस्थाने मन उनमन रहै । ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥ (१८८।१८)
अन्तर पवना रहै निरंतरि । महारस सीझै काया अभियंतरि ।
गोरख कहै अम्हे चंचल ग्रहिया । सिव-सकती लै निज घर रहिया ॥ (४५।१३०)

(२) उलटबाँसी

गगनि-मंडलि मैं गाय बियाई कागद दही जमाया ।
छाछि छाँड़ि पिंडता पीनी सिधा माषण खाया ॥ (६६।१६६)

नाथ बोले अमृत वाणी वरिषैगी, कंवली भीजैगा पाणी । टेक ।
गड़ि पड़रवा बाँधिलै षूंटा, चलै दमामा बाजि ले ऊँटा ।१।
कउवाकी डाली पीपल वासै, मूसाकै सबद बिलइया नासै ।२।
चले बटावा थाकी बाट, सोवे डुकरिया ठौरे षाट ।३।
ढूकि ले कूकुर भूकि ले चोर, काढै धणी पुकारै ढोर ।४।
ऊजड़ षेड़ा नगर-मझारी, तलि गागरि ऊपर पनिहारी ।५।
मगरी परि चूंल्हा धूंधाइ, पोवणहाराकौ रोटी खाइ ।६।
कामिनि जलै अँगीठी तापै, बिच बैसंदर थरहर काँपै ।७।
एक जु रढिया रढती आई, बहू बिवाई सासू जाई ।८।
नगरीकौ पाणी कूई आवै, उलटी चरचा गोरख गावै । (१४१।४७)

४–गोरखका संदेश

(१) रुढ़ि-खण्डन

अबूझि बूझि लै हो पंडिता, अकथ कथिलै कहाणी ।
सीस नवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैंण बिहाणी । (७२।२२२)
मेरा गुरु तीनि छंद गावै,
ना जाणौं गुर कहाँ गैला, मुझ नींदड़ी न आवै ॥ टेक ॥
कुम्हराकै घरि हाँडी आछै, अहीराके घरि साँडी ।
बमनाकै घरि राड़ी आछै, राड़ी, साँडी हाँड़ी ।१।
गजारै घरि मैन आछै, जंगल-मधे बेल ।
तेलीकै घरि तेल आछै, तेल-बेल-सेल ।२।
अतीतकै घरि मढ़ली आछै, देवल-मध्ये ल्यंग ।
हाटी-मधे हीगँ आछै, हीगँ, ल्यंग, स्यंग ।३।
एतै गुणं नाना वणियाँ, बहु भाँति दिखलावै ।
भणंत गोरष त्रिगुणी माया, सतगुर होइ लषावै ।
(१३६।४२)

यम चितवो जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवनका काल।
छाड़ौ तंत-मंत वेदंत। जंत्र गुटिका धात पषंड।
(१७०।४)

जड़ी-बूटीका नांव जिनि लेहु। राज-दुवार पाव जिनि देहु।
थंभन मोहन वसिकरन छाड़ौ औचाट। सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभकी वाट।
(१७०।५)

नैण महारस फिरौ जिनि देस। जटा भार बँधौ जिनि केस।
रुष-विरप-वाड़ी जिनि करो। कूवा-निवाण षोदि जिनि मरौ। (१७१।७)
छोड़ौ वैद-वणज-व्योपार। पढ़िवा गुणिवा लोकाचार। (१७०।६)
ज़ा-पाठ· जपौ जिनि जाप। जोग मांहि विटंवौ आप।
ग़ड़ी-बूटी भूलै मति कोइ। पहली राँड वैदकी होइ।
जड़ी-बूटी अमर जे करे। तौ वैद धनंतर काहे को मरै। (१७७।१७)
सोनै रूपै सीझै काज। तौ कत राजा छोड़ै राज।
पसुवा होइ जपै नहिँ जाप। सो पसुवा भोंपि क्यों जात। (१७७।१८)

(२) राजा-प्रजाको समान देखना—

निसपती जोगी जानिवा कैसा। अगनी पाणी लोहा माने जैसा।
राजा-परजा सम करि देष। तव जानिवा जोगी निसपतिका भेष। (४८।१३६)

(३) भोगमें योग

भग-मुषि व्यंद अगनि-मुष पारा। जो राखै सो गुरू हमारा। (४६।१४२)
पायें भी मरिये अणपायें भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरियै।
मधि निरंतर कीजै वास। निहचल मनुवा थिर होइ साँस। (५१।१४८
आओ देवी वैसो। द्वादिस अंगुल पैसो
पैसत पैंसत होइ सुष। तव जनम-मरनका जाइ दुष। (५३।१५'
स्वामी काची वाई काचा जिंद। काची काया काचा विंद।
क्यूँ करि पाकै क्यूँ करि सीझै। काची अगनी नीर न पीजै॥ (५४।१

§ १४. टेंडण(तंति)पा

काल—८४५ (देवपाल-विग्रहपाल ८०६–४६–५४)। देश—अवंतिनगर

(३३—राग पटमंजरी)

टालत (नगरत) मोर घर नाहि पडिवेशी ।
हाँडीत भात नाहि निति आवेशी ॥
वेङ्गस साप वड्हिल जाअ ।
दुहिल दुधु कि वेन्टे समाअ ॥
बलद विआअल गविआ बाँझे ।
पिटहु दुहिअइ ए तिनो साँझे ॥
जो सो बुधी सोध नि-बुधी ।
जो सो चोर सोई साधी ।
निति सिआला सिहे सम जूझअ ।
टेण्टण पाएर गीत विरले बूझअ ॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०–५४–९०८)। देश—मगध।

(१६—राग भैरवी)

तीनिए पाटें लागेलि अणहअ सन घण गाजइ ।
ता मुनि मार भयंकर विसअ-मंडल सअल भाजइ ॥
मातेल चीअ-गएन्दा धावइ । निरंतर गअणंत तुसे (रवि-ससि) घोलइ ॥
पाप-पुण्ण बेणि तोडिअ सिकल मोडिअ खम्भा ठाणा ।
गअण-टाकली लागेलि रे चित्त पइट्ठ णिवाणा ॥
महारस पाने मातेल रे तिहुअन सअल उएखी ।
पंच विसअ-नायक रे विपख कोवि न देखी ॥
खर रवि-किरण संतापें रे गअणङ्गण जइ पइठा ।
भणन्ति महिआ मइ एथु बुडन्ते किम्पि न दिठ ॥१६॥

—चर्यापद

§ १४. टेंडण(तंति)पा

(उज्जैन)। कुल—तँतवा (कोरी), सिद्ध (१३)। कृति—चतुर्योग-भावना

(३३—राग पटमंजरी)

नगर-माँझ मोर घर, नाहि पडोसी।
हाँडीते भात नाहीं नित्य आवेशी॥
वें गेहिँ साँप वधिल जाय।
कच्छू दूध कि मेंटे समाय॥
वरघ वियाइल गैया वाँझी।
मेंटहि दूहिय तीनों साँझी॥
जो सो वुद्धी सोइ निर्बुद्धी।
जो सो चोर सोई साहु॥
नित्य सियारा सिंह से जूझै।
ढेंढणपा कै गीति विरलै वूझै॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

कुल—शूद्र। कृतियाँ—वायुतत्त्व-दोहागीतिका।

(१६—राग भैरवी)

तीन पाटे लागल अनहद-स्वन धन गाजै।
तेहि सुनि मार भयंकर विपय-मंडल सकल भाजै॥
मातल चित्त-गयन्दा धावै, निरंतर गगनते तुप (रवि-शशि) घोलै।
पाप-पुण्य द्वैत तोडि साँकल मरोडी खम्भा-थान।
गगन टकटकी लागलि रे चित्त पइठ निर्वाण॥
महारस पाने मातल रे त्रिभुवन सकल उपेक्षी।
पंच विषय-नायकरे विपख काहु न देखी॥
खर-रवि किरण संतापेहिँ गगनांगण जाइ पइठा।
भणै महीआ मैं एहिँ वूडत किछू न दीठा॥१६॥
—चर्याप

§ १६. भादे(भद्र)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०-५४-६०८)। देश—श्रावस्ती।

(३५—राग मल्लारी)

एत काल हाँउ अच्छिल स्वमांहें।
एवें मइ वूझिल सद्गुरु-वोहें॥
एवें चिअ-राअ मोकू णठा।
गअण-समुद्दे टलिआ पइठा॥
पेखमि दह दिह सर्वइ सुन्न।
चिअविहुन्ने पाप न पुन्न॥
वाजुले दिल मो लक्ख भणिआ।
मइ अहारिल गअणत पणिआ॥
भादे भणइ अभागे लइला।
चिअ-राअ मइ अहार कइला॥३५॥

—चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

काल—८७५ ई० (विग्रहपाल - नारायणपाल ८५०-५४-६०)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१६)।

(४७—राग गुर्जरी)

कमल-कुलिश मांझें भमई मेली।
ममता-जोएँ जलिल चण्डाली॥
डाह डोम्बिघरे लागेलि आगी।
ससहर लइ सिंचहु पाणी॥

णउ खरे जाला धूम ण दीसइ ।
मेरु-सिहर लइ गअण पईसइ ॥
दाढ़इ हरि-हर-ब्रह्मण नाटा (भट्टा) ।
दाढ़इ नव-गुण-शासन पाटा (पट्टा) ॥
भणइ धाम फुड़ लेहु रे जाणी ।
पञ्चनाले उठे (ऊव) गेल पाणी ॥
—चर्यापद

३ : दसवीं सदी

§ १८. देवसेन

काल—९३३ ई०। देश—धारा (मालवा)में रहे। कुल—जैन साधु।

(१) सदाचार-उपदेश

दुज्जणु सुहियउ होउ जगि, सुयणु पयासिउ जेण ।
अमिउ विसे वासस तमिण, जिम मरगउ कच्चेण ॥२॥
महु आसायउ थोडउवि, णासइ पुण्णु वहुत्तु ।
वइसाणरहँ तिडिक्कडँइ, काणणु डहइ महन्तु ॥२३॥
जूंए घणहु ण हाणि पर, वयहँ मि होइ विणासु ।
लग्गउ कट्ठु ण डहइ पर, इयरहँ डहइ हुयासु ॥३८॥
वेसहि लग्गइ धनिय धणु, तुट्टइ वंधउ मित्तु ।
मुच्चइ णरु सव्वइँ गुणहँ, वेसाघरि पइसन्तु ॥४४॥
मुक्कइँ कूड-तुलाइयइँ, चोरी मुक्की होइ ।
अह न वणिज्जइँ छाडियइँ, दाणु ण मग्गइ कोइ ॥४६॥
मण-वय-कामहि दय करहिँ, जेम ण ढुक्कइ पाउ ।
उरि सण्णाहि वद्धइण, अर्वास न लग्गइ धाउ ॥६०॥

भोगहँ करहि पमाणु जिय, इंदिय म करिसि दप्प ।
हुंति ण भल्ला पोसिया, दुद्धें काला सप्प ॥६५॥

लोह लक्ख विसु राणु मयणु, दुद्ध-भरणु पसु-भार ।
कंठि अणत्थइं णिडि-पडिउ, किमि तरउहि ससार ॥६७॥

एहु धम्मु जो आयरइ, बंभणु सुद्दु वि कोइ ।
सो सावउ कि सावयहँ, अण्णु कि सिरिमणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

जइ गिहत्थ दाणेण विणु, जगिव भणिज्जइ कोइ ।
ता गिहत्थ पंखि वि हवइ, जें घर ताइवि होइ ॥८७॥

धम्म करउँ जइ होइ धणु, इहु दुव्वयणु म बोल्लि ।
हक्कारउ जमभटतणउ, आवइ अज्जु कि कल्लि ॥८८॥

काइँ वहुत्तइ संपयइँ, जइ किविणहँ घर होइ ।
उयहि-णीरु खारें भरिउ, पाणिउ पियइ न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धम्मे सुहु पावेण दुहु, एक पसिद्धउ लोइ ।
तम्हा धम्मु समायरहि, जेहिय इंछिउ होइ ॥१०१॥

काइँ वहुत्तइँ जंपियइँ, जं अप्पह पडिकूल ।
काइँ मि परदु ण तं करहि, एहजि धम्महु मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धम्मु विसुद्धउ तं जि पर, जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलह, जं आवइ णाएण ॥११३॥

रूवहु उप्परि रइ म करि, णयण णिवारइ जंत ।
रूवासत्त पयंगडा, पेक्खइ दीवि पडंत ॥१२६॥

गुणवन्तह सइ संगु करि, भल्लिम पावहि जेम ।
सुमण सुपत्त विवज्जियउ, वरतरु वुच्चइ केम ॥१४१॥

भोगहिँ मात्रा करहु जिय, इन्द्रिय ना करु दर्प ।
होत भला नहिं पोसिया, दूवें काला सर्प ॥६५॥
लोह, लाख, विष-सन, मयन, दुष्ट-भरण पशु-भार ।
छांडि अनर्थहि पिड पडि, किमि तरिहै संसार ॥६७॥
एहि धर्महि जो आचरइ, ब्राह्मण, शूद्रहु कोइ ।
सो श्रावक कि श्रावकहिँ, अन्य कि सिर-मणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

यदि गृहस्थ दानहि विना, जगमें भणियत कोइ ।
तो गृहस्थ पंछिहु इवै, जे घर ताहुउ होइ ॥८७॥
धर्म करौ यदि होइ धन, एँहु दुर्वचन न वोल ।
हंकारउ जम-भटनते, आवइ आज कि कालि ॥८८॥
काह वहूतहिँ संपदहिं, यदि कृपणहिँ घर होइ ।
उदधि-नीर खारे भरेँउ, पानिउ पियै न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धर्महि सुख पापहिं दुख, एह प्रसिद्धउ लोक ।
ताते धर्म समाचरहु, जे हिय-वांछित होइ ॥१०१॥
काइ वहूते जल्पने, जो अपने प्रतिकूल ।
काहू दुख सो ना करइ, एँहु जे धर्मकोँ मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धर्म विशुद्ध सोइ पर, जो कीजइ कामेन ।
अथवा सो धन उज्ज्वल, जो आवइ न्यायेन ॥११६॥
रूपहि ऊपर रति न करु, नयन निवारहु जांत ।
रूपासक्त पतंगडा, पेखहु दीप पडन्त ॥१२६॥
गुणवानेँ सह संग करु, भल्लो पावइ जेमु ।
सुमन-सुपत्रन-वर्जितउ,, वरतरु कहियतु केमु ॥१४१॥

अण्णाएँ आवंति जिय, आवइ धरण ण जाइ।
उम्मग्गें चल्लंत यहँ, कंटइँ मज्जइ पाउ ॥१४५॥
कूड-तुला-माणाइयहं, हरि-करि-खर-विस-मेस।
जो णच्चइ णट्ठु पेखणउ, सो गिण्हइ बहु-वेस ॥१६२॥
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ, भोयहं पेरिउ जेण।
लोह कंजि दुत्तर तरणि, णाव विदारिय तेण ॥२२१॥

§ १६. तिल्लोपा'

काल—६६० ई० (राज्यपाल-गोपाल द्वि०-विग्रहपाल द्वि० ६०८-४०-६०-८०)। देश—भिगुनगर (मगध)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (२२)

(१) सहज-मार्ग

सहजें भावाभाव ण पुच्छह। सुण्ण करुण तहि समरस इच्छअ ॥२॥
मारह चित्त णिवाणें हणिआ। तिहुअण सुण्ण णिरंजन पलिआ ॥३॥
आइ-रहिअ एहु अन्तर-हिअ। वर-गुरु-पाअ अद्दअ कहिअ ॥६॥
बढ़ ! अणें लोअ-अगोअर तत्त, पंडिअ लोअ अगम्म।
जो गुरु पाअ पसण्ण. .,तहिँ की चित्त अगम्म ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

सअ-संवेअण तत्त-फल, तीलोपाअ भणन्ति।
जो मण-गोअर पइठई, सो परमत्थ ण होन्ति ॥६।
सहजें चित्त विसोहहु चङ्गा। इह जम्महि सिधि मोक्खा भंगा ॥१०॥
अद्दअ-चित्त तरुअरा, गउ तिहुअण वित्थार।
करुणा फुल्लिअ फलधरा, णउ परता ऊआर ॥१२।

अन्याये आवइ यदि, आवइ घरेंउ न जाइ।
उन्मार्गं चललन्त कहं, कंटक भंजइ पाउ ॥१८५॥
कूट-तुला-मानादि कहं, हरि-करि-खर-विष-मेष।
जो नाचइ नट प्रेक्षणउ, सो गृण्हइ बहु-वेष ॥१६२॥
दुर्लभ लहि मनुजत्व कहं, भोगेहि प्रेरेंउ येन।
लोह-लाइं दुस्तर तरणि, नाव विगाडेंउ तेन ॥२२१॥

§ १६. तिलोपा

कृतियाँ—निवृत्तिभावनाक्रम, करुणाभावनाधिष्ठान, दोहा-कोष, महामुद्रोपदेश।

(१) सहज-मार्ग

सहजे भावाभाव न पूछिय। शून्य-करुण तँह सम-रस इच्छिय ॥२॥
मारहु चित निर्वाणे हनिया। त्रिभुवन शून्य निरंजन पेलिया ॥३॥
आदि-रहित एहु अन्त-रहित। वर-गुरु-पाद अद्वय कथित ॥६॥
मूढ-जन-लोग-अगोचर तत्त्व, पंडित लोग-अगम्य।
जो गुरुपाद प्रसन्न (हो), तेहि की चित्त-अगम्य ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

स्वक-संवेदन[1] तत्त्व-फल, तीलोपाद भणन्ति।
जो मन-गोचर पइठै, सो परमार्थ न होन्ति ॥६॥
सहजे चित्त विशोधहु चंगा। इहँ जन्महि सिद्धि मोक्षा भंगा ॥१०॥
अद्वय-चित्त तरुवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फलधरा, नहि परतो उपकार ॥१२॥

---

[1] स्वकीय अनुभव

पर अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
तिहुअण णिम्मल परम-पउ, चित्त सहावें सुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल णिचल जो सअलाचार । सुण्ण णिरंजन म करु विआर ॥१४॥
एहु से अप्पा एहु जगु जो परिभावइ । णिम्मल चित्त सहाव सो कि बुज्झइ ॥१५॥
हँउ जग हँउ बुद्ध हँउ णिरंजण । हँउ अमणसिआर भव-भंजण ॥१६॥
मणह भअवा खसम म अवई । दिवाराति सहजे राहीअइ ॥१७॥
जम्म-मरण मा करहु रे भन्ति । णिअ-चिअ तहीं णिरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तित्थ तपोवण म करहु सेवा । देह सुचीहि ण सन्ति पावा ॥१९॥
बम्हा-विहणु-महेसुर देवा । बोहिसत्त्व मा करहू सेवा ॥२०॥
देव म पूजहु तित्थ ण जावा । देवपुजाही मोक्ख ण पावा ॥२१॥
बुद्ध अराहहु अविकल-चित्तें । भव णिव्वाणे म करहु थित्तें ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिम विस भक्खइ, विसहि पलुत्ता ।
तिम भव भुञ्जइ भवहि ण जुत्ता ॥२४॥
खण आणंद भेउ जो जाणइ । सो इह जम्महि जोइ भणिज्जइ ॥२८॥
हँउ सुण्ण जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण । णिम्मल सहजें ण पाप ण पुण्ण ॥३४॥
जहि इच्छइ तहि जाउ मण, एत्थु ण किज्जइ भन्ति ।
अध उघाडि आलोअणें, झाणें होइ रे थित्ति ॥३५॥

—दोहाकोष[१]

पर-आपा न, भ्रान्ति करु, सकल निरन्तर बुद्ध ।
त्रिभुवन निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावें शुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल निचल जो सकलाचार । शून्य-निरंजन न करु विचार ॥१४॥
एँहु सो आपा एँहु जग जो परिभावें । निर्मल चित्त-स्वभाव सो का बूझैं ॥१५॥
हौं जग हौं बुद्ध हौं निरंजन । हौं अ-मनसिकार भव-भंजन ॥१६॥
मन भगवान् ख-सम[1] भगवती । दिवा-रात्रे सहजे रहई ॥१७॥
जन्म-मरण न करहु रे भ्रान्ति । निज चित्त तहाँ निरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तीर्थ-तपोवन न करहु सेवा । देह शुची ना होवैं पापा ॥१६॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-देवा । बोधिसत्त्व ना करहु रें सेवा ॥२०॥
देव न पूजहु तीर्थं न जावा । देवपूजतें मोक्ष न पावा ॥२१॥
बुद्ध अराधहु अ-विकल चित्ते । भव-निर्वाणे न करहु स्थित्वे ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिमि विष भक्षैं विषहिँ प्रलुप्ता ।
तिमि भव भोगैं भवहिँ न युक्ता ॥२४॥
क्षण-आनंद भेद जो जानै । सो एहि जन्महिँ जोगि भनीजैं ॥२८॥
हौं शून्य जग शून्य त्रिभुवन शून्य । निर्मल-सहजे न पाप न पुण्य ॥३४॥
जँह इच्छैं तँह जाउ मन, एहिँ न कीजैं भ्रान्ति ।
अधो उघारि अवलोकने ध्याने होइ रे स्थिन्ति ॥३५॥

§ २०. पुष्पदंत (पुप्फयंत)

काल—९५९-७२ (राष्ट्रकूट कृष्ण[1] तृतीय खोट्टिग[2] के समकालीन)। देश—व्रज या यौधेय (दिल्ली) में जन्म, मान्यखेट[3] (मालखेड़, हैदराबाद-दक्खिन) में रचना।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प)में

उव्वद्ध-जूडु भू-भंग-भीसु। तोडेप्पिणु चोडहों तणउ सीसु।
भुवणेक्कराम रायाहिराउ। जहिँ अच्छहि तुडिगु[4] महाणुभाव।
तं दीण दिण्ण-धण-कणय-पयरु। महि परिभमंतु मेपाडि[5]-णयरु।
अवहेरिय-खल-यणु गुण-महंतु। दियहेहिँ पराइयु पुप्फयंतु।
दुग्गम दीहर-पंथेण रीणु। णव-यंदु जेम देहेण खीणु।
तरु कुसुम-रेणु-रंजिय-समीरि। मायंद-गोंछ-गोंदलिय-कीरि।
णंदण-वणि किर वीसमइ जाम। तहिँ विण्णि पुरिस संपत्त ताम।
पणवेप्पिणु तेहिँ पवुत्तु एँव। "भो खंड-गलिय-पावावलेव।
परिभमिर-भमर-रव-गुमगुमंति। किंकर णिवसहि णिज्जण-वणंति।
करि सर वहिरिय-दिच्चक्कवाल। पइसरहि ण किं पुरवरि विसालि?"

---

[1] ९३९ में गद्दी पर बैठा। चोल-युवराज राजादित्यको ९४९ ई०में मार कर कुमारी तक सारे दक्षिण पर प्रभाव। इसके परमार श्रीहर्ष (मालव-राज सीयक), और कलचूरी भी आधीन सामन्त। ९६८ (?) में मृत्यु। अपने समय-का सबसे वड़ा भारतीय राजा।

[2] खोट्टिग, कृष्णका पुत्र, शासनकाल ९६८-७२। ९७२में मालवराज श्रीहर्ष (सीयक ९४९-७२, वाक्पतिराज मुंजका पिता) ने मान्यखेटको ध्वस्त किया। राष्ट्रकूट-शक्ति (५७०-७२) समाप्त।

[3] राष्ट्रकूट-राजधानी ८१५-९७२ ई०

[4] राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय

[5] मेलपाटी (उत्तरी-अर्काट)

§ २०. पुप्पदंत (पुप्फयंत)

कुल—ब्राह्मण, दरबारी कवि। कृतियाँ[1]—महापुराण[2] (तिसट्ठि-महापुरिसगुणालंकार), जसहर चरिउ[3] (यशोधर-चरित), णायकुमार-चरिउ[4] (नागकुमार-चरित)।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-कैम्प)में

उद्-बद्ध-जूट भ्रूभंग-भीष। तोडेंवियउ चोलहिंकेर शीर्ष।
भुवन्-एकराम राजाधिराज। जहँ आछै तुडिग महानुभाव।
सो दीन दत्त-धन-कनक-प्रवर। महि परिभ्रमत मेपाडि नगर।
अवधीरिय-खल-जन गुण-महंत। दिवसेंहिं तहँ आयेंउ पुप्फदन्त।
दुर्गम-दीरघ-पंथे 'वलीर्ण। नव-चंद्र जिमी देहेहिं क्षीण।
तरु-कुसुम-रेणु-रंजित समीर। माकद-गुच्छ गोंदलिय[5] कीर।
नंदनवन फुरि विश्रमै जहाँ। तव दोउ पुरुष आयेउ तहाँ।
प्रणमीया तेहीं कहेंउ एम। "हे खंड-गलित-पापावलेप!
परिभ्रमत भ्रमर-रव-गुंगुमंत। क्यों कर निवसहु निर्जन-वनांत?
करि सर बाहिर-दिक् चक्रवाल। पइसहू न क्यों पुर-वर-विशाल?"

---

[1] भरत और नल दोनों पिता पुत्र (राजमंत्री) पुष्पदन्तके आश्रयदाता।

[2] डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-माला (बंबई)में संपादित (१९३७, १९४०, १९४१) तीन जिल्द।

[3] डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में संपादित १९३१ ई०

[4] प्रो० हीरालाल जैन द्वारा देवेन्द्र-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में सम्पादित १९३३ ई०

[5] है [6] चबाया

तं मुणिवि भणइ अहिमाण-मेरु । "वरि मज्जउ गिरि-कंदरि-कसेरु ।
णउ दुज्जण-भउँहा-वंकियाइँ । दीसंतु कलुस-भावंकियाइँ ।
घत्ता । वर णरवरु धवलच्छिहे होउ, मा कुच्छिहे मरउ मोणि मुहणिग्गमे ।
खल-कुच्छिय-पहु-वयणइँ भिउडिय णयणइँ म णिहालउ सूरुग्गमे ॥३॥
चमराणिल उड्डाविय-गुणाइ । अहिसेय-धोय-सुयणत्तणाइ ।
अविवेयइ दप्पुत्तालियाइ । मोहंधइ मारण-सीलियाइ ।
विससह जम्मइ जड रत्तियाइ । कि लच्छिइ विउस-विरत्तियाइ ।
संपइ जणु णीरसु णिव्विसेसु । गुणवंतउ जहिं सुरगुरु वि वेसु ।
तहिँ अम्हइ काणणु जि सरणु । अहिमाणे सहुँव वरि होउ मरण ।"
.....................पडिवयणु दिण्णु णायर-णरेहिँ ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता । "जण-मण-तिमिरोसारण मय-तरु वारण, णिय-कुल-गअण-दिवायर ।
भो भो केसव-तणुरुह ! णव-सररुहु-मुह कव्व-रयण-रयणाअर ! ।
वंभंड-मंडवारूढ-कित्ति । अणवरय-रइय-जिणणाह-भत्ति ।
सुहतुंग-देव-कम-कमल-भसलु । णीसेस-सकल-विण्णाण-कुसलु ॥
पायय-कइ-कव्व-रसाव उद्धु । संपीय सरासइ-सुरहि-दुद्धु ।
कमलच्छ अमच्छरु सच्च-संधु । रण-भर-धुर-धरणुग्घुट्ठ-खंधु ॥
सविलास-विलासिणि-हियय-थेणु । सुपसिद्ध-महाकइ-कामधेणु ।
काणीण-दीण-परिपूरियासु । जस-पसर-पसाहिय-दस-दिसासु ॥
पर-रमणि-परं-मुहु सुद्ध-सीलु । उण्णय-मइ सुयणुद्धरण-लीलु ।
गुरु-यण-पय-पणविय-उत्तमंगु । सिरिदेवि-यंव-गब्भुब्भवंगु ॥
अण्णइय-तणय-तणुरुहु पसत्थु । हत्थि'व दाणोल्लिय-दीह-हत्थु ॥
दुव्वसण-सीह-संघाय-सरहु । ण वियाणहि कि णामेण भरहु ॥

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंतु दिट्ठु भरहेण केम। वाई-सरि-सरि-कल्लोल जेम।
पुणु तासु तेण विरइउ पहाणु। घर आयहों अब्भागय विहाणु।
संभासणु पिय-वयणेहिँ रम्मु। णिम्मुक्क-डंभु णं परमधम्मु।
"तुहुँ आयउ णं गुण-मणि-णिहाणु। तुहुँ आयउ णं पंकयहों भाणु।"
पुण एव भणेप्पिणु मणहराइँ। पहरीण-झीण-तणु-सुहयराइँ।
वर-ण्हाण-विलेवण-भूसणाइँ। दिण्णइँ देवंगइँ णिवसणाइँ।
अच्चंत-रसालइँ भोयणाइँ। गलियाइँ जाम कइवय-दिणाइँ।
देवी-सुएण कइ भणिउ ताम। "भो पुप्फयंत! ससिलिहिय-णाम!
णिय-सिरि-विसेस-णिज्जिय-सुरिंदु। गिरि-धीरु-वीरु भइरव-णरिंदु।
पइँ मण्णिउ वण्णिउ वीर-राउ। उप्पण्णउ जो मिच्छत्त-राउ।
पच्छित्त तासु जइ करहि अज्जु। ता घडइ तुज्झु परलोय-कज्जु॥".........
.........................। ता जंपइ वर-वाया-विलासु।
"भो देवी-णंदण जयसिरीह! किं किज्जइ कव्वु सुपुरुस-सीह।
घत्ता। "णउ महु बुद्धि-परिग्गहु णउ सय-संगहु णउ कासुवि करेउ बलु।
भणु किह करमि कइत्तणु ण लहमि कित्तणु जगु जि पिसुण-सय-संकुलु।"
—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कोंडिण्ण-गोत्त-णह-दिणयरासु। वल्लह-णरिंद-घर-महयरासु।
णण्णेहो मंदिरि णिवसंतु संतु। अहिमाण-मेरु कइ पुप्फ-यंतु।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भणु भणु सिरिपंचमि-फलु गहीरु। आयण्णहिँ णायकुमार-वीरु।
ता वल्लह-राय-महंतएण। कलि-विलरिय-दुरिय-कयंतएण।
कोंडिण्ण-गोत्त-णह-ससहरेण। दालिद्द-कंद-कंदल-हरेण।
वर-कव्व-रयण-रयणायरेण। लच्छी-पोमिणि-माणस-सरेण।
कुंदव्व-भरह-दिय-तणुरुहेण।...................
णण्णेण पवुत्तु महाणुभाव।..................
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंत दीस भरतेहिँ किमी। वापी-ससि-सर-कल्लोल जिमी।
पुनि तासु तेहिँ विरचे प्रधान। घर आयेँहु अभ्यागत विहान।
संभाषण प्रिय-वचनेहिँ रम्य। निर्मुक्त-दंभ जनु परमधर्म।
"तुहुँ आयउ जनु गुण-मणि-निधान। तुहुँ आयउ जनु पंकजहु भानु।"
—रि ऐस भनियई मनहराई। प्रहरीण भीन-तनु-सुखकाराई।
वर-स्नान-विलेपन-भूषणाई। दीनी देवांगहिँ निवसनाई।
अत्यंत-रसालई भोजनाई। वीतेहु जिमि कतिपय-दिनाई।
वी-सुत कविहिँ भनेउ तब्ब। "भो पुष्पदंत! शशि-लिखित नाम।
निज-श्री-विशेष-निर्जित-सुरेन्द्र। गिरि-धीर वीर भैरव-नरेन्द्र।
तैँ मानेँउ वर्णेउ वीर-राज। उत्पादेँउ जो मिथ्यात्व-राग।
प्रायश्चित्त तासु यदि करसि आज। तो घटै तोर परलोक-कार्य। ."
.... । तो जल्पै वरवाचा-विलास।
"हे देवीनंदन जय-सिरीह! का कीजै काव्य सुपुरुष-सीँह।
घत्ता। ना मम बुद्धि-परिग्रह न सत-सग्रह ना काहु केरेँउ बल।
भनु किमि करौँ कवित्वन न लहौँ कीर्त्तन, जगहु पिशुन-शत-सकुल॥"
—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कौंडिन्य-गोत्र-नभ-दिनकरास। वल्लभ-नरेन्द्र-गृह-मख-करास।
तान्यहु मंदिरेँ निवसंत संत। अभिमान-मेरु कवि पुष्पदंत।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

मनु मनु श्री-पंचमि-फल गँभीर। आकर्णहिँ नागकुमार-वीर।
तो वल्लभराय-महंतकेहिँ। कलि-विरलिय-दुरित-कृतांत केहिँ।
कौंडिन्य-गोत्र-नभ-शशधरेहिँ। दारिद्र्य-कंद-कंदल-धरेहिँ।
वर-काव्य-रतन-रतनाकरेहिँ। लक्ष्मी-पद्मिनि-मानससरेहिँ।
कुंदैं इव भरत द्विज-तनुरुहेहिँ। ....
तान्येहिँ प्रवृत्त महानुभाव। ....
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

२—काल और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अत्थमिइ दिणेसरि जिह सउणा। तिह पंथिय थिय माणिय-सउणा।
जिह फुरियउ दीवय-दित्तियउ। तिह कंताहरणह-दित्तियउ।
जिह संझा-राएँ रंजियउ। तिह वेसा-राएँ रंजियउ।
जिह भुवणुल्लउ संतावियउ। तिहँ चक्कुल्लुवि[1] संतावियउ।
जिह दिसि-दिसि तिमिरइँ मिलियाइँ। तिह दिसि-दिसि जारइ मिलियाइँ।
जिह रयणिहि कमलइँ मउलियाइँ। तिह विरहिणि-वयणइँ मउलियाइँ।
जिह घरहँ कवाडइँ दिण्णाइँ। तिह वल्लह-संवइँ दिण्णाइँ।
जिह चंदे णिय-कर पसरु किउ। तिह पिय-केसहिँ कर-पसरु किउ।
जिह कुवलय-कुसुमइँ वियसियइँ। तिह कीलय-मिहुणइँ वियसियइँ।
जिह पीयइँ पाणइँ महुराइँ। तिह अहरहँ महु-रस-महुराइँ।
जिह जिह गलंति जामिणि-पहर। तिह तिह विडण्ण मउरइ पहर।
जिह णहि सुक्कुग्गमु दरिसियउ। तिह चिडि सुक्कुग्गमु दरिसियउ।
घत्ता। ता चक्क-उलहँ पंकयहँ तंव-किरण-पूरिय-भुवणोयरु।
विरयहँ णर-णारी-यणहँ जीविउ देंतु समुग्गउ दिणयरु॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विस-कालिंदि-काल-णव-जलहर-पिहिय-णहंतरालओ।
धुय-गय-गड-मंडलुड्डाविय-चल-मत्तालि-मेलओ।
अविरल-मुसल-सरिस-थिरधारा-वरिस-भरंत-भूयलो।
हय-रवियर-पयाव-पसरुग्गय-तरु तण-णील-सद्दलो।
पडु-तडि[2]-वडण-पडिय-वियडायल-रुंजिय-सीह-दारुणो।
णच्चिय-मत्त-मोर-गलकल-रव-पूरिय-सयल-काणणो।

---

[1] चकवा-चकई [2] तडित्

२—काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अस्तमे दिनेश्वरें जिमि शकुना। तिमि पंथिक ठिउ माणिक शकुना।
जिमि फुरियेउ दीपक-दीप्तियऊ। तिमि कांताभरणहिँ दीप्तियऊ।
जिमि संध्या-रागें रंजियऊ। तिमि वेशा-रागें रंजियऊ।
जिमि भुवनल्लउ संतापियऊ। तिमि चक्कुल्ली संतापियऊ।
जिमि दिशि-दिशि तिमरहिँ मिलियाइँ। तिमि दिशि-दिशि जारहि मिलियाइँ।
जिमि रजनिहिँ कमलिनि मुंकुलिताइँ। तिमि विरहिनि-वदनइँ मुकुलिताइँ।
जिमि घरह कपाटउ दिन्नाइँ। तिमि वल्लभ-सपति दिन्नाइँ।
जिमि चंदेंहि निज-कर-प्रसर-कियेंउ। तिमि पिय-केशहिँ कर-प्रसर कियेंउ।
जिमि कुवलय-कुसुमा विकसियऊ। तिमि कीरय-मिथुना विकसियऊ!
जिमि पीयैं पानहिँ मधुराइँ। तिमि अधरह मधुरस-मधुराइँ।
जिमि जिमि वीतैं यामिनि-प्रहरा। तिमि तिमि विकीर्ण मृदु-रति-प्रहरा।
जिमि नहिँ शुक्रोदय दरसियऊ। तिमि चिड़ि शुक्रोद्गम दरसियऊ।
घत्ता। तो चक्कुलहँ पंकजहँ ताम्रकिरण-पूरित-भुवनोदर।
विरही नर-नारीजनह जीवन देत सम्-ऊगेउ दिनकर ॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विश-कालिंदि-काल-नवजलधर-छादित नभंतरालआ।
धुत-गज-गंड-मंडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलआ।
अविरल-मुसल-सदृश थिर धारा वर्ष भरंत-भूतला।
हत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु कँह नील शाद्वला।
पटु तड़ि[1]-पतन-पतित-विकट-चल कुपित्त सिंह-दारुणा।
नाचत मत्त-मोर-कलकल-रव-पूरित-सकल-कानना।

---

[1] बिजली

गिरि-सरि-दरि-सरंत-सरमग-भय-चाणर-मुनक-णीराणो ।
महियल-घुलिय-मिलिय-दुंदुह-सयवय-सालूर-पोसणो ।
घण-चिक्खल्ल-खोल्ल-खणि-खेड्य-हरिण-मिलिय-कय-वहो ।
वियसिय-णव-कलंव-कुमुमुग्गय-रय-पिंजरिय-दिसिवहो ।
सुर-वइ-चाव-तोरणालंकिय-घण-करि-भरिय-णहरुहो ।
विवर-मुहोयरंत-जल-पवहारोसिय-सविस-विसहरो ॥
"पिय-पिय-पिय"-लवंत-वप्पीहय-मग्गिय-तोय-विंदुओ ।
सर-तीरुल्ललंत-हंसावलि-भुणि-हल-बोल-संजुओ ॥
चंपय-चूय-चार-चव-चंदण-चिंचिणि-पीणियाउसो ।
वुट्ठो भत्ति जस्स कालम्मि जएँ सुहयारि पाउसो ॥
मुग्ग-कुलत्थ-कंगु-जव-कलव-तिलेसी-वीहि-मासया ।
फलभर-णविय-कणिस-कण-लंपड-णिवडिय-सुय-सहासया ॥
ववगय-भोय-भूमि-भव-भूरुह-सिरि-णरवइ-रमा सही ।
जाया विविह-धण्ण-दुम-वेल्ली-गुम्म-पसाहणा मही ।
—आदिपुराण (२९-३०)

खंधावारहु उप्परि अहणिसु । ता णायहिँ वेउव्विउ पाउसु ।
मय-उलु तसइ रसइ वरिसइ घणु । पीयलु सामलु विरसइ सुरधणु ।
महि-णीहरिउ हरिउ वड्ढइ तणु । पवसिय-पियहि पियहि तप्पइ मणु ।
फुल्ल-कलंव-तंबु दीसइ वणु । तिम्मइ तम्मइ मणि जूरइ जणु ।
तडि तडयडइ पडइ रुंजइ हरि । तरु कडयडइ फुडइ विहडइ गिरि ।
जलु परियलइ घुलइ घुम्मइ दरि । अइरय सरइ भरइ पूरेँ सरि ।
जलु थलु सयलु जलुजि संजायउ । मग्गु अमग्गु ण किंपि वि णायउ ।
सरु कूसुम-सरु णिररिउ संधइ । विरहेँ पंथिय पंथिय विंधइ ।
—आदिपुराण (पृ० २४०)

गिरि-सरि-दरि सरंत सरसर-भय-वानर मोचु निःस्वना ।
महियल घुलेउ-मिलेँउ दुंदुभि गतपत्र-शालूर-पोषणा ।
घन-कीचड़-खोल-खन-खेदित हरिन-शिलिव-कदंव-वहा ।
विकसित-नवकदंव-कुसुम-ोद्गत-रज-पिंजरेउ दिशि-पथा ।
सुर-पति-चाप-तोरणालंकृत घन-करि-भरित नभ-थला ।
विवर-मुख-ोदरांत-जलप्रवह-रोसेँउ सविप-विपधरा ।
"पिय पिय पिय" लपंत पपीहा माँगेँउ तोय-विदुआ ।
सरतीर-ोल्ललंत-हंसावलि-ध्वनि-हलहल-संयुना ।
चंपक-चूत-चार-चव-चंदन-चिंचिनि-प्रीणितायुपा ।
उट्ठेँउ भट जासु कालेँहिँ जो सुखकारि पावसा ।
मूँग-कुल्थि-काँगुन-जो-करॉय-तिल-तीसी-धान-मापआ ।
फल-भर नमेँउ मंजरि कण लंपट निवडेँउ शुक सहस्रआ ।
व्यपगत-भोग भूमि-भव-भूरुह-श्री-नरपति-रमा-सरी ।
हुई विविध-धान्यद्रुम-वेली-गुल्म-प्रसाधना मही ।
—आदिपुराण (२६-३०)

स्कंधावारँह' ऊपर अहनिश । तो नादहिँ विकारिया पावस ।
मृगकुल असै-रसै वरसै घन । पीयल श्यामल विलसै सुर-धनु ।
महि नीखरिउ हरित बाढे तनु । प्रवसित-प्रियहि पियहिँ तप्पै मन ।
फुल्लु कदंव ताम्र दीसै वन । तीमै तामै मणि भूरै जनु ।
तड़ि तड़तड़ै पडै रागै हरि । तरु कड़कड़ै फुटै विहरै गिरि ।
जल परिचलै घुरै घूमै दरि । अतिशय सरै भरै पूरै सरि ।
जल-थल सकल जलहि सं-जायेँउ । मार्ग-अमार्ग न कछुअहु जानेँउ ॥
शर-कुसुम-सर नितांत साँधै । विरहे पंथिक पंथिय विधै ।
—आदिपुराण (पृ० २८०)

३—भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

सीयल्ल-वेल्लि-तरुवर-गहणि । हिमवतहो दाहिण-गिरि-गहणि ।
जहिँ वग्घ-सीह-गय-गडयाइँ । मय-दुग्गह-करि-भल्लू-सयाइँ ।
संवर-वेउल्लइँ रोहियाइँ । एणइँ जहिँ पुल्लिहिँ छोहियाइँ ।
जहिँ संचरंति वहु-मुग्गसाइँ । गत्ताइँ जॉह णिरु घग्घुसाइँ ।
जहिँ परडा कोक्कंता भमति । झिल्लिरि खच्चेल्लइँ गुमगुमति ।
जहिँ भिल्ल-पुलिंदइँ णाहलाइँ । वीणंतइँ तरु-वेल्ली-हलाइँ ।
जहिँ कुक्कुरंति साहामयाइँ[1] । झुल्लतइँ तरु-साहा-गयाइँ ।
उड्डणसीला तंबोल-लग्ग । जहिँ हरि खज्जंता कहिँ 'मि भग्ग ।
जहिँ घुरुहरंत दाढा-कराल । सूलच्छहिँ सहुँ जुज्झंसि कोल ।
कंदुल्ल-गहर-गद्दब्भु जेत्थु । हरि-हुल्लिहिँ जहिँ दूसियउ पंथ ।
पंचामहिँ थूणइ दारियाइँ । जहिँ भिल्ली हरिणइँ मारियाइँ ।
जहिँ गहिरइँ धारइँ परिभमंति । णिरु वायड-उल(ईँ) चुमचुमंति ।
जहिँ वेल्लिहिँ वेढिय तरुवराइँ । णं कीलहिँ अवरुंडण-पराइँ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

णेणा-णेणाहिय,परियरिय । हिमवतु धरेप्पिणु संचलिय ।
णोहड गच्छंती पुव्वमुह । कुरुवंस-णाह-पत्थिव-पमुह ।
[illegible] सेलत्थलि काणणइं । महिसी-दुद्ध'व साहा-वणउँ
णाणा-महिरुह-फल-रस-हरइँ । कत्थइ किलिगिलियइँ वाणरइँ ।
[illegible] [illegible] सारसइँ । कत्थइँ तव-तत्तइँ तावसइँ ।
कत्थइ [illegible] णिज्झरइँ । कत्थइ जल-भरियइँ कंदरइँ
[illegible] सीमिय वेल्ली-हरइँ । विहुइँ भज्जनइँ णाहलइँ ।
कत्थइ [illegible] उल्ललियाइँ । पुणु गोरी-गेयहु वलियाइँ

३—भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

शीतल्ल-वेलि तरुवर-गहना। हिमवंतहु दक्षिण-गिरि-गहना।
जहँ व्याघ्र-सिंह-गज-गैंड आइँ। मृग दुर्ग्रह करि-भालू-शताइँ।
साँभर बेकुल्ला रोहिताइँ। एणी जहँ पुलकित कूदियाइँ।
जहँ संचरईं बहु मूँगुसाइँ। गर्त्ताइँ जहाँ निर घर्घसाइँ।
जहँ परडा कोक्कंता भ्रमंति। झिल्ली खच्चेल्लें गुमगुमंति।
जहँ भील-पुलिंदा नाहराइँ। बीनंता तरु-बल्ली-फलाइँ।
जहँ कुक्करंति शाखामृगाइँ। झूलंता तरु-शाखा-गताइँ।
उड्डन-शीला तांबूल-लागु। जहँ हरि खादंता कतहुँ भागु।
जहँ घुरघुरंति दाठा-कराल। शूलाक्षहिँ सँग जूझंति कोल[1]।
कंदुल्ल-गह्वर गर्दभा जहाँ। हरि हुल्लिहिँ जहँ दूषियेँउ पंथ।
पंचासहु थूनें विदारिताइँ। जहँ भीली हरिनहिँ मारियाइँ।
जहँ गहिरे धारें परिभ्रमंति। नित बादल-कुलहीं चुमचुमंति।
जहँ वेली-वेष्टित तरुवराइँ। जनु क्रीडै अवगुंठन पराइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेना सेनाधिप-परिचरिता। हिमवंत धरा-वन-संचलिता।
सोहै सो जांती पूर्वमुखा। कुरुवंशनाथ-पार्थिव-प्रमुखा
दीसै शैल-स्थलि-काननऊ। महिषी दुग्ध् इव शाखा-घनऊ।
नाना महिरुह-फल-रस-धरइँ। कतहूँ किलकिलहीं वानरहीं
कतहूँ, रसरक्ता सारसईं। कतहूँ तप तप्पैं तापसईं।
कतहूँ झरझरिया निर्झरईं। कतहूँ जल-भरिया कंदर
कतहूँ बीनैं वेली-फलईं। दीसैं भाजंता नाहरईं।
कतहूँ हरिना उल्ललियाइँ। पुनि गौरी-गेहहु वलिय

[1] सुअर

कत्थइ हरि-णह-रुक्कत्तियइँ। करि-कुभुच्छलियइँ मोत्तियइँ।
कत्थइ सुम्मइ जक्खिणि-झुणिउँ। खयरी-कर-वीणा रणरणिउँ।
कत्थइ भसल-उलहिँ रुणरुणिउँ। कत्थइ सुएण किं किं भणिउँ।
घत्ता। कत्थइ किंणरहिँ गाइज्जइ सवण-पियारउ।
रिसह-णाह-चरिउ फणि-णर-सुर-लोयहु सारउ ॥१॥

—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सैंधव-कोँकण-कोसल। टक्क-हीर-कीर-खस-केरल।
अंग-कलिंग-गंग-जालंधर। वच्छ-जवण-कुरु-गुज्जर-वव्वर।
दविड-गउड-कण्णाड-वराड'वि। पारस-पारियाय-पुण्णाडवि।
सूर-सुरट्ठ-विदेहा लाड'वि। कोंग-वंग-मालव-पंचाल'वि।
मागह-जट्ट-भोट्ट-णेवाल'वि। उड्ड-पुंड-हरिकुरु-भंगाल'वि।

—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिंधु सरिहिँ देहलिय धरिवि, पइसरणु करिवि।
पुव्वावरेसु परिसंठियाइँ, वइरट्ठियाइँ।
वेयड्ढ गिरिहि ओइल्लयाइँ, सुघणिल्लयाइँ॥
चंडाइँ मेच्छ-खंडाइँ ताइँ, दोसाहियाइँ।
करवाले णिज्जिउ अज्ज-खंडु, पट्ठविवि दंडु।
मालव-मागह-वंग-'गगंग, कालिंग - कोंग।
पारस-वव्वर-गुज्जर-वराड, कण्णाड-लाड।
आहीर-कीर-गंधार-गउड, णेवाल - चोड।
चेईस-चेर-मरु-दद्दुरंडि, पंचाल-पंडि।
कोंकण-केरल-कुरु-कामरूव, सिंहल पहूय।
जालंधर-जायव-पारियाय, णिज्जिणिवि राय।
पच्चंत-वासि णीसेस लेवि, णिय-मुद्द देवि।
हेलाइ तिखंडावणि हरेवि, असि करि करेवि।

—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

तहूँ हरि-नख-फारियइँ। करि-कुंभ उच्छरिया मौक्तिकाइँ।

कतहूँ सुनियँ यक्षिणि-धुनिऊ। खेचरि-करें वीणा हनहनिऊ।

कतहूँ भ्रमर-कुल रुन-झुनिऊ। कतहूँ शुकेहिँ का का भनिऊ।

घत्ता। कतहुँ किन्नरहिँ गाइऊ, श्रवण-पियारहूँ।

ऋषभनाथ-चरित, फनि-नर-सुर-लोकह सारऊ।

—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सैंधव-कोंकण-कोसल। टक्क-अहीर-कीर-खस-केरल।

अंग-कलिंग-गंग-जालंधर। वत्स-यवन-कुरु-गूर्जर-बर्वर।

द्रविड-गौड-कर्नाट-वराडउ। पारस-पारियात्र-पुन्नाडउ।

शुर-सौराष्ट्र-विदेहा लाटउ। कोंग-वंग-मालव-पंचालउ।

मागध-जाट-भोट-नेपालउ। उड्र-पुड्र-हरिकेल-भंगालउ।

—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिंधु-सरिहिँ देहलिय धरव, प्रतिसरन करवी।

पूर्वविरेहिँ परिसंस्थिताइँ, वैरस्थिताइँ।

वेताढ़ गिरिहिँ ओइल्लयाइँ, सुवनिल्लयाइँ।

चंडाइँ म्लेच्छ-खंडाइँ ताइँ, दुःसाधियाइँ।

करवालें जीतेंउ आर्यखंड, प्रस्थापि दंड।

मालव-मगध-वंग-'ङ्ग-गंग, कालिंग-कोंग

पारस-बर्वर-गुर्जर, वराड, कर्नाट-लाट।

आभीर-कीर-गंधार-गौड़, नेपाल-चोल

चेदीश-चेर-मरु-दर्दुरंडि, पंचाल-पंडि।

कोंकण-केरल-कुरु-कामरूप, सिंहल प्रभ

जालंधर-यादव-पारियात्र, जीतेंहू राय।

प्रत्यंतवासि निःशेष लेइ, निज मुद्रा

हेलहिँ तिरखंडा'वनि हरेइ, असि करें करेइ।

—आदिपुराण (पृ० २३

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

विस्थिण्णए जंवुदीवि भरहे। खर-किरण-करावलि-भूरि-भरहे।
जोहेयउ णामि अत्थि देसु। णं धरणिएँ धरियउ दिव्व वेसु।
जहिँ चलइँ जलाइँ स-विब्भमाइँ। णं कामिणि-कुलइँ स-विब्भमाइँ।
भंगालइँ णं कुकइत्तणाइँ। जहिँ णील-णेत्त-णिद्धहिँ तणाइँ।
कुसुमिय-फलियइँ जहिँ उववणाइँ। णं महि-कामिणि-णव-जोव्वणाइँ।
गोवाल-मुहालुंखिय-फलाइँ। जहिँ महुरइँ णं सुकयहो फलाइँ।
मंथर-रोमंथण[1]-चलिय-गंड। जहिँ सुहि णिसिण्ण गो-महिसि-संड।
जहँ उच्छु-वणइँ रस-दंसिराइँ। णं पवण-वसेउ पणच्चिराइँ।
जहँ कण-भर-पणविय पक्क-सालि। जहिँ दीसइ सयदलु सदलु सालि।
जहिँ कणिसु कीर-रिछोलि चुणइ। गहवइ-सुयाहि पडिवयणु भणइ।
छोक्करण-रांव-रंजिय-मणेण। पहि पउ ण दिण्ण पंथिय-जणेण।
जहिँ दिण्णु कण्णु वणि मयउलेण। गोवाल-गेय-रंजिय-मणेण।
जहिँ जण-धण-कण-परिपुण्ण गाम। पुर-णयर-सुसीमाराम साम।
घत्ता। रायउरु मणोहरु रयणंचिय घरु, तहिँ पुरवरु पवणुद्धयहिँ।
चल-चिंधहि मिलियहिँ णहयलि घुलियहिँ, छिवइ'व सग्गु सयंभुअहिँ।
जं छण्णउँ सरसहिँ उववणेहिँ। णं विद्धउँ वम्मह-मग्गणेहिँ।
कय-सद्दहिँ कण्ण-सुहावएहिँ। कणइ'व सुर-हर-पारावएहिँ।
गय-वर-दाणोल्लिय वाहियालि। जहिँ सोहइ चिरु पवसिय पियालि।
सर-हंसइँ जहिँ णेउर-रवेण। मउ चिक्कमंति जुवई-पहेण।
जं णिय-भुयासि-वर-णिम्मलेण। अण्णुवि दुग्गउ परिहा-जलेण।
पडिखलिय-वइरि-तोमर-झसेण। पंडुर-पायारि णं जसेण।
णं वेढिउ वहु-सोहग्ग-भारु। णं पुंजीकय-संसार-सारु।
जहिँ विलुलिय-मरगय-तोरणाइँ। चउदारइँ णं पउराणणाइँ।

---

[1] चर्वितचर्वण (जुगाली करना)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

वेस्तीर्ण जंबुद्वीप-भरते। खरकिरण-कंरावलि भूरि भरित।
यौधेय नाम है (एक) देश। जनु धरणी धारेँउ दिव्य-वेष।
जहँ चलेँ जलाइँ स-विभ्रमाइँ। जनु कामिनि-कुलइँ स्व-विभ्रमाइँ।
भृंगालेँ[1] जनु कुकवित्तनाइँ। जहँ नीलनेत्र-स्निगधतनाइँ।
कुसुमित-फलितहँ जहँ उपवनाइँ। जनु महि कामिनि नवयौवनाइँ।
गोपाल-मुग्धा चुनिया फलाइँ। जहँ मधुरइँ सुकृतहू फलाइँ।
मंथर-रोमंथन-चलित-गंड। जहँ सुख-निपण्ण गोमहिप-सड।
जहँ इक्षु-वनइँ रस-दशिराइँ। जनु पवन वसेउ पनञ्चिराइँ।
जहँ कण[2]-भर-प्रनमी पक्वशालि। जहँ दीसै शतदल-सदल-शालि।
जहँ मंजरि कीर-पंक्ती चुनै। गृहपति-सुताहिँ प्रतिवचन भनै।
छोक्करन-राज-रंजित-मनेहिँ। पथ पद न दीन पंथिक-जनेहिँ।
जहँ दीय कर्ण वनेँ मृगकुलेहिँ। गोपाल-गीत-रंजित-मनेहिँ।
जहँ जन-धन-कण-परिपूर्ण ग्राम। पुर-नगर-सुपीमाराम श्याम।
घत्ता। राजपुर मनोहर रत्नांचित घर, तहँ पुरवर पवनोद्धतहिँ।
चल-चिन्हहिँ[3] मिलिया नभतले धुरियहिँ, छुवेँ इव सर्ग स्वयंभुजहिँ ॥३॥
जो छादित सरसेँहिँ उपवनेहिँ। जनु विद्धेँउ मन्मथ-मार्गणेहिँ[4]।
कल-शब्दहिँ कर्ण-सुखावहेहिँ। क्वणेँ इव सुरघर-पारावतेहिँ।
गज-वर-दानोल्लित-वाहिय-ालि। जहँ सोहै चिर-प्रवसित-प्रियालि।
सर-हंसहँ जहँ नूपुर-रवेहिँ। सृग चिक्कमति युवती-प्रभेहिँ।
जो निज-भुज-ासि-वर-निर्मलेहिँ। अन्यउ दुर्गह परिखा-जलेहिँ।
प्रतिखलित-वैरि-तोमर-झपेहिँ। पांडुर प्राकारा जनु यशेहिँ।
जनु वेठेँउ वहु-सौभाग्य-भार! जनु पुंजीकृत संसार-सार।
जहँ विलुलित-मरकत-तोरणाइँ। चौद्वारहिँ जनु पौराननाइँ।

---

[1] भृंग-आलय [2] दाना [3] ध्वजा [4] तीर

जहिँ धवल-मंगलुच्छव-सराइँ। दु-ति-पंच-सत्त-भोमइँ[1] घराइँ।
णव-कुंकुम-रस-छडयारुणाइँ। चिक्खिल्ल-दित्त-मोतिय-कणाइँ।
गुरु-देव-पाय-पंकय-वसाइँ। जहिँ सव्वइँ दिव्वइँ माणुसाइँ।
सिरिमंतइँ संतइँ सुत्थियाइँ। जहिँ कहि 'मि ण दीसहि दुत्थियाइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगधभूमि-वर्णन

खेडाम-गाम-पुरवर-विचित्तु। तहोँ दाहिणि दिसि थिउ भरह खेत्तु।
तहिँ मगह-देसु सुपसिद्ध अत्थि। जहिँ कमल-रेणु-पिंजरिय हत्थि।
जहिँ सुरवर-तरु-णंदण-वणाइँ। जहिँ पक्क-सालि धण्णइँ तणाइँ।
वय-सय-हंसावलि-माणियाइँ। जहिँ खीरसमाणइँ पाणियाइँ।
जहिँ कामधेणु-सम गोहणाइँ। घडदुद्धइँ णेहारोहणाइँ।
जहिँ सयल-जीव-कय-पोसणाइँ। घण-कण-कणि-सालइँ करिसणाइँ
जहिँ दक्खा-मंडवि दुहु मुयंति। थलपोमोवरि पंथिय सुयंति।
जहिँ हालिणि-कलरव-मोहियाइँ। पहि पहियइँ-हरिणा इव थियाइँ।
पुंडुच्छु-वणइँ चउ-दिसु चलंति। जहिँ महिस-सिंग-हय रस गलंति।
जहिँ मणहर-मरगय-हरिय-पिंछ। मायंद-गोंछि गोंदलिय रिंछ।
घत्ता। तहिँ पुरवरु णामेँ रायगिहु, कणय-रयण-कोडिहिँ घडिउ।
वलिवंड धरंतहोँ सुरवइहिँ, णं सुर-णयरु गयण-पडिउ॥६॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

एत्थत्थि अवंती णाम विसउ। महिवहु भुंजाविय जेण'वि सउ।
घत्ता। णंदंतहिँ गामहिँ विउलारामहिँ, सरवरकमलहिँ लच्छि-सही।
गलकल-केक्कारहिँ हंसहिँ मोरहिँ, मंडिय जेत्थु सुहाइ मही॥२०॥

---

[1] दो-तीन-पाँच-सात तल्लेवाले (मकान)

जहँ धव-मंगल-ोत्सव-सराइँ। दुइ-पंच-सप्त-भूमिक घराइँ।
नव-कुंकुम-रस-छट-आरुणाइँ। विखरीय-दीप्त-मौक्तिक-कणाइँ।
गुरु-देव-पादपंकज-वशाइँ। जहँ सव्वै दिव्यै मानुषाइँ।
श्रीमन्तहिँ संतहिँ सुस्थिताइँ। जहँ कतहुँ न दीसै दुःस्थिताइँ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगध भूमि-वर्णन

खेड़ाउ-ग्राम-पुरवर-विचित्र। तहँ दक्षिणदिशि ठिउ भरत-क्षेत्र।
तहँ मगध-देश सुपसिद्ध अस्ति। जहँ कमल-रेणु-पिंजरित हस्ति।
जहँ सुरवर-तरु-नंदनवनाइँ। जहँ पक्व-शालि धान्यहिँ तनाइँ[1]।
व्रज-शत-हंसावलि-माणिकाइँ। जहँ क्षीरसमाना पानियाइँ।
जहँ कामधेनु-सम गोधनाइँ। घट-दूधी स्नेहारोधनाइँ।
जहँ सकल-जीव-कृत-पोषणाइँ। धन-कण-कणिशालहँ[2] कर्षणाइँ।
जहँ द्राक्षामंडपेँ दुध-मुचंति। स्थलपद्मोपरि पंथिक सोँवंति।
जहँ हालिनि[3]-कल-रव-मोहिताइँ। पथेँ पंथिक हरिना इव ठिताइँ।
पुंड्-इक्षु-वना चौदिशि चलंति। जहँ महिष शृंग-हत रस गिरंति।
जहँ मनहर-मरकत-हरित-पिच्छ। माकंद-गुच्छ चविता वृक्ष।
घत्ता। तहँ पुरवर नामे राजगृह, कनक-रतन-कोटिहिँ गढेँऊ।
वलिवंड-धरंतह सुरपतिहिँ, जनु सुर-नगर गगन पड़ेँऊ ॥६॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

इहँ अहे. अवंती नाम विषय। महि वहु भोगेँउ जेहिहिं सचय।
घत्ता। नंदतेँहिँ ग्रामेँहिँ विपुलारामेँहिँ, सरवर-कमलेहिँ लक्ष्मि-सखी।
कलकल-केकारेँहिँ हंसेहिँ मोरेँहिँ, मंडित यत्र सुहाइ मही ॥२०॥

---

[1] तनाइ=केरी [2] फल-मंजरी [3] हलवाहेकी बहू

जहिं चुमचुमंति केयार-कीर । वर-कलम-सालि-सुरहिय-समीर ।
जहिं गोउलाइं पउ विक्किरंति । पुंडुच्छु[1]-दंड-खंडइं चरंति ।
जहिं वसह-मुक्क-ढेक्कार-धीर । जीहा-विणिहिय-णंदिणि-सरीर ।
जहिं मंथर-गमणइं माहिसाइं । दह-रमणुब्भाविय-सारसाइं ।
काहलिय[2]-वंस-रव-रत्तियाउ । वहुअउ घर कम्मि गुत्तियाउ ।
संकेय-कुडुंगण-पत्तियाउ । जहिं भीणउ विरहिं तत्तियाउ ।
जहिं हालिणि-रूव-णिवद्ध-चक्खु । सीमावडु ण मुअइ कोवि जक्खु ।
जिम्मइ जहिं ऍंवहि पवासिएहिं । दहि कूरु घीरु घिउ देसिएहिं ।
पव-पालियाइ जहिं वालियाइ । पाणिउ भिंगार-पणालियाइ ।
दितिऍं मोहिउ णिरु पहिय-विंदु । चंगउ दक्खालिवि वयण-चंदु ।
जहिं चउपयाइँ तोसिय-मणाइँ । घण्णइ चरंति णहु पुणु तिणाइँ ।
उज्जेणि णाम तहिं णयरि अत्थि । जहिं पाणि पसारइ मत्त-हत्थि ।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४—सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

रज्जहु कारणि पिउ मारिज्जइ । वंधवहू मी संचारिज्जइ ।
जिह अलि-गंधे गउ संघारहु । तिह रज्जेण जीउ तं वारहु ।
भड-सामंत-मंति-कय-भायउ । चिंतिज्जंतउ सव्वु परायउ ।
तंडुल-पसयहु कारणि राणा । णरइ पडंति काइं अ-वियाणा
डज्झउ रज्जु'जि दुक्खु गुरुक्कउ । जइ सुहु किं ताएँ मुक्कउ ।

—आदिपुराण (पृ० २९५

---

[1] लाल लाल और मोटे गन्ने [2] झांझ (थालीनुमा कांसेका वाजा)

हँ चुमचुमंति केदार-कीर। वर-कलम-शालि-सुरभित-समीर।
जहँ गोकुलाइँ पय विक्षरंति। पुड्-ईख-दंड खंडहिँ चरंति।
जहँ वृषभ मुक्त-ढों'क्काड-धीर। जीभा-विलिहित-नंदिनि-शरीर।
जहँ मंथर गमनें माहिषाइँ। ह्रद-रमण-उड्डायउ सारसाइँ।
काहली वंशि-रव-रक्तियाउ। वधुआ घरकर्मं गुप्तियाउ।
संकेत-कुटप-गिण-पंक्तियाउ। जहँ भीनउ विरहें तप्तियाउ।
जहँ हालिनि-रूप-निवद्ध-चक्षु। सीमाचट न मुवै कोइ यक्ष।
जेवँ जहँ ऐस प्रवासिनेहिँ। दधि-गुड-क्षीर-घिउ-दुस्सए'हिँ।
प्रप-पालिकाहिँ जहँ वालिकाहिँ। पानिय-भृंगार'-प्रणालिकाहिँ।
देतिअँ मोहेँउ अति पथिकवृन्द। अंगा द्राक्षालि'व वदनचन्द्र।
जहँ चौपदाइँ तोषित-मनाइँ। धान्यँ चरंति नहि पुनि तृणाइँ।
उज्जेनि नाम तहँ नगरि अस्ति। जहँ पाणि प्रसारँ मत्त-हस्ति।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४—सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

राज्यहि कारणें पितु मारिज्जै। बांधवहँ (पुनि) संचारिज्जै।
जिमि अलि-गंधे गउ संहारा। तिमि राज्येहि जीवितऊँ वारा।
भट-सामंत-मंत्रि-कृत भायउ। चिंतीयंतउ सव उपरागउ।
तंडुल-पसरहँ कारणें राना। नरक पडंति काइँ अ-विजाना।
जारहु राज्यहु दुःख-गुरुकउ। यदी सुक्ख का तेहीं मूकउ।

—आदिपुराण (पृ० २९५)

(२) राज-दर्बार[1]

अत्थाण-भूमि[2] गउ मणि विसण्ण । कणय-मय-रयण-विट्ठरि णिसण्णु ।
दो-वासइँ चमरइँ महु पडंति । वहु-दुक्ख-सहासइँ णं घटंति ।
सह-मंडवि खुज्जय-वावणाइ । णच्चंतइ णिरु कोड्डावणाइँ ।
वीणा-वंसइँ गेयइँ भुणंति । वेयालिय फंफावय थुणंति ।
एयाइँ जइवि णिरु सुहयराइँ । महु पुणु सुविरत्तहों दुहयराइँ ।
पोत्थय-वायणु आढत्त सरसु । मण-सवणहँ जं जणि जणइ हरिसु ।
तहिँ अवसरिँ पडिहारि वरेण । कणय-मय-दंड-मंडिय-करेण ।
पइसारिय भड-सामंत-मंति । अणवरय भमइ जगि जाँह कित्ति ।
पय-जुयलु णविउ महु णरवरेहि । मउडग्ग-कोडि-चुंविय-धरेहि ।
अवलोइय णर-वइ मइँ णवंत । पडियावयाइँ णावइ कुमित्त ।
गोट्ठिट्ठि-णिविट्ठ णरिंद सव्व । णिविडत्थवंत णं सुकइ-कव्व ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

काम-भोय-सुह-रस-वसहों । तहु वसुमइहि काइँ वण्णिज्जइ ।
जं जं चिंतइ किंपि मणे । तं तं सयलु वि खणि संपज्जइ ॥
णाण-संको घटं कल्लहालिंगणं । मालई-मालिया कुंकुमालेवणं ।
उंनओ मंनओ चारु-सेज्जा-यलं । आवरोहारि सोम्हं थणाणं थलं ।
उज्जलं गंधणं पुप्फ-धारा-हरं । रत्तओ कंबलो छणरंधं घरं ।
पव्वपुण्णेण सव्वंपि संजुत्तयं । सीय-यालम्मि तेणेरिसं भुत्तयं ।
सरसं चंदणाणा पिया सेहली । मल्लिया-दामयं तार-हारावली ।
दाडिमो मंथणो मासओ सीयलो । कमल-कोलाणिओ पल्लवो कोमलो ।
कप्पूर-कंजी चामरुतो मरो । वीयणं वेल्लणालीणओ सीयरो ।
चंद-रुइ वरिह सीयलं पाणियं । उण्हयालम्मि तेणेरिसं माणियं ।

---

[1] [illegible] [2] राजप्रांगण

फूलि-आशा कदंब-ोघ-धूली-रजो। मत्त-मायूर-वृन्दों काँ केकारवो।
नीरधारा मुचंत्-अंबुवाह-द्-धुनी। संगता सूद्भवा पास सीमंतिनी।
निर्गलं मंदिरं निष्प्रियं भूतलं। धावमानं रजालं प्रणाली-जलं।
इष्ट-गोष्ठी-विशिष्टेहिँ विद्याचयं। दिव्यगंधर्वकं काविर्यं पाययं।
विज्जुमाला-फुरंतं नभं दिक्प्रभं। तासु मेघागमे सोउ सौख्यावहं।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाटहिँ भट्ट पइट्ठें उ। मकरकेतु-पुरवेपहिँ देखें उ।
कोइ वेश्य चिंतै गति-शून्या। ए यन एतहँ नखें हि न भिन्ना।
कोइ वेश्य चिन्तै का बाढिय। नीलालक एतेहिँ न काढिय।
कोइ वेश्य चिन्ता की हारें। कंठ न छिन्दें उ एहिँ कुमारें।
कोइ वेश्य अधराग्र समर्पै। भिज्जै-खीझै-तापै-कंपै।
कोइ वेश्य रति-सलिलें सीं चिय। वेपै वलै घुरै रोमांचिय।
घत्ता। तो वीणा-कल-रव-भाषिणिया देवदत्तआ राज-विलासिनिया।
हिय-उल्लया कामदेव थापें उ कृत-प्रांजलि-हाथें विज्ञापिया ॥१॥
"परमेश्वर! कारुण्य-वियापै। जें हि मन तें हि घर-आँगन प्रापै।"
सो सुनिया उपकरियउ तें तहिँ। सो तें हि रमणिहिँ मंदिर जें तहिँ।
अन्यो दीनु निपण्णउ रजनिहिँ। पूरावें उ मज्जन-भूषण-विधि।
भोजन भुक्तउ मात्रायुक्तउ। सरस कवीन्द्रें काव्य'व उक्तउ।
कामें कामिनि भनियो हँसिके। ....

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुमर-सँग ले चलें उ जव्व। प्रारंभेउ स्तुति नग्गुडिहिँ तव्व।
नाचंति विलासिनि गीत रम्य। गायन गायंती सुकृत-कर्म।
गउ नंदनवन-मंडप-दुवार। वरतोरण-मंडित रतन-स्फार।
तहँ किउ जो योग्य पुरोहितहीं। आचार कुमार्ग-निरोधिहहीं।

फुल्लि-धारा कदंब-प्पिय-धूली-रजो । मत्त-मायूर-वृन्दोर्ध्व-केकारवो ।
नीलधारा नुवन्नु-मंजुवाह-हुम्मी । गंगना नूपुरा पान गीतंतिनी ।
निर्गलं मंदिरं निधिनं भूतलं । धावमानं न्यालं प्रणाली-जलं ।
इष्ट-गोष्ठी-विशिष्टेहिं विशान्त । दिव्यनंधर्वकं कापियं पावन ।
विज्जुमाला-फुरंतं नवं दिव्वय । नानु मेघागमे गोउ गोव्यावहं ।
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाडहिं भट्ट पइट्ठेउ । मकरकेतु-पुरुषोपहिं देखेउ ।
कोइ वेश्य निलें गति-भूना । ए धन एतहिं नरोंहि न भिन्ना ।
कोइ वेश्य नित्ते का थाडिय । नौन्नाल्क एतेहिं न काढिय ।
कोइ वेश्य नित्ता की हारें । कंठ न छिन्नेउ एहिं कुमारें ।
कोइ वेश्य ग्रधराग्र नगर्णे । निज्जे-नीगें-सार्ग-कर्णे ।
कोइ वेश्य रति-जनितें मोंगिय । वेगें चले धुरें रोमांचिय ।
घत्ता । तो वीणा-कल-रव-भाषिणिया देवदत्ता राज-विलासिनिया ।
हिय-उन्नया कामदेव थानेंउ कृत-प्रांजलि-हाथें विज्ञापिया ॥१॥
"परमेस्वर ! कारुण्य-विधाये । जेंहि मन तेंहि पर-आंगन आयें ।"
सो गुनिया उपकारियउ तेंतहिं । सो तेंहि रमणिहिं मंदिर जेंतहिं ।
अन्यो दीनु निषण्णउ रजनिहिं । पूरायेंउ मज्जन-भूषण-विधि ।
भोजन भुक्तउ मायायुक्तउ । सरस कवीन्द्रें काव्य'च उक्तउ ।
कामें कामिनि भनियो हंसिकें । ....
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४६)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुमर-संग ले चलेंउ जव्व । प्रारंभेउ स्तुति नग्गुडिहिं तव्व ।
नाचंति विलासिनि गीत रम्य । गायन गायंती सुकृत-कर्म ।
गउ नंदनवन-मंडप-दुवार । वरतोरण-मंडित रतन-स्फार ।
तहँ किउ जो योग्य पुरोहितहीं । आचार कुमार्ग-निरोधिहहीं ।

फुल्लि-धामा कदंब-रेणु-धूली-रजो । मत्त-मायूर-वृन्दों कों केकारवो ।
नीलवारा भुजंग-अंबुधारा-द्रु-गुणी । नंगला भूरुहा पाल गोगंजिनी ।
निर्गलं मंदिरं निच्छिन्नं भूतलं । धावमानं रजालं प्रनाली-जलं ।
इष्ट-गोष्ठी-विनिर्घोषैः विधानकं । दिव्यगंधयंकं कायिनं पावनं ।
विज्जुमाला-फुरंतं नभं दिट्ठयं । तासु मेघागमे कोउ कोल्लावहं ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाटहिं भट्ट पइट्ठेंउ । मकरकेतु-युवजनहिं देखेंउ ।
कोइ वेश्य निरी गति-मूर्च्छा । ए मन एतहँ गर्वेंहि न भिच्छा ।
कोइ वेश्य चित्तौ का वाञ्छित । नीलालक एतेहिं न काञ्छित ।
कोइ वेश्य चिन्ता की हारें । कंठ न छिन्देंउ एहिं कुमारें ।
कोइ वेश्य अधराग्र सगर्गें । निज्जै-नौकै-रापै-गर्गे ।
कोइ वेश्य रति-जलिलें सींचिय । वेगैं वर्गें पुरे रोमांचिय ।
घत्ता । तो वीणा-कल-रव-भाषिणिया देवदत्तया राज-विलासिनिया ।
हिय-उल्लसया कामदेव थापेंउ कृत-प्रांजलि-हाथें विज्ञापिया ॥१॥
"परमेश्वर ! कारुण्य-विचारें । जेंहि मन तेंहि पर-आंगन प्रापैं ।"
सो नृनिया उपकरियउ तेंराहिं । सो नेंहि रमणिहिं मंदिर जेंतहिं ।
अन्यो दीनु निषण्णउ रजनिहिं । पूरावेंउ मज्जन-भूषण-विधि ।
भोजन भुक्तउ मात्रायुक्तउ । सरस कवीन्द्रें काव्य'व उक्तउ ।
कामें कामिनि भनियो हंसिके । ....

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुमर-सँग ले चलेंउ जब्ब । प्रारंभेउ स्तुति नग्गुडिहिं तब्ब ।
नाचंति विलासिनि गीत रम्य । गायन गायंती सुकृत-कर्म ।
गउ नंदनवन-मंटप-दुवार । वरतोरण-मंडित रतन-स्फार ।
तहँ किउ जो योग्य परोहितहीं । आचार कमार्ग-निरोधिहहीं ।

फुल्लियासा-कयंवोह-धूलीरओ । मत्त-माऊर-वंदस्स केयारओ ।
नीर-धारा मुयंतंवु-वाहज्झुणी । संगया सूहवा पासि सीमंतिणी ।
णिग्गलं मंदिरं णिव्विकयं भूयलं । धावमाणं रयालं पणाली-जलं ।
इट्ठ-गोट्ठी-विसिट्ठेहिँ विण्णाययं । दिव्व-गंधव्वयं कव्वयं पाययं ।
विज्जु-माला-फुरंतं णहं दिप्पहं । तस्स मेहागमे तंपि सोक्खावहं ।......

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेसा-वाडइँ झत्ति पइट्ठउ । मयरकेउ पुरवेसहिँ दिट्ठउ ।
कावि वेस चिंतइ गय-मुण्णा । ए थण एयहोँ णहहिँ ण भिण्णा ।
कावि वेस चिंतइ किं वड्ढिय । णीलालय एएण ण कड्ढिय ।
कावि वेस चिंतइ किं हारेँ । कंठु ण छिण्णउ एण कुमारेँ ।
कावि वेस अहरग्गु णमग्गइ । झिज्जइ गिज्जइ तप्पइ कंपइ ।
कावि वेस [illegible] णिचिय । वेवइ वलइ घुलइ रोमंचिय ।...
[illegible]ना । ता [illegible] देवदत्तए रायविलासिणिए ।
[illegible] कामदेउ दविउ [illegible] विण्णविउ ॥१॥
'[illegible]! [illegible] । जिह [illegible] णणहि ।
[illegible] । तं तहेँ रमणिहेँ मंदिरु जेँत्तहेँ ।
[illegible] । [illegible]-मज्जण-भूसण-विहि ।
[illegible] । [illegible] जत्तउ ।
[illegible] । ....

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) [illegible]

[illegible] । [illegible] ताव ।
[illegible] । [illegible] गुणिय-कम्मु ।
[illegible] । [illegible] ।
[illegible] । [illegible] ।

फुल्लि-माला मकरंद-रेणु-पूरी-वनी । मत्त-मधुकर-पुंजों की झंकारणी ।

कोकिलागत सुगंध-अंबुवाह-दुबुणी । संकरा गुरुका पान गीतमिनी ।

निर्गमे मंदिरं निष्किलं भुवनं । चायमानं रजानं प्रमानी-जनं ।

इष्ट-गोष्ठी-विशिष्टेहिं विलासनत । निकलोंगर्दंत कामिनं पावय ।

विष्णुमाया-सुरंगं ननं विक्रमं । गातु सेनापते नोइ गोष्वागतं ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(ग) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाटहिं भट्ट पइट्ठेउ । मकरकेतु-सुरधंगहिं दीठेउ ।

कोइ वेश्य निरखै रति-तृष्णा । ए मन एकहिं नरेंहि न भिन्ना ।

कोइ वेश्य निरखै का चाहिय । मीनांगक एकेहिं न गाहिय ।

कोइ वेश्य निरखा को हारें । कंठ न छिन्नेउ एहिं कुमारें ।

कोइ वेश्य श्रमराग समर्गें । भिजे-मौने-आर्पे-गर्गे ।

कोइ वेश्य रति-रमिनें शोभिय । सेपै सलै पुरै रोमांचिय ।

घत्ता । तो वीणा-नल-रव-माणिणिया देवदत्तया राज-विलासिनिया ।

हिय-उल्लया कामदेव आयेउ कृत-प्रांजलि-हाथें विज्ञापिया ॥१॥

"परमेश्वर ! कारुण्य-विचारै । जेंहि मन तेंहि घर-प्रांगन आवै ।"

सो सुनिया उपकारिय तेंतहिं । सो नेंहि रमणिहिं मंदिर जेंतहिं ।

अन्यो दीनू निषण्णउ रजनिहिं । पूरायेंउ मज्जन-भूषण-विधि ।

भोजन भुक्तउ मामायुगताउ । सरस कवीन्द्रें काव्य'व उगतउ ।

कामें कामिनि भनियो हंसिके । ....

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(घ) विवाह-वर्णन

समवयस-कुमर-संग ले चलेंउ जव्व । प्रारंभेउ स्तुति नग्गुटिहिं तव्व ।

नाचंति विलासिनि गीत रम्य । गायन गायंती सुकृत-कर्म ।

गउ नंदनवन-मंडप-दुवार । वरतोरण-मंडित रतन-स्फार ।

तहँ किउ जो योग्य पुरोहितहीं । आचार कुमारी-निरोधिहहीं ।

सुपइट्ठउ मंडव-मज्झि जाम । वरु दिट्ठउ सज्जण-जणहिँ ताम ।
चउरिइ[1] णिविट्ठु कंदप्प-मुत्ति । पासेहि णिवेसिय तासु पत्ति ।
अग्गइ पयक्खु किउ धूमकेउ । किउ होमु हुणेप्पिणु तिव्व-तेउ ।
अम्मय-मंइ पाणि करेण गहिउ । सीयारु पमेल्लिउ ताह अहिउ ।
तहों दिण्ण कण्ण विरइउ विवाहु । सव्वेहिँ उच्चरिउ "साहु साहु" ।
णवयारिवि मायरि कण्ण सहिउ । णिग्गउ वरु एहु विवाहु कहिउ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

क'वि अलय-तिलय देविहि करइ । क'वि आदंसणु अग्गइ धरइ ।
क'वि अप्पइ वर-रयणाहरणु । क'वि लिप्पइ कुंकुमेण चरणु ।
क'वि णच्चइ गायइ महुर-सरु । क'वि पारंभइ विणोउ अवरु ।
क'वि परिरक्खइ णिसियासि करी । क'वि वारि परिट्ठिय दंडयरी ।
अक्खाणउ कावि किंपि कहइ । दिण्णउँ कणइल्लु कावि वहइ ।
क'वि वार वार विणएँ णवइ । क'वि सुरसरि-सर-सलिलहिँ ण्हवइ ।
क'वि मालउ चेलिउ उज्जलउ । ढोयइ सव-लहणु सुपरिमलउ ।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जाहि घरणि मरुएवि भडारी । जाहि रूव-सिरि अइ-गरुयारी ।
अमरहँ पंतिइ पय-पणवंतिइ । लंघियाइँ अम्हइँ णहयंतिइ ।
कमलराएँ काइँ गविट्ठउ । एम णाइँ णेउरहिँ पघुट्ठउ ।
पण्हिहि रत्तउ चित्तु पदंसिउँ । अंगुलियहिँ सरलत्तु पयासिउँ ।
गुट्ठुण्णईइ जं गूढइँ । गुप्फइँ तं किर पिसुणइँ मूढइँ ।
णीरोमउ विसिरिउ वट्टुलियउ । मसिणउ सोहियाउ उज्जलियउ ।
जाउ कमहाणिइ ओहरियउ । दिट्ठउ णं खल-मित्तहँ किरियउ ।

---

[1] चबूतरेपर

सु-पईठेउ मंडप-माँझ जव्व । वर देखेँउ सज्जन-जनेँहिँ तव्व ।
चउरेँ निविष्ट कंदर्प-मूर्त्ति । पासेहिँ निवेसेउ तासु पत्नि ।
आगेँहिँ प्रदक्षणेँउ धूमकेतु । किउ होम होँमावन तीव्र-तेज ।
अंमृतमय-पाणि करेहिँ गहेँउ । शीत्कार प्रमेलत[1] स ाहि अहिउ ।
तहँ दियउ कन्याँ विरचेँउ विवाह । सर्वेहिँ उच्चरेँउ "साधु साधु" ।
नवकारिहु मायेर कन्याँ-सहित । निर्-गउ वर एहु विवाह कथित ।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

कोँइ मलय-तिलक देविहिँ करई । कोँइ आरसिहीँ आगे धरेँई ।
कोँइ अपैं वर-रतनाभरना । कोँइ लेपै कुंकुमहीँ चरणा ।
कोँइ नाचै गावै मधुर-स्वरा । कोँइ प्रारंभै विनोद अपरा ।
कोँइ परि-रक्षै निशित-ासि करी । कोँइ द्वारेँ परिट्-ठिउ दंडधरी ।
आख्यानहु कोँइ किछू कहई । दीनेँउ कनइल्लु[2] कोँइ वहई ।
कोँइ वार वार विनयें नमई । कोँइ सुरसरि-सर-सलिलेँहिँ स्नपई ।
कोँइ मालउ चोलिउ उज्ज्वलऊ । बोवैं सव लहण[3] सुपरिमलऊ ।
—आदिपुराण (पृ० ३६)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरनि मरुदेवि भटारीँ । जाहि रूपश्री अति गुरुकारी ।
अमरन् पंक्तिहिँ पद-प्रणमंतिइ । लंघायऊ हमरो नख-पंक्तिइ ।
कमतल राये काह गवेषिउ । ऐंहि न्याईँ नूपुरेहि प्रघोषिउ ।
पर्ष्णिहिँ रक्तउ चित्त प्रदर्शउ । अंगुलियहिँ सरलत्त्व प्रकाशिउ ।
अंगुठ-उन्नति ही जिमि गूढा । गुल्फउ सो फुर[4]पिशुना मूढा ।
नी-रोमउ विसिरिउ वर्त्तुलियउ । मसृणउ सोहियाउ अंगुलियउ ।
जंघउ क्रमहानी अव-धरियऊ । दीसेँउ जनु खल-मित्रहँ किरियउ ।

---

[1] छोड़ती [2] कर्ण-फूल [3] लहँगा (?) [4] भट्टारिका=महारानी

गूढइँ णरवइ-मंता भागइँ । णायरणाइँ व [illegible] ।
णिविड-संधि-बंधइँ णं कव्वइँ । देविहि जण्णुयाइँ मउअइँ ।
ऊरुय-खंभ-णराहिव-रमणहु । तोरण खंभाइँ व [illegible] ।
जेण स-सुर-णरु तिहुयणु जित्तउ । कामतन्तु जं देविहि गुत्तउ ।
दिण्ण थत्ति तहु सोणी विंवहु । किं वण्णमि गरुयत्तु णियंबहु ।
घत्ता । गंभीरे णाहि तहि मज्झु किसु, उयरु स-तुच्छउ छिद्दु मइँ ।
संसग्गवसे गुणु कासु हुउ, जो णवि जायउ जम्मि सइँ ॥१५॥
तिवली-सोवाणेहिँ चडेप्पिणु । रोमावलि-कुहिणी लंघेप्पिणु ।
सिहिण-गिरिंदारोहण-दोरउ । लग्गहु वम्महु मोत्तिय-हारउ ।
पिय-वसियरणु वसइ भुय-मूलइ । मुइ-सोहग्गु जाहि हत्थयलइ ।
णेह-बंधु मणि-बंधि परिट्ठिउ । लायण्णे समुद्दु णं मंठिउ ।
जाहि तणउँ तं जणिय-वियारउँ । महुरउ डयरउ केरउ सारउ ।
कंठलीह णउ कंबु पावइ । पर-तास-ऊरिउ कहँ जीवइ ।
णियउ णिविट्ठउ जिय-ससि-कंतिहि । धोयहि धवलहि णाइँ पवालउ ।
अहर-बिंबु रेहइ रायालउ । मुक्तावलियहि णाइँ पवालउ ।
अम्हहँ ठाइ कयाइ ण संमुहु । उज्जुहु णासावंसु वि दुम्मुहु ।
भउँहउँ वंकत्तणु' वि ण सहियउ । णयणहिँ जंपि'व कण्णहुं कहियउ ।
णिसि-दिणिं ससि रवि गयण विलंबिय । विण्णि'वि गंडयलइ पडिबिंबिय ।
कुंडल-सिरि वहंति धवल-च्छिहि । जिण-जणणियहि सलक्खण-कुच्छिहि ।
कुडिलालय भाल-यलि णिरंतर । मुह-कमलहु घुलंति णं महुयर ।
अवरु' वि ताहँ भारु विवरेरउ । मुह-ससहर-भएण णं तमरउ ।
तरुणिहे पिट्ठि पइट्ठउ दीसइ । कुसुम-रिक्ख-मीसियउ विहासइ ।
—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

गूढा नरपति-मंत्रा भापा। व्याकरणहिँ इव रचित-समासा।
निविड-संधि[1]-बंध जनु काव्या। देवि जाह्नवी इव अतिभव्या।
ऊरु-खंभ नराधिप-दमनहँ। तोरण-खंभा इव रति-भवनहँ।
जातेँ स-सुर-नर-त्रिभुवन जीतउ। कामतत्त्व जो देवेँहिँ उक्तउ।
दीन थाप तेँहि श्रोणीबिंवहु। का वरनौ गरुअत्त्व नितंबहु।

घत्ता। गंभीर नाभि तहि माँझ कृश, उदर स-तुच्छउ देखु मईँ।
संसर्ग वशे गुण कासु हुयेउ, जो नहि जायेउ जन्मतेँईँ ॥१५॥

त्रिवली-सोपानेहि चढेविय। रोमावलि केँहुनी लंघेविय।
स्तनक-गिरीन्द्रारोहण-डोरा। लागहु मन्मथ मौक्तिकहारा।
प्रिय-वशिकरण वसै भुज-मूलहिँ। शुचि सौभाग्य जाहि हत्यतलहिँ।
स्नेहबंध मणिबंध परिट्-ठिउ। लावण्ये समुद्र ना सं-ठिउ।
जाहिकेर सो जनित-विकारा। मधुरउ इतरहु-केरउ खारा।
कंठलीहिँ नहिँ कंबू पावै। पर-श्वासा-पूरित किमि जीवै।
निकट-निविष्टउ जित-शशि-कान्तिहिँ। धोवै धवलहि त्याइ प्रवालहिँ।
अधर-बिंब रोचै रागालउ। मुक्तावलियहिँ त्याइँ प्रवालउ।
हमरे ठहर कदाचि न संमुख। ऋज्जुहु नासा-वंशउ दुर्मुख।
भौँहउँ वंकपनहु नहि सहियउ। नयनहिँ जल्पिय कर्णहँ कहियउ।
निशि-दिन रवि-शशि गगने लंबिउ। दोऊ गंड-तलैँ प्रतिबिंबउि।
कुंडल-श्री वहंत धवलाक्षिहिँ। जिन-जननियहि स-लक्षण-कुक्षिहिँ।
कुटिलालक भालतले निरंतर। मुखकमलहु घुरंति जनु मधुकर।
अवरउ ताहँ भार विवरेरउ। मुख-शशधरभरेहिँ जन तमसउ[2]।
तरुणिहिँ पृष्ठ पईठेउ दीसै। कुसम-ऋक्ष-मिश्रितउ चिभासै।

—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] सर्ग (अपभ्रंश काव्योंमें संधि और कडवका क्रम होता है) [2] अंधकार

राएँ गउ णिय-सिविरहु तरंतु । . . . । पत्तउ गुरसरि-जल-मज्झ-ठाणु ।
जोयवि गंगहि सारसहँ जुयलु । जोयइ कंतहि थण-कलस-जुयलु ।
जोयवि गंगहि सुललिय-तरंग । जोयइ कंतहि तिवली-तरंग ।
जोयवि गंगहि आवत्त-भवँणु । जोयइ कंतहि वर-णाहि-रमणु
जोयवि गंगहि पप्फुल्ल-कमलु । जोयइ कंतहि पिउ-वयण-कमलु ।
जोयवि गंगहि वियरंत मच्छ । जोयइ कंतहि चल-दीहरच्छ
जोयवि गंगहि मोत्तियहु पंति । जोयइ कंतिहि सिय-दसण-पंति ।
जोयवि गंगहि मत्तालि-माल । जोयइ कंतहि धम्मेल्ल णील
घत्ता । णिय-गेहिणि वम्मह-वाहिणि, देवि सुलोयण जेही ।
मंदाइणि जण-सुह-दाइणि, दीसइ राएँ तेही ॥७॥

—आदिपुराण (पृ० ४६)

(क) नारी-नख-शिख—

णिय वणिणा कणय-उरहों मयच्छि । दिट्ठा वरेण णं मयणलच्छि ।
जो कंतह णह-यलि दिट्ठु राउ । मुहु भावइ सो णह-यर-णिहाउ
चारत्तु णहहँ एए कहंति । अंगुट्ठय परमुण्णय वहंति ।
गुप्फइँ गूढत्तणु जं धरंति । णं भुअणु जिणहु मंतु'व करंति
जंघा-जुयलउ णेउर-दुएण । वण्णिज्जइ णं घोसेँ हुएण ।
वग्गइ वम्महु वहु-विग्गहेण । जण्हुय संधाएँ परिग्गहेण
ऊरू-थंभहिँ रइघरु अणेण । रेहइ मणि-रसणा[1] तोरणेण ।
कडियल-गरुयत्तणु तं पहाणु । जं धरिया मयण-णिहाण-ठाणु
मणि चितवंतु सय-खंडु जाहि । तुच्छोयरि किह गंभीर-णाहि ।
सो सिय ससि-वयणहेँ तिवलि-भंग । लायण्ण-जलहों णावइ तरंग
थण-थड्ढत्तणु परमाण णासु । भुय-जुयलउ कामुय-कंठ-पासु ।
गीवहेँ गइवेयउ हियय-हारि । वद्धउ चोरु'व रूवावहारि
अहरुल्लउ वम्मह-रस-णिवासु । दंतहि णिज्जिउ मोत्तिय-विलासु ।

[1] कांची (करधनी)=कटिका आभूषण

राय गऊ निज शिविरेहिँ तुरंत । . . .।.पायउ सुरसरि-जल-माँझ थान ।
जोयउ गंगहिँ सारसहँ युगल । जोवै कांता-स्तन-कलश-युगल
जोयउ गंगहिँ सुललित-तरंग । जोवै कांता-त्रिवली-तरंग ।
जोयउ गगहिँ आवर्त्त-भ्रमण । जोवै कांता-वर-नाभि-रमण ।
जोयउ गंगहीँ प्रफुल्ल कमल । जोवै काता-प्रियवदन-कमल ।
जोयउ गंगहिँ विचरंत मच्छ । जोवै कान्ता-चल-दीर्घ-अक्ष ।
जोयउ गंगहिँ मोतियहु पाँति । जोवै कान्ता-सित-दशन-पाँति ।
जोयउ गंगहिँ मत्तालिमाल । जोवै कान्ता-धम्मिल्ल[1]-नील ।
घत्ता । निज-गेहिनि मन्मथ-वाहिनि, देवि सुलोचन जैसी ।
मंदाकिनि जन-सुख-दायिनि, दीसै राजहिँ तैसी ।।७।।
—आदिपुराण (पृ० २६

(क) नारी-नख-शिख—

निज वर्णे कनक-उरहोँ मृगाक्षि । दीसति वरेहि जिमि मदन-लक्ष्मि ।
, जो कंतह नभ-तल देखु राव । मुहु भावै सो नभचर-निधा
चारुत्व नभहँ ईँहै कहंति । अंगुट्ठक-परमुन्नत वहंति ।
गुल्फा गूढत्तन जो धरंति । जनु भुवन-विजय मंत्र इव क
जंघा-युगलउ नूपुर-द्वयेहिँ । वणिज्जै जनु घोपेँ हुयेहिँ ।
वल्गै मन्मथ वहु - विग्रहेहिँ । जानू संधान - परिग्र
ऊरु-थंभहिँ रतिघर एँहीहिँ । राजै मणि-रसना-तोरणेहिँ ।
कटितल गरुत्तन सो प्रधान । जनु धरिय मदन-निधान
मणि चितवत शतखंड जाह । तुच्छोदरि कहँ गंभीर नाभि ।
शोषिय शशिवदनहँ त्रिवलि-भंग । लावण्य जलहँ नदिहँ
स्तन-कठिनत्वहु परमान-नाश । भुज-जुगलउ कामुक-कंठपाश ।
ग्रीवहेँ गतिवेगउ हृदयहारि । वद्धउ चोर इव रू
अधरुल्लउ मन्मथ-रस-निवास । दंतेहिँ जीतेँउ मौक्तिक-विलास ।

---

[1] केशपाश

घत्ता । जइ भउहाँ-कुडिलत्तणेण, णर गुम्घणुफलेण पहरमय ।
तो पुणु वि काइँ कुडिलत्तणहो॑, सुंदरि-सिरि धम्मिल्ल-गय ॥१७॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० १०)

(च) कुपिता नायिका—

'हेट्ठामुह वहु वरेण भणिया । किं हुइ तुहुँ मलिणाणणिया ।
घणु सोहइ एक्कइ विज्जुलइ । वणु सोहइ एक्कइ कोइलइ ।
इह सोहमि हउँ एक्काइ पइँ । गुरु-वयणु करेवउ तोवि मइँ ।
मा रूसहि सज्जण-वच्छलिइ । अलि-णील-कुडिल-भउँ-कोमलिए ।
ते॑ वयणे॑ रोस-णियत्तणउँ । जायउँ तहि रम्मु पेम्मु घणउँ ।
वप्पिल संपाइउ रमण-वसा । तडि-रय-तटि-वेयहु तणिय ससा ।
चल-णयण-जुयल-णिज्जिय-हरिणि । रइकंता मयणवई तरुणि ।
—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

ते णव वंधव सहुँ परिवारे॑ । सोउ करंति दुक्ख-वित्थारे॑ ।....
सा सिवएवि रुयइ परमेसरि । "हा देवर ! पर-भड-गय-केसरि ।
हा किं जीविउँ तिणु परिगणियउँ । कोमल-वउ हुय-वहि किं हुणियउँ ।
हा पयाइ किं किउँ पेसुण्णउँ । हा किं पुरि-परिभमहुँ ण दिण्णउँ ।
हा कुल-धवल केव विद्धंसिउ । हा जय-सिरि विलासु किं णिरसिउ ।
हा पइँ विणु सोहइ ण घरंगणु । चंद-विवज्जिउँ णं गयणंगणु ।
हा पइँ विणु दुक्खे॑ पुरु रुण्णउँ । हा पइँ विणु माणिणि-मणु सुण्णउँ ।
हा पइँ विणु को हारु थणंतरि । को कीलइ सरहंसु'व सरवरि ।
पइँ विणु को जण-दिट्ठिउ पीणइ । कंदुय-कील देव को जाणइ ।
हा पइँ विणु को एवहिँ सूहउ । पइँ आपेक्खिवि मयणु'वि दूहउ ।

घत्ता। यदि भौहां-कुटिलत्तनेहिँ, नर नु-चनु रुहेहिँ प्रभामय।
तो पुनिहु काइँ कुटिलत्तनहीँ, सुंदरि श्री-धम्मिल्ल-गत ॥१७॥

—णायकुमार-चरिउ (पृ० १२)

(च) कुपिता नायिका—

हेट्ठामुंह थयु वरेहिँ भनियाँ। "का हुउ तुहूँ मलिनाननिया।
घन सोहै एकउ विज्जुलई। वन सोहै एकउ कोइलई।
एँहिँ सोहौँ मँ एकउ तुहुईँ। गुरुवचन करेवउ तोउ मईँ।
ना रूसहु सज्जन-वत्सलिईं। अलि-नील-कुटिल-भौँ-कुन्तलिईं।
तव वदने रोपयित्तनऊ। जायउ तहँ रम्य-प्रेम-घनऊ।
वप्पिल सं-पायेउ रमण-यशा। तडि-रज-तडि-वेगहेँकेर स्वसा।
चल-नयन-युगल-निर्जित-हरिनी। रतिकंता मदनवती तरुणी।"

—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

सो नव-बांधव-सँग परिवारेँ। सोउ करंति दुःख विस्तारेँ।
सा शिवदेवि रोवै परमेश्वरि। "हा देवर! परभट-गज-केसरि।
हा का जीवित तृण परिगणियउ। कोमल-वय हुतवहेँ का होँमियउ।
हा प्र-जाड का किउ पैशुन्यउ। हा का पुरि-परिभ्रमउ न दीनेँउ।
हा कुल-धवल कँस विध्वंसेँउ। हा जयश्री विलास का निरसेँउ।
हा तैँ विनु सोहै न घरांगन। चंद्र-विवर्जित जनु गगनांगन।
हा तैँ विनु दुःखे पुर रुन्नउ[1]। हाँ तैँ विनु मानिनि-मन सुन्नउ।
हा तैँ विनु को हार थनंतरेँ। को क्रीडै सरहंस'व सरवरेँ।
तैँ विनु को जनदृष्टिहिँ प्रीणै। कंदुक-क्रीड देव! को जानै।
हा तैँ विनु को ऐसो सूखउ। तैँ आपेक्षिय मदनउ दूखउ।

[1] रो

हा पइँ विणु णिय-गोत्त-मयंकहु । को भुय-बलु समुद्द-विजय-रहु ।
हा पइँ विणु गुणगउँ हियउल्लउँ । को मग्गइ मेरउ कडउल्लउँ ।
छार-रासि हूयउ पविलोयउ । एव बधुवग्गें सो सोयउ ।
पंजलीहिँ मीणावलि-माणिउँ । एत्थवि सव्वहिँ दिण्णउँ पाणिउँ ।

—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

छुडु गज्जिय गुरु-संगाम-भेरि । णं भुक्खिय तिहु-यण गिलिवि मारि ।
छुडु णिग्गउ भुय-वलि साहिमाणि । छुडु एत्तहि पत्तउ चक्कपाणि ।
छुडु काले णीणिय दीह-जीह । पसरिय माणुस-मसासणीह ।
थिय लोयवाल जीविय-णिरीह । डोल्लिय गिरि रुजिय गहणि सीह ।
छुडु भड-भारें ढलहलिय धरणि । छुडु पहरण-फुरणें हरिउ तरणि ।
छुडु चंदवलाइँ पलोइयाइँ । छुडु उहयवलाइँ पधावियाइँ ।
छुडु मच्छर-चरियइँ वड्ढियाइँ । छुडु कोसहु खग्गहिँ कड्ढियाइँ ।
छुडु चक्कइँ हत्थुग्गमियाइँ । छुडु सेल्लइँ भिच्चहिँ भामयाइँ ।
छुडु कौंतइँ धरियइँ संमुहाइँ । धूमंधइँ जायइँ दिम्मुहाइँ ।
छुडु मुट्ठि-णिवेसिय लउडि-दंड । छुडु पुखुज्ज-गुणि णिहिय कंड ।
छुडु गय कायर थरहरिय-प्राण । छुडु ढोइय संदण णं विमाण ।
छुडु मेंठ-चरण-चोइय-मयंग । छुडु आसवार-वाहिय-तुरंग ।
घत्ता । छुडु छुडु कारणि वसुमइहि सेण्णइँ जाम हणंति परोप्परु ।

—आदिपुराण (पृ० २८८)

यसिरि[1]-रामालिंगण-लुद्धहँ । एक्कमेक्क पहरंतहँ कुद्धहँ ।
असि-संघट्टणि उट्ठिउ हुयवहु । कढकढंतु सोसिउ सोणिय-दहु ।
सवि दिसा सइँ तेण पलित्तइँ । पक्खर-चमरइँ चिंधइँ छत्तइँ ।
ता पडिवक्ख-पहर-भय-तट्ठउँ । महुमहवलु दस-दिसि वह णट्ठउँ ।

हा तैं विन् निजगोत्र-शशाकहु । को भुज-बल-समुद्र-विजयाकहु ।
हा तैं विन् गुनउ हृदयुल्लउ । को गर्भे मेरो कउयल्लउ ।
धार-राशि शोयउ अ-विलोकउ । रमि वधू-वर्ग सो सोयउ ।
प्राणनाँहिं मीनावलि-मानिउ । न्हाउव नवैंहिं दिन्नउ पानिउ ।
—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

यदि गजिय गुरु-संग्राम-भेरि । जनु भन्निय त्रिभुवन गिल्लवि मारि ।
यदि निर्-गउ भुजबलें साभिमान । यदि एलहिं आयउ चक्रपाणि ।
यदि कालें लेल्लिय वीर्य-जीह । पसरिय मानुष-मांसाश'नीह ।
ठिय लोकपाल जीवित-निरीह । डोल्लिय गिरि गजिय गहनें सींह ।
यदि भटभारें दलदलिय धरणि । यदि प्रहरणु-फुरणें हरेंउ तरणि ।
यदि चंद्र-बलाइँ प्रलोकिताइँ । यदि उभय-बलाइँ प्रधावितांइँ ।
यदि मत्सर-चरितहँ बढ्ढियाइँ । यदि कोपहँ खड्गहु कड्ढियाइँ ।
यदि, चक्कें हाथ्-उट्ठाइयाइँ । यदि सैन्यदें भृत्येहिं भ्रमियाइँ ।
यदि कुन्तइँ धरियइँ संमुखाइँ । धूमंधा जावें दिग्मुखाइँ ।
यदि मुष्टि-निवेशिय खड्ग-दंड । यदि पुन्-उज्-ज्यागुणें निहित-काड ।
यदि गज कायर थरहरिय प्राण । यदि छोड्य स्यंदन जनु विमान ।
यदि मेंठ'-चरण-चोदित-मतंग । यदि आसवार-चालिय-तुरंग ।
घत्ता । यदि यदि कारणे चमुमतिहि, सैनऽ जब्व हनंति परस्पर ।
—आदिपुराण (पृ० २८८)

जय-श्री-रामा-'लिंगन-लुब्धहँ । एक-एक प्रहरंतँह क्रुद्धहँ ।
असि-संघट्टनें उट्ठेंउ हुतवह । कडकडंत शोपेंउ शोणित-दह ।
दसउ दिशागडँ तेहिँ प्रलिप्तहँ । पक्खर-चमरें चिन्हें छत्रहँ ।
सो प्रतिपक्ष-प्रहर-भय-त्रस्तउ । मधुमय-बल दशदिशि पय नष्टउ ।

पोरिस-गुण-विभाविय-वासउ । "हणु" भणंतु सई धाइउ केसउ ।
णरहरि तुरय-रहिण गंभूरइ । गारइ दारइ मारइ जूरइ ।
धीरइ हक्कारइ पच्चारइ । हणइ वणइ विहुणइ विणिवारइ ।
दमइ रमइ परिभमइ पयट्टइ । संघट्टइ लोट्टइ आवट्टइ ।
सरइ धरइ अवहरइ ण संचइ । खंचइ कुंचइ लुंचइ वंचइ ।
उल्लालइ वालइ अप्फालइ । रुसइ दूसइ पीलइ हूलइ ।
ईहइ संखोहइ आवाहइ । रोहइ मोहइ जोहइ साहइ ।
अंत ललंतइँ गाढइँ ताडइ । रुंड-मुंड-खंडोहइँ पाडइ ।
वेढइ उव्वेढइ संदाणइ । रक्खइ भुक्खारीणइँ पीणइ ।
वग्गइ रंगइ णिग्गइ पविसइ । दलइ मलइ उल्ललइ ण दीसइ ।
घत्ता । कुस-पास-विलुंचइ हय-वरहँ, गल-गिज्जउँ तोडइ गयवरहँ ।
वर-वीर रणंगणि पडिखलइ । मंडलियहँ रयण-मउड दलइ ॥८॥

—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्धवंत वहुमच्छरो भडो । हत्थि-खंभ-हत्थो महाभडो ।
चरण-चार-चालिय-धरायलो । धाइयो भुया-तुलिय-मयगलो ।
ता कयंतेहि तेण दारुणं । परियलंत-वण-रुहिर-सारुणं ।
मलिय-दलिय-पडिखलिय-संदणं । णिविड-गय-घडा-वीढ-मद्दणं ।
अरिदमणु पधायउ साहिमाणु । "हणु हणु" भणंतु कड्ढिवि किवाणु ।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

संगाम-भेरीहिँ, णं पलयमारीहिँ । भुअणं गसंतीहिँ, गहिरं रसंतीहिँ ।
सण्णद्ध-कुद्धाइँ; उद्धुद्ध-चिंधाइँ । उववद्ध-तोणाइँ, गुण-णिहिय-वाणाइँ
करि-चडिय-जोहाइँ, चल-चामरोहाइँ । छत्तंधयाराइँ, पसरिय-वियाराइँ ।
वाहिय-तुरंगाइँ, चोइय-मयंगाइँ । चल-धूलि-कविलाइँ, कप्पूर-धवलाइँ ।
मयणाहि-कसणाइँ, कय-वइरि-वसणाइँ । भड-दुण्णिवाराइँ, रह-दिण्ण-धाराइँ ।
रोसाव उण्णाइँ, चलियाइँ सेण्णाइँ । तिहुअण-रईसस्स, अंतर-णरिन्दस्स ।

गा है

पौरुष-गुण-वीभावित-वासव । "हन" भनंत स्वं धायेँउ केशव ।
नरहरि तुरग-रयेहिँ सं-चूरै । सारै दारै मारै जूरै ।
धीरै हक्कारै प्रच्-चारै । हनै वनै विधुनै विनिवारै ।
दमै रमै परिभ्रमै-प्रवर्तै । संघट्टै लोटै आवर्त्तै ।
सरै धरै अपहरै न संचै । खंचै कुचै नोचै वंचै ।
उल्लालै वालै आस्फालै । रूपै दूषै पीडै हूलै ।
ईहै संक्षोभै आवाधै । रोधै मोहै जोवै साधै ।
अंत ललंतै गाढेँ ताडै । रुंड-मुड-खंडोघैँ पाटै ।
वेठै[1] उद्वेठै संदानै[2] । रक्खै भूखापीडिय प्रीणै ।
वल्गै रंगै लिर्-गै प्रविशै । दलै मलै उल्ललै न दीसै ।

घत्ता । कुशपाशउ नोचै हयवरहँ, गलगिज्जउँ तोडै गजवरहँ ।
वरवीर-रणंगनेँ प्रतिस्खलै । मण्डलिकहँ रत्नमुकुट दलै ।।८।।

—उत्तरपुराण (पृ० १०८) .

उद्-धाँवंत वहुमत्सरा भटा । हस्ति-खंभ-हस्ता महाभटा ।
चरन-चार-चालित-धरातला । धायऊ भुजा-तुलित-मदकला ।
तो कृतान्तेँहिँ तेहि दारुणं । परिचलंत-व्रण-रुधिर-सारुणं ।
मलिय दलिय प्रति-स्खलिय स्यंदनं । निविड-गजघटा-पीठ-मर्दनं ।
अरिदमन प्रधायउ साभिमान । "हन हन" भनंत काढे कृपाण ।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

संग्राम-भेरिहिँ जनु प्रलय-मारीहिँ । भुवनहँ ग्रसंतीहिँ, गंभिर-रसंतीहिँ ।
सन्नद्ध-कुद्धाइँ उर्ध्वोर्ध्व चिन्हाइँ[3] । उपबद्ध-तूणाइँ, गुण-निहित-वाणाइँ
करि-चढिय-योधाइँ चल-चामरोघाइँ । छत्र-धकाराहिँ, प्रसरिय विकाराहिँ ।
चालिय तुरंगाइँ, चोदिय मतंगाइँ । चूल-धूलि-कपिलाइँ, कर्पूर-धवलाइँ
मृगनाभि-कृष्णाइँ, कृत-वैरि-वसनाइँ । भट-दुर्विवाराइँ, रथे दीय-धाराइँ ।
रोषावपूर्णाइँ, चलिताइँ सेनाइँ । त्रिभुवन-रतीशाह, अन्तर-नरेन्दा

---

[1] घेरै [2] चढ़ाई करै [3] पताका

णिम्महइ गहीर-सरेण राउ। रंगंतु धरेइ करेण काउ।
आकुंचिय-तणु वंचण-कुसलु। अनकमिं वि कमेण दराण-मुगन्।
वलिणा वलेण णिव्वूढ-वलु। जुज्झेप्पिणु गुरुक महंत-वलु।
—आदिपुराण (पृ० ३६)

५—धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

वणि-वाणिज्जारउ जाणियउँ। किसियरु हलधारउ भाणियउ।....
सो सोत्तिउ जो ण दुट्ठु भणइ। सो सोत्तिउ जो णउ पसु हणइ।
सो सोत्तिउ जो हियएण सुइ। सो सोत्तिउ जो परमत्थ-रुइ।
सो सोत्तिउ जों ण मास गसइ। सो सोत्तिउ जो ण सुयणि भमइ।
सो सोत्तिउ जो जणु पहि थवइ। सो सोत्तिउ जो सुतवें तवइ।
सो सोत्तिउ जो संतहुँ णवइ। सो सोत्तिउ जो ण मिच्छु चवइ।
सो सोत्तिउ जो ण मज्जु पियइ। सो सोत्तिउ जो वारइ कुगइ।
सो सोत्तिउ जो जिण-देसियउ। पण्णा-सतिकिरियहिँ भूसियउ।
घत्ता। जो तिल-कप्पासइँ दव्वविसेसइँ, हुणिवि देव गह पीणइ।
पसु-जीव ण मारइ मारय वारइ, परु अप्पु'वि समु जाणइ ॥६॥
—उत्तरपुराण (पृ० ३०६-१०)

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

तहि जगह भयाउल अलिय-रासि। भइरउ-अहिणामि सव्वगासि।
तहि भमइ भिक्ख अरु देइ सिक्ख। अणुगयहँ जणहँ कुल-मग्ग-दिक्ख।
वहु-सिक्खहिँ सहियउ डंभधारि। घरि घरि हिंडइ हुंकारकारि।
सिरि टोप्पी दिण्णर वण्ण-वण्ण। सा झंपवि संठिय दोण्णि कण्ण।
अंगुल-दुतीस-परिमाणु दंडु। हत्थें उप्फालिवि गहइ चंडु।
गलि जोग-वट्टु सज्जिउ विचित्तु। पाउडिय जुम्मु पइँ दिण्णु दित्तु।

जिंव वहि गंभीर सरोवरि जल । जिंव घर घरेहि बरोहिं कमल ।
चउसुगिज-मणुअ गमनु गमा । घरचिड्ड घरहिं तम-सुगगा ।
दीपक करेह निहुँड-मग्ग । पुण्णहिं मर्जें मार-पमा ।

—आदिपुराण (पृ० २८)

४-धार्मिक आचार

(१) योगिन कौन ?

सीलम-सीलवन्तह आणिवइँ । गोरख-भरयावन्त आणिवइँ ।
सो जोगिय जो न दम्भ धरई । सो जोगिय जो ना पसु हणई ।
सो जोगिय जो दुग्गेहिं जुणो । सो जोगिय जो समभावं-मणो ।
सो जोगिय जो न माण धरई । सो जोगिय जो न कुसलें भरई ।
सो जोगिय जो तन दोसें धरई । सो जोगिय जो गुणेहिं भरई ।
सो जोगिय जो मन्तें बरई । सो जोगिय जो न मिच्छ बोलइ ।
सो जोगिय जो न मज्ज पियइ । सो जोगिय जो पावें मुअइ ।
सो जोगिय जो जिन-देसिअउ । मला-अणिअम्मिहिं भुणिअउ ।
घत्ता । जो निय-कायहिं इन्द्रिय-विसयहिं , कुणिय देस-अइ पाणइं ।
पसु-भोग न चाहै सावय सावै, पर-पाणइ भव जाणइ ॥६॥

—उत्तरपुराण

(२) कापालिकोंका धर्म-कम

जहँ अगणि मसाणुन प्रज्वलगानि । भैरव प्रेत-नारी नवंमागि ।
जहँ ध्रुम निरत यम देह निरत । अनुमनहि जनहि कुल-मार्ग-दीक्षा ।
बहु-शिक्षहिं गाढ़िन दंभयारि । पच-धर सिरि हुंकार-नारि ।
सिरें टोपी दीनेहु वर्ण-वर्ण । तहि भरेंउ मंडिय दोउ कर्ण ।
अंगुल-चतिस-परिमाण दंड । हाथे उत्फानिवि गहेंउ चंड ।
गने योगपट्ट साजेंउ विचित्र । पावडी-युग्म पद दियों दीप्त ।

तड-तड-तड-तड-तडतडिय सिंगु । सिंगग्गु छेवि किउ तेण भंगु ।
अप्पि अप्पहों माहप्पु दप्पु । अण-उंछिउ जंपइ गुणइ अप्पु ।
"महु पुरउ पसप्पिय जुय चयारि । हँउ जरइँ ण घिप्पमि कप्प-धारि ।
णल-णहुस-वेणु-मंधाय जेवि । महि भुंजिवि अवरइँ गयइँ तेवि ।
मइँ दिट्ठ राम-रावण-भिडंत । संगाम-रंगि णिग्गियर पडंत ।
मइँ दिट्ठु जुहिट्ठिलु बंधु-सहिउ । दुज्जोहणु ण करइ विण्हु[1]-कहिउ ।
हँउ चिरजीविउ मा करहु भंति । हँउ सयलहँ लोयहँ करमि संति ।
हँउ थंभमि रविहि विमाण जंतु । चंदस्स जोण्ह छायमि तुरंतु ।
सव्वउ विज्जउ महु विप्फुरंति । बहु तंत-मंत अग्गइ सरंति ।'
पेसियउ महल्लउ गुण-वरिट्ठु । गउ तेण भइरवाणंदु दिट्ठु ।
"आएसु करेविणु" भणइ मंति । "तुह दंसणि रायहों होइ संति" ।
सिग्घउ गउ जहिँ ठिउ णरवरिंदु । सह-मज्झि परिट्ठिउ ण उविंदु ।
दिट्ठउ जोईसरु णरवरेण । सीहासणु मेल्लिर हासिरेण ।
संमुहु जाएविणु धरणि पडिउ । दंडुव्व दंडपडिवाइ णडिउ ।
आसीसिउ णरवइ भइरवेण । "हँउ भइरव तुट्ठउ णियमणेण ।"
उच्चासणि वइसाविवि तुरंतु । सलहणहँ लग्गु तहों पइ पडंतु ।
"तुहुँ देव ! सिट्ठि-संहार-कारि । तुहुँ जोईसरु कुल-मग्ग-चारि ।
तुहुँ चिरजीविउ जं हुवउ किंपि । पयउहि जं होसइ कज्जु तंपि ।
तुहुँ महु उप्परि साणंद भाउ । वियरहि हो सामि महापसाउ ।"
घत्ता । जोईसरु मणि तुट्ठउ चिंतइ, "दुट्ठउ इंदिय-सुहु महु पुज्जइ ।
जं जं उद्देसमि तं भुंजेसमि 'आएसहु संपज्जइ ॥६॥
ता चवइ जोइ "महु सयल रिद्धि । विप्फुरइ खणंतरि विज्ज-सिद्धि ।
हउँ हरण-करण-कारण-समत्थु । हउँ पथडु धरायलि गुण-पसत्थु ।
जं जं तुहुँ मग्गहि किंपि वत्थु । तं तं हउँ देमि महापयत्थु ।"
पप्फुल्ल वयणु ता चवइ राउ । "महु खेयरत्त करिवि हिय-छाउ ।"

---

[1] कृष्ण

तड़-तड़-तड़-तड़-तड़तड़िय शृंग। शृंगाग्र छेदि किउ तेन चंग।
आपुहिँ आपन माहात्म्य-दर्प। अन-पूँछेँउ जल्पै स्तुवै आप।
"मम सँमुहाँ बीतेँउ युग चतारि हौँ जरौँन, ठहरौँ कल्पधारि।
नल-नहुप-वेणु-मंधात जोउ। महि भुजिय औरेउ गयउ मोउ।
मैँ दीखु राम-रावण-भिड़ंत। संग्राम-रंगेँ निशिचर पड़त।
मैँ दीखु युधिष्ठिर बंधु-सहित। दुर्योधन न करै विष्णु-कथित।
हौँ चिरजीवी ना करहु भ्रांति। हौँ सकलहँ लोकहँ करौँ शांति।
हौँ थाम्हौँ रविहि विमान-यंत्र। चंद्रह ज्योत्स्ना छादौँ तुरत।
सर्वा विद्या[1] मम विस्फुरंति। बहु तंत्र-मंत्र आगे सरंति।"....
प्रेषेँऊ महल्लक गुण-गरिष्ट। गउ सोउ भैरवानंद दृष्ट।
"आयसु करेवी" भनै मंत्रि। "तव दर्शनेँ राजह होइ शांति।"
शीघ्रै गउ जहँ ठिउ नर-वरेन्द्र। सभ-माँझ वईठो जनु उपेन्द्र।
दीखेँउ योगीश्वर नरवरहीँ। सिंहासन मेलेँउ[2] रभसरहीँ।
संमुख जाईय धरणि पडेँउ। दंड 'व दंड-प्रतिपात नटेँउ।
आशीषेँउ नरपति भैरवेहिँ। "हौँ भैरव तुष्टउँ निज-मनेहिँ।"
उच्चासनेँ बैसायो तुरंत। श्लाघहीँ लागु तहँ पद-पडंत।
"तुहँ देव! सृष्टि-संहार-कारि। तुहुँ योगीश्वर कुलमार्ग-चारि।
तुहुँ चिरजीवी जो हुओ किछुउ। प्रकटहु जो होइहि कार्य सोउ।"
तुहुँ मम ऊपर सानंद भाव। विचरहु हौँहु स्वामि-महाप्रसाद।"
घत्ता। योगीश्वर मनेँ तुष्टउ चितै, दुष्टउ इंद्रियसुख मोँहिँ पूज्यइ।
जो जोँ उदेसौ सोँ भोगेवौँ, आदेशहु संपद्यइ ॥६॥
तव वंदै योगि "मोहिँ सकल ऋद्धि। विस्फुरै क्षणंतरेँ विद्याँसिद्धि।
हौँ हरन-करन-कारन-समर्थ। हौँ प्रथित धरातलेँ गुण-प्रशस्त
जो जो तू माँगै कोइ वस्तु। सो सो हौ देउँ महापदार्थ।"
प्रफ्फुल्ल-वदन तव वदै राव। "मम खेचरत्व करव हिये छाव

[1] मंत्र-विद्या [2] छोडेँउ

"तुइ खेयरत्तु[1] हउँ करमि वप्प ! परमोवएसु जइ णिच्चियप्प ।
भो भो णिय-कुल-कुवलय-मयंक ! दुव्वार-वइरि-वारण अणंक ।
मा णिसुणहि णिय-परिवार-वयणु । णिस्संके लब्भइ गयण-गमणु ।
जइ देवि पुज्ज आगमिण उत्त । जइ जुयल-जुयल जीवेहिँ जुत्त ।
णहयर थलयर जलयर अणेय । पसु-पक्खि-मिहुण बहु-वण्ण-भेय ।
जइ णर-मिहुणुल्लउ अवय-पुण्णु । देवी-मंडउ तुहुँ करहि पुण्णु ।
तुह एम करंतहों बलिविहाणु । हउँ तूस मित्तु चंडियसमाणु ।
ता तुज्झ होइ खेयरिय-सत्ति । विज्जाहर सेविहिँ अतुल-सत्ति ।
तुह खग्गि वसइ जयसिरि सछाय । अमरत्तु होइ तह अजर काय ।"......
छेल-मिहुण-सूयरा । रोझ-हरिण-कुंजरा ।
वाल-वसह-रासहा । मेस-महिस-रोसहा ।
घोड-करंह-भल्लुया । सीह-सरह-गंडया ।
वग्घ-ससय-चित्तया । एवँ बहु-चउप्पया ।
कंक-कुरर-मोरया । हंस-वलय-चउरया ।
घूय-सरढ-काउला । कोडि - पूस - कोइला
कुम्म-मयर-गोहया । गाझ-झसय-रोहया ।
जीव सयल जाणिया । तीएँ पुरउ आणिया ।..
कडिवद्ध-चल-चीरिया-चिंघ-जालाइँ । कर-धरिय-विप्फुरिय-कत्तिय-कवालाइँ ।
पायडिय-णिय-गुरुकमारूढ-लिंगाइँ । कुल-घोसमय चम्म-पच्छाइ अंगाइँ ।
मुद्दा विसेसेण दूरं णमंताइँ । पय-घग्घरोलीहिँ घव-घव-घवंताइँ ।
कह-कह-कहंताइँ सवियार-वेसाइँ । मुक्कट्ट हासाइँ झंपडिय-केसाइँ ।
जहिँ विविह-भेयाइँ कउलाइँ मिलियाइँ । कीलंति ढड्ढरइँ अट्ठंग-वलियाइँ ।
जहिँ करड-पटहाइँ वज्जंति वज्जाइँ । इट्ठाइँ मिट्ठाइँ पिज्जंति मज्जाइँ
छिज्जंति सीसाइँ णिवडंति भीसाइँ । रस-वस-विमीसाइँ खज्जंति माँसाइँ ।
गिज्जंति गेयाइँ चामुंड-चंडाइँ । गहिऊण तुंडेण रुंडस्स खंडाइँ

[1] आकाशगामिता

तोँहि खेचरत्व हों करौं वावु । परमोपदेश यदि निर्विकल्प ।
　　हे हे निजकुल-कुवलय-मृगांक । दुर्वार-वैरि-वारन-अशंक ।
मति सुनिहो निज-परिवार-वचन । निःशंके लब्भै गगन-गमन ।
　　यदि देवि पूजु आगमे उक्त । यदि युगल-युगल-जीवेहिँ युक्त ।
नभचर-थलचर-जलचर अनेक । पशु-पक्षि-मिथुन वहु-वर्णभेद ।
　　यदि नर-मिथुनुल्लो चयव[1]-पूर्ण । देवी-मंडप तुहुँ करहि पूर्ण ।
तुहुँ ऐस करंतह वलि-विधान । हो नृप मित्र ! चंडी-समान ।
　　तव तोहिँ होइ खेचरी-शक्ति । विद्याधर सेवहिँ अतुल-शक्ति ।
तव सैहगे वसै जयश्री सछात् । अमरत्व होइ तिमि अजर-काय ।"......
छेरि-मिथुन-शूकरा । रोज[1]-हरिन-कुंजरा ।
　　वाल-वृषभ-रासभा । मेष-महिष-गोसहा ।
घोड-करभ-भल्लुआ । सिह-शरभ-मैंडआ ।
　　वाघ-शशक-चित्तआ । एहि विध चतुष्पदा ।
कंक-कुरर-मोरआ । हंस-वलक-चतुरका ।
　　धून-शरट-काउना । कोटि-धून-कोइला ।
कूर्म-मकर-गोहआ । गाभ-झपक-रोहआ ।
　　जीव सकल जानिया । तेहिँ संमुख आनिया ।...
फटिकल-चल-नौरिया-निन्ह-जालाइँ । कर घलिय विस्फुरित-कृतिक-कपालाइँ ।
प्रागटिय निज गुरु-प्रमान्ड लिगाइँ । कुल-घोष-मद-नर्म प्रच्छादि अंगाइँ ।
मुद्रा-विशेषेहिँ दूरं नमंताइँ । पद-घर्घरीलीहिँ घव-घव-घवंताइँ ।
　　कह-कह-कहंताइँ सविकार-वेषाइँ । मुक्त-दृहासाइँ भंजिय केसाइँ ।
जहँ विविध-भेदाइँ कौलाइँ मिलिताइँ । भीजंति टक्कइँ अष्टांग-चलियाइँ ।
　　जहँ करड-डक्काइँ वाजंति वाजाइँ । रुण्डाइँ निरुण्डाइँ पीवंति मद्याइँ
रिनन्त गीताइँ निरुज्जंति भोपाइँ । रन-रन्न-मिनिभाइँ गाजंत मांसाइँ ।
　　गीलंत गीताइँ चामुंड-नजाइँ । गनिवाउ नर्देहिँ मत्त संचाइँ

[1] गो-रोज (नीलगाय)

दुष्प्रेक्ष्य-रक्ताक्ष-विच्छोभ-दायिनिउ । नाचंति योगिनिउ शाकिनिउ डाइनिउ ।
पशु-रुधिर-जल-सिक्त-प्रांगण-प्रदेशेहिं । पशु-दीर्घजिह्वा-दलार्चन-विशेषेहिं ।
पशु-अस्थि-कृत-पिष्ट-रंगावलिल्लंहि । पशु-तैल-प्रज्वलित-दीपक-द्युतिल्लंहि ।. . .

—जसहर-चरिउ (पृ० ६-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

द्विपदी । धूली-धूसरेहिं वर-मुक्त-शरेहिं तेंहि मुरारिहीं ।
क्रीडा-रस-वशेहिं गोपालक-गोपी-हृदय-हारिहीं ॥
रंगंतेहिं रमंत-रमते । पंथअ धरिउ भ्रमत अनंते ।
मंदीरउ[1] तोडिय आ-वट्टिउँ । अर्ध-विलोलिय दधिय पलोट्टिउँ ।
कोइ गोपि गोविंदहं लागी । "इनहिं हमारी मंथनि भाँगी ।
एतहं मोल देउ आलिंगन । ना तो न आवहु मम आँगन ।"
कोइहु गोपिहि पांडुर चोली । हरि तनु तेंही जायउ काली ।
मूढ जलेहिं काइँ प्रक्षालै । निज-जडत्व सखियन देखावै ।
स्तन्य-रसि-स्थिर छायावतउ । मातहिं समुख परिधावंतउ ।
महिष-शृंगहू हरिहीं धरियउ । न कर-निबंधनाउ नीसरियउ ।
दोहहु दोहन-हाथ समीरै । मुदि मुदि माधव क्रीडिउ पूरै ।
कतहूँ आँगन-भवन-लुब्धउ । बाल-वत्स बालेहिं निरुद्धउ ।
गुंजा-गुच्छक-रचित प्रयोगें । मेल्लाविउ दु.खेहिं यशोदें ।
कतहूँ नैनू-पिंड निरेखेंउ । कृष्णें कंसहु जनु यश भक्षेउ ।
घत्ता । प्रसरित करतलेहिं शब्दंतिहिं शुचि-सुखकारिणिहीं ।
भद्रिइ निकट स्त्री धरइ न लागै नारिहीं ॥६॥

—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

(२) पूतना-लीला

जाणिइ अरिवरि, ता तहिँ अवसरि । कंसाएसें, माया-वेसें ।
वल मायाविणि, धाइय जोइणि । वच्छर-वाउलु, गय तं गोउलु ।
जयसिरि-तण्हहु, णव-महु कण्हहु । पासि पवण्णी, झत्ति णिसण्णी ।
पभणइ पूयण, "हे महुसूयण । पिय-गरुडद्धय, आउ थणद्धय ।
दुद्ध-रसिल्लउ, पियहि थणुल्लउ ।" तं आयण्णिवि[1], चंगउ मण्णिवि ।
चुय-पय-पंडुरि, वयणु पयोहरि । हरिणा णिहियउँ, राहुं गहियउँ ।
णं ससि-मंडलु, सोहइ थणयलु । सुरहिय परिमलु, णं णीलुप्पलु ।
सिय-कलसुप्परि, विंभिउ मणि हरि । कडुएँ खीरें, जाणिय वीरें ।
"जणणि ण मेरी, विप्पियगारी । जीविय-हारिणि, रक्खसि वइरिणि ।
अज्जु'जि मारमि, पलउ समारमि ।" इय चिंतंतें, रोसु वहंतें ।
माण महंतें, भिउडि करंते । लच्छीकंतें, देवि अणंतें ।
दंतहिँ पीडिय मुट्ठिइ ताडिय । दिट्ठिइ तज्जिय, थामें णिज्जिय ।
अणुवि ण मुक्की, णहहिँ विलुक्की । खलहि रसंतहि, सुण्णु हसंतहि ।
भीमें वाले, कयकल्लोलें । लोहिउँ सोसिउँ, पलु आकरिसिउँ ।
दाणव-सारी, भणइ भडारी । "हिय-रुहिरासव, मुइ मुइ केसव ।
णंदाणंदण, मेल्लि जणद्दण । कंसु ण सेवमि, रोसुण दावमि ।
जहिँ तुहुँ अच्छहि, कील-समिच्छहि । तहिँ णउ पइसमि, छलु ण गवेसमि ।"
घत्ता । इय रुयंति कलुणु कह , कहव गोविंदें मुक्की ।
गय देवय कहिँमि, पणु णंद-णिवासि ण ढुक्की ॥९॥

(३) ओखल-बंधन

दुवइ । वर-काहलिय-वंस-रव-वहिरए, गाइय गेय-रस-सए ।
रोमंयंत - थक्क - गो - महिसि - उल - सोहिय - पएसए ॥

---

[1] सुन कर

(२) पूतना-लीला

जानिय अरिवर, सो तेहि अवसर। कंसादेशें, मायावेषें।
बल-मायाविनि, धाइय जोगिनि। वत्सर बावल, गउ सो गोकुल।
जयश्री-तृष्णहँ, नवमधु कृष्णहँ। पास प्रवर्णी, झट्ट निषण्णी।
प्रभनै पूतन, "हे मधुसूदन! प्रिय गरुडध्वज, आउ थनध्वज।
दूध-रसिल्लउ, पियहु स्तनुल्लउ।".. सो आकर्णिय, चंगा मानिय।
चुव-पय-पांडुर, वदन-पयोधर। हरिहीं निहितउ, राहुँहि गहियउ।
जनु शशि-मंडल, सोहै स्तनतल। सुरभित परिमल, जनु नीलोत्पल।
सित-कलशोपरि, विस्मेउ मनें हरि। कडुये क्षीरें, जानिय वीरें।
जननि न मेरी, विप्रियकारी। जीवित-हारिणि, राक्षसि वैरिणि।
आजुहि मारौं, प्रलय समारौं।" इमि चिंतंता, रोष वहंता।
मान महंता, भृकुटि करंता। लक्ष्मीकंता, देव अनंता।
दाँतहिं पीडिय, मुट्ठिहिं ताडिय। दृष्टिहिं तर्जिय, स्यामें[1] जीतिय।
भनहु न मुक्की[2], नभहिं वि-लुक्की। खलहिं रसंतहिं, शून्य हसंतहिं।
भीमा बाला, किउ कल्लोला। लोहिउ शोषेंउ, बल आकर्षेउ।
दानव सारी, भनै भटारी। "हिय-रुधिरासव, मुइ मुइ केशव।
नंदानंदन, छोडु जनार्दन। कंस न सेवौं, रोष न देवौं।
जहँ तुहँ आछहि[3], क्रीडा-इच्छहि। तहँ ना पइसौं, छल न गवेषौं।"
घत्ता। इमि रोवंति करुण कथ, कहव गोविंदें मुक्की[4]।
गइ देवत कहेंहि, पुनि नंद-निवास न ढुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बंधन

द्विपदी। वर-काहनिय-वंगि-रव-वधिरए, गाइय गीत-रस-रए।
रोमंथंत थाक[5] गो-माहिषि-कुल-शोभित-प्रदेशए॥

---

[1] बलसे [2] छूटी [3] रहो [4] छोड़ी [5] रहे

अण्णहिँ पुणु दिणि, तहिँ णिय-पंगणि । जण-मणहारें, रमइ भुरारें ।
घोट्टइ खीरं, लोट्टइ णीरं । भंजइ कुंभं, पेल्लइ डिंभं ।
छंडइ महियं, चक्खइ दहियं । कड्ढइ णिच्चि, धरइ नच्चि ।
इच्छइ केलि, करइ दुवालि । तहिँ अवसरए, कोलाणिरए ।....
दुवइ । मरु-हय-महीरुहेहिँ पहि चप्पिउ गद्दह-तुरय तूरिओ ।
अवरु उड्हलम्मि पइँ वद्धउ जाणहुँ बाल् मारिओ ॥
धाइय तासु जसोय विसंठुल । कर-यल-जुयल-पिहिय-चल-थण-यल ।
बद्धउ उक्खलु मेल्लिवि घल्लिउ । महु जीविएण जियहि सिसु बोल्लिउ ।
फणि-णर-सुरहँमि अइ सइयउ । हरि-मुहि चुंविवि कडियल लइयउ ।
किं खरेण किं तुरएँ दट्ठउ । मायइ सयलु अंगु परिमट्ठउँ ।........

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गईं

महुरापुरि घरि घरि वण्णिज्जइ । णंद-गोट्ठि पत्थिवहु कहिज्जइ ।
तहु देवइ मायरि उक्कंठिय । पुत्तसिणेहेँ खणु विणु सठिय ।
गो मुह-कूवउ सहउ चउत्थी । लोयहु मिसु मंडिवि वीसत्थी ।
चलिय णंद-गोँउलि सहुँ णाहेँ । सहुँ रोहिणि-सुएण चंदाहेँ ।
घत्ता । मायइ महु-महणु वहु गोवहँ मज्झि णिरिक्खिउ ।
वय-परिवेठियउ कलहंसु जेम ओलक्खिउ ॥१३॥...
भायउ सिसु कीला-रय-रंगिउ । हलहरेण दिट्ठिइ आलिंगिउ ।
भुय-जुयलउँ पसरंतु णिरुद्धउँ । जायउँ हरिसे अंगु सिणिद्धउँ
चिंतिवि तेण कंस-पेसुण्णउँ । आलिंगणु देंतेण ण दिण्णउँ ।
गाढ़-सिणेह-वसेण णवंतइ । आणाविय रसोइ गुणवंतइ
गंध-फुल्ल-दीवउँ संजोइउ । भोयणु मिट्ठउँ मायइ ढोइउँ ।
अल्लय-दल-दहि-ओल्लिय-कूरहिँ । मंडय-पूरणेहिँ घियपूरे[१]हिँ
णाणा-भक्ख-विसेसहिँ जुत्तउँ । सरसु भावि भूणाहेँ भुत्तउँ ।....

---

[१] घेवर

(५) गोवर्धन-धारण

जलु गलइ, झलझलइ। दरि भरइ, सरि सरइ।
तडयडइ, तडि पडइ। गिरि फुडइ, सिहि णडइ।
मरु चलइ, तरु घुलइ। जलु थलु'वि, गोउलु'वि।
णिरु रसिउ, भय-तसिउ। थरहरइ, किरमरइ।
जाव ताव, थिर भाव–। धीरेण, वीरेण।
सर - लच्छि - जयलच्छि - तण्हेण, कण्हेण।
सुर थुइण, भुय-जुइण। वित्थरिउ, उद्धरिउ।
महिहरउ, दिहियरउ। तम जडिउँ, पायडिउँ।
महि-विवरु, फणि-णियरु। फुप्फुवइ, विसु मुयइ।
परिघुलइ, चलवलइ। तरुणाइं, हरिणाइँ।
तट्ठाइँ, णट्ठाइँ। कायरइँ, वणयरइँ।
हिंसाल - चंडाल - चंडाइँ, कंडाइँ
तावसइँ, परवसइँ। दरियाइँ जरियाइँ।
घत्ता। गो-वद्धण-परेण गो-गोमि-णिभारु व जोइउ।
गिरि गोवद्धणउ गोवद्धणेण उच्चाइयउ ॥१६॥ . . .

(६) कालिय-दमन

वइरि जसोयहि पुत्तु, इय कंसें मणि परिछिण्णउ।
कमलाहरणु रउद्दु तें, णंदहु पेसणु दिण्णउँ ॥ ध्रुवक
सिहि-चुरुलि-भूउ, गउ राय-दूउ। तें भणिउ णंदु, मा होहि मंदु।
जहिँ गरल-गाहि, णिवसइ महाहि। जउणा सरंतु, तं तुहुँ तुर
जायवि जवेण, कय-जण-रवेण। आणहि वराइँ, इन्दीवराइँ।
ता णंदु कणइ, सिर-कमलु धुणइ। जहिँ दीण-सरणु, तहिँ ढुक्कु' म

' प्रविष्ट हुआ

(५) गोवर्धन-धारण

जल गलैं झलझलैं। दरि भरैं, सरि सरैं।
तड़तड़ै तड़ि पड़ै। गिरि फुटे शिखि नटै।
मरु चलै तरु घुरैं। जल-थलहु, गोकुलहु।
अतिरसित भय-त्रसित। थरथरैं किलमिलैं।
जाव ताव स्थिर भाव, धीरेहिं वीरेहिं।
सर - लक्ष्मि - जयलक्ष्मि - तृष्णेहिं कृष्णेहिं।
सुर-स्तुतिहिं भुजयुगहिं, विस्तारेउ उद्धारेउ।
महिधरउ दिगिचरउ, तम जडेँउ प्राकटेँउ।
महि-विवर फणि-निकर, फुफ्फुवैं विष मुचैं।
परि-घुरैँ चलवलैँ, तरुणाइँ हरिनाइँ।
तत्-स्याइँ नष्टाइँ, कातरइँ वनचरइँ।
पडियाइँ रडियाइँ, क्षिप्ताइँ त्यक्ताइँ। हिंसाल-चंडाल-चंडाइँ कॉण्डाइँ।
तापसैँ परवशैँ, दारिताइँ जीर्णाइँ।
घत्ता। गो-वर्धन परेहि गो-गोपिणिं[१] भार इव-जोयउ।
गिरि गोवर्धनउ गोवर्धनेहिं ऊँचाइयउ ॥६॥

(६) कालिय-दमन

वैरि यशोदापुत्र, एँहु कंसह मनेँ परि-आइयउ।
कमलाहरण रउद्र तैँ, नंदह प्रेषण दीनेऊ ॥ ध्रुवक ॥
शिखि चुरुकि भूत, गउ राजदूत। सो भनेउ "नंद ! ना होहु मंद।
जहँ गरले-ग्राहि, निवसै महाहि। जमुना सरंत तहँ तुहुँ तुरंत।
जायवि जवेहिं कृत-जन-रवेहिं। आनहि वराइँ इन्दीवराइँ।
तव नंद क्रँदै, शिरकमल धुनै। जहँ दीन शरण, तहँ ढुक्कु मरन।

---

[१] गोपाल

जहिँ राउ हणइ, अण्णाउ कुणइ। कि धरइ अण्णु, तहिँ विगय-मण्णु।
हउँ काइँ करमि, लइ जामि मरमि। फणि मुट्ठु चंदु, तं कमल-संडु।
को करिण छिवइ, को भेँप धिवइ। धगधगधगंति, हुयवहि जलंति।
उप्पण्ण-सोय, कंदइ जसोय। "महु एक्कु पुत्तु, अहिमुहि णिहित्त।
मा मरउ बालु, मइँ गिलउँ कालु।" इय जा तसंति, दीहर ससंति।
पियरइँ रसंति, ता विहिय संति। अलिकाय-कंति, रणवीरु मंति।
पभणइ उविंदु[1], "णिहणवि फणिंदु। णलिणाइँ हरमि, जलकील करमि।"

घत्ता। इय भाणिवि कण्हु संप्राइउ जउणा सरवरु।
उब्भड-फड-वियडंगु यम-पासु वाव धाइउ विसहरु ॥१॥

णं कंस-कोव-हुयवहहु धूमु। णं णइ-तरुणी-कडि-सुत्त-दाम।
णं ताहि जि केरउ जल-तरंगु। णं कालमेहु दीही कयंगु।
सिय-दाढा-विज्जुलियहिँ फुरंतु। चल-जमल-जीहु विस-लव मुयंतु।
हरि सउहुँ फडंगुलि रयण णक्खु। पसरिउ जमेण करु घाय-दक्खु।
णं दंड-दाणु सर-सिरिइ मुक्कु। गइ-वेयउ कण्हहु पासि ढुक्कु।
फणि फुप्फुयंतु चल जुज्भ-लोलु। णं तिमिरहु मिलियउ तिमिर-लोलु।
दीसइ हरि दहि भसलउल-कालु। णं अंजण-गिरिवरि णव-तमालु।
तणु-कंति-परज्जिय-घण-तमासु। णक्खइँ फुरंति पुरिसोत्तमासु।
सिरि माणिक्कइँ विसहर-वरासु। दीसंतइँ देंति 'व देहणासु।
तंवेहिँ कुसुम-मणि-यरहिँ तंवु। णं सरि वेल्लिहि पल्लउ पलंवु
अहि घुलिउ अंगि महुसूयणासु। णं कत्थूरी-रेहा-विलासु।

घंत्ता। विसहर-घोलिर-देहु, सरि भमंतु रेहइ हरि।
कच्छालंकिउ तुंगु, णं मयमत्तउ दिस-करि ॥२॥....

---

[1] विष्णु, कृष्ण

जहँ राव हनै, अन्याय करै। की धरै अन्य तहँ विगत-मन्यु।
हौँ काहँ करौँ, लेइँ जाउँ मरौँ। फणि अतिव चंड, सो कमल-षंड।
को करेँहिँ छुवै, को झंप देँवै। धगधगधगंत हुतवह ज्वलंत।
उत्पन्न-शोक क्रंदै यशोद। "मम एकपुत्र अहिमुख नि-क्षिप्त।
ना मरउ बाल, मैँ गिरौँ काल।" इमि त्रसंति दीरघ श्वसंति।
पियरहिँ रसंति तो विहित-शांति। अलिकाय-कांति रणधीर मंति।
प्रभनै उपेन्द्र निहनव फणींद्र। नलिनाइँ हरौँ, जलक्रीड करौँ।

घत्ता। इमि भनिय कृष्ण (तहँ) गयऊ यमुना-सरिवर।
उद्भट-फण-विकटांग यमपाश इव धायेँउ विषधर ॥१॥

जनु कंस-कोप-हुतवहह धूम। जनु नदि-तरुणी-कटि-सूत्रदाम।
जनु ताहिय केरउ जलतरंग। जनु कालमेघ दीर्घीकृतरांग।
सित-दाढा विज्जुलियहिँ फुरंत। चल-यम-जीभ विषलव मुचंत।
हरि सँमुहँ फणांगुलि-रतन-नक्ख। पसरेँउ जमहीँ कर घात-दक्ष।
जनु दंडदान सर-श्रीहि मुक्क। जा वेगहिँ कृष्णहँ पास ढुक्क।
फण फुफ्फुवंत चल युद्धलोल। जनु तिमिरहँ मिलियौ तिमिर लोल।
दीसै हरि तहँ भसल'-कुल-काल। जनु अंजन-गिरिवरेँ नवत-माल।
तनु-कांति-पराजिय घन-त मास। नक्खैँ फुरंति पुरुपोत्तमास...।
गिर माणिक्यहिँ विषधर-वराहँ। दीसंतै देँति'व देह-नाश।
ताम्रेहिँ कुसुम-मणि-करहिँ ताम्र। जनु सरेँ वेल्लिहि प्रलंव
अहि पूरेँउ अंग मधुसूदनाहँ। जनु कस्तूरी-रोवा-विलास।

घत्ता। विषधर-घोलिर देह, शिर भ्रमंत राजै हरि।
कक्षालंकृत तुंग-जनु मदमत्तउ दिग-करि ॥२॥....

(७) कृष्ण-महिमा

कण्हेण समाणउ कोवि पुत्तु । सजणउ जणणि विद्दविय-गत्तु ।
दुर्धर-भर-रण-धुर-दिण्ण-खंध । उद्धरिय जेण णिवउत्त वंसु ।
भंजिवि नियलइँ गय-वर-गईह । सहुँ माणिणीउ णंमावईह ।
कइवय दियहहिँ रइ-कीलिरीहिँ । बोल्लाविउ पहु गोवालिणीहिँ ।

७–कविका संदेश

"संगुत्तउँ पइँ माहव सुहिल्लु । कालिंदितीरि मेरउँ कडिल्लु ।
एवहिँ महुरा-कामिणिहिँ रत्तु । महुँ उप्परि दीसहि अथिर नित्तु ।"
क'वि भणइ "दहिउ मंथंतियाइ । तुहुँ मइँ धरियउ उब्भंतियाइ ।
लवणीय-लित्तु करु तुज्झ लग्गु । क'वि भणइ पलोयइ मज्झु मग्गु ।
"तुहुँ णिसि णारायण सुयहिँ णाहिँ । आलिंगिउ अवरहिँ गोवियाहिँ ।
सो सुयरहि किं ण पउण्ण-बंधु । संकेय-कुडंगुड्डीणु रिद्धु ।"
घत्ता । कावि भणइ "णासंतु उद्धरिवि खीर-भिंगारउ ।
किं वीसरियउ अज्जु जं मइँ सित्तु भडारउ ॥१०॥
इय गोवी-यण-वयणाइँ सुणंतु । कीलइ परमेसरु दरहसंतु ।
संभासिउ मेल्लिवि गव्व-भाउ । "इह जम्महु महुँ तुहुँ ताय ताउ ।
परिपालिउ थण-थण्णेण[1] जाइ । वीसरमि ण खणु मि जसोय माइ ।......
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८९)

(१) गरीवी

वक्कल-णिवसणु कंदर-मंदिरु । वण-हल-भोयणु वर तं सुंदरु ।
वर दालिद्दु सरीरहु दंडणु । णउ पुरिसह अहिमाण-विहंडणु ।
पर-पय-रय-धूसर किंकर-सरि । असुहाविणि णं पाउस-सिरि-हरि ।
णिव-पडिहार-दंड-संघट्टणु । को विसहइ केरण उर-लोट्टणु ।

(७) कृष्ण-महिमा

कृष्णेहिँ समानो कोइ पुत्र। संजनेँउ जननि विद्रविय शत्रु।
दुर्धर-भर-रणधुर दीनु खंघ। उद्धरिय जेहिँ निपतत वंघु।
भंजवि नियरैँ गजवर-गईह। सँम्मननीहि पद्मावतीह।
कतिपय-दिवसैँ रति क्रीडिरीहिँ। वोलावेउ प्रभु गोपालिनीहि।

७—कविका संदेश

"संगुप्तउ तैँ माधव सुहिल्ल। कालंदि तीरेँ मेरउ करिल्ल[1]।
अब्बहिँ मथुरा कामिनिहिँ रक्त। मम ऊपर दीसै अथिर-चित्त।"
कोँइ भनै "दही मंथंतियाई। तुहुँ मोहिँ धरियउ उद्भ्रंतियाइ।
नवनीत-लिप्त कर तोहिँ लाग।" कोँइ भनै विलोकै मध्य मार्ग।
"तुहुँ निशि नारायण सुतहि नाहिँ। आलिगेँउ अपरहिँ गोपियाहिँ।
सो-सुकरहि की न प्रद्युम्न-वंधु। संकेत-कुडंग[2]-उड्डीन रिंछ[3]।
घत्ता। कोइ भनै "नाशत उद्धरिव क्षीर-भृंगारउ।
की विसरियउ आज, जो मैँ सिंचु भटारउ[4]॥१०॥
एहु गोपीजन वचनइँ सुनंत। क्रीडै परमेश्वर दर हसंत।
संभापेँउ मेलिय गर्वभाव। "ऍहि जन्महुँ मम तव ताप ताउ।
परिपालेँउ स्तन-स्तन्येहिँ जाहि। विसरौँ न क्षणहुँ यशोद माइ।".......
—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(७) गरीवी

वल्कल निवसन कंदर मंदिर। वन-फल भोजन वर सो सुंदर।
वर दारिद्र शरीरह दंडन। नहिँ पुरुषह अभिमान-विखंडन।
परपद-रज-धूसर-किंकर-स्वर। अ-सोँहावनि जनु पावस-श्री-घर।
नृप-प्रतिहार-दंड-संघट्टन। को विसहै करेहिँ उर-लोट्टन

---

[1] उत्सव उत्कर्ष　[2] एक खेल　[3] कल्लोलना　[4] भट्टारक

को जोयइ मुंहु भूभंगालउ। कि हरिगिउ कि रोगें कालउ।
पहु आसणु लहइ धिट्ठत्तणु। पविमल-दसणु णिण्णेहत्तणु।
मोणें जडु भडु खंतिइ कायरु। अज्जवु वनु पडियउ पलाविरु।
—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(२) नीति-वचन

जो रसंतु वरिसइ सो णव-घणु। ज वकउं दीसइ तं गुरुधणु।
जो गिरि दलइ चलइ माविज्जुल। चंचरीय-चुंबिय कोमलदल।
—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे वट्टं वहिरे गीयं। ऊसर-छेत्ते ववियं वीयं।
संढे[१] लग्गं तरुणि-कडक्खं। लवण-विहीणं विविहं भक्खं।
अण्णाणें तिव्वं तव चरणं। वल-सामत्थ-विहीणे सरणं।
असमाहिल्ले सल्लेहणयं। णिद्धण-मणुए णव-जोव्वणयं।
णिब्भोइल्ले[२] संचिय-दविणं। णिण्णेहे वर-माणिणि-रमणं।
अविय अपत्ते दिण्णं दाणं। मोह-रयंधे धम्म-क्खाणं।
—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहइ जलहरु सुर-धणु-छायएँ। सोहइ णर-वरु सच्चएँ वायएँ।
सोहइ कइ-यणु कहएँ सुबद्धएँ। सोहइ साहउ विज्जएँ सिद्धएँ।
सोहइ मुणि-वरिंदु मण-सुद्धिएँ। सोहइ महि-वइ णिम्मल-बुद्धिएँ।
सोहइ मंति मंतविहि दिट्ठिएँ। सोहइ किंकरु असि-वर-लट्ठिएँ।
सोहइ पाउसु सास-समिद्धएँ। सोहइ विहउ स-परियण-रिद्धिएँ।
सोहइ माणुसु गुण-संपत्तिएँ। सोहइ कज्जारंभु समत्तिएँ।
सोहइ महिरुह कुसुमिय-साहए। सोहइ सुहडु सुपोरिस-राहएँ।
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

को जोवै मुख भ्रूभंगलऊ। की हर्षेउ की रोपे कालउ।
प्रभु आसन्न लहै धृष्टत्त्वन। प्रविरल दर्शन निःस्नेहत्वन।
मौने जड भट क्षंतिइँ कायर। आर्जव पशु पंडितउ पलायिर।
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८६)

(२) नीति-वचन

जो रसंत वरिसइ सो नवघन। जो वंकउ दीसै सो सुरधनु।
जो गिरि दलै चलै सो विज्जुल। चंचरीक-चुंवित कोमल-दल।..
—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे वाटउ वहिरे गीत। ऊसर खेत्ते वीजव वीज।
पंढे लग्गा तरुणि-कटाक्ष। लवण-विहीना विविधा भक्ष।
अज्ञाने तीव्रं तपचरनं। वल-सामर्थ्य-विहीने शरणं।
असमाधिल्ले सल्लेखनय[1]। निर्धनमनुजे नवयौवनय।
निर्भोगिल्ले संचित-द्रविणं। निर्नेहे वर-मानिनि-रमणं।
अपि अपात्रे दिन्नं दानं। मोह-रजांधे धर्माख्यानं।
—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहै जलधर सुरधनु-छायएँ। सोहै नरवर साँचहि वाचएँ।
सोहै कवि-जन कथइ सुवद्धइ। सोहै साधक विद्यहिँ सिद्धए।
सोहै मुनिवरेन्द्र मन-शुद्धिएँ। सोहै महिपति निर्मल-वुद्धिएँ।
सोहै मंत्रि मंत्रविधि दृष्टिएँ। सोहै किंकर असिवर-लट्ठिएँ।
सोहै पावस सस्य-समृद्धिएँ। सोहै विभव स्वपरिजन-ऋद्धिएँ।
सोहै मानुप गुण-संपत्तिएँ। सोहै कार्यारंभ समाप्तिएँ।
सोहै महिरुह कुसुमित-शाखैं। सोहै सुभट सु-पौरुप-राधएँ।
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(४) दर्शन-वेदान्त

"कि खण-विणासि कि णिच्चु एक्कु । कि देहत्थुवि कम्मेण मुक्कु ।
कि णिच्चेयणु चेयण-सरूउ । कि चउभूयहँ संजोय-भूउ ।
कि णिग्गुणु णिक्कलु णिक्कियारि । कि कम्महँ कारउ कि अकारि ।
ईसर-वेसण कि रय-वसेण । संसरइ देव ! संसारिएण ।
परमाणु-मेत्तु कि सव्वगामि । अण्णउ कहेँउ भणु भुवण-सामि ।"
.... । "जइ खण-विणासि अप्पउ णिरुत्त ।
तो कि जाणइ णिहियउँ णिहाणु । वरिसहँ सएवि णिहिदव्वठाणु ।
णिच्चहु किर कहिँ उप्पत्ति मच्चु । जंपइ जणु रइ-लंपडु, असच्चु ।
जइ एक्कु जि तइ को सग्गि सोक्खु । अणुहुंजइ णरइ महंतु दुक्खु ।
जइ भूय-वियारु भणंति भाउ । तो फिर कि लब्भइ मइ-विहाव ।
णिक्किरियहु कहिँ करणइँ हवंति । कहि पयइ-वंधु जुत्ति'वि थवंति ।
जइ सिव-वसु हिंडइ भूय-सत्थु । तो कम्म-कंडु सयलु'वि णिरत्थु ।
घत्ता । जइ अणुमेत्तउ जीवो एहउ । तो सज्जीवउ किह करि देहउ ॥७॥

—उत्तरपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

माणुस-सरीरु दुह-पोट्टलउ । धायेउ वायेउ अइ-विट्टलउ ।
वासिउ वासिउ णउ सुरहि मलु । पोसिउ पोसिउ णउ धरइ वलु ।
तोसिउ तोसिउ णउ अप्पणउ । मोसिउ मोसिउ धरभायणउ ।
भूसिउ भुसिउ ण सुहावणउ । मंडिउ मंडिउ भीसावणउ ।
वोल्लिउ वोल्लिउ दुक्खावणउ । चच्चिउ चच्चिउ चिलिसावणउ ।
मंतिउ मंतिउ मरणहोँ तपइ । दिक्खिउ दिक्खिउ साहुहुँ भसइ ।
सिक्खिउ सिक्खिउ 'वि ण गुणि रमइ । दुक्खिउ दुक्खिउ 'वि ण उवसमइ ।
वारिउ वारिउ 'वि पाउ करइ । पेरिउ पेरिउ 'वि ण धम्मि चरइ ।

(४) दर्शन-वेदान्त

ण-विनाशि की नित्य एक । की देहस्थउ कर्महिं मुक्त ।
की निश्चेतन चेतन-स्वरूप । की चतु-भूतहँ संयोग-भूत ।
र्गुण निष्कल निर्विकार । की कर्महँ कारक की अ-कार ।
ईश्वर-वसेहिँ की रज-वशेहिँ । संसरँ देव ! संसारिकेहिँ ।
णु-मात्र की सर्वगामि । आत्मा कहेँउ, भनु भुवन-स्वामि ?"
. . . . । "यदि क्षण-विनाशि आत्मा कहिय ।
की जानै निहितउँ निवान । वर्षह शतेउ निधि द्रव्य थान ।
नित्यहु फुर कहँ उत्पत्ति-मृत्यु । जल्पै यदि रज-लंपट असत्य ।
यदि एकै ता को सर्गें सौख्य । अनुभोगै नरकें महंत दुःख ।
दि भूत-विकार भनंत भाव । तो फुर की लब्भै मति-विभाव ।
निष्क्रियहू कहँ करणेहि[१] भवंति । कहँ प्रजावंधु युक्तिउ थपंति ।
दि शिव-वश हिँडै भूत-सत्त्य । तो कर्मकांड सकलहु निरर्थ ।
घत्ता । यदि अणुमात्रे जीव एही । तो सज्जीवउ कहँ करें देही ।।७।।
—आदिपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

मानुष-शरीर दुख-पोट्टलऊ । धोयो धोयो अति विट्टलऊ[१] ।
वासेँउ वासेँउ ना सुरभि मलू । पोसेँउ पोसेँउ ना धरै वलू ।
तोपेउ तोपेउ ना आपनऊ । मोपेँउ मोपेँउ धर भायनऊ ।
भूषेउ भूषेउ न सोँहावनऊ । मंडेउ मंडेउ भीषावनऊ ।
बोलेँउ बोलेँउ दुःखावनऊ । चर्चेँउ चर्चेँउ चिरियावनऊ ।
मंत्रेँउ मंत्रेँउ मरणहँ भसई । दीक्षेँउ दीक्षेँउ साधुहिँ भषई
शिक्षेँउ शिक्षेँउ न गुणे रमई । दुःखेँउ दुःखेँउ ना उपशमई ।
वारेँउ वारेँउ हू पाप करै । प्रेरेँउ प्रेरेँउ हु न धर्म चरै

अब्भंगिउ[1] अब्भंगिउ फरिसु । कंखिउ कंखिउ आगइ-गंधु ।
मलियउँ मलियउँ वाएँ घुलइ । णिणिउ णिणिउ णिंनि जलइ ।
सोसिउ सोसिउ सिंभि गलइ । पच्छिउ पच्छिउ कट्ठहँ मिलइ ।
चम्मे वद्धु 'वि कालि सडइ । रक्खिउ रक्खिउ जमभुहि पडइ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतेउरु अंतेउरु हणइ । खय-कालहों आयहों किं कुणइ ।
सण्णाहु-कय तहों किं करइ । छत्ते छायहु किं उवयरइ ।
णउ कहिँ मि मरण-दिणे उव्वरइ । चमरगणिलु सासाणिलु धरइ ।
सुहु राय-पट्ट-वंधे वसइ । किं आउ-णिवंधणु णउ ल्हसइ ।
ण रहेहिँ रहिज्जइ जमहु वहु । किं मणुयहँ लग्गउ रज्जगहु ।
होइवि जाइवि सहसत्ति किह । रायत्तणु संझाराउ जिह ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

वाहिल्ल ते मिल्ल ते मूअ ते लल्ल । ते पंगु ते कुंट वहिरंध ते मंट ।
ते काण काणीण धण-हीण ते दीण । दुहरीण वल-खीण ।
णिक्काम णिद्धाम णिच्छाम णिण्णाम । णित्तेय णिप्पाण चंडाल ते पाण ।
ते डोंव कल्लाल मंच्छंधि णीवाल । दाढाल ते कोल ते सीह-सद्दूल ।
ते सिंगि वियराल ते णह-पहराल । ते पक्खि पिंछाल ।
ते सप्प रत्तच्छ मंसासिणो मच्छ । छिंधणइँ रुंधणइँ बंधणइँ वंचणइँ ।
लुंचणइँ खंचणइँ कुंचणइँ लुट्टणइँ । कुट्टणइँ घट्टणइँ वट्टणइँ ।
पउलणइँ पीलणइँ हूलणइँ चालणइँ । तलणाइँ दलणाइँ मलणाइँ गिलणाइँ ।
णिरएसु णरएसु मणुएसु रुक्खेसु । दुक्खाइँ भुंजंति सग्गं कहं जंति ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु[1] द्वीप

घत्ता। णिच्चु जि उच्छवु णिच्च दिहि, णिच्चु जि रागु ताम्बलु णवल्लइ।
भोय-भूमिरुह-माणुसहँ, जं जं दीसइ तं तं भल्लउ।
ण दुज्जणु दूसिय सज्जण-वासु। ण गामु ण सीमु ण रोगु ण सोगु।
ण छिक ण जिंभणु णालसु दिट्ठु। ण णिद्द ण णेत्त-णिमीलणु सुट्ठु।
ण रत्ति ण वासरु घतु ण घम्मु। ण उट्ठ-विओउ ण कुच्छिय कम्मु।
अयालि ण मच्चु ण चिंतु ण दीणु। कयाइ कहिंपि सरीरु ण खीणु।
पुरीस-विसग्गु ण मुत्त-पवाहु। ण लालु ण सिंभु ण पित्ति वि डाहु।
ण रोउ ण सोउ ण सेउ विसाउ। किलेसु ण दासु ण कोइवि राउ।
सुरूव सुलक्खण माणव दिव्व। अगव्व सुभव्व समाण जि सव्व।
सुहाउ विणीसउ सामु सुयंधु। कलेवरि वज्ज समट्ठिय-बंधु।
ति-पल्ल-पमाणु थिराउ-णिबंधु। करीसर केसरि तेविहु बंधु।
ण चोरु ण मारि ण घोरु वसग्गु। अहो कुरु-भूमि निसंसइ सग्गु।
—उत्तरपुराण (पृ० ४०९-१०)

§ २१. शान्तिपा

(कलिकाल-सर्वज्ञ रत्नाकरशान्ति)। काल—१००० ई०
(विग्रहपाल-महीपाल ९६०-८८-१०३८)।

(रहस्यवाद)

(राग रामक्रीं)

सअ-संवेअण-सरूअ विआरे[2] अलक्ख लक्ख ण जाइ।
जे जे उजुवाटे गेला[2] अणण वाटे भइला सोइ॥

---

[1] आर्योंका पूर्वनिवास [2] मैथिली

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु द्वीप

घत्ता। नित्यहिँ उत्सव नित्य देहि, नित्यहि तनु तारुण्य नवल्ल।
भोग-भूमि रुह मानुपहँ, जो जो दीसै सो सो भल्ल।

न दुर्जन-दूषित सज्जन-वास। न खाँस न शोष न रोष न दोष।
न छींक न जम्भा न आलस दृष्ट। न निद्र न नेत्र निमीलन सुप्ट।
न राति न वासर घंद न घाम। न इष्ट-वियोग न कुक्षिय काम।
भयासि न मृत्यु न चिंत न दीन। कदापि कहूँहु शरीर न झीन[1]।
पुरीष-विसर्ग न मूत्रप्रवाह। न लाल न श्लेष्म न पित्तह डाह।
न रोग न शोक न सेतु विषाद। किलेश न दाश न कोउह राज।
सुरूप सुलक्षण मान दिव्य। अगर्व सुभव्य समानहिँ सर्व।
मुखाहं विनीसै श्वास सुगंध। कलेवरें वज्र समस्थिय बंध।
त्रिपल्ल प्रमाण थिरायु-निबंध। करीश्वर केसरि तेहुअउ बंधु।
न चोर न मार न घोर उपसर्ग[2]। अहो कुरु भूमि निसंशय स्वर्ग।

—उत्तरपुराण (पृ० ४०९-१०)

§ २१. शान्तिपा

देश—मगध। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१२), राजगुरु।
कृति—सुखदुःखद्वय-परित्यागदृष्टि।

(रहस्यवाद)

(१५—राग रामक्रीं)

स्वसंवेदन स्वरूप विचारे। अलख लख्यो ना जाई।
जो जो ऋजुवाटे गइला, अन्यवाटे भइला सोई॥

---

[1] क्षीण　　[2] उपद्रव, खुराफात

काअरुअ ण वुज्झिअ मूढहि उजुवाट संसारा।
(महुअरेहि एक्क अन्न गार्जहि कणकधारा।)
माआ मोह समुद्द अन्त वुज्झसि ताहा।
आगे णाव नभेला दीसइ भन्ति न पुच्छसि णाहा॥
सूनापान्तर ऊह न दीसइ, भान्ति न वासने जान्ते।
एपा अट्ठ महासिज्झि सिज्झइ उजुवाटे जाअन्ते॥
वाम दाहिण दो वाटा छाडी शान्ति वोलथेउ संकेलिउ।
घाट ण शुक्क खडतडि ण होइ आँखें वुज्झिअ वाट जाइउ॥१५॥

(२६—राग शवरी)

तुला धुणि धुणि अंसूहि अंशू। अंशू धुणि धुणि णिरवर सेसू।
तउ से हेतुअ ण पाविअइ। सान्ति भणइ किं स भाविअइ॥
तुला धुणि धुणि सुण्णे आहारिउ। पुण लइअ अप्पण चटारिउ।
वहल वढ! दुइ भाग ण दीसअ। शान्ति भणइ वालग्ग ण पइसइ।
काज ण कारण ण एहु जुग्ती। सअ-संवेअण वोलथि' सान्ती॥२६॥
—चर्यापद

§२२. योगीन्दु (जोइंदु)

काल १०००। देश—राजस्थान (?)। कुल—जैन साधु। कृतियाँ—

(१) ज्ञान-समाधि

जो जाया झाणग्गिएँ, कम्म-कलंक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाणमय ते परमप्प णवेवि॥
ते हउँ वंदउँ सिद्ध-गण, अच्छहिँ जे वि हवंत।
परम-समाहि-महग्गियएँ, कम्मि-धणइँ हुणंत।

कायरूप ना बूझै मूढहिँ ऋजु वाटा संसारा।
मधु-करहिं एक भक्ष्य, राजहिं कनकधारा ॥
मायामोह समुद्रहि अन्त न बूझसि थाहा।
आगे (न) नाव नमेला दीसै, भ्रान्तिहिँ पूछसि न नाथा ॥
शून्य-प्रान्तर ऊह न दीसै भ्रान्ति न वासने जाये।
एही अष्ट महासिद्धि सिद्धै, ऋजुवाटेहीँ जाये ॥
बायें दहिन दो बाट छाडी शान्ति वोलेउ संकेरिय।
घाटे न शुल्क खरतरी न होइ, आँखि वुयझिवाट जाइय ॥१५॥

(२६—राग शवरी)

तुला धुनि धुनि रेशहि रेशा। धुनि धुनि निरवर शेपू।
तउ सो हेतु न पाइयइ। शान्ति भनै की मो भवियइ।
तुल धुनि धुनि शून्ये धारेउ। पुनि लेइय आपन चट्टारिउ।
वहुत मूढ़! दुइ भाग न दीसै। शान्ति भनै वालाग्र न पइसै।
कार्य न कारण न एह जुगती। स्वक-संवेदन वोलै शान्ती ॥२६॥

—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

परमात्म-प्रकाश दोहा, योगसार-दोहा[1]।

(१) ज्ञान-समाधि

जे जायेँउ ध्यानाग्नियेहिँ, कर्म-कलंक डहाइ।
नित्य-निरंजन-ज्ञानमय, ते परमात्म नमामि ॥१॥
तिन हीँ वन्दौ सिद्धगण, रहेँ जोउ होवन्त।
परम-समाधि महाग्नियेहिँ, कर्मेन्धनहिँ होमन्त ॥३॥

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित (श्री रायचंद्र जैन-शास्त्र-माला १०, बम्बई १९३०)

णवि पणविवि पंचगुरु, सिरि-जोइंदु-जिणाउ।
भट्टपहायरि विण्णविउ, विमलु करेवि णु भाउ ॥८॥
गउ संसारि वसंतहँ, सामिय काल अणंतु।
पर मइँ किंपि ण पत्तु सुहु, दुक्खुजि पत्तु महंतु ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

तिहुयण-वंदिउ सिद्धि-गउ, हरि-हर झायहिँ जोजि।
लक्ख, अलक्खें धरिवि थिरु, मुणि परमप्पउ सोजि ॥१६॥
णिच्चु णिरंजणु णाणमउ, परमाणंद-सहाउ।
जो एहउ सो संतु सिउ, तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥
जो णिय-भाउ ण परिहरइ, जो पर-भाउ ण लेइ।
जाणइ सयलुवि णिच्चु पर, सो सिउ संतु हवेइ ॥१८॥
जासु ण वण्णु ण गंधु रसु, जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि, णाउ णिरंजणु तासु ॥१९॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ, जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय, सोजि णिरंजणु जाणु ॥२०।
अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु, अत्थि ण हरिसु विसाउ।
अत्थि ण एक्कुवि दोसु जसु, सोजि णिरंजणु भाउ ॥२१॥
जासु ण धारणु धेउ णवि, जासु ण जंतु ण मंतु।
जासु ण मंडलु मुद्द णवि, सो मुणि देउँ अणंतु ॥२२॥

(३) आत्मा

हँउ गोरउ हँउ सामलउ, हँजि विभिण्णउ वण्णु।
हँउ तणु-अंगउँ थूलु हउँ, एहउँ मूढउ मण्णु ॥८०॥
हँउ वरु बंभणु वइसु हँउ, हँउ खत्तिउ हँउ सेसु।
पुरिसु णउंसउ इत्थि हउँ, मण्णइ मूढु विसेसु ॥८१।
अप्पा गोरउ किण्हु णवि, अप्पा रत्त ण होइ।
अप्पा सुहुमु वि थूलु णवि, णाणिउ जाणें जोइ ॥८६

भावहिं प्रणवों पंचगुरु, श्री योगीन्दु जिनाव।
भट्टप्रभाकर वीनवेंउ, निर्मल करिके भाव ॥८॥
उ संसार वसंतहीं, स्वामी काल अनन्त।
पर मैं किछु पायउँ न सुख, दुःखइ पायउँ महन्त ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

त्रिभुवन-वंदित सिद्धिगत, हरि-हर ध्यावें जेहि।
लक्ष्य अलक्ष्ये धरिवि थिर, मुनि परमात्मा सोइ ॥१६॥
नित्य निरंजन ज्ञानमय, परमानंद स्वभाव।
जो ऐसो सो शान्त शिव, तासु मनिज्जै भाव ॥१७॥
जो निज भाव न परिहरै, जो परभाव न लेइ।
जानै सकलउ नित्य पर, सो शिव शान्त हवेइ ॥१८॥
जासु न वर्ण न गंध रस, जासु न शब्द न स्पर्श।
जासु न जन्म न मरणहू, नाम निरंजन तासु ॥१९
जासु न क्रोध न मोह मद, जासु न माय न मान।
जासु न थान न ध्यान जिय, सोइ निरंजन जान ॥२
अहै न पुण्य न पाप जसु, अहै न हर्ष विषाद।
अहै न एकहु दोष जसु, सोइ निरंजन भाव ॥
जासु न धारण ध्येय नहिं, जासु न यंत्र न मंत्र।
जासु न मंडल मुद्र नहिं, सो मॉनु देव अनन्त ॥

(३) आत्मा

हौं गोरो हौं सामलो, हौं हि विभिन्नउ वर्ण।
हौं तनु-अंगो स्थूल हौं, ऐसो मूढ़ै मन्व
हौं वर-ब्राह्मण वैश्य हौं, हौं क्षत्रिय हौं शेष।
पुरुष नपुंसक इस्त्रि हौं, मानै मूढ विशे
आत्मा गोरा कृष्ण नहि, आत्मा रक्त न होइ।
आत्मा सूक्ष्महु स्थूल नहिं, ज्ञानी ज्ञाने जे

अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि, णवि ईसरु णवि णीसु ।
तरुणउ वूढउ बालु णवि, अण्णुवि कम्म-विसेसु ॥९१॥

पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु, धम्माधम्मु वि काउ ।
एक्कुवि अप्पा होइ णवि, मेल्लिवि चेयण-भाउ ॥९२॥

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय, अण्णु जि गुरुउ म सेवि ।
अण्णुजि देउ म चिंति तुहुँ, अप्पा विमलु मएवि ॥९५॥

अप्पा णिय-मण णिम्मलउ, णियमें वसइ ण जासु ।
सत्थ-पुराणइँ तव-चरणु, मुक्खुवि करहिँ कि तासु ॥९८॥

(४) परमात्म-तत्त्व

जे दिट्ठें तुट्टंति लहु, कम्मइँ पुव्व कियाइँ ।
सो परु जाणहि जोइया, देहि वसंतु ण काइँ ॥२७॥

देहा-देवलि जो वसइ, देउ अणाइ-अणंतु ।
केवल णाण-फुरंत-तणु, सो परमप्पु णिभंतु ॥३३॥

देहें वसंतुवि णवि छिवइ, णियमें देहुवि जोजि ।
देहें छिप्पइ जोवि णवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥३४॥

जसु अब्भंतरि जगु वसइ, जग-अब्भंतरि जोजि ।
जगिजि वसंतुवि जगु जिणवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥४१॥

जसु परमत्थें वंधु णवि, जोइय णवि संसारु ।
सो परमप्पउ जाणि तुहुँ, मणि मिल्लिवि ववहारु ॥४६॥

णवि उप्पज्जइ णवि मरइ, वंधु ण मोक्खु करेइ ।
जिउ परमत्थें जोइया, जिणवरु एउँ भणेइ ॥६८॥

छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ, जोइय एहु सरीरु ।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, जिं पावहि भवतीरु ॥७२॥

जोइय अप्पें जाणिएँण, जगु जाणियउ हवेइ ।
अप्पहँ केरइ भावडइ, बिंबिउ जेण वसेइ ॥९९॥

पंडित मूर्ख नहिं, नहि ईश्वर न अनीश।
तरुण वूढ वालहु नही, अन्यहु कर्मविशेष ॥६१॥

उ पापउ काल नभ, धर्माधर्मंहु काय।
एकहु आत्मा होइ नहिं, छांडि एक चेतनभाव ॥६७॥

यहि तीर्थ न जाहि जिय, अन्यहिं गुरुहिं न सेव।
अन्यहिं देव न चित तुहुं, छोंडि एक विमलात्माहिं ॥६५॥

गत्मा निजमन निर्मले, नियमेहिं वसै न जासु।
शास्त्र-पुराणहु तप-चरण, मोक्ष कि करिहैं तासु ॥६८॥

(४) परमात्म-तत्त्व

जेहि देखे टूटैं तुरत, कर्मा पूर्वकृताइं।
सो पर जानहि जोगिया, देह वसंत कि नाहिं ॥२७॥

देह-देवले जो वसै, देव अनादि अनन्त।
केवल ज्ञान-फुरंत-तनु, स परमात्म निर्भ्रान्त ॥३३॥

देह वसंतहु नहि छुवै, नियमेहिं देहें जोइ।
देहे छिप्यो जोइ नहिं, मॉनु परमात्मा सोइ ॥३४॥

जासु भीतरे जग वसै, जगत्-भीतरे जोइ।
जगहिं वसंतहु जग जों नहिं, मॉनु परमात्मा सोइ ॥४१॥

जसु परमार्थे वंध नहिं, जोगी ! नहिं संसार।
तहि परमात्मा जान तुम, मन छाडी व्यवहार ॥४६॥

नहि उपजै नाही मरै, वंध न मोक्ष करेइ।
जिउ परमार्थे जोगिया, जिनवर ऐस भनंति ॥६८॥

छीजहु भीजहु जाहु क्षय, जोगी एहु शरीर।
आपा भावै निर्मलहिं, जेहिं पावे भवतीर ॥७२॥

जोगी ! आपा जानिये, जग जानियत हवेइ।
आत्मा केरी भावनहि, विवित येन वसेइ ॥६६॥

अप्पु पयासइ अप्पु परु, जिम अंबरि रवि-राउ ।
जोइय एत्थु म भंति करि, एहउ वत्थु-सहाव ॥१०१॥

तारा-यणु जलि बिंबियउ, णिम्मलि दीसइ जेम ।
अप्पएँ णिम्मलि बिंबियउ, लोयालोउ 'वि तेम ॥१०२॥

सो पर वुच्चइ लोउ परु, जसु मइ तित्थु वसेइ ।
जहिँ मइ तहिँ गइ जीवहँजि, णियमेँ जेण हवेइ ॥१११॥

जहिँ मइ तहिँ गइ जीव तुहुँ, मरणु वि जेण लहेहि ।
तेँ परवंभु मुए वि मँह, मा पर-दव्वि करेहि ॥११२॥

जइ णिविसद्धुवि कुवि करइ, परमप्पइ अणुराउ ।
अग्गि-कणी जिम कट्ठगिरि, डहइ असेसु'वि पाउ ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेल्लिवि सयल अवक्खडी, जिय णिच्चिंतउ होइ ।
चित्तु णिवेसहि परमपएँ, देउ णिरंजणु जोइ ॥११५॥

जोइय णिय-मणि णिम्मलएँ, पर दीसइ सिउ संतु ।
अंवरि णिम्मलि घण-रहिएँ, भाणु जिजेम फुरंतु ॥११६॥

जसु हरिणच्छी हियवउएँ, तसु णवि वंभु वियारि ।
एक्कहि केम समंति वढ, वे खंडा पडियारि ॥१२१॥

णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ, णिवसइ देउ अणाइ ।
हंसा सरवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाइ ॥१२२॥

देउ णं देउलेँ णवि सिलएँ, णवि लिप्पइ णवि चित्ति ।
अखउ णिरंजणु णाणमउ, सिउ संठिउ सम-चित्ति ॥१२३॥

हरि-हर वंभुवि जिणवरवि, मुणि-वर-विंदवि भव्व ।
परम-णिरंजणि मणु धरिवि, मुक्खुजि झायहिँ सव्व ॥१३१॥

मुंत्ति-विहूणउ णाणमउ, परमाणंदु-सहाउ ।
णियमिं जोइय अप्पु मुणि, णिच्चु णिरंजणु भाउ ॥१४१॥

जो णवि मण्णइ जीउ समु, पुण्णुवि पाउवि दोइ ।
सो चिरु दुक्खु सहंतु जिय, मोहहिँ हिंडइ लोइ ॥१७८॥

जिमि जगमें भासत नभ, जिनि अंबरे रवि-ताव।
　　जोगी ! दर्शन भ्रान्ति नहि, एही वस्तु-स्वभाव ॥१०१॥
तारागण जलमें लखिय, निर्मल दीसै जेमि।
　　आत्माहिं निर्मल विमल, लोकालोकहु तेमि ॥१०२॥
जो पर कहियत जीव पर, जसु मति जासों भेद।
　　जहँ मति तहँ गति जीव की, निश्चैं हि क्यों कि हवेइ ॥१११॥
जहँ मति तहँ गति जीव कहुँ, मरणहु क्योंकि लभेइ।
　　ता परब्रह्महिं छाड़ि जनि, मति परद्रव्य करेइ ॥११२॥
यदि जिनिमाहुँ कोउ करै, परमात्महिं अनुराग।
　　अग्नि कणी जिमि काठ गिरि, दहै अशेषहिं पाप ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

जेतो सकल अशेषही, जिव निश्चिन्ता होइ।
　　जिन नियेसी परमपदें, देव निरंजन जोइ ॥११५॥
जोगी ! निजमन निर्मले, पर दीसै शिव शान्त।
　　अंबरें निर्मल घनरहित, भानू जेमि फुरन्त ॥११६॥
जसु हरिणाक्षी हृदयमें, तासु न ब्रह्म विचार।
　　एकहिं गूढ़ ! समाय किमि, दो खड्गा प्रतिकारि ॥१२१॥
निजमन निर्मले ज्ञानि के, निवसै देव अनादि।
　　हंसा सरवर लीन जिमि, मोहिं ऐसहि प्रतिभाति ॥१२२॥
देव न देवले नहि शिलहिं, नहि लेप्य नहि चित्र।
　　अक्षय निरंजन ज्ञानमय, शिव समचित्ते थित्त ॥१२३॥
हरि-हर ब्रह्मह्नु जिनवरहु, मुनिवर वृन्दहु-भव्य।
　　परम-निरंजने मन धरी, मोक्षहि ध्यावें सर्व ॥१३१॥
मुक्तिविहीना ज्ञानमय, परमानंद स्वभाव।
　　नियमेहिं जोगी ! आप मनु, नित्य निरंजन भाव ॥१४१।
जो नहिं मानै जीव सम, पुण्यहु पापहुँ दोय।
　　सो चिर दुःख सहंत जिव, मोहेहिं हिंडै लोक ॥१७८

(६) पंथ-पोथी-पन्नाकी निंदा

देवहँ सत्यहँ मुणिवरहँ, भत्तिएँ पुण्णु हवेइ ।
कम्म-क्खउ पुणि होइ णवि, अज्जउ संति भणेइ ॥१८४॥

देउ णिरंजणु इँउ भणइ, णाणि मुक्खु ण भंति ।
णाणविहीणा जीवडा, चिरु संसारु भमंति ॥१९६॥

सत्थ पढंतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु ।
देहि वसंतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥२०६॥

तित्थइँ तित्थु भमन्तहँ, मूढहँ मोक्खु ण होइ ।
णाण-विवज्जिउ जेण जिय, मुणिवरु होइ ण सोइ ॥२०८॥

चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिँ, तूसइ मूढु णिभंतु ।
एयहिँ लज्जइ णाणियउ, बंधहँ हेउ मुणंतु ॥२११॥

भल्लाहँवि णासंति गुण, जहँ संसग्ग खलेहिँ ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, तें पिट्टियइ घणेहिँ ॥२३३॥

रूवि पयंगा सद्दि मय, गय फासहि णासंति ।
अलि-उल गंधहिँ मच्छ रसि, किम अणुराउ करंति ॥२३५॥

देउलु देउवि सत्थु गुरु, तित्थुवि वेउ वि कव्वु ।
वच्छु जु दीसै कुसुमियउ, इंधणु होसइ सव्वु ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पँचहँ णायकु वसि करहु, जेण होंति वसि अण्ण ।
मूल विणट्ठइ तरुवरहँ, अवसइँ सुक्कहिँ पण्ण ॥२६३॥

मुण्णउँ पउँ झायंतहँ, वलि वलि जोइय जाहँ ।
समरसि-भाउ परेण सहु, पुण्णुवि पाउ ण जाहँ ॥२८२॥

उव्वस वसिय जो करइ, वसिया करइ जु सुण्ण ।
वलि किज्जउँ तसु जोइयहिँ, जासु ण पाउ ण पण्ण ॥२८१॥

शास्त्र पढंतो होइ जड, जो न हणेइ विकल्प ।
देह वसंतु निर्मलउ, नहि मानै परमात्म ॥२०६॥

तीर्थहिं तीर्थ भ्रमन्ताहिं, मूर्खहँ मोक्ष न होइ ।
ज्ञानविवर्जित जो कि जिय, मुनिवर होइ न सोइ ॥२०८॥

चेला-चेली-पोथियहिं, तूसइ मूढ निभ्रान्त ।
एतहिं लज्जै ज्ञानियउ, बन्धन हेतु मुणन्त ॥२११॥

मनन देहहु नहीं गुण, जाँ नवनं गनेहि ।
धंधवालग सोहहिं गिल्लेउ, तेहि पिट्टियइ घनेहि ॥२३३॥

ज्यों पतंगा शब्दें मृग, गज स्पर्शों नाशन्ति ।
अलिकुल गन्धे, मत्स्य रसें, किमि अनुराग करंति ॥२३४॥

देवन देवउ शास्त्र गुरु, तीर्थंहु वेदहु काव्य ।
वृक्ष जो दीसै कुसुमित, ईंधन होइहै सर्व ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पंच नायकन वश करहु, जेन होहिं वश अन्य ।
मूल विनष्टे तरुवरहि, अवशि सूखिहै पर्ण ॥२६३॥

शून्य पदहिं ध्यायन्तहूँ, बलि बलि जोगिय जावें ।
समरसभाव परेन सहूँ, पुण्य पाप ना जाहि ॥२८२॥

उवसा वसिया जो करै, वसिया करै जों शून्य ।
बलि जाऊँ तेहि जोगियहिं, जासु न पाप न पुण्य ॥२८३॥

णास-विणिग्गउ साँसडा, अंबरि जेत्थु विलाइ ।
तुट्टइ मोह तडत्ति तहिँ, मणु अत्थवणहँ जाइ ॥२८५॥
मोहु विलिज्जइ मणु मरइ, तुट्टइ सासु-णिसासु ।
केवल-णाणु वि परिणमइ, अंबरि जाहँ णिवासु ॥२८६॥
घोरु करंतु'वि तव-चरण, सयल'वि सत्थ मुणंतु ।
परम-समाहि-विवज्जियउ, णवि देक्खइ सिउ संतु ॥३१४॥
जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-बंभुवि बुद्धु ।
परम-पयासु भणंति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्धु ॥३२३॥
—परमात्मप्रकाश[1]

(८) योग-भावना

संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसयाहँ ।
अप्पा-संबोहण-कयइ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥
णिम्मलु णिक्कलु सुद्ध जिणु, विण्हु वुद्धु सिव संतु ।
सो परमप्पा जिण भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु ॥६॥
जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु ।
इउ जाणे विणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ॥२२॥
जाव णं भवहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ ।
ताव ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिँ भावइ तहि जाउ ॥२७॥
मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति ।
देहा देवलि देउ जिणि, सो वुज्झहि समचित्ति ॥४४॥
धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्थालुंचियइँ ॥४७॥
जेहइ मण विसयहँ रमइ, तिमि जइ अप्प मुणेइ ।
जोइ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥५०॥

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित रायचंद्र जैन-शास्त्र-माला, बम्बई १९३७ ई०

नासहिँ निकस्या साँसडा॑, अंबर जहाँ विलाइ।
टूटै मोह तुरंत तहँ, मन अस्तमने जाइ ॥२८५॥
मोह विलाये मन मरै, टूटै श्वास-निश्वास।
केवल ज्ञानहु परिणमै, अंबर जासु निवास ॥२८६॥
घोर करन्ते तपचरण, सकलहु शास्त्र जाँनन्त।
परम समाधि विवर्जित, नहि देखै शिव-शान्त ॥३१४॥
जो परमात्मा परम-पद, हरि-हर-ब्रह्मा-बुद्ध।
परमप्रकाश भनंति मुनि, सो जिन-देव विशुद्ध ॥३२३॥
—परमात्मप्रकाश

(८) योग-भावना

संसारहँ भयभीत जे, मोक्ष लालसा जांहि।
आत्मा-संबोधन कियउ, दोहा एकमनाहि ॥३॥
निर्मल निष्कल शुद्ध जिन, विष्णु वुद्ध शिव शान्त।
सो परमात्मा जिन भन्यो, एहउ जानु निभ्रान्त ॥६॥
जो परमात्मा सोइ हौं, जो हौं सो परमात्म।
एह जाने विनु जोगिया, अन्य न करहु विकल्प ॥२२॥
जो न भावै जीव तुहुँ, निर्मल आत्मस्वभाव।
तौ न लहै शिवगमनहिँ, जहँ भावै तहँ जाव ॥२७॥
मूढ ! देवले देव नहिँ, शिलहिँ लेप्य नहि चित्रेँ।
देह देवले देव जिन, सो बूझै समचित्त ॥४४॥
धर्म न पढ़िया होइ, धर्म न पोथा पिच्छियहिँ।
धर्म न मठप्रवेश, धर्म न माथा-लुंचियहिँ ॥४७॥
जैसे मन विषयहिँ रमै, तिमि यदि आत्म लगेइ।
योगि भनै हे योगियो, तरत निवाण लहेइ ॥५०॥

णासग्गिँ अब्भिन्तरहँ, जे जोवहिँ असरीरु ।
वहुडि[1] जम्मि ण संभवहिँ, पिवहिँ ण जणणी-खीरु ॥६०॥

जो जिण सो हउँ सोजि हँउ, एहउ भाउ णिभंतु ।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥७५॥

जो सम-सुक्ख-णिलीणु वहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ ।
कम्मक्खउ करि सोवि फुडु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥६३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो सिउसंकरु विण्हु सो, सो रुद्द्‌वि सो वुद्ध ।
सो जिणु ईसरु वंभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु ॥१०५॥

एवँहि लक्खण-लक्खियउ, जो पर णिक्कलु देउ ।
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ ॥१०६॥

—योगसार

§ २३. रामसिंह

काल—१००० ई० (?) । देश—राजपूताना (?) । कुल—जैन साधु ।

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

अप्पायत्तउ जोजि सुहु, तेण जि करि संतोसु ।
पर सुह वढ़ ! चिंततहं, हियइ ण फिट्टइ सोसु ॥२॥

जं सुहु विसय परंमुहउ, णिय अप्पा झायंतु ।
तं सुहु इंदु वि णउक लहइ, देविहिँ कोडि रमंतु ॥३॥

घर वासउ मा जाणि जिय, दुक्किय वासुउ ऐहु ।
पासु कपंते मंडियउ, अविचल णवि संदेहु ॥१२॥

---

[1] फिर

नासाग्रे अभ्यन्तरहिँ, जे जावै अशरीर।
वहुरि जन्म ना संभवै, पिवै न जननी-क्षीर ॥६०॥
जो जिन सो हौं सोइहौं, एही भाव निभ्रान्त।
मोक्षइँ कारण जोगिया, अन्य न तंत्र न मंत्र ॥७५॥
जो शम-सुक्ख-निलीन वहु, पुनि पुनि आत्म मनेइ।
कर्मक्षय करि सोइ फुर, तुरत निवाण लहेइ ॥६३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

मो शिव-शंकर विष्णु सो, सो रुद्रउ सो वुद्ध।
सो जिन ईश्वर ब्रह्म सो, सो अनंत-सो सिद्ध ॥१०५॥
ऐसे लक्षण-लक्षितउ, जो पर निष्कल देव।
देह-मध्यही सो वसै, तासु नहीँ है भेद ॥१०६॥
—योगसार

§ २३. रामसिंह

कृति—पाहुड-दोहा[1]

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

आत्मायत्तउ जोहि सुख, तेनहि करु सन्तोप।
पर सुख चिन्तत मूढ़ रे, हृदय न छूटइ सोच ॥२॥
जो सुख विषय-पराङ्मुख, निज आत्मा ध्यायन्त।
जो सुख इन्दुहु ना लहइ, देवन् कोटि रमन्त ॥३॥
घरवास हु न जानु जिय, दुष्कृत-वासहु एहु।
पाश कृतांतेहि फेकियउ, अविचल नहि संदेह ॥१२॥

---

[1] करंजा जैन-ग्रंथमाला, करंजा (वरार)

सप्पि मुक्की कंचुलिय, जं विसु तं ण मुएइ ।
भोय न भाउ न परिहरइ, लिंगग्गहणु करेइ ॥१५॥

अथिरेण थिरा मइलेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारा ।
काएण जा विढप्पइ सा किरिया किण कायव्वा ॥१६॥

वर विसु विसहरु वरु जलणु, वरु सेविउ वणवासु ।
णउ जिणधम्म-परम्मुहउ मित्थत्तिय सहवासु ॥२०॥

हंउ गोरउं हउं सामलउ हउं मि विभिण्णउ वण्णि ।
हउँ तणु-अंगउ थूलु हउँ एहउ जीव म मण्णि ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वण्ण-विहूणउ णाणमउ, जो भावइ सब्भाउ ।
संतु णिरंजणु सो जि सिउ तहिं किज्जइ अणुराउ ॥३८॥

उपलाणहि जोइय करहुलउ, दावणु छोडहि जिम चरइ ।
जसु अखइ णिरामइँ गयउ, मणु सो किम वुहु जगिरइ करइ ॥४२॥

पंच वलद्दण रक्खियइँ, णंदणवणु ण गओसि ।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु वि, एमइ पव्व इओसि ॥४४॥

पंचहि बाहिरु णेहडउ, हलि सहि लग्गु पियस्स ।
तासु न दीसइ आगमणु, जो खलु मिलिउ परस्स ॥४५॥

मणु जाणइ उवएसडउ, जहिँ सोवेइ अचंतु ।
अचितह्वो चित्तु जो मेलवइ, सो पुणु होइ णिचिंतु॥४६॥

वट्टडिया अणुलग्गयहँ, अग्गड़ जोयंताहँ ।
कंटउ भग्गइ पाउ जइ, भज्जउ दोसु ण ताहं ॥४७॥

मणु मिलियउ परमेसरहो, परमेसर जि मणस्स ।
विण्णि वि समरसि हुइ रहिय, पुंज चडावउँ कस्स ॥४९॥

देहादेवलि जो वसइ, सत्तिहि सहियउ देउ ।
को तहिँ जोइय सत्तसिउ, सिग्घु गवेसहिँ भेउ ॥५३॥

सर्पहिं मोची केंचुली, जो विप सो न मुंचेइ।
भोगहि भाव न परिहरइ, भेस-ग्रहण करेइ ॥१५॥
अथिरेहिं थिरा मइलेहि निर्मला निर्गुणहिं गुणसारा।
कायेहि जा वढइ सा क्रिया कीन कर्तव्या ॥१६॥
वरु विप, विपधर वरु ज्वलन, वरु सेविव वनपास।
ना जिन-धर्म-पराङ्मुख, मिथ्याडय-सहवास ॥२०॥
हौं गोरा, हौं श्यामला, हौंहि विभिन्नो वर्ण —।
हौं तनु-अंगो, स्थूल हौं, एहउ जीव न मान ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वर्ण-विहूनहिं ज्ञानमय, जो भावइ सद्भाव।
संत निरंजन सोइ शिव, तहिं कीजइ अनुराग ॥३८॥
उत्पला नहीं जोइ करि कला दामहिं छोडी जिमि चरइ।
जस अक्षय निरामहिं गयउमन, सो किमि वह जगरति करइ ॥४२॥
पाँच वरहन राखियउ, नन्दन-वन न गयोसि।
आत्म न जानेउ नापि पर, एवंइं प्रव्रज्योसि ॥४४॥
पंचहिं वहिर नेहड़ा, हे सखि लगेउ पियेहिं।
तासु न दीसइ आगमन, जो खल मिलेउ परेहि ॥४५॥
मन जानइ उपदेसडहिं, जहँ सोवई अचिन्त।
अचिते चित्त जो मेलवइ, सो पुनि होइ निचिन्त ॥४६॥
वटिया अनुसरतन्तहें, आगे जोयन्ताहँ।
काँटा लागइ पाय यदि, लागहु दोप न ताह ॥४७॥
मन मिलिया परमेश्वरहिं, परमेश्वरहु मनाहिं।
दोऊ समरस व्है रहेउ, पूज चढाउँ काहिं। ॥४९॥
देह-देवले जो वसइ, शक्ति सहितो देव।
को तहँ जोगी! शक्ति-शिव, शीघ्र गवेसहु भेद ॥५३॥

सिव विणु सन्ति ण वावरइ, सिउ पुणु सन्ति-विहीणु ।
दोहिँ मि जाणहिँ सयलु जगु, वुज्झइ मोह-विलीणु ॥५५॥

अब्भिन्तर चित्ति वे मइलियइ, वाहिरि काइं तवेण ।
चित्ति णिरंजणु कोवि धरि, मुच्चहि जेम मलेण ॥६१॥

देह महेली एह वढ ! तउ सत्ता वइ नाम ।
चित्तु णिरंजणु परिणसिहु, समरसि होइण जाम ॥६४॥

सइं मिलिया सइ विहडिया जोइय, कम्मणि भंति ।
तरल सहावहिँ पंथियहिँ, अण्णु कि गाम वसंति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

वक्खाणडा करंतु वुहु, अप्पि ण दिण्णुणु चित्तु ।
कणहिँ जि रहिउ पयालु जिम, पर संगहिउ बहुत्तु ॥८४॥

पंडिय पंडिय पंडिया, कणु छंडिवि तुस कंडिया ।
अत्थे गंथे तुट्ठोसि, परमत्थु ण जाणहि मूढोसि ॥८५॥

अक्खरडेंहि जि गव्विया, कारणु तेण मुणंति ।
वंस-विहत्था डोम जिम, परहत्थडा धुणंति ॥८६॥

वहुयइं पढियइं मूढपर, तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कुजि अक्खरु तं पढहु, सिवपुरि गम्मइ जेण ॥९७॥

हउँ सगुणी पिउ णिग्गुणउ, णिल्लक्खणु णीसंगु ।
एकहिँ अंगि वसंतयहँ, मिलिउ ण अंगहिँ अंगु ॥१००॥

मूलु छंडि जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभासि ।
चीरुणु वुणणहं जाइ वढ ! विणु डहियईं कपासि ॥१०९॥

छह दंसण धंधइ पडिय, मणहं ण फिट्टिय भंति ।
एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेण ण मोक्खहं जंति ॥११६॥

(?)लि सहि काइं करइ सो दप्पणु । जहिँ पडिविंवु ण दीसइ अप्पणु ॥
धंधवालु मो जगु पडिहासइ । धरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ॥१२२॥

शिव विनु शक्ति न व्यापरइ, शिव पुनि शक्ति-विहीन।
दोउहिँ जानें सकल जग, बूझिय मोह-विलीन ॥५५॥
अन्तहि चित्तहि मडलियहि, वाहिर काह तपेहिँ।
चित्ते निरंजन कोँइ धरु, मुचहि जिमी मलेहि ॥६१॥
देह मेहरिया एह मूढ, तोहिँ सतावइ ताव।
चित्त निरंजन परहिँ सों, समरस होइ न जाव ॥६४॥
स्वयं मिल्लेँउ, स्वयं वीछुडेँउ, योगी ! कर्म न भ्रान्ति।
तरल स्वभावहि पथिकही, अन्य कि गाँव वसन्ति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

व्याख्यानड़ा करन्त वहु, आत्महि दियउ न चित्त।
कणहिउँ रहित पुआल जिमि, पर संग्रहेँउ वहुत्त ॥८४॥
पंडित पंडित पंडिता, कण छाडेँउ तुप कूटिया।
अर्थहिँ ग्रंथहिँ तुष्टोसि, परमार्थ न जानइ मूढोसि ॥८५॥
अक्खरडेहिँ जे गविया, कारण ते न जॉनंत।
वांस-विहूनो डोम जिमि, पर हाथडा धुनंत ॥८६॥
वहुतहि पढिया मूढ पर, तालू सूखइ जेहिँ।
एकइ अक्षर सो पढहु, शिवपुर जावे जेहिँ ॥९७॥
हौँ सगुणी प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण, निस्संग।
एकहि अंक वसंतहुँ, मिलेँउ न अंगहि अंग ॥१००॥
मूल छोडि जो डाल चढ़ि, कहँ तेहि योगाभ्यास।
चीर न वीनेँउ जाइ मुढ़, विनु ओटिया कपास ॥१०९॥
खटदर्शन धंधे पडी, मनहिँ न टूटी भ्रान्ति।
एक देव छ भेद किय, ताते मोक्ष न यान्ति ॥११६॥
हे सखि ! काह करिय सो दर्पण। जहँ प्रतिबिंब न दीसइ आपन॥
धंधवाल मोहि जग प्रतिभासइ। घर अछते णा घरपति दीसइ ॥१२२॥

जसु जीवंतहँ मणु मुवउ, पंचेन्द्रियहिँ समाणु ।
सो जाणिज्जइ मोक्कलउ, लद्धउ पहु णिव्वाणु ॥१२३॥

मुंडिय मुंडिय मुंडिया । सिरु मुंडिउ चित्तु ण मुडिया ।
चित्तहँ मुंडण जि कियउ । संसारह खंडणु ति कियउ ॥१३५॥

पोत्या पढणि मोक्खु कहँ, मणुवि असुद्धउ जासु ।
वहुयारउ लुद्धउ णवइ, मूलट्ठिउ हरिणासु ॥१४५॥

भल्ला णवि णासंति गुण, जहिँ सहु संगु खलेहिँ ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, पिट्टिज्जइ सघणेहिँ ॥१४८॥

मुंडु मुंडाइवि सिक्ख धरि, धम्महँ वद्धी आस ।
णवरि कुडुंवउ मेलियउ, छुडु मिल्लिया परास ॥१५३॥

जे पढिया जे पंडिया, जाहिँ मि माण मरट्टु ।
ते महिलाणहि पिंडि-पडिय, भमियइँ जेम घरट्टु ॥१५६॥

देवलि पाहणु तित्थि जलु, पुत्थइँ सव्वइँ कव्वु ।
वत्थुज दोसइ कुसुमियउ, इंधणु होसइ सव्वु ॥१६१॥

तित्थइँ तित्थ भमंतयहँ, किण्णेहा फल हूव ।
वाहिरु सुद्धउ पाणियहँ, अब्भितरु किम हूव ॥१६२॥

तित्थइँ तित्थ भमेहि वढ़ ! धोयउ चम्मु जलेण ।
एहु मणु किम धाएसि तुहुँ, मइलउ पाव-मलेण ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

जं लिहिउ ण पुच्छिउ कहव जाइ । कहियउ कासु वि णउ चित्ति ठाइ ।
अह गुरु उवएसे चित्ति ठाइ । तं तेम धरंतिहि कहिँ मि ठाइ ॥१६६॥

वे भंजेविणु एक्कु किउ, मणहं ण चारिय विल्लि ।
तहि गुरुपहि हउँ सिस्सिणी, अण्णहिं करमि ण लल्लि ॥१७४॥

अग्गइँ पच्छइँ दहदिहहिं, जहिं जोवउ तहिं सोइ ।
ता मह फिट्टिय भंतडी, अवसणु पुच्छइ कोइ ॥१७५॥

मूढा जोवइ देवलइँ, लोयहिं जाइँ कियाइँ।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय, जहिं सिउ-संतु ठियाइँ ॥१८०॥
वामिय किय अरु दाहिणिय, मज्झइँ वहइँ णिराम।
तहिं गामडा[1] जु जोगवइ, अवर वसाउव गाम ॥१८१॥
अप्पा परहँ ण मेलयउ, आवागमणु ण भग्गु।
तुस कंडंतहँ कालु गउ, तंदुलु हत्थि ण लग्गु ॥१८५॥
उव्वस वसिया जो करइ, वसिया करइ न सुण्णु।
वलि किज्जइ तसु जोइयहिं, जासु ण पाउ ण पुण्णु ॥१६२॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंतु ण तंतु ण धेउ ण धारणु। ण'वि उच्छासह किज्जइ कारणु ॥
एमइ परम सुक्खु मुणि सुव्वइ। एही गलगल कासु ण रुच्चइ ॥२०६॥
वे पंथेहिं ण गम्मइ वे-मुह सूई ण सिज्जए कंथा।
विण्णि ण हुंति अयाणा इंदिय सोक्खं च मोक्खच ॥२१३॥
वादविवादा जे करहिं, जाहिं ण फिट्टिय भंति।
जे रत्ता गउ पावियइँ, ते गुप्पंति भमंति ॥२१७॥
कालहिं पवणहिं रवि, ससिहिँ-चहु एक्कटइँ वासु।
हउँ तुहि पुच्छउँ जोइया, पहिले कासु विणासु ॥२१६॥
—पाहुड-दोहा

§ २४. धनपाल

काल—१००० ई० (?)। देश—माएसर (गुजरात ?)। कुल—धाकड़

१—कवि-परिचय

वसिवि धरासमि हल्लुत्तालि। विरइउ एउ चरिउ धणवालि।
विहि खंडहि वावीसहिँ सन्धिहिँ। परिचिंतिय निय हेउनिबंधिहिँ।

---

[1] राजस्थानी और गुजराती

मूढा ! जोवइ देवलहँ, लोगहिं जाहिं कियाह ।
देह न पेखइ आपणी, जहँ शिव-संत थिताह ॥१८०॥
वामे कियेँउ अरु दाहिने, माँझिय वहइ निराम ।
तहँ गामएँ जो जोगपति ! अवर बसावइ ग्राम ॥१८१॥
आत्मा परहिं न मेलियउ, आवागमन न भाग ।
तुष कूटंते काल गउ, तंदुल हाथ न लाग ॥१८५॥
उज्जड बसिया जो करइ, बसिया करइ जो सुन्न ।
बलिहारी तेहि जोगियहिं, जासु न पाप न पुन्न ॥१९२॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंत्र न तंत्र न ध्येय न धारण । नापि उछ्वासहिं कीजिय कारण ॥
इमिहि परम-सुख मुनि सोवइ । एही गडबड कासु न रुचइ ॥२०६॥
दो पंथहिं न गमियइ पंथा, दो मुँह सुई न सीइय कंथा ।
दोउ न होहिं अजाना ! इन्द्रिय-सुख अरु मोक्षहू ॥२१३॥
वाद-विवाद जे करहिं, जाह न फाटी भ्रान्ति ।
जे रक्ता गोपायित, ते गोप्यन्त भ्रमन्ति ॥२१७॥
कालहिं पवनहिं रविशशिहिं, चहु एकट्टइ वास ।
हउँ तोहिं पूंछउ जोगिया, पहिले कासु विनाश ॥२१९॥

—पाहुड-दोहा

§ २४. धनपाल

वैश्य। कृति—भविसयत्त कहा[1] (भविष्यदत्त-कथा)

१—कवि-परिचय

वणिय गृहाश्रमें हल्लुत्तानें. विरचेंउ एउ चरित धनपालेंहि ।
दुइ खंड वर्णिहिं संधिहिं, परिगिलिय निजहेतु-निबंधहिं ।

---

[1] गायकवाड ओरियंटल सिरीज, बडोदा, १९२३

घत्ता । धक्कड वनिक-वंशें माएसरहँ समुद्भवेहिं ।
धनश्रीदेवि सुतेहिं विरचेउ सरस्वतिसंभवेंहिं ॥

—भविसयत्तकहा पृ० १४८

२—भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल देश

एहु भरत-क्षेत्रें सुंदर प्रदेश । कुरुजंगल नामे महि-विशेष ।
वानिज्जै संपति काइँ तासु । जहँ निवसै जन अमुनिय-प्रयास ।
आराम-क्षेत्र - घरवित्त - वृद्ध । परिपक्वकलम - गोधन - समृद्ध ।
जहँ पुरें प्रवर्द्धिय कलकलाइँ । धर्मार्थ-काम-संचित-फलाइँ ।
हँ मिथुनै मदन-परव्वशाइँ । अवतृप्तेउ पाकरके रसाइँ ।
उपभोग - भोग - सुख - सेवयाइँ । ग्रामो कुक्कुट - संसेवयाइँ ।
जहँ जलें कदापि न शोषियाइँ । मकरंद-रेणुवा-मिश्रिताइँ ।
जहँ सरहिं कमल-प्रभ-ताम्रकाइँ । कारंड-हंस-चय-चुंविताइँ ।
जहँ पथिक तप्त छायहिं भ्रमंति । यत्र अस्त मिया तहँ निशि गमंति ।
पामर विदग्धें वचनै नियंति । पुंड्र-इक्षु-रसें लीलैं पिवंति ।

—वहीं पृ० २,३

(२) गज पुर[1]

घत्ता । तहँ गजपुर[1] नामे पट्टन, जन-जनिताश्चरिऊ ।
जनु गगन मुंचिय स्वर्ग-खंड, महि अवतरिऊ ॥
सो गजपुर को वर्णन-समर्थ । जो पुहुमिहि मंडन जनु प्रशस्त ।
जो भुक्तु मुकुट-कुंडल-धरेहिं । मेघेश्वरादि-बहु-नरवरेहिं ।...
मघवा चक्रेशत यत्र आसि[2] । जेहि भुक्तु वसुंधर जेम दासि ।
पुनि सनकुमार निशिरतन-पाल । हरि संड वनुव सुभ स्वामिसाल ।

---

[1] हस्तिनापुर [2] थे

जहँ अन्यउ नर नरपति महंत। स्वर्गापवर्ग वर सुखहिँ प्राप्त।
जसु कारणे निज-सुखे तांडवेहिँ। कुरुक्षेत्र भिडेँउ कुरु-पांडवेहिँ।
घत्ता। जहँ तुंग तपांगे सं-ठिउ, शंख-कुन्द-धवलू।
जनु सूती ऊर्ध्व देवइ, गंगानदिह जल॥

—वहीँ पृ० ३

३—वाणिज्य-सार्थ

(१) वंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरत गमन-सामग्रि प्रकाशिय। शुचि-सार्थ-र्थवंत संभाषिय।
जनवायउ भूपाल-नरेन्द्रहँ। समयहँ पूछेँउ सज्जन-वृन्दहँ।
हाट-मार्ग-कुल-शील-नियुक्तहँ। घोषण दीन पुरहँ वणि-पुत्रहँ।
"चल्लो, जो चल्लै क्रय-वेँचे। वंधुदत्त संचलेउ वनिज्जे।
साधु मानि वणिपुत्तहँ चाहँ। अ—धनहँ भंडुल्लड[1] सं-वाहँ[2]।"
सो सुनियाहि प्रमाद-प्रयुक्तहँ। मंत्रेउँ थोड़-विभव-वणिपुत्रहँ।
"अहो पुर-जन-मन-नयन-नंदना। सेवहु धनपति-श्रेष्ठिहिँ नंदन।
पइसहु अंतरेउ सहुआयेँ। अवशि लक्ष्मि होई व्यवसायेँ।
वणि-तनुरुह रभसेहिँ[3] समा-गउ। साजेँउ करभ-वृषभ-महिषइ सो।

—वहीँ पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी माँका विरोध

"माइ! महल्ल-महोद्यम-विद्येँ। वंधुदत्त सं-चलेउ वनिज्जेँ।
तेही संगेँ हमहूँ जाउब्वो। सो वोहित्त-तीरेँ लाइब्वो।
देशांतर-प्रवास मानिव्वो। निज-पुण्यहँ प्रमाण जानिव्वो।
दैवायत्त यदपि विलसिव्वउ। तहूँ पुरु व्यवसाय यन्व्विउ।"
सो सुनियाहि सगद्गद-वदनी। भनै जनेरि[4] जलार्द्रित-नयनी।
हा ई पुत्र! काह नैँ जल्पेउ। स्वप्नंतरेउ नाहिँ मोहिँ जल्पेउ।

---

[1] सौदा [2] देवै [3] तुरंत [4] माता

एक्क अकारणि कुचिय-वियप्पें। दिण्णु अणनु दाहु तउ दप्पें।
अण्णुवि पइँ देसंतरु जंतहों। को महु मरणु हियइ पवसंतहों।
अण्णुवि तेण समउ तउ जंतहों। णिव्वुइ मणु'वि णाहिँ महुचित्तहों।
घत्ता। को जाणइ कण्ण महाविसइ, अणुदिणु दुम्मइ मोहियउँ।
सम-विसम-सहावहिँ अंतरइँ, दुट्ठसवत्ति'हि दोहियइँ॥
एक्कुमिक्कु ववसाउ करंतहँ। समसाहिट्ठिउ भंडु भग्गंतहँ।
विहि पडिकूलु अम्ह पडिसक्कइ। अत्यहँ छेउ करिवि को सक्कइ।
एक-दव्व-अहिलास-विचित्तइ। को जाणइँ दाइयहँ चरित्तइ।
जइ सरूव दुट्ठत्तणु भासइ। वंधुअत्तु गल वयणहिँ वासइ।
जो तउ करइ अमंगलु जंतहों। मूलु'वि जाइ लाहु चितंतहों।"
जंपइ मामहु महुरकलाएँ। "चंगउ वुत्तु पुत्त! कमलाएँ।
अम्हह एत्थु-वसंतहों तेहउ। को'वि ण मित्तु पहाणु सणेहउ।
वंधुअत्तु पुरमज्झि सइत्तउ। राउलि सण्णमाणु धणयत्तउ।
घत्ता। जइ-जणणि-वयण विस-विस-मगइ, दाइय-मच्छरु मणि वहई।
तो तुम्हहँ अम्हहँ सयणहमि, वंचिवि कुलि परिहउ करई॥"
भविसयत्तु विहसेविणु जंपइ। "तुम्हहँ भीरत्तणिण समप्पइ।
अइयारि वामोहु ण किज्जइ। समवय-जणि पोढत्तणु हिज्जइ।
अइणएण जणि कायरु वुच्चइ। अइभएण जइ-लच्छिएँ मुच्चइ।
अइमएण दप्पुब्भडु णावइ। अइधिएण भोयणु'वि ण भावइ।
अइरूवि तिय-रयणु विणासइ। अइयारि सव्वहों गुणु णासइ।
जइ ववसाइ दाउ णउ दिज्जइ। तो णायरहँ मज्झि लज्जिज्जइ।
जइ सो कहव सवत्तिहि जायउ। तो'वि तायहों सरीरि संभूयउ।
एक्कु सरीरु जाउ विहि भायहिँ। तहिँ किर काइँ राय-वेयारहिँ।

---

[1] सौत [2] पूँजी

एक अकारण कुपित विकल्पे। दीन अनंत-दाह तव वापें।
अन्यउ तैं देशान्तर जातह। को मम शरण हृदय-प्रज्वलंतह।
अन्यउ तेहिं संग तव जातह। निर्वृति[1] क्षणहु नाहि ममचित्तह।
घत्ता। को जानै कर्ण महाविपइँ, अनुदिन दुर्मति-मोहितइँ।
सम-विषम स्वभावहिं अंतरइँ, दुष्ट सौतियह दोहितइँ॥
एकमेक व्यवसाय करंतहँ। सम-साझेही भांड भरंतहँ।
विधि-प्रतिकूल समर-प्रतिसक्कै। अर्थहँ छेद करवि को सक्कै।
एक द्रव्य-अभिलाप-विचित्रा। को जानै दैवयहँ चरित्रा।
यदि स्वरूप दुष्टत्वउ भासै। बंधुदत्त खल-वचनहिं वासै।
जो तव करै अमंगल जांतह। मूलउ जाइ लाभ चितंतहँ।"
जंपै मामहँ मधुरकलायें। "चंगउ उक्त पुत्र ! कमलायें।
हमरे इहां वसंतह तेही। कोउ न मित्र प्रधान सिनेही।
बंधुदत्त पुर-मांझ स्वयत्तउ। राउले[2] सर्व्वमान धनदत्तउ।
घत्ता। यदि जननि-वचन-विष-विषमगति, दर्शित मत्सर मनें वहई।
तो तुम्महँ हम्महँ स्वजनहउ, वंचिय कुलें परिभव करई।"
भविषदत्त विहसि जल्पियई। "तुम्हहँही भीरुता-समर्पियई।
अतिचारे व्यामोह न किज्जै। सम-वय-जनें प्रौढत्वं हीज्जै[3]।
अतिगमने जनें कायर उच्चै। अतिभयेहिं जयलक्ष्मी मूंचै।
अतिमदेहिं दर्पोद्भट नावै। अतिधिवेहिं भोजनउ न भावै।
अतिरूपें तिय-रतन विनाशै। अतिचारें सर्व्वउ गुण नाशै।
यदि व्यवसाय दाव ना दिज्जै। तो नागरहँ मांझ लज्जिज्जै।
यदि सो कहव सौतीको जायो। तोपि तातहँ शरीर-संभूतो।
एक शरीर जाउ दोउ भाई। तहँ फुर काई राग-विचारी।

[1] चैन [2] राजकुल (=दर्बार) [3] कम होना

अण्णु'वि तहिँ कुल-सील-निउत्तहँ। होसहिँ पंच-सयइँ वणिउत्तहँ।....
अण्णुवि अम्हह तेण समाणु। किंपि ण पुव्व-विरोह-विहाणु।
घत्ता। मं माइ चित्तु कायरु करहि, फुडु कम्मइँ कम्महु कारणु।
खुट्टइ जीविज्जइ जेम णवि, तेम अखुट्टइ नउ मरणु।"

—वहीं पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता। जोव्वण-वियार-रस-वस-पसरि, सो सूरउ सो पंडियउ।
चल-मम्मणवयणुल्लावएहिँ, जो परतियहिँ ण खंडियउ ॥१८॥
पुरिसिं पुरिसिव्वउ पालिव्वउ। परवणु परकलत्तु णउ लिव्वउ।
तं धणु जं अविणासिय-धम्में। लब्भइ पुव्वक्किय-सुह-कम्में।
तं कलत्तु परिओसिय-गत्तउ। जं सुहि पाणिग्गहणि विढत्तउ।
णिय-मणि जेण संक उप्पज्जइ। मरणंति'वि ण कम्मु तं किज्जइ।
अण्णु-'वि भणमि पुत्त! परमत्थें। जइवि होहि परिपुण्ण महत्थें।
तरुणि तरल लोयण मणि भाविउ। पहु-सम्माण-दाण गुण गाविउ।
तहिँमि कालि अम्हहिँ सुमरिज्जहि। एक्कवार महु दंसणु दिज्जहि।
पर-धणु पायधूलि भणिज्जहि। परकलत्तु मइँ समउ गणिज्जहि।

—वहीं पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

नग्गेय दिसइँ मल्हंति जंति। कुरुजंगलु महिमंडलु मुअंति।
लंघंति वियण-काणण-पलंव। पुर - गाम-खेड - कव्वड - मडंव।
उणानइ सलिलु समुत्तरेवि। जल-दुग्गइँ थल-दुग्गइँ सरेवि।
अन्नन्न-देस-भासइँ नियंत। रयणायरें वेला-उलइ पत्त।
क्खिउ समुद्दु जल-लव-गहीरु। सप्पुरिसु'व थिरु गंभीरु धीरु।
आसीविसो[१]'व्व विस-विसम-सीलु। वेला-महल्ल कल्लोल-लीलु।

---

[१] साँप

अन्यउ तहँ कुल-शील-सँयुक्ता। होइहैं पंचशता वणिपुत्रा।....
अन्यउ हम्मउ तेहि समाना। किछुउ न पूर्व-विरोध-विधाना।
घत्ता। मति मा! चित्त कातर करहि, फुर कर्मङ कर्महँ कारण।
खट्टइ[1] जीविज्जै जेम नहिँ, तेम अखुट्टइ ना मरण।"

—वहीं पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता। "यौवन-विकार-रस-वश- प्रसर, सो शूरा सो पडित।
चल-मन्मथ-वचनोल्लापएहिँ, जो परतियहिँ न खडित॥१॥
पुरुषें, पुरुषत्त्वउँ पालिव्वउ। परधन-कलत्र नाहीं लिव्वउ।
सो धन जो अविनाशिय धर्मे। लब्भै पूर्वकृत-शुभकर्में।
सो कलत्र परि-योषित-गात्रउ। जो सुखें पाणिग्रहण विहित्तउ।
निज मनें जातें शक उत्पज्जै। मरतेहूँ न कर्म सो किज्जै।
अन्यउ भनउँ पुत्र! परमार्था। यदपि होइ परिपूर्ण महार्था।
तरुणि-तरल-लोचन मनें भाविउ। प्रभु-सम्मान-दान-गुण गाविउ।
...उ काल मोहिहि सुमरिज्जै। एक वार मोहिँ दर्शन दिज्जै।
परधन पाद-धूलि भन्निज्जै। परलत्र मोँहिँ सम गण्णिज्जै।

—वहीं पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

आग्नेय दिशहिँ छोडंति जाति। कुरुजगल महिमडल मुंचंति।
लंघति विजन-कानन-प्रलव। पुर-ग्राम-खेड-कव्वड-मडप
यमुना नदि सलिल सम्-उत्तरेउ। जल-दुर्गहिँ थल-दुर्गहिँ सरेउ।
अन्यान्य-देश-भापहिँ नियत्त। रत्नाकर-वेलाकुलहिँ प्राप्त
लक्खेउ समुद्र जल-लव-गँभीर। सत्पुरुष 'व थिर गभीर धीर।
आशीविष इव विष-विषम-शील। वेला-महल्ल-कल्लोल-ली

---

[1] आयु घटनेपर

दिट्ठइँ विउलइँ वेलावलाइँ । कय-विक्कय-रय-वयणाउलाइँ ।
वम्मत्थ-कामकंखिर सुहाइँ । सुवियड्ढ-वयण विलयामुहाइँ ।
तहि थाइवि जलजंतइँ कियाइँ । परिहरिवि वसह-महिसय-सयाइँ ।
जलजंता कम्मंतरु करेवि । करणइह पियवयणहिँ संवरेवि ।
वहणहिँ[1] आरुढ महापहाण । वणिवरहँ सयइँ पंचहिँ समाण ।

—वहीं पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता । णिज्जावयवयणुज्जुअमुहइँ, किखवइँ णंणं भडइँ ।
सच्चल्लइ रयणायरहो जलि, खरपवणाहय-धय-वडइँ ।।

दिढ़-बवइँ जिह मल्लर-गणाइँ । णिल्लोहइँ जिह मुणिवर-मणाइँ ।
णिब्भिण्णइँ जिह सज्जण-हियाइँ ।'अकियत्थइँ जिह दुज्जण-कियाइँ ।
वहणइँ वहंति जलहर-रउद्दि । दुत्तरि अत्थाहि महासमुद्दि ।
लंघंतइँ दीवंतर - थलाइँ । पिक्खंति विविह कोऊहलाइं
इय लीलइँ वच्चंताहँ ताहँ । उच्छाह - सत्ति - विक्कम पराहँ ।
दुप्पवणेँ घणतरुवर-समीवेँ । वहणइँ लग्गइँ मयणाय-दीवेँ
कल्लोल-बोल-जलरव वमालेँ । असगाह-गाह गहणंतरालेँ ।
तीरंतरेँ जं सघट्ट पोय । उत्तरिय तरिव पमुहोइ लोय ।। . . . .

घत्ता । तं वयणु मुणिवि णायर-जणहु, नं सिरि वज्जदंडु पडिऊ ।
वोहित्थइँ नेवि दुरास खलु, गहिर महासमुद्दि चडिऊ ।।२५।।

पमुणे कुमारे दुरायारिएहिँ । अमोहे जलोहे वहंतेहिँ तेहिँ ।
थियं विभियं त वणिदाण विंद । वियप्पाउरं करयलुग्गिण्ण-मुद्दं ।
अहो सुंदरं होइ पयाण कज्जं । अगम्मंपि गंतूण लद्ध अलज्जं ।
गयं णिप्फलं ताम गव्वं वणिज्जं । धुवं अम्ह गोत्तम्मि लज्जावणिज्जं ।

---

[1] बड़ी नाव, महापोत (बजरा)

दीसैं[1] विपुलैं[1] वेलाकुलाइँ। क्रय - विक्रय - रत - वचनाकुलाइँ।
धर्मार्थ-काम-कांक्षी सुखाइँ। सुविदग्ध-वचन वनिता-मुखाइँ।
तहँ थायेँउ[1] जलपोतहिँ केताहिँ। परिहरेंउ वृषभ-माहिप-शताहिँ।
जलपोता कर्मातर करेउ। करनै प्रियवचनहिँ संवरेउ।
वहनेँहूँ आरूढ महाप्रधान। वणि-वरहँ शतहँ-पंचहि समान[2]।

—वहीं पृ० २१-२२

(५) वंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता। विद्या-वय-वचन ऋजुकमुखा, की खला, नाना भटई।
संचल्लैं रत्नाकर जले, खर-पवनाहत-ध्वज-पटई॥

दृढ वंधाइँ जिमि मल्लर[4]-गणाइँ। निर्लोभी जिमि मुनिवर-मनाइँ।
निर-भिन्ना जिमि सज्जन-हियाइ। अकृतार्था जिमि दुर्जन-क्रियाइँ।
वहनैं[2] वहंति जलधर-रउद्र। दुस्तर अथाह महासमुद्र।
लंघंता द्वीपांतर - थलाइँ। पेखंता विविध कुतूहलाइँ।
इमि लीलैं वाँचत ताँह ताँह। उत्साह-शक्ति-विक्रम-पराह।
दुप्-पवने घन-तरुवर-समीपेँ। प्रवहण लागेँउ मैनाकद्वीपेँ।
कल्लोल-बोल-जल-रव-भ्रमरे। असंख ग्राह ग्राह गहनं-तरालेँ।
तीरंतरे जो संघट्ट पोत। उत्तरेँउ तरी-प्रमुखादि लोग।...

घत्ता। सो वचन सुनिय नागरजनहु, जनु शिरेँ वज्रदंड पडेँऊ।
वोहितेहिँ लेइ दुराश खल, गहिर महासमुद्र चढेँऊ॥२५॥

प्रमुंचे कुमारे दुराचारियेहि। अमोघे जलोघे वहंतेहि तेहि।
ठिआ विस्मिता सो वणीन्द्रान-वृन्दा। विकल्पातुरा करतलो दृगीर्ण-मुद्रा।
"अहो सुंदरो होइ एहू न काजा। अगम्याहु गन्तु अखद्याउ खाद्या।
गओ निष्फला एह सर्व्वा वनिज्या। छुयो अम्ह गोत्रेहुं लज्जावनीया।

---

[1] रहेउ [2] प्रवहण (जहाज) [3] सहित [4] पहलवान

ण जत्ता ण वित्तं ण मित्तं ण गेहं । ण धम्मं ण कम्मं ण जीयं ण देहं ।
ण पुत्तं कलत्तं ण इट्ठं पि दिट्ठं । गयं गयउरे[1] दूरदेसे पइट्ठं ।
खयं जाइ नूणं अहम्मेण धम्मं । विणट्ठेण धम्मेण सव्वं अकम्मं ।
कयं दुक्कियं दोहएण हएण । सुहायारभट्ठेण दुट्ठेण एणं ।
अणिट्ठं कणिट्ठं भुअं सप्पहायें । समुद्दे रउद्दे खयं तुम्ह जायें ।

—वहीं पृ० २२, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । एत्तहि महुमासहो आगमणु, एत्तहि पियपुत्त-समागमणु ।
परमोच्छवि रोमंचिय भुवहो, मुहु वियसिउ धणयत्तहो सुवहो ॥८॥
जिम तित्थु तेम पंचहि सएहि । किय भवण सोह निव्वुइ गएहि ।
घरि-घरि मंगलइ पघोसियाइँ । घरिघरि मिहुणइ परिओसियाइँ ।
घरिघरि तोरणइँ पसाहियाइँ । घरिघरि सयणइ अप्पाहियाइँ ।
घरिघरि वहुचंदण-छडय दिन्न । मरु-कुंद-वणय-दवणय-पइन्न ।
घरिघरि सरेणु-रइ-पिंजरीउ । सोहंति चूयतरु-मंजरीउ ।
घरिघरि चच्चरि कोऊहलाइँ । घरिघरि अंदोलय सोहलाइँ ।
घरिघरि कय-वत्थाहरण सोह । घरिघरि आरद्ध-महाजसोह ।
घरिघरि सरुव-रंजिय-मणाइ । जुवइहि जोइयइ सदप्पणाइ ।
घत्ता । घरिघरि जन्नमंगलकलस किय, घरिघरि घरदेवय अचयरिया ।
घरिघरि सिंगार-वेसु धरिवि, नच्चिउ वर-जुवइहि उत्थरिवि ॥९॥
गयउर सो पउर-समागमु । सो सियपक्खु वसंतहो आगमु ।
ताइ निरंतराइँ चुअ वणइँ । ताइ धवलपुंजवियइ भवणइँ

[1] हस्तिनापुर

न मासा न वित्तो न मित्तो न गेहो । न धम्मो न कम्मो न जीवो न देहो ।
न पुत्तो कलत्तो न इट्ठोऽइ दिट्ठो । गयउ गजपुरे दूरदेसे पइट्ठो ।
खयो होइ निम्मल पवन्नेहि धम्मो । विणट्ठेहि धम्मेहि सव्वो अकम्मो ।
करेँउ कुम्भलं वोहलेहि कुलेहि । गुणाचारभट्ठेहि दुट्ठेहि एहि ।
धनिष्ठो कनिष्ठो भुओ नवइ । गमुद्द रउद्दं खणो तुम्ह जाइ ।

—वही पृ० २, २३

४—सामंती वणिक्‌समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । इनहु मधुमासहु आगमनु । इनहु प्रियपुत्र-समागमनु ।
परमोत्सवेँ रोमांचित-भुजहु । मुह विकसिउ धनदत्तह सुतहु ॥८॥
जिम तीर्थं नेमि पंचहु सनेहि । कियउ भवन मांह निर्वृति-गतेहिं ।
घरघर मंगलइ प्रघोषिताइँ । घरघर मिथुनै परितोषिताइँ ।
घरघर तोरणै प्रसाधिताइँ । घरघर स्वजनै अलाधिकाइँ ।
घरघर बहुचंदन-छटा दीन । मरु-कुन्द-चनय-दवना-प्रकीर्ण ।
घरघर स-रेणु[1]-रज-पिंजरीउ । सोहंति चूत तरु-मंजरीउ ।
घरघर नर्तंहि कौतूहलाइँ । घरघर अंदोले सोहलाइँ ।
घरघर कृत-वास्त्राभरण सोह । घरघर आरब्ध महाप्रघोष ।
घरघर स्वरूप-रंजित-मनाइँ । युवती जोवैँ (मुंह) दर्पणाइँ ।
घत्ता । घरघर जन-मंगल-कलश किय, घरघर देवय अवतदिणा ।
घरघर शृंगारवेष धरेँऊ, नाचेउ वरयुवतिहिँ उच्छलिया ॥९॥
सो गजपुर सो पौरसमागम । सो सित-पक्ष वसंतहँ आगम ।
सोइँ निरंतराइँ चूत-वनइँ । सोइ धवलपुंजचियइँ भवनइँ ।

---

[1] पटवास, सौगंधिक चूर्ण

सो वहु परिमलट्ठु वण-तूरउ । पिय-सुह-सीयलु दाहिण मारुउ ।
सो पुर-सोह कासु उवमिज्जइ । जा पिक्खवि सुर हमिरइ दिज्जइ ।
जहिँ उज्जाण-पुरइ सुहसंचिय । दाहिणपवन पहय-कुसुमंचिय ।
जहिँ मरुकुंद-कुसुम संचलियउ । दवणय-मंजरीउ नव हरियउ ।
जहिँ आयंविर फुल्लप लासउ । सोहइ नाइ पलित्तु हुवासउ ।
जहिँ वहु रस-विसेस-वस-कमलइ । वहु-कुसुमइ घुणंति भमर-उलइ ।
घत्ता । जहिँ मालइ-कुसुमामोयरउ, चुंवंतु भमइ वणि महुअरऊ ।
अइमुत्तए'वि जहि रइ करइ, सो वरवसंतु को न सरई ॥१०॥

—वहीं पृ० ५६-५

(२) नारी-सौन्दर्य

दिट्ठि कुमारि वियणि सोवणघरि । लच्छि नाइँ नव-कमल-दलंतरि ।
जिण-सासणि छज्जीव दया इव । पंडिय-मरणि सुगइ वरिमाइव ।
मुहुमारुइण मलय-वणराइव । सिंहलदीवि रयणविख्याइव ।
सोहइ दप्पणि कील करंती । चिहुर-तरंग-भंग विवरंती ।
सो फलिहंतरेण सा पिक्खइ । सावि तासु आगमणु न लक्खइ ।
घत्ता । नं वम्मह भल्लि विवण-सील जुवाण-जणि ।
तहि पिक्खिवि कंति , विभिउ झत्ति कुमारमणि ॥८॥
उप्पल दल-दीहर-पायहिँ । नह-मणि-किरण-करंबिय-छायहिँ ।
जंघोल्य गुज्झंतर पासइँ । सुणियत्थइँ णिम्भीण परिवासइँ ।
पोत्तंतर उब्भिन्न पयासइँ । तं विहसंति पिहिय परिहासइँ ।
वियडु नियंव-विवु सोहिल्लउ । रेहइ अद्धाइद्ध कडिल्लउ ।
रोमावलि वलि अंगि विहावइ । थिय पिपीलि-रिंछोलि'व नावइ ।
रसणादाम निवंधणु सोहइ । किंकिणरणझणंतु मणु खोहइ ।
मयणासल्लु कढियन्तु किमु मज्झइ । नज्जइ करयल मुट्ठिहि गिज्झउ ।
तिवलि-तरंगइँ नाही-मंडलु । नं आवत्ता-इद्धु महाजलु ।

सो बहुपक्खिसनाहय-सर-नूपँउ । प्रिय-सुर-सीयल-दक्खिणमारुउ ।
सो पुर-सोभाँ कासु 'पमिज्जै । जा पेक्खिय सुर अचरज दिज्जै ।
जहँ उज्जाणपएँ सुर-संचिय । दक्खिण-पवण-जनित-कुसुमंचिय ।
जहँ मग-कुंद-कुसुम संतनिगड । दवना-मजरीउ नव-छिन्नियउ ।
जहँ मालासहु फुल्लपलासउ । सोहँ न्याइँ प्रदीप्त-हुतासउ ।
जहँ-बहुतर विसेस-नव कमलइँ । बहुकुसुमेँ धुनति भ्रमरकुलइँ ।
घत्ता । जहँ माकंनि-कुसुमामोदन्त, भुवन भमेँ वनेँ मधुकरऊ ।
अतिसुललितउ जहँ रति करई, सो वर-वसन को न स्मरई ॥१०॥
—वही पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दीस कुमारि विजनेँ योवनधरेँ । लक्षिम न्याइँ नवकमल-दलतरेँ ।
जिन-शासने ध्रुव जीव-दया इव । पंडित मरनेँ सुगति-वरिग्गा इव ।
सुर-सायरेँ मलय-वन-राजि'व । सिंहलद्वीपेँ रतन-विख्याति'व ।
सोहै दर्पणेँ क्रीड़ाँ करंती । चिकुर - तरंग - भंग विवरती ।
सो स्फटिकांतरेहिं तहिं पेखइ । माणि तासु आगमन न लक्खई ।
घत्ता । जनु मन्मथ-भल्ल-विधानशील युवान-जनेँ ।
ताहि पेक्खिय कांति, विस्मेउ भट्ट कुमार मनेँ ॥८॥
उत्पलदल-दीरघ-पायहिं । नख-मणि-किरण-करंवित-छायहिं ।
जंघ-उरु-गुह्यान्तर-रासइँ । सुनिवसितेँ भीन परिवासइँ
रासइँ । तेहिं वह संति पिहित-परिहासेँ ।
कट - नितंब-बिंब सोहिल्लउ । राजै अर्द्धोग्रर्द्ध कटिल्लउ
अंगेँ विभावै । थिउ पिपीलि-रेखा इव नावै ।
खला-दाम-निबंधन सोहै । किंकिणि रण-झणंत मन क्षो
तट कृश-मध्यउ । आवे करतल-मुष्टिहु ग्राह्यउ ।
त्रिवलि-तरंगइ नाभीमंडल । ननु आवंता ऋद्धि-महा

पीणुन्नय-निविडइँ थणवट्टइँ। निब्भिदइँ हारावलि थट्टइँ।
मालइ-माला कोमल-वाहउ। रयण-कडय-केऊर-सणाहउ।
सरलंगुलि सुरेह कोमल कर। संभा-वयव 'नाइँ नहतंविर।
रयणाहरण विहूसिय कंठि। वेलासिरि'व उयहि-उवकंठि।
किउ अपमाणु णिउत्तु मुहुल्लउ। अहरउ नावइ दाडिम-हुल्लउ।
उत्तुंगिं तिक्खग्गें नासि। पच्छन्नेण'व अमुणिय सासें।
कन्निहिँ कुंडल-जुअ-गंडयलिहिँ। नयणिहिँ दीह-कसण-चलधवलिहिँ।
भउहा-जुअलएण सुविहत्तें। भालयलेण अद्ध-ससिपत्तें।
महुपिय-पेसल महुरालाविं। सिरु आवंचिय केस-कलाविं।
सो पिक्खेवि अणोवमरूवें। अच्छेरइँ विब्भम संभूवें।
वोल्लाविय नायइ-परिहासइँ। मणहर-कामुक्कोवण-भासइँ।
"हे मालूर[1]-पवर-पीवर-थणि। अच्छहिँ काइँ इत्थु वज्जिय जणि।
कारणु काइँ नयरु ज सुन्नउँ। मढ-विहार-देहुरहिँ रवन्नउँ।
राणउ कवणु आसि इह राउलि। धय-तोरण-मणि-खंभ-रमाउलि।"
तं निसुणेवि सलज्जिय-वयणी। थिय हिट्ठामुह पगलिय-नयणी।
मइल-कवोल कज्जला-मीसिय। नियकुल-देवयाइँ मं भीसिय।
घत्ता। वरइत्तु पुत्तियहु तउतणउ, मुहकमलु निहालहिँ करि विणउ।
लइ जलु पक्खालहि लोयणइँ, मं चिरु करि दुक्खुक्कोयणइँ॥
—वहीं पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निय-पुत्त-विढत्तु णिक्खिवि अतुलु महाविहउ।
वट्टिउ सिंगारु पइ परिहरिउ, परिहरिविगउ॥
कमलइँ पुन-पयाव फुरंतिएँ। लइउ दिव्वु आहरणु तुरंतिए।
बद्धु कडिल्लि अलक्खिय नामउ। उप्परि पीडिउँ रसणादामउ।

---

[1] मालिन्य (फल)

पीनोन्नत-निविडउँ स्तनवट्टैं। निर्भिदैं हारावलि उट्टैं।
मालति-माला - कोमल - बाहउ। रत्न - कटक - केयूर - सनाथउ।
सरलांगुलि-सुरेख कोमल कर। सन्ध्या वंदय ज्याउँ नख-चामर।
रत्नाभरण - विभूषित कंठे। शंखावलि'व उदधि - उपकंठे।
सिउ धवमान अगुरु-सुगन्धउ। अधरउ लावउ दाडिम-कुसुमउ।
उज्जले तीक्ष्णाले नालें। प्रल्हडेंहि 'व धवल स्वालें।
कर्णे कुंडल-युग गण्ड-स्थले। नयनेहिँ दीर्घ-कृष्ण-नव-धवलें।
भौंहा युगलहिँ सुविभक्तें। भाल-तलेहि अर्ध-शशि-रूपे।
मधु-प्रिय-कोमल-मधुरालापें। शिर आच्छादिय केश-कलापें।
सो पेक्खिया अनुपमरूपा। अप्सराइँ विभ्रमलं-भूता।
बोलेइ नागर-परिहासइँ। मनहर-कामु-उद्दीपन-भासइँ।
"हे सुन्दर प्रवर-शेखर-पति ! आछेहि' कांहु इहाँ वर्जित-जनें।
कारन काहै नगर जो सूना। मठ-विहार-देवलहिँ रमना।
दाना कवन आनि' गृहि गउलें। ध्वज-तोरण-मणिगृह समाकुले।"
सो सुनियाउ सलज्जिय-वदनी। थिउ हेट्ठामुख पघरिय-नयनी।
मद्दल-कपोल कज्जला-मिश्रिय। निजकुलदेवताइँ जनु भीषिय।
घत्ता। पश्चात पुत्रियह नयकेरउ, मुखकमल-निहारहिँ करि विनय।
लेइँ जन पक्खारें' लोचनइँ, जनु निर करि दुःखुल्लोचनइ॥
—वहीं पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निज पुत्र विदग्धता पेखि, अतुल महाविभव।
वाटेँउ शृंगार पति परिहरेँउ गउ॥
कमला पुत्र-प्रताप स्फुरंतिएँ। लयेँउ दिव्य-आभरण तुरंतिएँ।
बाँधु कटिल्लि अलक्षित-नामउ। ऊपर पीडेँउ रसनादामउ।

---

[1] रमणीय		[2] हो

मुक्कउ किंकिणीउ नउ संकिउ । भरिवि रयण-कंचुकउ तडक्किउ ।
मुद्ध मराल-जुयलि किउ छन्नउँ । कंबुकंठ कंदलिए रवन्नउँ ।
पीण-घणत्थण-मंडल-हारि । सिरु धम्मिल्ल-कुसुम-पब्भारि ।
कन्नहिँ कुंडलाइँ आइद्धइँ । उप्परि वेढियाइँ पहँचिधइँ ।
पूरिउ रयण-चूडु मणि-वलयहोँ । दिन्नइँ केँउरइँ बाहु-लयहो ।
अंगुलीय मणि मुज्जावत्तउ । वीसहिँ अंगुलीहिँ पक्खित्तउ ।
पय-मणिवद्धय नेउर-जुयलउ । सुह-सजनिय महुर-रव-मुहलउ ।
जंघाजुयलि रयण पज्जत्तउ । कडियलि[1] रसण-कणय-कडि-सुत्तउ ।
मुहि मणि-चूडहोँ कंकण जुयलउ । सोहिउ अद्धहारि वच्छयलउ ।
एमाहरणु लेवि सविसेसि । थिय नंदणहोँ वियडि परिओसि ।
—वहीं पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता । तो वुच्चइ अहरु पुरंतियइँ णिवसंतिहि तउतणइँ घरि ।
उप्पाइय केणवि भंति पहु, जा सा कहि मं हियइ धरि ॥७॥
तुहुँ पुरवरहोँ सव्व-माहारणु । जाणहिँ कज्जाकज्ज-वियारणु ।
णवर णिरारिउ विप्पियगारउ । सुहियउ होइ संगु तुम्हारउ ।
सेविज्जंति विचित्त सणेहउ । मंछूडु तुहुँ जिण जम्मिवि एहउ ।
तो वरइत्ति वुत्तु अवंकउ[2] । को सक्कइ तउ करिवि कलंकउ ।
हउंमि णाहि तउ विप्पिय-गारउ । जाणहिँ तुहुँ जि संगु अम्हारउ ।
णवर ण जाणमि काइमि कारणु । जाउ असत्थ पियम्म निवारणु ।
केम कंतिपइँ मणिण कलंकमि । खणमित्तु'वि देक्खणहँ न सक्कमि ।
मउ-चलंति णियंतहोँ णयणइँ । अणगमऊ करंति तव वयणइ ।
घत्ता । अच्छंतु ताम पियविप्पियइँ, एक्कंगणिवि म रइ करहि ।
पग्यिाणिवि एही कज्जई, ज जाणहिँ त मणि वरहि ॥८॥

---

[1] कटितल [2] अ-कुटिल

गुम्फउ किंकिणिउ ना मर्केउ। भरिउ रतन-कंचुकउ तरुणकउ।
मूर्धं मराल-युगलें किउ छमउ। कंचुकउ-कदलिगें रमग्नउ[1]।
पीन-घन-स्तनमंडल-भारें। सिर-धम्मिल्ल-कुसुम-अव-भारें।
कर्णहिँ कुण्डलाइँ ग्रावहीं। ऊपर बेठियाइँ श्रम-चिन्हैं।
पूरेंउ रतन-चूड मणि-वलयहों। दीनी केयूरहँ बाहुलतहों।
अंगुलीय-मणि मुजावत्तउ। दीनहिँ अंगुलीहि प्रक्षिप्तउ।
पद-मणि-बद्धउ नूपुर-युगलउ। गुण-गंजनित मधुर-रव-मुखरउ।
जंघा-युगलें रतन-प्रभू-जुत्तउ। कटितलें रतन-कनक-कटिसूत्रउ।
भुजें मणि-चूडहों कंकण-युगलउ। सोहेंउ अर्धहार वक्षतलउ।
ए आभरण नंद मयिलोगें। ठिय नंदनहों विकट परितोषें।

—वही पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता। तो बोले अधरस्फुरंतियइँ, निवसंतिहि तवकेर घरे।
उत्पादिय कैसेंहुँ भ्रान्ति प्रभु, या ना काहि न हृदय धरे॥७॥
तव पुरवरहों सर्व-साधारण। जानैं कार्याकार्य-विचारन।
केवल अत्यन्त विप्रिय-कारउ। सुहृदउ होइ संग तुम्हारउ।
मैथिज्जइँ विचित्र-सनेहउ। मत्सर तोहि न जन्मेंउ एहउ।
तो वरयातो बोल अवंकउ। को सक्कै तव करव कलंकउ।
हौंहु नाहि तव विप्रिय-कारउ। जानै तुहुँहु संग हम्मारउ।
केवल न जानौं काहुउ कारण। जाउ अस्वस्थ प्रियम्म्[2]-निवारण।
•केम कांति लेइँ मनेहिँ कलंकउँ। क्षणमात्रउ देखवहु न सक्कउँ।
मद चलंति देखंते नयनइँ। अनरामउ[3] करंति तव वदनइँ।
घत्ता। रहै तांह प्रिय-विप्रियइँ, एकांगनेहु न रति करहि।
परि-जानिय एँहि कार्यगती, जो जानहि सो मनें धरहि॥८॥

---

[1] या [2] प्रेम, प्रियतम [3] अनभीष्ट

णिसुणिवि तासु परम्मुह वयणइँ। मुहुँ मउलिउ जलभरियइँ णयणइँ।
हियवइ निब्भरु मणु सम्मारिउ। "दुक्खु दुक्खु" पुणु मणु साहारिउ।
थिय गरुयाहिमाणि मणु लाइवि। मच्छरु माणु मरट्टु पमाइवि।
णउ पहसइ णउ तणुसिंगारइ।
णउ केणवि सहु णयण-कडक्खइ। णउ कासुवि गुणदोसइँ अक्खइँ।
तोवि ताहँ घरवइ ण सुहावइ। अवखेरतु पुणुवि वोल्लावइ।
अच्छहिँ काइँ एत्थु दुक्कदिरि। णीसरु कंति जाहि पियमंदिरि।
त दुव्वयण वासु असहंती। णिग्गय परिमणु आउच्छंती।
—वहीं पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार, राजांगण

रायगणंगणि पयडिवि दुट्ठहों दुच्चरिउ।
तं निसुणहु जेम भविसयत्ति-जसु वित्थरिउ।
दाइय दुप्पपंचु आयन्निवि। माण-कसाय-सल्लु मणिमन्निवि।
हरियत्तहों संकेउ समासिवि। कमलदलच्छि लच्छि संवासिवि।
नियय जणेरि वयण संपेसिवि। पुव्वावर संकेउ गवेसिवि।
वहु नवल्ल पाहुडइँ समारिवि। चदप्पहुँ जिणवरु जयकारिवि।
निग्गउ वणिवरिंदु पडुवारहों। भडयड-निवह-विसम-संचारहों।
जहिँ गय गुलगुलंति पिहु जंगम। हिलिहिलंति तुक्खार-तुरंगम।
जहिँ मंडलिय सक्क-सामंतहँ। निवडिय कणयदंडु पइसंतहँ।
गलइ माणु अहिमाणु न पुज्जइ। निय-सच्छंद-लील नउ जुज्जइ।
जहिँ अव्‌-भोट्ट[1] जट्ट जालंधर। मालअ-टक्क-कीर-खस-वब्बर।
मरु-वेयंग-कुंग-वेराडवि। गुज्जर-गोड-लाड-कन्नाडवि।
इय एमाइ अउव्व-वसुंधर। अवसरु पडिवालंति महानर।

[1] देशोंके नाम

सुनिया तासु परासुत-वयनैं। सुत सुकुलें उ जन भरियउ नयनैं।
हियवइ निर्भर मन संभारें उ। "दुःख दुःख" पुनि मन संधारें उ।
ठिउ गर्व्वाभिमान मन लाइय। मन्मथ-मान-दर्प प्र-मार्जेउ।
ना प्रहसं ना मन सृगारे। .... ।
ना काढ़हि संग नयन कटाक्षै। नहि कानुई गुण-दोषैं आगे[1]।
नेह नारैं परपनि न सोंहावै। अपमानेंत पुनिहु बोलावै।
"अच्छहि काहें जहाँ कुपुरुष-कहिं। सोनिय कान्त ! जाहि प्रियमंदिरें।"
सो दुर्वचन-बाण अनहंती। निर्-गउ परिजन आ-पूछंती।
—वहीं पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार राजांगण

राजांगण जाइ प्रकटिउ दुष्टहँ दुश्चरितू।
सो सुनहु जिमि भविषदत्त-यश विस्तरिउ॥
दंभिय दुष्प्रपंच आकर्णिय। मान-कषाय-शल्य मनें मानिय।
दुश्चित्तहों संयेन नमासें उ। कमलदलाक्षि-लक्ष्मि संवासें उ।
निजहिं जनेरि-वचन संप्रेषिय। पूर्वापर संकेत गवेषिय।
बहु नवल्ल पाहुडइँ[2] सौभाग्यि। चंद्रप्रभ-जिनवर जयकारिय।
निर्-गउ वणि-वरेन्द्र प्रभु-द्वारहों। भट-छट-निवह-विषम-संचारहों।
जहँ गज गुलगुलंति पृथु जंगम। हिलहिलंति तूषार-तुरंगम।
जहँ मटलियें अन्न-सामन्तहँ। वारेउ कनकदंड पइसंतहँ।
गर्ने मान अभिमान न पुज्जै। निज-स्वच्छंद लील ना जुज्जै।
जहँवाँ भोट-जट्ट-जालंधर। मारुव-टक्क-कीर-खस-बर्बर।
मरुवे - अंग - कुंग - वैराटउ। गुर्जर - गौड - लाट - कर्नाटउ।
ई एताइं अपूर्व-वसुंधर। अवसर प्रतिपालंति महानर।

---

[1] बोलै [2] प्राभृत (=भेंट)

घत्ता । सामंत-सएँहिँ जं सेविज्जइ रत्तिदिणु ।
तं रायदुवारु पिक्खिवि कासु न खुट्टइ मणु ॥

—वहीं पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता । चिन्हइँ दरिसंतु महत्तरइँ, सज्जण-जण-हियवउ भरइ ।
आणंद णंदि-कलयल-रवेण, उज्झासाल पईसरइ ॥
तहिवि तेण गुतु वयण णिउत्ति । परमागम-कल-गुण-संजुत्ति ।
पुणि अक्खर संकेय-कयत्थें । वहु वायरण-सद्द-सत्थ-त्थें ।
नयनकला-कलाव-परियाणिय । अवगाहण-सत्तिए लहु जाणिय ।
जोइस-मंत-तंत वहु-भेयइँ । धणु-विन्नाण वाण-गुण-छेयइँ ।
विविहाउहइँ विविह-संवरणइँ । रणि हत्थापहत्थ-वावरणइँ ।
दिण्ण पहर पडिपहर पमुक्कइ । लक्खण-चलण-चंचला ढुक्कइँ ।
मल्लजुज्झ आवग्गण-संचइ । ढोक्कर-कत्तरि करण पवंचइँ ।
गय-तुरंग-परिवाहण मंन्नइँ । सारासार-परिक्खण गन्नइँ ।
घत्ता । एमाइ विसिट्ठइँ अण्णहिँमि अगउ गुणिहिँ तासु वरिउ ।
जिण महिम पुज्ज दाणोच्छविण उज्झासालहिँ णीसरउ ॥२॥
उज्झासाल मुएँवि घरु आयहों ।.थिर-गंभीर-गुणिहिँ विक्खायहों ।

—वहीं पृ० ८

(३) युद्ध (भविसदत्तका)

कमइँ पहरंताँ गामिगामि । परिभमिय विसम-भंडण-करालि ।
भडयणु अण्णं परिक्रोह जाम । पाइक्कहों परसु न होइ ताम ।
न मरहु वयण मुणेवि तेण । अवलोइय नर हरिसियमुएण ।
विट्ठइँ सम्माणइँ जोह जाम । पाइक्कहों परसु न होइ ताम ।

घत्ता । सामंत सनेहिं जो सेविज्जै रातिदिन ।
सो राजकुमारहिं पेनि कासु न गहै मन ॥

—वहीं पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता । तिन्हैं वसंत महोत्सवहिं, सज्जन-जन-हृदयउ भरै ।
आनंदनंदि-कलकल-रवेहिं, पाध्या-साला[1] पइसरै ॥
तहीं तेहिं गुरुवचन-निउनें । परमागम-कलाँ-गुण-सगुनें ।
पुनि अक्षर-गणित-कलायें । वहु व्याकरण-शब्द-शास्त्रार्थें ।
सकल-कला-कलाप-परिजानिय । अवगाहन शक्तिएँ वहु जानिय ।
ज्योतिष-मंत्र-तंत्र बहुभेदइँ । धनु-विज्ञान बाण-गुण-छेदइँ ।
विविध-आयुधइँ विविध-सवरणें । रणें हस्त-लाघवत्त व्यापरणें ।
दीनु प्रहार प्रतिप्रहार प्रमुक्तइँ । लक्षण-नर्तन-चंचला-हुक्काइँ ।
मल्लयुद्ध आवल्गन गंजइँ । डोंगर-कलरिं-करन प्रपंचइँ ।
गज-तुरंग-परिवाहन संज्ञइँ । नारागार-परीक्षण शिक्षइँ ।
घत्ता । एताइँ विशिष्टइँ, अन्यहँउ अंगउ, गुणेहिं तासु वरिऊ ।
जिन-महिम-पूज-दानोत्सवेहिं, पाध्याशालहिं नीसरिऊ ।
पाध्याशाल मुँनि घर आयउ । थिर-गंभीर-गुणेहिं विख्यायउ ।

—वहीं पृ० ८

(३) युद्ध (भविषदत्तका)

प्रथमउँ प्रहरंतउ स्वामिशाल । परिभ्रमिय विषम-भंडन कराल ।
भट-उट आशा-परिहोइ जाहँ । पायक्कहों पसर न होइ ताहँ ।
सो मंत्रिहु वचन सुनीय तेहिं । अवलोकेंउ नर हर्षित-भुजेहिं ।
दृष्टें सम्मानें योध जाहँ । पाइक्कहों प्रसर न होइ ताहँ ।

---

[1] उपाध्यायशाला, पाठशाला

पसरइ साकेय-नरिंद-सिन्नु । रोमंच उच्च कंचुअ पवन्नु ।
हरि-खर-खुर-रवि खोणी खणंतु । गयपय पहारि धरदरमलंतु ।
"हणु मारि मारि" कलयलु करालु । सन्नद्ध वद्ध भड-थडव मालु ।
तं निएँवि सधणु अहिमुहुँ चलंतु । धाइउ कुरु साहणु पडिखलंतु ।

घत्ता । कलयल-गंभीरइँ दिन्नसरीरइँ, हय-रणभेरि-भयंकरइँ ।
कुरुपोयणवल्लहँ अणिहय-मल्लहँ भिडियइँ वलइँ समच्छरइँ ।।

दुवई । सो हरि-खर-खुरग्ग-संघट्टि छाइउ रणु अतोरणे ।
णं भड-मच्छरग्गि-संधुक्कण धूमतमंधयारणे ।।

धूलीरउ गयणंगणु भरंतु । उट्ठिउ जगु अंधारउ करंतु ।
नउ दीसइ अप्पु न परु स-खग्गु । न गइंदु न तुरउ न गयणमग्गु ।
तेहवि काले अविसट्ट-मोह । हुंकारहु पहरु मुअंति जोह ।
किवि आहणंति दिसि वहु मुणेवि । गय-गज्जिउ हय-हिंसिउ सुणेवि ।
किवि कोक्किकवि पडिसद्दहों चलंति । असि-मुट्ठिए निय-लोयण मलंति ।
धावंतु कोवि अहियाहिमाणु । गयदंतहिँ भिन्नु अपिच्छमाणु ।
कत्थइ पहराउर[1] अयसमोह । गयघड पयट्ट निहणंति जोह ।
रउ नट्ठु विहिंडिउ भडवलेण । महि मुद्दिय वण-सोणिय-जलेण ।

घत्ता । तो गय-वड पिल्लिउ सुहडहिँ मिल्लिउ अवरुप्परि कप्परियतणु ।
सरजालो मालिउ पहर करालिउ, भमरावत्तिं भमिउ रणु ।।

दुवई । तो इयकवयकन्न-पंगुरणहिँ सुहडहिँ नारसिंहहिँ ।
दट्ठ-दाढ़ा-कराल-मुह-भासुर लोलललंत जीहाहिँ ।।१।।

गज्जंतु भमिडँ करवट्ट सिन्नु । ओसारु निविड गयघडहिँ दिन्नु ।
तेहइ वि कालिं सोंडीर-वीर । पहरंति सुहड संगाम-धीर ।
केणवि कासुवि असिघाउ दिन्नु । उरु सिरु स-खग्गु भुअ-दंडु छिन्नु ।
अनि वाहइ कोवि गलन्त सेसु । हत्थेण धरेवि पडंतु सीसु ।

धसई साहिल-नरेन्द्र शीर्ष । सीमांत उन्न-कंचुक प्रावरण ।
रवि-रथ-सम-नदे क्षोणी गगन । गजपदभरहँ धर दरदरंत ।
"हन, मार,मार" कलकल-कराल । नभल वक्र भटठटहँ माल ।
तो निजहु न-धनु अभिमुख चलन । धावें उ पुर-साधन¹ प्रतिगलंत ।
घत्ता । कलकल-गंभीरहिँ, वीणंसगीरहिँ, हन-रणभेरि-भयकरहिँ ।
गुरुजनवल्लभ, अनिमिल-मल्लहँ, भिडियँ वलइ समरंगहिँ ॥
द्विपदी । तो हरि-गरि-तुरग-नपट्टें, छाइउ रणप्रतोरणे ।
जनु नट-मलार-'गिन-नयुक्षण धूसनम'न्धया रणे ॥
धूली-रज गगनांगणें भरंत । उट्ठेउ जग-अंधारउ करंत ।
ना दीसै आपु न पर न-राह । न गयंद न तुरग न गगन-मार्ग ।
तेहिं काले अ-विमृष्ट-मोह । हुंकारहु "प्रहर" मुंचति योध ।
केउ आस्फलनि दिसि-वसु मॉलेइ । गज-गर्जन हय-हिंहिन सुनेइ ।
केउ कोसिकउ प्रतिशब्दहु धरंति । असि-मुष्टिहिँ निज-लोचन मलति ।
धावंत कोइ अधिकाभिमान । गजदंतहिँ भिन्दु आपृच्छमान ।
कनहुँ प्रहरातुर अयश-मोह । गजघट-प्रवृत्त नि-हनंति योध ।
रज नाष्टउ छिडिउ भटयलेहिँ । महि मुद्रिय व्रण-शोणित-जलेहिँ ।
घत्ता । गजघट पेल्लेउ सुभटहिँ मिल्लेउ, अपरोपरि कर्परिय तनू ।
शरजाली मालेउ, प्रहर करालेउ, भ्रमरावर्त्तें भ्रमेउ रणू ॥
द्विपदी । तो एकहिँ एक आगुरणहि सुभटहिँ नरसिंहहिँ ।
दृढ दंष्ट्रा-कराल मुख-भासुर लोललसंत जीभहिँ ॥
धावंत अमिउ वार-वाहें-शीर्ण । ओसार निबिड गजघटहिँ दिन्न ।
तेहिँ काल शौटीर-प्रवीर । प्रहरंति सुभट संग्राम-धीर ।
केहुउ काहुहिँ असिघाउ दिन्न । उरु-शिर स-खड्ग भुजदंड छिन्न ।
असि वाहै कोउ गलार्ध-शेष । हाथेहिँ धरेउ पडंत-शीश ।

---

¹ सेना

केणवि आरोडिउ लंवकन्नु । वंचेवि फरसु कुंतेण भिन्नु ।
केणवि रणि तज्जिउ एक्कवाउ । विज्जाहर करणि दिन्नु घाउ ।
केणवि ढुक्कंतु ललंतु जीहु । दोखंडिवि पाडिउ नारसीहु ।
कत्थइ कडु आविय गयहँ पंति । परिभमिय सुहड सीसइँ दलंति ।
कत्थइ पहराउर दुन्निवार । हिंडिय[1] तुरंग पडि आसवार ।
कत्थइ सरोहु वण सोणियंधु । सुरहिउ करि नरकेसरिहि खंधु ।
एहइ वट्टंतए रणि असक्कि । मंतणउँ जाउ महिवाल चक्कि ।
"अहो ! अच्छइ हु काइँ निरावसन्न । कुरुवइहि ओंसारिय लंवकन्न ।
मंछुहु दुज्जउ भूवाल राउ । दीसइ धणपइ-सुउ वहु-पसाउ" ।
तं मंतिवयणु हियवइ धरेवि । उट्ठिय सयलवि समहरु करेवि ।
घत्ता । महिवइ सामंतिहिँ समरि भिडंतिहिँ कुरुवइ साहणु ओसरिउ ।
दिढ पहर करालिउ समरस-जालिउ, रणमहि मिल्लिवि नीसरिउ ॥१५॥
दुवई । भग्गइ सामि सिन्नि पइसंतए पसरिवि निययमंडले ।
निरु खलभलिय गाम-पुर-पट्टण, तहिँ कुरुभूमि-जंगले ॥

—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीं सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००९-४२) ।

१—तैलप-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

ण राजिटँ नहृ काजू, भोज-गुणागर तूह विणु ।
काठ दिवारउ आज, जिम जरई भोजह मिलूँ ॥

---

[1] भटका फिरता है

२–सुखी कुटुंब

भोली मुन्धि म गव्वु करि, पिक्खवि पहु-रुवाइँ ।
चउदह-सइँ छहुत्तरइँ, मुंजह गयह गयाइँ ॥
च्यारि वइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बुल्ली नारि ।
काहू मुंज कुडंवियहँ, गयवर वज्झइँ वारि ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

३–दासी[1]-प्रेम-निंदा

दासिहिँ नेह न होइ, नाना निरहीँ जाणियइ ।
राउ मुंजेसरु जोइ, घरिघरि भिक्खु भमाडियइ ॥[2]
वेसा छंडि वडायती, जे दासिहिँ रच्चंति ।
ते नर मुंजनरिन्द-जिम, परिभव घणा सहंति ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

४–नीति-वाक्य

जे चयरा गोला नई, हूँ बलि कीजूँ ताह ।
मुंज न दिट्ठउ विहलिऊ, रिद्धि न दिट्ठु खलाहँ ॥
जा मति पच्छइ सम्पजइ, सा मति पहिली होइ ।
मुंज भणइ मुणालवइ, विघन न वेढइ कोइ ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

५–वैराग्य

[illegible] वाटी ।
एकला आव्वो एकला जाव्वो हाथ-पग वेहु झाटी ॥
—प्रबंधचिंतामणि, पृ० ५१

२–मुग्धा कुटुंब

भोली मुग्धे ! न गर्व कर, देखेहि [illegible] ।
चौदहसौ छेहत्तर, मुंज गजा गयाइँ ॥
[illegible] त्रिकूट-[illegible] [illegible] ।
[illegible] ! [illegible], [illegible] ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

३–दासी-प्रेम-निंदा

दासिहिं नेह न होइ, [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] ।
जे नर [illegible] जिमि, परिभव पाप लहंति ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

४–नीति-वाक्य

थक्कें[1] गोदा नदी, तौं [illegible] नाह ।
मूज न [illegible] विहण्यिउ, [illegible] न दीनु गलाहँ ॥
मति पाछे ऊपजै, सा मति पहिले होइ ।
मुंज भनै मृणालवति, विघन न बाढै कोइ ॥
—प्र० चि०, पृ० २४

५–वैराग्य

कणुकर रे पुत्र-कलत्र-धी कणुकर रे कर्षण-वाटी ।
एकले आइव एकले जाइव हाथ-पग दोनों झाटी ॥
—प्रबंध चिंतामणि, पृ० ५१

---

[1] ठंर रह्यो, ठहर जाय

§२९. अब्दुर्रह्मान[1]

काल—१०१० ई० । देश—मुल्तान । कुल—जुलाहा (मीरसेन । मीरहसन)

१—परिचय

अणुराइयरयिहरु कामिय-मणहरु, मयण मणह-पह-दीवयरो ।
विरहिणिमइरद्धउ सुणहु विसुद्धउ, रसियह रस-संजीवयरो ॥२२॥
अइणेहिण भासिउ रइमइवासिउ, सवणसकुलियह अमिय सरो ।
लइ लिहइ वियक्खणु अत्थह लक्खणु, सुरइ-संगि जु विअड्ढ-नरो ॥२३॥

२—प्रोपितपतिकाका संदेश

(प्रोपितपतिका पथिकको रोकती है)

धम्मिलउ मुक्कमुह, विज्जंभइ अरु अंगु मोडई ।
विरहानलि संतविअ, ससइ दीह कर-साह तोडई ॥
इम मुद्धह विलवंतियह महि चलणेहि छिहंतु ।
अद्धुड्डीणउ तिणि पहिउ पहि जोयउ पवहंतु ॥२२॥
तं जि पहिय पिक्खेविणु पिअ-उक्कंखिरिया,
मंथर-गय सरलाइवि उत्तावलि चलिया ।
ताह मणहर चल्लंतिय चंचलरमणभरि,
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
तं जं मेहल ठवइ गंठि णिट्ठुर सुहय,
तुडिय ताव थूलावलि णवसर-हारलय ।
सा णिवि णिवि संवरिवि चइवि किवि संचरिया,
णेउर चरण-विलग्गिवि तह पहि पंखुडिया ॥२७॥

---

[1] पच्चाए सि पहूओ पुव्वपसिद्धो य मिच्छदेसो त्थि ।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स ॥३॥

§ २६. अब्दुर्रहमान

पुत्त अद्दहमाण) (आरद्द)। कृति—संनेह-रासय (संदेश-रासक), शृंगारी कवि।

१—परिचय

अनुरागी-रतिधर कामी-मनहर, मदनमना पथ-दीपकरो।
विरहिणि-मकरध्वज सुनहु विशुद्धउ रसिकन रस संजीवकरो ॥२२॥
अतिस्नेहहिँ भाषेँउ रतिमतिवासित, श्रवण-शष्कुलिहिँ अमृतसरो।
लये लिखै विचक्षण अर्थंहिँ लक्षण, सुरति-संगेँ जोँ विदग्ध-नरो ॥२३॥

२—प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिक को रोकती है)

केशमुक्तमुख जँभाये अरु अंग मोडई।
विरहानलेँ संतपिय, श्वसै दीर्घ-कर-शाख तोडई॥
इमि मुग्धा विलपंती महिहिँ चरणेहिँ छुवन्ती।
अर्घोद्विग्ना सा पथिक पयेँ जोयउ चलतो ॥२५॥
तहि पथिकहिँ पेखिया प्रियहिँ उत्कंठितिका,
मंथर-गति सरलाइय उत्तावलि चलिया।
तिमि मनहर चल्लन्ती चंचलरमणभरी,
छुटी खिसकि रसनावलि, किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
ता मेखलहिँ राखि गाँठेँ निष्ठुर सुभगा,
टुटी तवहिँ स्थूलावलि नव-सर-हार-लता।
वह तेहिँ किछुक उठाइ किछुक तजि संचलिता,
नूपुर चरण लपटिया इमि पथि आ-पडिया ॥२७॥

तह तणयो कुलकमलो पाइय कव्वेसु गीय विसयेसु।
अद्दहमाण पसिद्धो संनेहय रासयं रइयं ॥४॥
—संदेशरासक (भारतीय विद्या (वंबई) मार्च १९४२ ई०)

गरुअउ परिहवु कि न सहउ, पइ पोरिस-निलएण ।
जिहि अंगिहि तू विलसियउ, ते दद्धा विरहेण ॥७७॥
विरह-परिग्गह छावडइ, पहराविउ निरवक्खि ।
तुट्टी देह ण हउ हियउ, तुअ संमाणिय पिक्खि ॥७८॥
मह ण समत्थिम विरहसउ, ता अच्छहु विलवंति ।
पालीरूअ पमाण पर, धण सामिहि घुम्मंति ॥७९॥
संदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाइ ।
जो काणंगुलि मूँदडउ, सो बाहडी समाइ ॥८१॥
ल्हसिउ अंसु उद्धसिउ, अंगु विलुलिय अलय,
हुय उव्विर वयण खलिय विवरीय गय ।
कुंकुम कणय-सरिच्छ कंति कसिणा वरिया,
हुइय मुंध तुय विरहि णिसायर णिसियरिया" ॥८७॥
पहिउ भणइ "पडिउंजि जाउ ससिहरवयणी,
अहवा किंवि कहणिज्जसु महु कहु मियनयणी" ।
"कहउ पहिय ! कि ण कहउ कहिसु कि कहिययण,
जिण किय एह अवत्थ णेहरइ-रहिय-यण ॥९१॥
जिणि हुउ विरहह कुहरि एव करि घल्लिया,
अत्थलोहि अकयत्थि इकल्लिय मिल्हिया ।
संदेसडउ सवित्थरउ तुहु उत्तावलउ,
कहिय पहिय ! पिय गाह वत्थु तह डोमिलउ ॥९२॥
पिय-विरह-विओए संगमसोए, दिवस-रयणि झूरंत मणे,
णिरु अंगु सुसंतह बाह फुसंतह, अप्पह णिद्दय किंपि भणे ।
तसु सुयण निवेसिय माउण पेसिय, मोहवसण वोलंत खणे,
मह गाहउ वत्थउ हरि गउ तक्खण, जाउ सरणि कसु पहिय ! भणे" ।
तह मेल्लिउ सकेविणु निगिनस-हव्वयणी,
हुइय णिमिस णिप्फंद सरोरुहदलनयणी ।

गरुओ परिभव किन सहौँ, तौँहिँ पौरुष-निलयँहिँ ।
जेहि अंगेँहिँ तु विलासियो, सो डाहेँउ विरहेँहिँ ॥७७॥
विरह-परिग्रह देहरिहिँ, प्रहरेउ निरपेक्षि ।
टूटी देह न हनेँउ हृदय- तुव संमानहिँ पेखि ॥७८॥
मैँ न समर्था विरह-सँग, सो रहऊँ विलपन्ति ।
पालिय रूप प्रमाण पुनि, घनि स्वामीहिँ घुमन्ति ॥७९॥
संदेसड़ो सविस्तरो, पर मोहिँ कहेँउ न जाइ ।
जो कनगुरिया मूँदड़ी, सो बाँहडी समाइ ॥८१॥
ह्रसेँउ तेज उद्दसेँउ अंग विखरिय अलकेँ,
हुअ फिक्कंफिक वदन स्खलित-विपरीत-गती ।
कुंकुम-कनक-सदृश कान्ति .. कलुपावृतिया,
हुइ मुग्धा तुव विरहेँ निशाचर निशिचरिया" ॥८७॥
पथिक भनै "तैँ भेजु जाउँ शशिधरवदनी,
अथवा किछु कथनीय सोँ मोँहिँ कहु मृगनयनी" ॥८८॥
"कहौँ पथिक ! कि न कहौँ, कह्यु की कहेंकहिया,
जिन किय एहु अवस्थ नेहरतिरहितैंया ॥९१॥
जिन हौँ विरहकुहरेँ इमि करि छाड़िया,
अर्थलोभि अकृतार्थ इकल्ली मुंचड़िया ॥
संदेसड़ो सविस्तर, तुहुँ उत्तावलऊ,
कहेँहु पथिक प्रिय गाथाँ वस्तु तहँ डोमिलऊ ॥९२॥
प्रिय-विरह-वियोगे संगम-शोके, दिवस-रजनि झूरंत मने,
अति-भंग सुरन्तहँ वाष्पाश्रु वहंतहँ आपुहिँ निर्दय किमपि भने ।
तनु सुजन निवेशिय, भावहिँ पेखिय मोहवशेन वोँलंत क्षणे,
मन स्वामिय कल्पतरु हरि गउ तस्कर, जाउँ शरण कौनु पथिक! भने" ॥९५॥
एहु डोमिलउ भनी पुनि निश्वसन-हरवदनी,
हुई निमिष निष्पन्द सरोरुहनयनी ।

णहु किहु कहइ ण पिक्खइ जं पुणु अवरु जणु,
चित्ति भित्ति णं लिहिय मुंध सच्चविय खणु ॥९६॥
पहिउ भणइ थिरु होहि "धीरु, आसासि खणु,
लइवि वरक्किय ससिसउन्नु फंसहि वयणु"।
तस्स वयणु आयन्नि, विरहभर-भज्जरिया,
लइ अंचलु मुहु पुंछिउ, तह व सलज्जरिया ॥९८॥
"जइ अंबरु उग्गिलइ राय पुणि रंगियइ,
अह निन्नेहउ अंगु, होइ आभंगियइ।
अह हारिज्जइ दविणु, जिणिवि पुणु भिट्टियइ,
पिय विरत्तु हुइ चित्त, पहिय ! किम वट्टियइ ॥१०१॥
कहि ण सवित्थरु सक्कउँ मयणाउहवहिया,
इय अवत्थ अम्हारिय कंतह सिँव कहिया।
अंगभंगि णिरु अणरइ, उज्जग्गउ णिसिहि,
विहलंघलगय मग्ग, चलंतिहि आलसिहि ॥१०५॥
धम्मिल्लइ मंवरणु न घणु कुसुमहिँ रइउ,
कज्जलु गलइ कवोलिहि, जं नयणिहि धरिउँ।
जं पिया आसा मंगिहि अंगिहिँ पलु चडइ,
विरह-हुयासि झलक्किउ तं पडिलिउ झडइ ॥१०६॥
गुम्मारुह जिम मह हियउ, पिय-उक्कंखि करेइ।
विरह-हुयासि दहेवि करि, आसाजलि सिंचेइ" ॥१०८॥
पहिउ भणइ "पहि जंत अमंगलु मह म करि,
रुयवि रुयवि पुणरुत्त वाह संवरिवि धरि"।
"पहिय ! होउ तुह इच्छ अज्ज सिज्झउ गमणु,
मइ न रुन्नु विरहग्गि धूम लोयण सवणु ॥१०९॥
जंपइ कुणइ सुणेवि अंगु रोमंचियउ,
पंय पिम्म परिवट्टिउ पहिउ मणि रंजियउ।

तह जंपइ मियनयणि सुणिहि धीरयसु खणु,
किहु पुच्छहु ससिवयणि ! पयासहि फुड वयणु ॥१२१॥
णव-घणरिह-वि-णग्गय निम्मल फुरइ करु,
सरयरयणि पच्चक्खु झरंतउ अमिय-भरु।
तह चंदह जिण णत्थ पियह संजणिय सुहु,
कइयलग्गि विरहग्गिधूमि झंपियउ मुहु ॥१२२॥

३—ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"णव गिम्हागमि पहिय ! णाहु जं पविसयउ,
करवि करंजुलि सुहसमूह मह णिवसियउ।
तमु अणु-अंचि पलुट्टि विरह हवि तविय तणु,
वलिवि पत्त णिय-भुयणि विसंठलु-विहल-मणु ॥१३०॥
तह अणरइ रणरणउ असुहु असहंतियहँ,
दुस्सहु मलय-समीरणु मयणा-कंतियहँ।
वेसमझाल झलकंत जलंतिय तिव्वयर,
महियलि वण-तिण-दहण तवंतिय तरणि-कर ॥१३१॥
म-जीहट णं चंचलु णहयलु लहलहइ,
तडतडयड वर तिडइ ण तेयह भरु सहइ।
उन्हउ वोमयन्नि पहंजणु जं वहइ,
तं झंखरु विरहिणिहि अंगु फरिसिउ दहइ ॥१३२॥
चंदणु सिसिरत्थु उवरि जं लेवियउ,
तं सिहणह परितवइ अहिउ अहिसेवियउ।
न खिविह विन्नवंतिय अह तह हारलय,
कुसुम माल तिवि मुयउ, झाल तउ हुइ सभय ॥१३५॥

(२) वर्षा-वर्णन

इम तवियउ वहु गिंभु कहवि मइ वोलियउ,
पहिय ! पत्तु पुण पाउसु धिट्ठु ण पत्तु पिउ ।
चउदिसि घोरंधारु पवन्नउ गरुयभरु,
गयणि गुहिरु घुरहुरइ, सरोसउ अंबुहरु ॥१३९॥
वगु मिल्हवि सलिलद्दहु, तरु-सिहरहि चडिउ,
तंडव करिवि सिहंडिहि, वरसिहरिहि रडिउ ।
सलिलिहि वर सालूरिहि, फरसिउ रसिउ सरि,
कलयलु किउ कलयंठिहि, चडि चूयह-सिहरि ॥१४४॥
मच्छरमय संचडिउ रन्नि गोयंगणहि,
मणहर रमियइ नाहु रंगि गोयंगणिहि ।
हरियाउलु धरवलउ कयंविण महमहिउ,
कियउ भंगु अंगंगि अणंगिण मह अहिउ ॥१४६॥
झंपवि तम वद्दलिण दसह दिसि छायउ अंवरु,
उन्नवियउ घुरहुरइ घोरु घण-किसणाडंबुरु ।
णहह मग्गि णहवल्लिय तरल तडयडिवि तडक्कइ,
दद्दुररडणु रउद्दु सद्दु कुवि सहवि ण सक्कइ ।
निवड-निरंतर नीरहर दुद्धर धर धारोहभरु,
कि सहउँ पहिय-सिहरट्ठियइ दुसहउ कोइल रसइ सरु ॥१४८॥
जामिणि जं वयणिज्ज तुअ, तं तिहुयणि णहु माइ ।
दुक्खिहि होइ चउग्गुणी, झिज्जइ सुहसंगाइ ॥१५६॥

(३) शरद्-वर्णन

इम विन्नवंती कहव दिण पाइउ,
गेउ गिरंत पढंतह पाइउ ।
निय-अगुणइ रयणिअ रमणीयव,
गिज्जइ पहिय ! मुणिय अरमणीयव ॥१५७॥

(२) वर्षा-वर्णन

"इमि तपिअउ बहु ग्रीष्म सकों कस बोलियऊ,
पथिक ! आव पुनि पावस ढीठ न आँव पियऊ ।
चौदिसि घोरंधार छाय गउ गरुअ-भरो,
गगन-कुहर घुरघुरें सरोषउ अंबुधरो ॥१३९॥
बक छाड़िय सलिलह्लद तरु-शिखरहिं चढ़ेऊ,
नांडव करिय शिखंडिहि वरशिखरे रटेऊ ।
सलिलेहिं वर शालूरेंहि परसेंउ रसेंउ स्वरेंहि,
कलकल किउ कलकंठहिं चढि आमहि शिखरे ॥१४४॥
मच्छरभय आ-पडेंउ ठाँव गाई-गणहीं,
मनहर रमिअड नाथ रंगें गोपांगनहीं ।
हरियावल धराँवलय कदम्बन महमहिऊ,
कियउ भंग अंगांग अनंगेहिं मम अतिहू ॥१४६॥
झाँपी तम-बद्दली दसहु दिशि छाई अबर,
उट्ठविउ घुरघुरा घोर घन कृष्णाडंबर ।
नभहि मार्ग नभवल्ली तरल तड़तड़ै तडक्कै,
दर्दुर रटन कठोर शब्द कोंइ सहउ न सक्कै ।
निपट निरंतर नीरधर दुर्धर धर धारोघभर,
किमि सहों पथिक ! शिखरस्थितहुँ कोइल रसै स्वर ॥१४८॥
यामिनि ! जो वचनीय तुव, सो त्रिभुवन न अमाइ ।
दुक्खिहिं होई चौगुनी, छीजै सुख-संगाहिं ॥१५६॥

(३) शरद-वर्णन

इमि विलपंति पछिम दिन पायउ,
गीति गयंत पढंतहु प्राकृत ।
प्रिय-अनुरागि रजनि रमणीया,
गीयइ पथिक ! जानि अरमणीया ॥१५७॥

दक्खिण-मग्गु णियंतइ भत्तिहिँ,
दिट्ठु अइत्थिरि सिउ मइ भत्तिहि।
मुणियउ पाउसु परिगमिअउ,
पिउ परएसि रहिउ णहु रमिअउ ॥१५९॥
गय विद्दवि वलाहय गयणिहि,
मणहर रिक्ख पलोइय रयणिहि।
हुयउ वासु छम्मयलि फणिंदह,
फुरिय जुन्ह निसि निम्मल चंदह ॥१६०॥
सोहइ सलिलु सरिहिँ सयवत्तिहि,
विविह तरंग तरंगिणि जंतिहि।
जं हय हीय गिंभि णवसरयह,
तं पुण सोह चडी णव-सरयह ॥१६१॥
धवपिलय धवल संख-संकासिहि,
सोहइ सरह तीर संकासिहि।
णिम्मलणीर नरिहिँ पवहंतिहिँ,
तड रेहंति विहंगम-पंतिहिँ ॥१६३॥
पडिबिंबउ दरसिज्जइ विमलहिँ,
कद्दमभारु पमुक्किउ सलिलहिँ।
सहसि ण कुंज सद्दु सरयागमि,
मरमि मरालगामि णहु तग्गमि ॥१६४॥
रम्मइ जिह नारिहिँ नर रमिरइ,
सोहइ तरह तीर तिह भमिरइ।
ण्हय दर जुवाण गिल्लंतय,
दीसइ घरिघरि पडह वजंतय ॥१७४॥
[illegible] [illegible] [illegible] करि,
भमहि [illegible] वामंतय सुंदर।

सोहइ सिज्ज तरुणि जण सत्थिहि,
घरि-घरि समियइ रेह परित्थिहि ॥१७
दिंतिय णिसि दीवालिय दीवय,
णवससिरेह-सरिस करि लीअय
मंडिय भुवण तरुण जोइक्खहिँ,
महिलिय दिंति सलाइय अक्खिहिँ।

(४) हेमन्त-वर्णन

तह कंखिरि अणियत्ति, णियंती दिसि पसरु,
लइ ढुक्कउ कोसिल्लि हिमंतु तुसारभरु।
हुइय अणायर सीयल, भुवणिहि पहिय जल,
ऊसारिय सत्थरहु सयल कंदुट्टदल ॥१८६॥
सेरथिहिँ घणसारु ण चंदणु पीसयइ,
अहरक ओला लंकिहिँ मयणु समीसियइ।
मीहंटिहि वज्जियउ घुसिणु तणि लेवियइ,
चपएलु मियणाहिण सरिसउ सेवियइ ॥१८७॥
धूवज्जइ नह अगर घुसिणु तणि लाइयइ,
गाढउ निवडालिगणु अंगि सुहाइयइ।
[illegible] दिवसह रत्तिहि अगुलमत्त हुय,
मह [illegible] परि पहिय ! णिवेहिय वह्म-जुय ॥१८९॥
हेमंति कंत विलवंतियह, जइ पलुट्टि नासासिहसि।
[illegible] मुक्क [illegible] मउ, मुइय विज्ज कि आविहसि ॥१९१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इम [illegible] मइ गमिउ पहिय ! हेमंत-रिउ,
सिसिर पहुत्तउ पुणु णाहु दूरंतरिउ।
[illegible] पवणिहय,
[illegible] तहि हुय गय ॥१९[illegible]॥

सोहै शय्य तरुणि-जन साथे,
घर - घर सोहै रेख प्रलिप्ते ॥१७५॥
दीयत निशिहिँ दिवाली दीये,
नव-शिखि-रेख-सदृश कर लीये।
मंडित भुवन तरुण ज्योतिष्कहिँ,
महिला देहिँ सलाई आँखिहिँ ॥१७६॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तिमि उत्कंठि निरन्तर पेखै दिशि पसरी,
ले ढूकेँउ चातुरिहिँ हिमंतु तुषारभरो।
हुयउ अनादर-शीतल भुवने पथिक ! जल,
अपसारिय सत्थरेहिँ सकल पद्मनउ दल ॥१८६॥
सैरंध्री घनसार न चंदन पीसैहीँ,
अवर कपोलालंकृत मदन समिश्रैहीँ।
श्रीखंडेँहिँ विवर्जित कुंकुम लेपियहीँ,
चम्प-तैल मृगनाभि सह सेवियहिँ ॥१८७॥
धूंइज्जै तहँ अगर कुंकुम तन लाइयई,
गाढउ निपटालिंगन अंगेँ सुहाइयई।
अन्यहिँ दिवसहिँ सन्निधि अंगुलिमात्र हुआ,
मैँ एक्कै पर पथिक ! निवेशिय ब्रह्मयुगा ॥१८९॥
हेमंतेँ कन्त ! विलपंतिय, यदि न लवटि आश्वासिही।
तालेहीँ मूर्ख ! खल ! पापि ! मोही, मरे वैद्य कि आइयही ॥१९१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इमि कष्टेँहिँ मम गयउ, पथिक ! हेमन्त-ऋतू,
शिशिर पहूँचेउ धूर्त्त, नाथ दूरन्तरित
उठेँउ झखड़ गगनेँ, खर-परुष पवन-हतेउ,
तेहिँ छूटेँउ झरि करि अशेष तहँ रूप मिटेँउ ॥१९

छाय-फुल्ल-फल-रहिय अमेविय सउणियण,
तिमिरंतरिय दिसाय तुहिण पुञ्ज भरिण ।
मग्ग भग्ग पंथियह ण पविसिहि हिमडरिण,
उज्जाणहँ ढंखर छुअ सोसिय कुसुमवण ॥१९३॥
मत्तमुक्क संठविउ'वि वहुगंधक्करिसु,
पिज्जइ अद्धावट्टउ रसियहि उक्खु-रसु ।
कुंद चउत्थि वरच्छणि पीणुन्नय-थणिया,
णियसत्थरि पलुटंति केवि सीमंतिणिया ॥१९५॥
केवि दिंति रिउणाहह उप्पत्तिहि दिणहि,
णियवल्लह करि केलि जंति सिज्जासणिहि ।
इत्थंतरि पुण पहिय ! सिज्ज इक्कल्लियइ,
पिउ पेसिउ मण दूअउ, पिम्म-गहिल्लियइ ॥१९६॥
मइ घणु दुक्खु सहप्पि मुणवि मणु पेसिउ दूअउ,
णाहु ण आणिउ तेण सु पुणु तत्थव रय हूअउ ।
एम भमंतह सुन्नहियय जं रयणि विहाणिय,
अणिरइ कीयइ कम्मि अवसु मणि पच्छुत्ताणिय ।
मइ दिन्नु हियउ णहु पत्तुपिउ, हुई उवम इहु कहु कवण ।
सिगत्थि गइय उवाडयणि, पिक्ख हराविय णिअ सवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गयउ सिसिरु वणतिण दहंतु, महुमास मणोहरु इत्थ पत्तु ।
गिरि-मलय-समीरणु णिरु सरंतु, मयणग्गि-विऊयह विप्फुरंतु ॥२००॥
वहु विविहराइ घण-मणहरेहिँ, सिय सावरत्त-पुप्फंवरेहि ।
पंगुरणिहिँ चच्चिउ तणु विचित्तु, मिलि सहियहि गेउ गिरंति णित्तु ॥२०२॥
महमहिउ अंगि वहु-गंधमोउ, णं तरणि पमुक्कउ सिसिर-सोउ ।
तं पिक्खिवि मइ मज्झहि सहीण, लंकोँडउ पढिउ नववल्लहीण ॥२०३॥

छाय-फूल-फल-रहित असेवित शकुनि-जनेँहिं,
तिमिरान्तरित दिशाहिँ तुहिन - धूंआ - भरिया ।
मार्ग भागु पंथिकन न प्रवसहिँ हिमडरिया,
उद्यानहु ढंखर - सम सूखेँउ कुसुम-वन ॥१९३॥

मात्रमुक्त संयपेँउ बहुत - गंधोत्कर्ष,
पीवैँ अर्वोच्छिष्ट रसिक(जन) इक्षु-रस ।
कुन्द - चतुर्थि महोत्सवेँ पीनोन्नत - थनिया,
निज सेजहिँ पलोँटंति कोइ सीमन्तनिया ॥१९५॥

कोइ देहिँ ऋतुनाथहँ उत्पत्तिहि दिनहीँ,
निज-वल्लभ करि केलि जाइँ शय्यासनहीँ ।
ऐँहि समये पुनि पथिक ! सेज एकल्लियई,
प्रियँ पठयेँउ मन - दूतउ, प्रेम-गहिल्लयई ॥१९६॥

मैँ घनि दुःख-सहाप समुझि मन प्रेषेँउँ दूतहँ,
नाथ न आनेउ तिनि सो पुनि तहँवेँ रत हूओ ।
इमिहिँ भ्रमन्तहिँ शून्यहृदय जो रजनि विहानी,
अनसोचे किय कर्म अवशि मन पच्छतानी ।
मैँ दियउ हृदय ना प्राप्त प्रिय, हुइ उपमा ऐँहु कहु कवन ।
शृंगार्थ गई गदही (सो पुनि), पेखु हराई निज श्रवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गउ शिशिर वन-तृण-दहंत, मधुमास मनोहर इहाँ प्राप्त ।
गिरिमलय-समीरण बहु वहंत, मदनाग्नि वियोगिहँ विस्फुरंत ॥२००॥
वहु विविध-राग-घन-मनहरेहिँ, सित-सर्वरक्त-पुष्पांबरेहिँ ।
पंगुरणेहिँ चर्चित तनु विचित्र, मिलि सखियाँ गावैँ गीत नित्य ।२०२॥
महमहेँउ अंगेँ बहु गंधमोद, जिमि तरणि प्रमुंचेँउ शिशिर-शोक ।
सो पेखिय मैँ मध्ये सखीन, लंकोडउ पढेँउ नव-वल्लभीन ॥२०३॥

किसुयइ-कसिण घणरत्तवास, पच्चक्ख पलासइ धुय-पलास[1]।
ससि दुस्सह हूय पहंजणेण, भंजणिउ अमुहुवि मुहंजणेण ॥२०९॥

निवडंत रेणु धर पिंजरीहि, अहियपर तविय णवमंजरीहि।
मरु सियलु वाउ महि सीयलंतु, णहु जणइ गीउ णं गिवइ तंनु ॥२१०॥

जसु नामु अलिक्कउ कहइ लोउ, णहु हरइ नणद्धु अमोउ मोउ।
कंदप्पदप्पि संतविय अंगि, सांहरइ णाहु ण आसहर अंगि ॥२११॥

खणु मुणिउ दुसहु जम-कालपासु, वर-कुसुमिहि मोहिउ दस दिसानु।
गय णिवउ णिरंतर गयणि चूय, णवमंजरि तत्थ वसंत हूय ॥२१५॥

जल-रहिय मेह संतविअ काइ, किम कोइल कलरउ सहण जाइ।
रमणी-यण रत्थिहि परिभमंति, तूरा-रवि तिहुयण वाहिरंति ॥२१८॥

चच्चिरिहि गेउ हुणि करिवि तालु, नच्चीयइ अउव्व वसंत-कालु।
घण-निविड-हार परिखिल्लरीहिँ, रुणझुण-रउ मेहल-किंकिणीहिँ ॥२१९॥

जइ अणक्खरु कहिउ मइ पहिय !
घणदुक्खाउन्नियह मयण-अग्गि विरहिणि पलित्तिहि,
तं फरसउ मिल्हि तुहु विणय-मग्गि पभणिज्ज झत्तिहि।
तिम जंपिय जिम कुवइ णहु, तं पभणिय जं जुत्तु।
आसीसिवि वर-कामिणिहि, उवट्टाऊ पडिउत्त" ॥२२२॥

तं पडुंजिवि चलिय दीहच्छि, अइ-तुरिय,
इत्थंतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरसिय,
आसन्न पहाउरिउ दिट्ठु णाहु तिणि झत्ति हरसिय।
जेम अचिंतिउ कज्जु तसु, सिद्धु खणद्धि महंतु।
तेम पढंत सुणंतयह, जयउ अणाइ-अणंतु ॥२२३॥

---

[1] "धुतपलाश पलाशवनं पुरः"—माघ कवि

§ २७. बब्बर

काल—१०५० ई० (कर्ण कलचुरी १०४०–७० ई०)। देश—त्रिपुरी

१—जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबोंका जीवन

सिअ विट्ठी किज्जइ, जीआ लिज्जइ, बाला वुड्ढा कम्पन्ता।
वह पच्छआ वाअइ, लग्गे काअइ, सव्वा दीसा झम्पन्ता।
जइ जहु रम्मइ, णित्ता हासइ, पट्टे धम्मो अग्गीआ।
कर पाआ संभरि, किज्जे भित्तरि, पाआ-पत्ती सूरीआ ॥१६५॥ (५४५)
ताव बुद्धि ताव सुद्धि, ताव दाण ताव माण, ताव गव्व,
जाव जाव हत्थ फुल्ल, विज्जु-रेह-रंग णाइ, पुर णच्च।
एत्थ अंत अप्प-दोस, देव रोस होइ णट्ठ, होइ सव्व;
कोइ बुद्धि कोइ सुद्धि, कोइ दाण कोइ माण, कोइ गव्व ॥११६॥ (५५४)

(२) सुखी जीवन

पुत्त पवित्त बहुत्त घणा, भत्ति कटुंबिणि सुद्ध मणा।
हक्क तरासइ भिच्च-गणा, को कर बब्बर सग्ग मणा ॥६५॥ (४०५)
सुधम्म-चित्ता गुणवन्त-पुत्ता, सुकम्म-रत्ता विणआ कलत्ता।
विसुद्ध-देहा धणवंत-गेहा, कुणंति के बब्बर सग्ग-णेहा ॥११७॥ (४३०)
सो माणिअ पुणवन्त, जासु भत्त पंडिअ तणय।
जासु घरिणि गुणवंति, सोवि पुहवि सग्गह णिलअ ॥१७१॥ (२७६)
उच्चउ छाअण विमल घरा, तरुणी घरिणि विणअपरा।
वित्तक पूरल मुद्दहरा, वरिसा समआ सुक्खकरा ॥१७४॥ (२८३)

---

[1] "प्राकृत पैंगल" चन्द्रमोहन घोष द्वारा Biblco thica Indica (1902) में संपादित। जिन कविताओंमें बब्बरका नाम नहीं, वह बब्बरकी हैं, इसमें

पिअ-भत्ति पिआ, गुणवंत सुआ ।
धण-जुत्त घरा, बहु-सुक्ख-करा ॥४८॥ (३६२)

गुणा जासु सुद्धा, वहू रूअमुद्धा ।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु सग्गा ॥५३॥ (३६८)

कमल-णअणि, अमिअ-वअणि ।
तरुणि घरणि, मिलइ सुपुणि ॥५७॥ (३७१)

गुरुजण-भत्तउ, वहुगुण-जुत्तउ ।
जसु जिअ पुत्तउ, सउ पुणवंतउ ॥६१॥ (३७४)

ओग्गर-भत्ता रंभअ-पत्ता, गाइक घित्ता दुब्ध-सँजुत्ता ।
मोइल-मच्छा नालिय-गच्छा, दिज्जइ कंता खा पुणवंता॥९३॥(४०३)

२–सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा' स्त्री

भोँहा कविला उच्चा निअला, मज्झा पिअला णेत्ता जुअला ।
रुक्खा वअणा दंता विरला, केसे जिविला ताका पिअला ॥९७॥ (४०८)

(२) नारी-सौंदर्य

रे धणि ! मत्त-मअंगज-गामिणि, खंजण-लोअणि चंदमुही ।
चंचल जोँव्वण जात ण जाणहि, छइल समप्पहि काइ णही ॥१३२॥ (२२७)

सुंदरि गुज्जरि णारि, लोअण दीह-विसारि ।
पीण-पओहर-भार, लोलिअ मोत्तिअ-हार ॥१७८॥ (२८६)

हरिण-सरिस्सा णअणा, कमल-सरिस्सा वअणा ।
जुवअण-चित्ता-हरिणी, पिय-सहि ! दिट्ठा तरुणी ॥७९॥ (३८९)

चल-कमल-णअणिआ, खलिअ-थण-वसणिआ ।
हसइ पर-णिअलिआ, असइ धुअ वहुलिआ ॥८३॥ (३१३)

पिग्र-भत्ति पिग्रा, गुणवंत सुग्रा ।
धण-जुत्त घरा, बहु-गुरुग्र-करा ॥४८॥ (३६७)
गुणा जासु सुद्धा, बहू रूग्रमुद्धा ।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु सग्गा ॥५३॥ (३६८)
कमल-णग्रणि, ग्रमिग्र-वग्रणि ।
तरुणि घरणि, मिलइ सुपुणि ॥५७॥ (३७१)
गुरुजण-भत्तउ, वहुगुण-जुत्तउ ।
जसु जिग्र पुत्तउ, सउ पुणवंतउ ॥६१॥ (३७४)
ओग्गर-भत्ता रंभग्र-पत्ता, गाइक घित्ता दुग्ध-सँजुत्ता ।
मोइल-मच्छा नालिय-गच्छा, दिज्जइ कंता खा पुणवंता॥६३॥(४०३)

२—सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा[1] स्त्री

भोँहा कविला उच्चा निग्रला, मज्झा पिग्रला णेत्ता जुग्रला ।
रुक्खा वग्रणा दंता विरला, केसे जिविला ताका पिग्रला ॥६७॥ (४०८)

(२) नारी-सौंदर्य

रे धणि ! मत्त-मग्रंगज-गामिणि, खंजण-लोग्रणि चंदमुही ।
चंचल जोँव्वण जात ण जाणहि, छइल समप्पहि काइ णही ॥१३२॥ (२२७)
सुंदरि गुज्जरि णारि, लोग्रण दीह-विसारि ।
पीण-पग्रोहर-भार, लोलिग्र मोत्तिग्र-हार ॥१७८॥ (२८६)
हरिण-सरिस्सा णग्रणा, कमल-सरिस्सा वग्रणा ।
जुवग्रण-चित्ता-हरिणी, पिय-सहि ! दिट्ठा तरुणी ॥७६॥ (३८६)
चल-कमल-णग्रणिग्रा, खलिग्र-थण-वसणिग्रा ।
हसइ पर-णिग्रलिग्रा, ग्रसइ धुग्र वहुलिग्रा ॥८३॥ (३१३)

---

[1] कुरूप भी

महामत्त-माअग-पाए ठवीआ, महानिल-बाणा कडक्खे धरीआ।
भुआ पास भौंहा धणूहा समाणा, अहो णाअरी कामराअस्स सेणा ॥२३॥ (
तुहु जाहि सुंदरि ! अप्पणा, परिनेज्जि दुज्जण वप्पणा।
विअसंत केअइ-संपुडा, णिहु एहु आविह वप्पुडा ॥६१॥ (
खंजण-जुअल णअण-वर-उपमा, चारु-कणअ-लउ भुअ-जुअ सुसमा।
फुल्ल-कमल-मुहि गअ-वर-गमणी, कामु सुकिअ-फल विहि गढु तरुणी।१५३।(
तरल-कमल-दल-सरि-जुअ-णअणा, सरअ-समअ-ससि-सुअरिस-वअणा।
मअगल-करि-वर-सअलस-गमणी, कवण सुकिअ-फल विहि गढ रमणी।१६७
पाअ-णेउर[1] झंझणक्कइ, हंस-सद्द-सुसोहणा,
थोर-थोर-थणग्ग णच्चइ, मोत्ति-दाम-मणं
वाम-दाहिण-धारि धावइ, तिक्ख-चक्खु-कडीक्खआ,
काहु णाअर-गेह-मंडिणि, एहु सुंदरि पेक्खिआ ॥१८५॥ (

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म

तरुण-तरणि तवइ धरणि, पवण वहइ खरा,
लग्ग णाहि जल वड मरुथल, जण-जिअण
दिसइ चलइ हिअअ दुलइ, हम इकलि वहू,
घर णहि पिअ सुणहि पहिअ ! मण इच्छइ कहू ॥१९३॥ (

(ख) पावस

वरिस जल भमइ घण गअण सिअल पवण मणहरण,
कणअ-पिअरिं णचइ विजुरि फुल्लिआ
पत्थर वित्थर हिअला पिअला णिअलं ण आवेइ ॥१६६॥ (
णच्चइ चंचल विज्जुलिआ सहि ! जाणएँ,
मम्मह खग्ग किणीसइ जलहर-स

---

[1] नूपुर

फुल्लं कश्रंवश्र अंवर डंवर दीसएं,
पाउस पाउ घणाघण सुमुहि ! वरीसएं ॥१८८॥ (३००)

फुल्ला णीवा भम भमरा, दिट्ठा मेहा जन्न सामला।
णच्चे विज्जू पिश्र-सहिश्रा, श्रावे कंता कहु कहिश्रा ॥८१॥ (३६१)

जं णच्चे विज्जू मेहंधारा, पप्फुल्ला णीवा सद्दे मोरा।
वाश्रंता मंदा सीश्रा वाश्रा कंपंता काश्रा कंता णाश्रा ॥८६॥ (३६६)

(ग) शरद्-वर्णन

णेत्ताणंदा उग्गो चंदा, धवल-चमर-सम-सिश्र-श्ररविंदा,
उग्गे तारा तेश्रा-सारा, विश्रसु कुमुश्रे-वण-परिमल-कंदा।
भासे कासा सव्वा श्रासा, महुर-पवण लह-लहिश्र करंता,
हंसा सद्दे फुल्ला वंधू, सरश्र-समश्र सहि ! हिश्र श्रहरंता ।२०५। (५६६)

(घ) शिशिर-वर्णन

जं फुल्लु कमल-वण वहइ लहु पवण, भमइ भमरकुल दिसिविदिसं,
झंकार पलइ वण रवइ कुहिल-गण, विरहिश्र हिश्र हुश्र दर-विरसं।
श्राणंदिश्र जुश्रजण उलसु उठिश्र मण, सरस, णलिणि-दल किश्र सश्रणा,
पलट सिसिररिउ दिश्रस दिहर भउ, कुसुम-समश्र श्रवतरिश्र वणा ॥२१३॥ (५८१)

(क) वसंत-वर्णन

भमइ महुश्रर फुल्ल-श्ररविंद, नवकेसु काणण जुलिश्र,
सव्वदेस पिक-राव चुल्लिश्र, सिश्रल-पवण लहु वहइ,
मलश्र-कुहर णव-वल्लि पेल्लिश्र।...
चित्त मणोभव सर हणइ, दूर-दिगंतर कंत।
किम परि श्रप्पउ धारिहउ, एँम परिपलिश्र दुरंत ॥१३५॥ (२३३)
फुल्लिश्र मह्हु भमर वहु रश्रणि पहु. किरण लहु श्रवश्ररु वसंत।
मलश्र गिरि कुसुम धरि पवण वह, सहव कत सुणु सहि ! णिश्रल णहि कंत।१६३।(२७०)
चडि चूश्र कोइल-साव, महु-मास पंचम गाव।
मण-मज्झ वम्मह ताव, णहु कंत श्रज्जवि श्राव ॥६७॥ (३६७)

फुल्लिअ केसु चंद तह विअसिय, मजरि तेज्जइ चूआ;
दक्खिण-वाउ सीअ भइ पवहइ, कप विओइणि हीआ।
केअइ-धूलि सव्व दिस पसरइ, पीअर सव्वउ भासे,
आउ वसंत काह सहि ! करिअइ, कन्त ण थाकइ पासे ॥२०३॥ (५६३)

(४) वीर-प्रशंसा

सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेस समाण।
ओ वक्कल अरु कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण ॥७६॥ (१३६)

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चल गुज्जर कुंजर तेज्जि मही, तुअ वब्बर जीवण अज्जु णही,
जइ कुप्पिअ कण्ण-णरेंदवरा, रण को हरि को हर वज्जहरा ॥१३०॥ (४४८)
कण्ण चलंते कुम्म चलइ पुहवि[1] असरणा,
कुम्म चलते महि चलइ भुअण-भअ-करणा।
महिअ चलंते महिहरु तह असुरअणा,
चक्कवइ चलंते चलइ चक्क तह तिहुअणा ॥६६॥ (१६५)
जे गंजिअ गोलाहिवइ राउ, उद्दंड ओड्ड जसु भअ पलाउ।
गुरु विक्कम विक्कम जिणिअ जुज्झ, ता कण्ण परक्कम कोइ बुज्झ ॥१२६॥ (२१६)
जिहि आसावरि देसा दिण्हउ, सुत्थिर डाहर रज्जा लिण्हउ।
कालंजर जिणि कित्ती थप्पिअ, धणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ ॥१२८॥ (२२२)
हणु उज्जर-गुज्जर-राअ-कुलं, दल-दलिअ चलिअ मरहट्ठ-वलं।
वल मोडिअ मालव-राअ-कुला, कुल उज्जल कलचुलि कण्ण फुला ॥१८५॥ (२६६)
धिक्क दलण थोंग-दलण तक्क-दलण रिगए,
णं-ग-णुकट दिग टुकट रंगल तुरंगए।

---

[1] पृथिवी

फुल्लिअ किंशु चंद्र तिमि विकसिय मंजरि त्याजै चूता।
दक्षिण-वायु शीत-भय प्रवहै, कंप वियोगिनि हीया।
केतकि-धूलि सर्व दिशि प्रसरै, पीयर सर्वउ भासै।
आउ वसंत काह सखि ! करिये, कंत न थाके[1] पासे ॥२०३॥

(४) वीर-प्रशंसा

सुर-तरु सुरभी परस-मणि, नहिँ वीरेश-समान।
वह वल्कल अरु कठिन-तनु, वह पशु वह पाषाण ॥९७॥

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चलु गुर्जर ! कुंजर त्याजि, मही, तव वर्वर जीवन आज नहीँ।
यदि कोपिय कर्ण-नरेन्द्रवरा, रणेँ को हरि को हर-वज्रधरा ॥१३०॥
कर्ण चलंते कूर्म चलै पुहुवि अशरणा,
कूर्म चलंते महि चलै भुवन-भय-करणा।
मही चलंते महिधर तहँ असुरजना,
चक्रवर्त्ति चलंते चलै चक्र तिमि तिभुवना ॥९६॥
जे गंजिअ गौडाधिपति राउ, उद्दंड ओड्र जसु भय पलाउ।
गरु-विक्रम विक्रम जिनिहि जुज्झु, तो कर्ण-पराक्रम कोइ वुज्झ ॥२१९॥
जिनि आसावरि देशा दीनेँउ, सुस्थिर डाहर रज्जा लीनेँउ।
कालंजर जिति कीर्त्ति थापिय, धन आवर्जिय धर्महँ अर्पिय ॥१२८॥
हनु उज्वल गुर्जर-राजकुलं, दरदारिय चलिय मरहट्ठ-वलं।
वल मोडिय मालव, राजकुला, कुल-उज्वल कलचुरि कर्ण-फुला ॥१८५॥
विक्क दलन थोंग दलन तक्क दलन रेंगए,
नं-ननु-कट दिग-दुकट रंग चल तुरंगए।

---

[1] रहै

धूलि धवल हुक्क सवल पक्खिपवल पत्तिए,
कण्ण चलइ कुम्म ललइ भुम्मि भरउ कित्तिए ॥२०१॥ (३२२)
जुज्झ भट भूमि पट, उट्ठि पुणु लग्गिआ,
सग्ग-मण खग्ग हण कोइ णहि भग्गिआ।
वीस सर तिक्ख कर कण्ण गुण अप्पिआ,
पत्थ तह जोलि दह चाउ सह कप्पिआ ॥१६१॥(४८८)
सज्जिअ जोह विवट्ठिअ कोह चलाउ धणू,
पक्खर वाह चलू रणणाह कुरंत तणू।
पत्ति चलंत करे धरि कुंत सुखग्गकरा,
कण्ण-णरेंद सुसज्जिअ विंद चलंति धरा ॥१७१॥ (५०२)
कण्ण पत्थ ढुक्कु लुक्कु सूरवाण संहएण,
घाउ जासु तासु लग्गु अंधआर संहएण।
एत्थ पत्थ सट्ठि वाण कण्ण पूरि छड्डुएण,
पेक्खि कण्ण कित्ति धण्ण वाण सव्व कट्ठिएण ॥१७३॥(५०४)

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ——)

अइचल जोव्वण देह धणा, सिविणअ सोअर वंधु-अणा।
अवसउ कालपुरी गमणा, परिहर बव्वर पाप-मणा ॥१०३॥(४१४)
ए अत्थीरा देक्खु सरीरा, घरु जाया,
वित्ता, पित्ता, सोअर, मित्ता, सवु माया।
काहे लागी बव्वर बेलावसि[1] मुज्झे,
एक्का कित्ती किज्जहि जुत्ती, जइ सुज्झे ॥१४२॥ (४६३)

---

[1] वैलावसि=बाहर निकालते हो (मैथिली क्रि० वैलाएब)

धूलि धवल हाँक सवल पक्षि-प्रवल पत्तिए[1],
कर्ण चलै कूर्म ललै भूमि भरै कीर्त्तिए ॥२०१॥

जूझ भट भूमि पड़ु उट्ठि पुनि लग्गिया,
स्वर्ग-मन खङ्ग हन कोइ नाहि भग्गिया।
बीस-शर तक्षिण कर कर्ण गुणें अप्पिया,
पार्थ तहँ जोरि दश चाप-सह कप्पिया[2] ॥१६१॥

सज्जित योध विवर्द्धित-क्रोध चलाउ धनू,
पक्खर-वाह[3] चलो रणनाथ फुरंत तनू।
पत्ति[1] चलंत करे धरि कुंत सु-खङ्गकरा,
कर्ण-नरेन्द्रें सु-सज्जित-वृन्दें चलंति धरा ॥१७१॥

कर्ण-पार्थ ढुक्कु लुक्कु सूर-वाण-संहतेहिँ,
घाव जासु तासु लागु अंधकार संहतेहिँ।
अन्न पार्थ साठ वाण कर्ण पूरि छाडतेहिँ,
पेखि कर्ण-कीर्त्तिवन्य वाण सर्व काटियेहिँ ॥१६३॥

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अतिचल-यौवन-देह-धना, स्वप्नए सोदर-बंधु-जना।
अवसए काल-पुरी-गमना, परिहर **बब्बर** पाप मना ॥१०३॥

ए अस्थीरा देक्खु शरीरा, घरु जाया,
वित्ता, पित्ता, सोदर, मित्रा, सव माया।
काहे लागी **बब्बर** वैलावसि मुज्झे,
एक्का कीर्त्ती किज्जइ युक्ती, यदि सुज्झे ॥१४२॥

---

[1] प्यादा [2] काटा [3] वख्तरदार घोड़ा

जा पंचवण्ण-मणि-किरण-दित्त। कुसुमंजलि णं मयणेण घित्त।
चित्तलियहिँ जा सोहइ घरेहिँ। णं अमर-विमाणहिँ मणहरेहिँ।
णव-कुंकुम-छडयहि जा सहेइ। समरंगणु मयणहो णं कहेइ।
रत्तुप्पलाइँ भूमिहि गयाइँ। णं कहइ वरंती फलसयाइँ।
जिण-वास पुण्ण-माहप्पएण। ण वि कामुय जित्ता कामएण।
घत्ता। तहिँ अरिविद्दारणु, मयतरु-वारणु, धाडी वाहणु पहु हुयउ।
जो कवगुणजुत्तउ, गुरुयणभत्तउ, विज्जासायर पारगउ।

—करकंड-चरिउ, पृ० ४, ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एक्कहिँ दिणि करकंडएण। पुणु दिण्णु पयाणउ तुरियएण।[1]
गउ सिंहलदीवहो णिवसमाणु। करकंडु णराहिउ णरपहाणु।
जहि पाउल पिल्लइँ मणुहरंति। सुर-खेयर-किंणर जहिँ रमंति।
गयलीलइँ महिलउ जहिँ चलंति। णियरूवें रइरूउवि खलंति।
जहि देक्खिवि लोयहँतणउ भोउ। वीसरियउ देवहँ देवलोउ।
आवासिउ णयरहो वहिय एसें। अरिसंक पवड्ढिय तहिँ जि देसें।
आवासु मुएँवि सहयरसमेउ। करकंडु गयउ रमणिहिँ अमेउ।
तहिँ गरुवउ सवणसएँहिँ भरिउ। णं कप्पवच्छु देवेहिँ धरिउ।
दलवंतहि पत्तहिँ परियरिउ। वडु विट्ठु राएँ समु वित्थरिउ।
घत्ता। करकंडें पेक्खववि तहो वडहो, दीहइँ सुट्ठु सुकोमलइँ।
ता लेविणु गुलिया धणुहडिया विद्धाइँ असेसइँ सद्दलइँ॥

—वहीं पृ० ६४

---

[1] तूर्य=नगाड़ा

जा पंचवर्ण-मणि-किरण-दीप्त । कुसुमांजलि जनु भगणेहिँ[1] क्षिप्त ।
चित्तलियहिँ जा सोहै घरेहिँ । जनु अमर-विमानहिँ मनहरेहिँ ।
नवकुंकुम-छटयेहिँ जा सहेइ । समरांगण मदनहों जनु कहेइ ।
रक्तोत्पलाइँ भूमिहिँ गलाइँ । जनु कथै धरित्री-फल-शताइँ ।
जिन-वास-पूजा-माहात्म्यएहिँ । नहि कामुक चिंता कामएहिँ ।
घत्ता । तहँ अरिविदारन, मदतरु-वारन, धाडीवाहन प्रभु हुअऊ ।
जो कविगुण-युक्तउ, गुरुजन-भक्तउ, विद्यासागर-पारगऊ ।।

—करकंड चरिउ, (पृ० ४ ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एकहिँ दिन करकंडएहिँ । पुनि दिन्न[2] प्रयाणहिँ तूर्ययेहिँ ।
गउ सिंहलद्वीपहु निवसमान । करकंड नराधिप नरप्रधान ।
जहँ पावस पिल्ल'इ मनहरंति । सुर-खेचर-किन्नर जहँ रमंति ।
गजलीलहिँ महिलउ जहँ चलंति । निजरूपे रतिरूपहँ खलंति ।
जहँ देखिय लोकहँ केर भोग । वीसरियउ देवहँ देवलोक ।
आवासेँउ नगरहँ वहिप्रदेशेँ । अरि-शंका वाढी ताहि देशेँ ।
आवास छाडि सहचर-समेत । करकंड गयेँउ रमणिहिँ अमेय ।
तहँ गरुअउ स्रवण शतेँहिँ भरिउ । जनु कल्पवृक्ष देवेँहिँ धरिउ ।
दलवंतहिँ पत्रहिँ परिचरिऊ । वट देखु राव सम-विस्तरिऊ ।
घत्ता । करकंडेहिँ दीसेँउ सो वट, दीरघ सुष्ट सुकोमलइ ।
तो लेइय गोली धनुहडिया, वेँधेँउ अशेपइँ शाद्वलइ ।।५।।

—वहीँ पृ० ६४

---

[1] नक्षत्रमंडल [2] पक्षी कोई

२—सामन्त-समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ 'वि लोयहिँ कलियमाणु । गउ सुन्दरु पुरवरे जणसमाणु ।

घत्ता । सो पुरवरणारिहि गुणणिलउ पइसंतउ दिट्ठउ णयरे कह ।
णं दसरहणंदणु तेयणिहिँ उज्झहिँ सुरणारिहि जह ॥

तहुँ पुरवरे खुहियउ रमणियाउ । झाणट्ठिय मुणि-मण-दमणियाउ ।
कवि रहसइँ तरलिय चलिय णारि । विहडप्फड़ संठिय कावि वारि ।
कवि धावइ णव-णिव णेहलुद्ध । परिहाणु ण गलयउ गणइ मुद्ध ।
कवि कज्जलु वहलउ अहरे देइ । णयणुल्लये[१] लक्खारसु करेइ ।
णिग्गंथ-वित्ति कवि अणुसरेइ । विवरीउ डिंभु कवि कडिहिँ लेइ ।
कवि णेउरु करयलि करइ बाल । सिरु छंडिवि कडियले धरइ माल ।
णियणंदणु मण्णिवि कवि वराय । मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय ।
कवि धावइ णवणिउ मणे धरंति । विहलंधल मोहइ धर सरंति ।

घत्ता । कवि माण-महल्ली मयण-भर, करकंडहो समुहिय चलिय ।
थिर थोरय ओहरि मयणयण उत्तत्त-कणय-छवि उज्जलिय ॥

णवरज्जलंभ रंजिय हिएण । करकंडइं पुरे पइसंतएण ।
गयखंधे चडण्णिय जंतएण । णिउ-राउलु लीलए पत्तएण ।
तं दिट्ठउ राय-णिकेउ तुंगु । अइमणहरु णं हिमवंत-सिंगु ।
मुक्ता-हल-माला-तोरणेहिँ । णं विहसइ सियदंतहिँ घणेहि ।
किंकिणि रणंतु धयवडउ मालु । णं णच्चइ पणयणि विहिय-तालु ।
चामीय-रमणि-रयणेहिँ घडिउ । णं सग्गहो अमर-विमाणु पडिउ ।
तहिँ पइसइ णवगिउ विमलवुद्धि । पारंभिय गुरु-यणु मण-विसुद्धि ।
कर हेमकुंभु मंगलु करंति । कवि माणिणि णिग्गयता तुरंति ।

---

[१] नयन=नयनुल्ला

२—सामन्त समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ हु लोकहिँ कलितमान[1]। गयो सुन्दर पुरवरे जनसमान[2]।

घत्ता। सो पुरवरनारिहिँ गुणनिलय पइसता दीठेँउ नगरेँ किमि।

जनु दशरथनंदन तेजनिधि 'योध्या सुरनारीहि जिमि॥

तहँ पुरवरेँ क्षुभ्यउ रमणियाउ। ध्यान स्थित-मुनि-मन-दमनियाउ।

कोँइ रहसेँ तरलिय चलिय नारि। हडफड स-ठिय कोई दुवारि।

कोँइ धावै नव-नृप-नेह-लुब्ध। परिधान न गलियउ गनै मुग्धा।

कोँइ कज्जल बहुतो अधर देइ। नयनुल्लैँ लाक्षारस करेइ।

निर्ग्रन्थ-वृत्ति[3] कोँइ अनुसरेइ। विपरीत वाल कोँइ कटिहिँ लेइ।

कोँइ नूपुर करतलेँ करै वाल। शिर छाडी कटितलेँ धरै माल।

निजनंदन मानिय कोँइ वराकि। मार्जार न फेँकै सानुराग।

कोइ धावै नवनृप मनेँ धरति। विह्वलधर मोहै धराँ स्मरति।

घत्ता। कोँइ मान-महल्ली[4] मदन-भरा, करकंडह सम्मुख चलिया।

स्थिर थोडा अपहरि मदनयना, उत्तप्त-कनक-छवि-उज्ज्वलिया॥

नव-राज्य-लाभ-रंजित-हियेहिँ। करकंडहिँ पुरेँ पइसतएहिँ।

गज-कंधे चढिया जतएहिँ। नृप-राजुल-लीला-प्राप्तएहिँ।

सो देखउ राज-निकेत तुंग। अतिमनहर जनु हिमवत-शृंग।

मुक्ताफल-माला-तोरणेहिँ। जनु विहँसै सित-दंतहिँ घनेहिँ।

किंकिणि रणत ध्वजपटि'व माल[4]। जनु नाचै प्रणयिनि विहित-ताल।

चामीकर-मणि-रतनेहिँ गढेँउ। जनु सर्गहँ अमर-विमान पडेँउ।

तहँ पइसै नव-नृप विमल-बुद्धि। प्रारंभिय गुरु-जन मन-विशुद्धि।

केँ हेम-कुंभ मंगल करति। कोइ मानिनि नीसरि गइ तुरति।

---

[1] सम्मान कृत [2] जनो सहित [3] नंगापन [4] महल

रेमंगलु किउ वर-दीवएहि। जयकारिउ पुणु णारी-सएहिं।
सोवण्ण-कलस-कय उच्छवम्मि। पइसारिउ सो णिव-मंदिरम्मि।
घत्ता। सो सयल-गुणायरु सीलणिहि, विणयभाव-संजुत्तउ।
सामंत-मंति-जण-परियरिउ, पुरि अच्छइ[1] रज्जु करंतउ।

—वही पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकंडहो उप्परि खेयरासु। अइपउरु पयड्ढिउ णेहु तासु।
पाढाविउ सो णीतिएँ जुयाइं। वायरण-तक्क-णाडय-सयाइँ॥
कविविरइय कव्वइँ वहुरसाइँ। वच्छायण-गणियइं णवरसाइं।
मंताइँ असेसइँ तंतयाइँ। वसियरण सुसोहइं जंतयाइँ॥
असिचक्क-कुंत-छुरियउ वराउ। वणुवेय—सत्ति-दिढ-तोमराउ।
मल्लाण जुज्झ तणुघट्टणाइँ। उल्ललणइँ वग्गइँ लोट्टणाइँ।
फल-फुल्ल-पत्त-छेयंतराइँ। जाणाविउ सयलइँ सुहयराइँ।
पडु-पंडह-मुरय-वीणाइ वंसु। विज्जाइँ असेसइँ कलिउएँसु।
घत्ता। जं किंपि पसिद्धउ भुवणयले, खेयरइँ जणाविउ सो सुरइ।
लोहेण विडंविउ सयलु जणु, भणु कि कर चोज्जइँ णउ करइ॥

—वही पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता। हल्लोहलि हूयउ सयलुजणि अपरंपरि जाणइ संचलहि।
हा-हा-रउ उट्ठिउ करुण-सरु, नहो सोए णरवर-सलवलहि॥
जा णर-पंचाणणु वियसिय-आणणु जलि पडिउ।
ता सयलहिँ लोयहिँ पसरिय सोयहिँ अइडरिउ॥
रइवेय सुभामिणि णं फणि-कामिणि विमणभया।
सव्वंगे कंपिय चित्तें चमक्किय मुच्छगया॥

---

[1] रहता है, है

परि-मंगल किउ वर-दीपकेहिँ। जयकारेँउ पुनि नारी-शतेहिँ।
सौवर्ण-कलश-कृत उत्सवहीँ। पइसारेँउ सो निजमंदिरहीँ।
घत्ता। सो सकल-गुणाकर शील-निधि, विनय-भाव-संयुक्तऊ।
सामंत-मंत्रि-जन-परिवरिय, पुरि आछै राज्यकरंतऊ॥

—वहीँ पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकंडह-ऊपर खेचराहु। अतिप्रवर प्रवाढेँउ नेह तासु।
पढयउ सो नीतिय जुताइँ। व्याकरण-तर्क-नाटक-शताइँ।
कवि-विरचित-काव्यइँ बहु-रसाइँ। वात्स्यायन-गनितइँ नवरसाइँ।
मंत्राइँ अशेपइँ तंत्रयाइँ। वशिकरण सु-सोहैँ मंत्रयाइँ।
असि-चक्र-कुंत-छुरियउ वराउ। धनु-वेद-शक्ति दृढ तोमराउ।
मल्लाहँ युद्ध तनु घट्टनाइँ। उल्ललनैँ वलनैँ लोट्टनाइँ।
त्र-फूल-पत्र-छेकन्तराइँ। जानावेँउ सकलैँ शुभकराइँ।
पटु-पटह-मुरज वीणाइँ वंशि। विद्याइँ अशेपइँ कपिटएसु[1]।
घत्ता। जो किछुउ प्रसिद्धउ भुवनतले, खेचरइँ जनायेउ सो सुरति।
लोभेहिँ विडंविउ सकल जन, भन की कर प्रेँरणे न करइ॥

—वहीँ पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता। हल्लाहल हूयो सकल जन, अपरापर जानै संचलही।
"हा हा" रव उठेँउ करुण-स्वर, पुनि-शोके नरवर कलवलहीँ॥
जो नर-पंचानन विकसित-आनन जलेँ पडेँऊ।
तो सकलहिँ लोकहिँ प्रसरित-शोकहिँ अति डरेँऊ॥
रति-वेग सुभामिनि जनु फणि-कामिनि विमन-भया।
सर्वांगे कंपिय चित्तेँ चमक्किय मूर्छगता॥

य-चमर-सुवाएं सलिल-सहाएं गुणभरिया।
उद्धाविय रमणिहिं मुणि-मण-दमणिहिं मणहरिया[1] ॥
करयल-कमलहिं सुललिय-सरलहिं उरु हणइ।
उव्वा-लउणयणी गग्गिर-वयणी पुणु भणइ ॥
हा वइरिय वइवस पावमलीमस किं कियउ।
मइं आसिव गयउ रमणु परायउ कि हियउ ॥
दइव परम्मुह दुण्णय-दुम्मुह तुहुं हुयउ।
हा सामि! स-लक्खण सुट्ठु वियक्खण कहिं गयउ।
महों उप्परि भडारा णरवर सारा करुण करि।
दुह-जलहिं पडंती पलयहों जंती णाह धरि ॥
हउँ णारि वराइय आवइँ आइय को सरउँ।
परछंडिय तुम्हहिं जीवमि एवहिं किं मरउँ" ॥
य सोय-विमुद्धइं लवियउ सद्धइं जं हियइ।
हउं वोल्लिसु तइयहुं। मिलिहइ जइयहुं मज्झु पइ।
वहीं पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवसहो आवइ जाव राउ। मयणावलि णउ पेच्छइ वि ताउ ॥
जोइयइ चउद्दिसु हिययहीणु। उव्वेविरु हिंडइ महिहें दीणु ॥
ता संकिउ णरवइ गलिय-गव्वु। "कहिं गउ कलत्तु सव्वंग-भव्वु ॥
मयणावलि जा आणंद-भूअ। सा एवहिं किं विपरीय हूअ" ॥
ता पेसिय किंकर वर-णिवेण। अवलोयहु सामिणि दिसिवहेण ॥
जोएवि दिसिहिं आगयवलेवि। पुक्कारहिं उब्भा-कर करेवि ॥
ता राए देक्खिवि ते सुपंत। परिमुक्क अंसु णयणहिं तुरंत ॥
"हे पयवइ तुहुँ सवणाणुवंधु। महु अक्खहि सुंदर-णेह-वंधु ॥

---

[1] मण हरिया (=मनहरिया)

सुवातें सलिल-सहायें गुण-भरिया।
उड्डाइय रमणिहिँ मुनिमन-दमनिहि मणहरिया॥
ल-कमलहिँ सुललित-सरलहिँ उर हनई।
उद्-व्याकुल-नयनी गद्‌गद-वदनी पुनि भनई॥
री वीवस पाप-मलीमस की कियऊ।
मम ग्रहेँउ वराकिउ रमण परायउ की हियऊ॥
त्र! पराङ्‌मुख दुर्नय दुर्मुख तुहुँ भयऊ।
हा स्वामि! सलक्षण सुप्ट विचक्षण कइँ गयऊ॥
उपर भटारा[१] नरवर सारा करुण करो।
दुख-जलधि-पडती प्रलयहँ जाती नाथ धरो॥
नारि वराकी आपति आये को सुमिरऊँ।
पर छाडिय् तुम्हहिँ जीवौँ एव की मरऊँ॥"
म शोक-विमुग्धइँ लपियउ क्षुव्वहिँ जो हियइँ।
हौँ वोलेसु तडयहुँ मिलिहै जइहउँ मोर पती॥
वहीँ पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवासहों आवई जाव राव। मदनावलि ना पेखेंउ ताव॥
जोइयै चतुर्दिग हृदयहीन। उद्वेगिर हिंडै महिहें दीन॥
तो शकेँउ नरवरेँ गलित-गर्व। कहँ गउ कलत्र सर्वांग-भव्य॥
मदनावलि जा आनदभूअ। सा एव की विपरीत हूअ॥
तव प्रेपेउ किंकर वर-नृपेहिँ। "अवलोकहु स्वामिनि दिशि-पथेहिँ॥"
जोयउ दिसीहिँ आगत-वलेइ। पुक्कारहिँ ऊँचा कर करेइ।
तव राय देखियउ ते सोँवत। परि-मुच अश्रु नयनहिँ तुरत।
"हे प्रजापति तुहुँ श्रवणानुवध। मोहि आखहु सुंदर-नेह-वधु।

---

[१] ——=राजा।

हा मुद्धि मुद्धि तुहुँ केण णीय। किं एवहिँ ल्हिक्कवि कहिमि ठीय॥
हा कुंजर किं तुहुँ जमहों दूउ। किं दोसइँ महों पडिकूलु हूउ॥
घत्ता। चिरु मोहु वहंतउ कोवि हियइँ, लडहु-रूउ अग्गइँ हुयउ।
विज्जाहरु आयउ सोवि तहिँ, विज्जासायर पारु गउ॥

—वहीं पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवकं। करकंडइ साहिवि महि-सयल, परिपुच्छिउ मइवरु विमलमइ।
भणु सम्मइ मइवर को 'वि णिरु, जो अज्जु'वि दुट्ठउ णवि णवइ॥
सो मइवरु पभणइ "देव देव। तुह महियलु सयलु'वि करइ सेव।
परि दिविड-देसें णिव अत्थि धिट्ठ। ते णमहि ण कासुवि हियइँ दुट्ठ।
सिरि चोडि पंडि णामेण चेर। णउ करहिँ तुहारी देवकेर"॥
आयण्णि'वि तं चंपाहिवेण। संपेसउ दूयउ तहों खणेण।
"तें जाइवि ते चोडाइ राय। इउ भणिय णवहु करकंड-पाय।"
[1]णिब्भत्थिउ दूयउ तेहिँ सोवि। "जिणु मेल्लिवि अण्णुण णवहु कोवि।"
करकंडहों आइवि कहिउ तेण। "णउ करहि सेव तुह कि परेण।"
तं सुणिवि वयणु करकंडु राउ। "जइ देमि ण तहों सिर णियय पाउ।
तो महियल पुत्त इंदिय सुहासु। महों अत्थि णिवित्ति परिग्गहासु।"
एँहु पइज करिवि करकंडएण। लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण।
घत्ता। चंपाहिउ चल्लिउ तहों उवरि, गय चडिवि विणिग्गउ पुरवरहो।
चउरंगइँ सेण्णइँ संजुयउ, सो लीला धरइ सुरेसरहो॥
तहों जंतहों महि हय-खुरहिँ भिण्ण। गयणंगणि गय-रय-धूम-वण्ण।
पसरंतहि तेहिँ दिग्गाणणाहँ। णं मुहवडु किउ दिसिवारणाहँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरिंद। कंपंत पणट्ठा खे सुरिंद।
दक्खिण-वहे गउ तेरापुरम्मि। तहों दक्खिण-दिसिहि महावणम्मि।

---

[1] डांटा, फटकारा

हा मुग्धे मुग्धे तुहुँ केहिँ नीउ। की एवं लुक्किय कतहुँ ठीय।
हा कुंजर ! की तुहुँ यमहँ दूत। की दोपहिँ मोहि प्रतिकूल हूअ।
घत्ता। चिर मोह वहंतउ कोउ हियहिँ, सुँदर रूप अग्रे हुयउ।
विद्याधर आयउ सोउ तहिँ, विद्यासागर पार गउ॥

—वहीं पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवक। करकंडेहिँ साधिउ महि-सकल, परिपूछेँउ मति वर विमलमति।
"भणु सम्यक् मतिवर कोँउ निश्चय, जो आजउ दुष्टउ नहि नवइ।"
सो मतिवर प्र-भणै "देवदेव। तुहँ महियल सकलहु करै सेव।
पर द्रविड-देशें नृप अहै धृष्ट। सो नमै न काहुहिँ हृदय-दुष्ट।
श्री **चोल पांड्य** नामेन चेर। ना करै तुहारी देवकेर।"
सुनि केहू सो चंपाधिपेहिँ। संप्रेपेँउ दूतहिँ तहँ क्षणेहिँ।
"तैँ जाइवि तेहि चोलाधिराज। इमि भनिवि 'नमहु करकंडपाद'।"
निर्भर्त्स्येँउ दूतउ तेहिँ सोउ। "जिन छाडि अन्य ना नमहुँ काहु।"
करकंडहिँ आई कहेँउ तेन। "ना करै सेव तव की परेन।"
सो सुनिय वचन करकंडु राव। "यदि देउँ न तेहि शिर निजहि पाव॥
तो महितल-पुत्र-इन्द्रिय-सुहास। मम अहै निवृत्ति-परिग्रहास।"
ऐंहु पइज[1] करेँउ करकंडएहिँ। लघु[2] दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ।
घत्ता। चंपाधिप चल्लेँउ तेहि उपरि, गज चढ़िय नीसरेँउ पुरवरहँ।
चतुरंगइँ सैन्यइँ संयुतउ, सो लीला धरै सुरेश्वरहँ॥
तहँ जातेँउ महि हय-खुरेहिँ भिन्न। गगनांगनें गजरज धूमवर्ण।
पसरंता ते दिश-आननाहँ। जनु मुख-बंधु किउ दिश-वारणाहँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरेंद्र। कंपंत प्रनष्ट रवे[3] सुरेंद्र।
दक्षिणपर्थे गउ तेरापुरेइ। ताँहु दक्षिण-दिशी महावनेइ।

---

[1] प्रतिज्ञा   [2] तुरंत   [3] आकाश में

ासिउ तहिं वलु चाउरंगु । खणें सीह पुलिंदहँ हुयउ भंगु ।
संताडिय दूसय पंचवण्ण । णं अमरगेह - भूमिहि पवण्ण ।
करिवर लेविणु जलहों मेट्ठ । रासहियहिँ धाविय खर पहिट्ठ ।
लोलाविय धय णिव-णरवरेहिँ । महि णच्चइ णं उब्भिय करेहिँ ।
घत्ता । आवासिउ अच्छइ जाव तहिँ, करकंड-णराहिउ पउर-वलु ।
पडिहारु पराइउ तहो पुरउ, दूराउ णमंतउ हरियमलु ॥

—वहीं पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

सुणिवि वयणु चंपाहिराउ । सण्णज्झइ ता किर वद्धराउ ।
तावेत्तहि दंतीपुरि-णिवेण । कंपाविय मेइणि मंदरेण ।
णिण्णासिय अरि-यण-जीवएण । उड्डाविय दहदिसि रय रणेण ।
णहु छायउ [1]खलियउ रविवएण । लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण ।
गंगापएसु संपत्तएणु । गंगाणइ दिट्ठी जंतएण ।
सा सोहइ सिय-जल कुडिलयंति । ण सेयभुजंगहो महिल जंति ।
दूराउ वहंती अइविहाइ । हिमवन्त-गिरिन्दहों कित्ति-णाइं ।
विहिं कूलहिं लोयहिं ण्हंतएहि । आइच्चहों जलु परिदिंतएहि ।
दब्भंकिय उड्डहि करयलेहिं । णइ भणइ णाइं एयहिँ छलेहि ।
"हउं मुद्धिय णिय-मग्गेण जामि । मा रूसहि अम्हहों उवरि सामि" ।
णउ पेक्खिवि णिउ करकंडु णामु । गउ जणण-णयरु गुण-गणिय-धामु ।
घत्ता । जे संगरि सुरवर-खेयरहं, भउ जणियउ धणुहर-सुअस-रहों ।
ते वेढिउ पट्टणु चउदिसिहिं, गय-तुरय णरिंदहिं दुद्धरहों ॥
ता हयइं तूरइं, भुवणयल पूरइं ।
गज्जंति वज्जाइं, आणाए चडियाइं, पक्खलइं भिडियाइं ।

---

[1] स्खलित, पतित

आवासेँउ तहँ वल-चातुरंग। क्षणेँ सिह पुलिंदहँ भयेँउ भंग।
संताड़िय दुस्सह[1] पंचवर्ण। जनु अमरगेह-भूमिहि प्रपन्न।
गय करिवर लेइय जलहोँ मैँठ[2]। रासभियहिँ धाइय खर प्रहृष्ट।
लोलाइय ध्वज नृपनरवरेहिँ। महि नाचै जनु उत्थित-करेहिँ।
घत्ता। आवासेँउ अच्छइ जव्व तहँ, करकंड-नराधिप पौरवल।
प्रतिहार पर्-आयेँउ तेँहि पुरउ, दूराउ नमंतउ हरियमल ॥
—वहीँ पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

सो सुनिय वचन चंपाधिराज। सन्नाहेँ तो फुरि वद्ध-राग।
तव्वै तहँ दंतीपुर-नृपेहिँ। कंपाइय मेदिनि मंदरेहिँ।
निर्-नाशिय अरिजन-जीवितेहिँ। उड्डविय दश-दिशि रज रणेहिँ।
नभ छायउ खलियउ रविपदेहिँ। लघु दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ।
गंगा-प्रदेश संप्राप्तएहिँ। गंगानदी देखेँउ जांतएहिँ।
सो सोहै सित-जल-कुटिल-पंक्ति। जनु श्वेतभुजंगह महिलाँ जंति।
दूराउ वहंती अति-विभाइ। हिमवन्त-गिरीन्द्रह कीर्त्ति-न्याइँ।
दोँउ कूलहँ लोगहि न्हांतएहिँ। आदित्यहँ जल परि-देंतएहिँ।
दर्भांकित उट्ठा-करतलेहिँ। नदि भनै न्याइँ एतहिँ छलेहिँ।
"हउँ केवल निजमार्गेहिँ जाउँ। ना रूसहु हम्महँ उपर स्वामि"।
नदि पेखिय नृप करकंड-नाम। गउ जनन-नगर गुण-गणिय धाम।
घत्ता। जो संगर सुरवर-खेचरहँ, भय जनियउ धनुधर-मुच्च-शरहीँ।
सो वेठेँउ पाटन चउदिशिहिँ, गज-तुरग नरिंद्रेहिँ दुर्धरहीँ ॥
तव हयइँ तूराइँ, भुवन-तल-पूराइँ।
वाजंति वाजाइँ, आनाद-घटिताइँ। पर-वलहिँ भिड़ियाइँ।

हुंताइँ भज्जंति, कुंजरइ गज्जंति। रहसेण वग्गंति, करि-दसेण लग्गंति।
गत्ताइँ तुट्टंति, मुंडाइँ फुट्टंति। सुंडाइँ धावंति, अरिथाणु पावंति।
तंताइँ गुंप्पंति, रुहिरेण थिप्पंति। हड्डाइँ मोडंति, गीवाइँ तोडंति।
घत्ता। केवि भग्गा कायर जेवि णर, केवि भिडिय केवि पुणु।
खग्गुग्गामिय केवि भड, मंडेविणु थक्का केवि रणु॥

—वहीं पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता। करकंड सुणेविणु तं वयणु, अत्थाणहों उट्ठिउ लक्खणिण।
'गउ सत्तपयइँ मउलेवि कर, सुमरंतउ मुणिवरपय मणिण॥
ता आणंदभेरि तुरंतएण। देवाविय तुट्ठइँ राणएण।
तहे णट्ठु सुणेविणु लद्धभोय। परिमिलिय खणद्धें भविय लोय।
कवि माणिणि चल्लिय ललिय देह। मुणि-चरण-सरोयहँ बद्धणेह।
कवि णेउर सद्दें रणझणंति। संचल्लिय मुणि-गुण णं थुणंति।
कवि रमणु णं जंतउ परिगणेइ। मुणि-दंसणु हियवएँ सइँ मुणइ।
कवि अक्खयधूव भरेवि थालु। अइरहसइँ चल्लिय लेवि बालु।
कवि परिमलु बहलु वहंति जाइ। विज्जाहरि णं महियलि विहाइ।
घत्ता। कावइ छण ससहर-आणणिया, करें कमलकरंती संचलिया।
आणंदिय भेरिहें मुणिवि सुरु, लहु भवियण सयलवि तहिँ मिलिया।
जिणिंद-धम्म-रत्तओ, मुणिंद - पाय - भत्तओ।
सुवण्णकंति - दित्तओ, सरोय - पत्त - णेत्तओ।
णरिंद - पाण - हत्थओ, विसुद्ध - सव्व - सत्थओ।
विसुद्ध-गन्धि-गत्तओ, खणेण जाव पत्तओ।

'गयेउ

कुंताइँ भज्जंति । कुंजरइ गर्जन्ति । रथसेन वल्गंति । करि-दशन लग्गंति ।
गात्राइँ टूटंति । मुंडाइँ फूटंति । रुंडाइँ धावंति । अरि-थान पावंति ।
अंत्राइँ गोपंति । रुधिरेहिँ थप्पंति । हड्डाइँ मोडंति । ग्रीवाइँ तोडंति ।
घत्ता । केँऊ भग्ग कायर जेउ नर, केँउ भिड़िया केउ पुनि ।
खड्ग उट्ठाइय कोउ भट, मंडियउ थाकेँउ केउ रणेँ ॥

—वहीँ पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकंडू सुनीया सो वचन । आस्था'नहँ उट्ठेँउ तत्-क्षणहीँ ।
गउ सप्तपदे मुकुलित-कर, सुमिरंतउ मुनिवर-पद मनहीँ ॥
तब आनँदभेरि तुरंतएहिँ । देवायउ तुष्टहिँ राणएहिँ ।
तहँ नष्ट सुनीया लब्ध-भोग । परिमिलेउ क्षणार्धे भाँवुक लोग² ।
कोँइ मानिनि चल्लिय ललित-देह । मुनि-चरण-सरोजहँ बद्ध-नेह ।
कोँइ नुपुर-शब्देँ रुनझुनंति । सं-चल्लिय मुनि-गुण जनु स्तुवंति ।
कोँइ रमण न जातउ परि-गनेइ । मुनि-दर्शन-हिय पद स्वयँ जनेइ ।
कोँइ अक्षय-धूप भरीय थाल । अति रभसेँ चल्लिय लेइ बाल ।
कोँइ परिमल-बहुल वहंति जाइ । विद्याधरि जनु महितलेँ विहारि ।
घत्ता । काहुउ क्षण शशधर-आननिया, करेँ कमल करंती संचलिया ।
आनंदिय भेरिहि सुनिय स्वर, लघु भविजन³सकलउ तहँ मिलिया ॥
जिनेंद्र-धर्म-रक्तओ । मुनींद्रपाद-भक्तओ ।
सुवर्ण-कांति-दीप्तओ । सरोजपत्र-नेत्रओ ।
प्रलंब-पीन-हस्तओ । विबुद्ध-सर्व-शास्त्रओ ।
विशुद्धि-संधि-गात्रओ । क्षणेहिँ जाव प्राप्तओ ।

---

¹दर्बार   ²जैन भक्त   ³भक्त

तहिं पि ताव दिट्ठिया, भणंति हा पमूठिया।
पुरंधि[1] कावि दुक्खिया, हणंति दोवि कुक्खिया।
रुवंति अंसु वाहुलं, जणाण दुःख-सकुलं।
कुणंति चित्तु आउलं, वरंति वेसु वाउलं।
घुलंति जावि मुच्छए, पडंति भू-पएसए।
मुणेवि तं णरेसरो, सुवारणि-छणीसरो।

घत्ता। करकंडइ पुच्छिउ कोवि णरु, एँह णारि वराई किं रुवइ।
विलवंती हियवडँ मुहु करइ, अप्पाणउ विहलंघल मुअइ॥

—वहीं पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

तं सुणिवि वयणु रायाहिराउ। संसारहो उवरि विरत्त-भाउ।
धी धी असुहावउ मच्च-लोउ। दुह कारणु मणुरहँ अंग-भोउ।
रयणायर-तुल्लउ जेत्थु दुक्खु। महुबिंदु-समाणउ भोय-सुक्खु।

घत्ता। हा माणउ दुक्खइं तड्ढ-त्तणु, विरसु रसंतउ जहि मरइ।
भणु णिग्घिणु विसयासत्त-मणु, सो छँडिवि को तहिँ रइ करइ॥

कम्मेण परिट्ठिउ जो उवरे। जम-रायए सोणिउ णिययपुरे।
जो बालउ बालहि लावियउ। सो विहिणा णियपुरि चालियउ।
णव-जोव्वणि चडियउ जो णवरु। जमु जाइ लएविणु सोजि णरु।
जो बूढउ वाहि-सएहि कलिउ। जमदूयहिँ सो पुणु परिमलिउ।
बलवंतउ णरु हरि अतुलबलु। सो विहिणा णीयउ करिवि छलु।
छक्खंड वसुन्धर जेहि जिया। चक्केसर[2] ते कालेण णिया।
विज्जाहर किण्णर जे णयरा। बलवंता जम-मुहे पडिय सुरा।
फणिणाहइ णरिंद अमरिन्दइ। जमु लितउ कवणु'वि णउ मुअइ।

---

[1] स्त्री [2] चक्रवर्ती

तहाँउ तव्व दिट्ठिया । भनंति "हा" अमुड्डिया ।
पुरंध्रि काउ दुःखिया । हनंति दोउ कुक्षिया ।
रोंवंति अश्रु-वाहुलं । जनाइ दुःख सकुलं ।
करेइँ चित्त आकुलं । धरंति वेप वाउरं ।
घुरंति जा विमूढिया । पडंति भू-प्रदेशए ।
मुनीय सो नरेश्वरो । सुवारुणी धर्नाश्वरो ।

घत्ता । करकंडइ पूछेँउ कोइ नर, एहु नारी वराकी का रोवैँ ।
विलपंती हियडेँ दुहू करहिँ, अप्पानउ विह्वलता मुंचैँ ॥

—वहीँ पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

सो सुनिय वचन राजाधिराव । संसारहँ उपर विरक्त-भाव ।
'धिक धिक 'असोँहावउ मर्त्यलोक । दुख-कारण मनोँरथ-अंग-भोग ।
रतनाकर-तुल्यउ यत्र दुःख । मधुविंदु-समानो भोग-सुक्ख ।

घत्ता । हा मानव दुःखइँ स्तव्व-तन, विरस हसंतउ जहँ मरै ।
भन निर्घृण विषयासक्त मन, सो छाडिय को तहँ रति करै ॥

कर्महिँ परिट्-ठिउ जो उवरे । यमराजेहिँ सो लेउ निर्जय-पुरे ।
जो वाल्येहिँ वालउ लालियऊ । सो विधिना निजपुरेँ चालियऊ ।
नवयौवन चढियउ जो प्रवरू । यम जाइ लिवावन सोउ नरू ।
जो वूढउ व्याधिशतेँहिँ कलिऊ । यमदूतहिँ सो पुनि परिमर्दिऊ ।
वलभद्रहु सम हरि अतुल-वलू । सो विधिना लीयउ करिय छलू ।
छँ-खंड वसुन्धर जेउ जिया । चक्रेश्वर ते कालेहिँ लिया ।
विद्याधर किन्नर जे खचरा । वलवंता यम-मुखेँ पडेँउ सुरा ।
फणिनाथैँ सरिसउ अमर-पती । यम लेतउ कवन न ना मुवई ।

---

[1] अशुभावह या अस्वभाव

घत्ता। णउ सोन्निउ बंभणु परिहरइ, णउ छंडइ तवसिउ ताव-ट्ठियउ।
धणवंतु ण छुट्टइ णवि णिहणु, जह काणणे जलणु समुट्ठियउ।
:वेण विणिम्मिउ देहु जंपि। लायण्णउ मणुवहँ थिरु ण तंपि।
णव-जोव्वणु मणहरु जं चडेइ। देवहि वि ण जाणिउ कहिँ पडेइ।
अवर सरीरहिँ गुण वसंति। णवि जाणहुँ केण पहेण जंति।
ते कायहों जइगुण अचल होंति। संसारहँ विरइँ ण मुणि करंति।
रि-कण्ण जेम थिर कहिँ ण थाइ। पेक्खंतहँ सिरि णिण्णासु जाइ।
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ। तह णारि विरत्ती खणि चलेइ।
-णयण-वयण-गइ कुडिल जाहँ। को सरल करेवइँ सक्कु ताहँ।
मेल्लंती ण गणइ सयण इट्ठु। सा दुज्जण-मेत्ति व चल णिकिट्ठु।
घत्ता। णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चल, वइरायभाव संपत्तउ।
सो सुरहरमंडणु होइ णरु, सुललिय-मणहर-गत्तउ॥
ंसार भमंतहँ कवणु सोक्खु। असुहावउ पावइ विविह दुक्खु।
णरयालइँ णाणा णारएहिँ। चिरकियहिँ णिहम्मइ वइरएहिँ।
हयएण वि चिंतहुँ सक्कियाइँ। तहिँ भुत्तइँ पवरइँ दुक्कियाइँ।
अवरुप्परु जाइ विरुद्धएहि। तिरियाण मज्झे उप्पण्णएहि।
:हबंधण-छेयण-ताडणाइँ। पावीयहिँ तेहिँ तणु-फाडणाइँ।
मणुयत्तणे माणउ परिमलंतु। परिझिज्जइ णियमणे सलवलंतु[१]।
ुरलोएँ पवणउ पट्ठवुद्धि। मणि झिज्जइ देक्खिवि परहों रिद्धि।
णउणारि जेम रूवइँ करेइ। तिम जीउ-कलेवर सइँ धरेइ।
घत्ता। संसारहँ उवरि णिहालणउ, किउ जेण णरेण कयायरेण।
भणु काइँ ण लद्धउ तेण जइ, पवर रयण रयणायरेण॥
जीवहों सुसहाउ ण अत्थि कोवि। णरयम्मि पडंतउ धरइ जोवि।
सुहि सज्जण-णंदण इट्ठ-भाव। णवि जीवहों जंतहों ए सहाय।

---

[१] हड़बड़ाता

घत्ता। ना श्रोत्रिय ब्राह्मण परिहरइ। ना छाँउ तपस्विउ तपें थितऊ।
धनवंत न छुट्टइ ना निधनू, जिमि काननें ज्वलन समुत्थितऊ॥

देवेन विनिर्मेउ देह जोंउ। लावण्यउ मनुजहँ थिर न सोंउ।
नवयोवन मनहर जो नवेउ। देखंतउ न जानेंउ कहँ पडेउ।
जो अवर शरीरहिं गुण धननि। ना जानहु केन पथेन जति।
सो कायहु यदि गुण अचल होंति। नमारहु विरति न मुनि करति।
करि-कर्ण जेम थिर कहुँ न थार[1]। पेखंतहँ श्री शिर-नाश जाइ।
जिमि नूतउ[2] करतलें ठिउ गलेइ। तिमि नारि-विरक्ती क्षणें चलेइ।
भ्रू-नयन-वदन-गति-कुटिल जाहु। को सरल करावन सक्क ताहु।
छोडती न गनें स्वजन-इष्ट। सा दुर्जन मैत्रिव चल निकृष्ट।

घत्ता। निज्-भार्ग जो अनुपंग नल, वैराग्य-भाव-सप्राप्तऊ।
सो सुरघर-नंदन होइ नर, सुललिय-मनहर-गात्रऊ।

संसार भ्रमतहुँ कवन सुक्ख। असुहावउ पावें विविध-दुःख।
नरकालय नाना नारकेहिं। चिरकृतहिं निहन्यै वैरएहिं।
हृदयेउ न चिंतन सकियाइँ। तहँ भोगें अवरइँ दुःखियाइँ।
अपरापर जाति विरुद्धएहि। तिर्यञ्च-मांझ उत्पन्नएहिं।
भुज-बंधन-छेदन-ताडनाइँ। पावीयहिं तहँ तन-फाडनाइँ।
मनुजत्तने मानव परि-मलंत। परि-भंसे निजमनें खलबलंत।
सुरलोकें अवर्णउँ नष्ट-बुद्धि। मनें खीझै देखि पराइ ऋद्धि।
नवनारि जेम रूपइँ करेइ। तिमि जीव कलेवर-शत धरेइ।

घत्ता। संसारहु उपर निहारनउ, किउ जोंउ नरेउ कृतादरहीं।
भन काइं न लब्धउ सोइ यदी, प्रवर-रतन रतनाकरहीं।

जीवहु सुस्वभाव न अहै कोंउ। नरक काहँ पडंत धरै जोउ।
सुखि सज्जन नंदन इष्ट भाय। ना जीवहँ जाते होंइ सहाय।

---

[1] रहै [2] पारा

णग जणणि जणगु रोवंतयाइं । जीवें [illegible] [illegible] ण [illegible] ।
धणु ण चलइ गेहहों [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
णु जलणि जलंतइ [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
जहिं णयण-णिमेसु ण मुहु [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
हि-गउल-सीह-वणयरहँ मज्झे । उप्पज्जइ [illegible] जिउ [illegible] ।
सुर-खेयर-किणर-मुहयगाम । नहिं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
—वहीं पृ० ८३-८५

§ २९. जिनदत्त सूरि

काल—११००(१०७५–११५४)ई०। देश—धवलक(धोलका)गुजरात। कुल—

१–जिन-वंदना

पणमह पास-वीर-जिण भाविण । तुम्हि सव्वि जिव मुच्चहु पाविण ।
घर-ववहारि म लग्गा अच्छह । खणि-खणि आउ गलंतउ पिच्छह ॥[1]
—उवएस-रसायण[1]

२–गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमिवि जिणेसर-धम्मह, तिहुयण-सामियह ।
पायकमलु ससिनिम्मलु, सिवगयगामियह ॥
करिमि जहट्ठिय गुणथुइ, सिरि जिणवल्लहह ।
जुग-पवरागम-सूरिहि, गुणगण-दुल्लहह ॥१॥

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अपमाणु पमाणइ, छद्दरिसण-तणइ ।
जाणइ जिव नियनामु, न तिण जिव कुवि घणइ ॥

---

[1] वहीं

निज जननि-जनक रोवतयाइँ । जीवें मेंग ताहु न, पदगयाइँ ।[1]
धन न चलै गेहहुँ एक पाव । एकल्लै भोगै धर्म्म-पाप ।
तनु ज्वलनें ज्वलंतउ परिफुटेउ । एकल्लै वरवन धरि चलेउ ।
जहँ नयन-निमेष न सुख हवेइ । एकल्लै तहँ दुख अनुभवेइ ।
अहि-नकुल-सिंह-वनचरहँ मांझ । उप्पज्जै एकउ जिव अ-साझ ।
सुर-गोचर-किन्नर सुन्दर-ग्राम । तहँ भोगै एकै जियै जाम[1] ।
—वहीं पृ० ८२-८५

§ २९. जिनदत्त सूरि

हुंडव-वणिक्, जैन साधु । कृतियाँ—चाचरि[2], उवएसरसायण[2], कालस्वरूप-कुलक[2] ।

१—जिन-वंदना

प्रणमहु पार्श्व-वीर-जिन भावेंहिं । तुम्ह सर्वजिव मोचहु पापेंहिं ।
घर-व्यवहार न लागे रहा । क्षण-क्षण आयु गलंतउ पेखा । ।१।।
—उपदेश-रसायन

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमवि जिनेश्वर-धर्मंहं, त्रिभुवन-स्वामियहा ।
पाद-कमल शशि-निर्मल, शिवगति-गामियहा ।।
करउं यथा स्थिति गुण-'थुति, श्री जिनवल्लभहा ।
युग-प्रवर-आगम-सूरिह, गुण-गण दुर्लभहा ।।१।।

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अप्रमाण प्रमाणं, छै दर्शन-तनई ।[3]
जानै जिव निज नाम, न तेंन जिव कोंइ हनई ।।

---

[1] जब लों   [2] Gaikwad's Oriental Series 1927, Vol. XXXVII "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह"   [3] तन=केर, का

पर - परिवाइ - गइंद - वियारण - पंचमुहु ।
तसु गुणवन्नणु करण, कु सक्कइ इक्कमुहु ॥२॥
जो वायरणु वियाणइ, सुहलक्खण-निलउ ।
सद्दु असद्दु वियारइ, सुवियक्खण-तिलउ ॥
सुच्छंदिण वक्खाणइ, छंदु जु सुजइमउ ।
गुरु लहु लहि पइठावइ, नरहिउ विजयमउ ॥३॥
कव्वु अउव्वु जु विरयइ, नव-रस-भर-सहिउ ।
लद्धपसिद्धिहिँ सुकइहिं, सायरु जो महिउ ॥
सुकइ माहु'ति पसंसहिँ, जे तसु सुहगुरुहु ।
साहु न मणहि अयाणुय, मइ जियसुरगुरुहु ॥४॥
कालियासु कइ आसि, जु लोइहिँ वन्नियइ ।
ताव जाव जिणवल्लह, कइ ना अन्नियइ ॥
अप्पु चित्तु परियाणहि, तंपि विसुद्धनय ।
तेवि चित्तकइराय, भणिज्जहि मुद्धनय ॥५॥
सुकइ विसेसिय वयणु, जु 'वप्पइराउकइ ।
सुवि जिणवल्लह पुरउ, न पावइ कित्ति कइ ॥
अवरि अणेय विणेयहि, सुकइ-पसंसियहिँ ।
तक्कव्वामयलुद्धिहिँ, निच्चु नमंसियहिँ ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जिण कय नाणा चित्तइँ, चित्त हरंति लहु ।
तसु दंसणु विणु पुन्निहिँ, कउ लब्भइ दुलहु ॥
सारइँ वहु थुइ-थुत्तइ, चित्तइँ जेण कय ।
तसु पयकमलु जि पणमहि, ते जण कय-सुकय ॥७॥

---

[1] "गउडवहो" (प्राकृत महाकाव्य) के रचयिता

पर - परिवाद - गयंद - विदारण पंच - मुखू ।
तासु गुण वर्णन करण, कों सक्कै एक-मुखू ॥२॥
जो व्याकरण वि-जानै, शुभलक्षण-निलयू ।
शब्द-अशब्द विचारै सु-विचक्षण-तिलकू ॥
सुच्छंदेन वखानै, छंद जों सुयति-मयू ।
गुरु लघु लेंइ पइठावै, नर-हिय विजय-मयू ॥३॥
काव्य अपूर्व जों विरचै, नव-रस-भर-सहितो ।
लब्ध-प्रसिद्धिहिँ सुकविहँ, सागर जो मथितो ।
सुकवि माघ'ति प्रशंसैं, जे तासु शुभ-गुरुहो ।
साधु न मनहि अजानय, मैं जित-सुरगुर-हो ॥४॥
कालिदास कवि अहेंउ, जों लोकेहि वणियऊ ।
सो जितनो जिनवल्लभ-,कवि ना अन्ययऊ ॥
आपु चित्त परि-जानै, सोउ विशुद्ध-नय ।
तोउ चित्र कविराय. भनिज्जै मूर्धनय ॥५॥
सुकवि-विशेषित-वचन, जों वाक्पतिराज कवी ।
सोंउ जिनवल्लभ समुंह, न पावै कीर्त्ति कवी ॥
अवर अनेकानेक. . .हि. सुकवि प्रशंसियही ।
तत्काव्यामृतलुब्धेंहिँ, नित्य नमंसियही ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जो कृत-नाना - चित्रइँ, चित्त-हरंति लघू[1] ।
तासु दर्शन विनु पुण्यहिँ, को लब्भै दुलभू ॥
सारइँ वहु-'थुति-'थुत्तै, चित्तैं जेहिँ कृत ॥
तासु पदकमल जें प्रणमै, ते जन कृत-सुकृता ॥७॥

---

[1] तुरंत

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जहि सावय तं बोलु न भक्खहि, निति नय ।
जहि पाण-हिय धरंति, न सावय-सुद्धनय ॥
जहि भोयणु न सयणु, न अणुचिउ वइसणउ ।
सह पहरणि न पवेसु न दुट्ठउ बुल्लणउ ॥२१॥
जहि न हासु नवि हुड्डु, न खिड्डु न रूसणउ ।
कित्ति निमित्तु न दिज्जइ, जहिं धण अप्पणउ ॥
करहि जि बहु आसायण, जहिं तिन मेलियहि ।
मिलिय ति-केलि करंति, समाणु महेलिय[1]हिं ॥२२॥
जहिँ संकंति न गहणु, न माहि न मंडलउ ।
जहँ सावयसिरि दीसइ, कियउ न चिटलउ ॥
ण्हवणयार जण मिल्लिवि, जहि न विभूसणउ ।
सावयजणिहि न कीरइ, जहि गिह-चित्तणउ ॥२३॥
जहिँ न अप्पु वन्निज्जइ, परु वि न दूसियइ ।
जहि सग्गुणु वन्निज्जइ, विगुणु उवेहियइ ॥
जहि किर वत्थु-वियारणि, कसु वि न वीहियइ ।
जहि जिणवयणुत्तिन्नु, न कहवि पयंपियइ ॥२७॥. . . .
इह अणुसोय पयट्टह, संख न कुवि करइ ।
भवसायरिति पडंति, न इक्कु'वि उत्तरइ ॥
जे पडिसोय पयट्टहिं, अप्पवि जिय धरइ ।
अवसय सामिय हुंति ति, निव्वुइ पुरवरइ ॥३१॥
तसु पयपंकउ पुन्निहि, पाविउ जण-भमरु ।
सुद्ध नाण-महुपाणु, करंतउ हुइ अमरु ॥

---

[1] मेहरी, महिला

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जासु श्रावक[1] नो बोल न मानैं, लिप्पन या ।
जासु प्राण ह्नि बसति, न श्रावक शुद्ध-नया ॥
जासु भोजन न शयन, न अनुचित बइसनऊ ।
सँग प्रहरणें न प्रवेश, न दुष्टउ बोलनऊ ॥२१॥
जहँ न हास ना हुडु, न खेल न रूसनऊ ।
कीत्ति-निमित्त न दीजै, जहँ धन आपनऊ ॥
करैँ जि बहु-आस्वादन, जहँ नृण मिलियइँ ।
मिलिया केलि करनि, नहिन महेल्लियहिँ[3] ॥२२॥
जहिँ सक्रान्ति न ग्रहण, न माघ न मंडनऊ ।
जहँ श्रावक-श्री दीनै, कियउ न विट्टलऊ[4] ॥
स्नानत्तार जन मेलवि[5], जहँ न विभूषणऊ ।
श्रावकजनें हिँ न करियै, जहँ गृह-चिन्तनऊ ॥२३॥....
जहँ न आपु वर्णिज्जै, परउ न दूषियई ॥
जहँ सद्गुण वर्णिज्जै, वि-गुण उपेक्षियई ॥
जहँ पुनि वत्थु-विचारणें, कांलुउ न वीँखियइ ।
जहँ जिन-वचन-उत्तीर्ण, न कथा प्रजल्पियई ॥२७॥..
एँहि अनुशोत प्रवृत्तह, शंकाँ न कोँउ करई ।
भवसागरें ति पडंत, न एकउ ऊतरई ॥
जे प्रतिशोत प्रवृत्तहिँ, आपुउ जिय धरई ।
अवशिय स्वामी होंति तें, निवृँतिपुर-वर[6]ई ॥३१॥..
तासु पदपंकज पुण्यहि, पायेँउ जनभ्रमरु ।
शुद्ध-ज्ञान-मधुपान, करंतउ होँइ अमरु ॥

---

[1] शिष्य [2] छोड़ कर [3] महिला, मेहरी
[4] विटलाहा (मल्लिका)=गदा, पतित [5] छोडे [6] निर्वाण-पुर०

सत्थु हंतु सो जाणइ, सत्थपसत्थ महि।
कहि अणुवमु उवमिज्जइ, केण समाण नहि ॥४३॥
इय जुग-पवरह सूरिहि, सिरि जिणवल्लहह।
नाय समय परमत्थह, बहुजण-दुल्लहह ॥
तसु गुण थुइ बहुमाणिण, सिरि जिणदत्त-गुरु।
करइ सु निरुवम, पावइ, पउ जिणदत्तगुरु ॥४७॥
—नाचरि[1]

३—वेश्या-निंदा

जोव्वणत्थ जा नच्चइ दारी। सा लग्गइ सावयह वियारी।
तिहि निमित्तु सावयसुय-फट्टहिं। जंतिहिं दिवसिहिं धम्मह फिट्टहिं ॥३॥
बहुय लोय रायंध सपिच्छहि। जिण-मुह-पंकउ विरला वंछहि।
जणु जिणभवणि सुहत्थ जु आयउ। मरइ सु तिक्ख-कडक्खिहिं घायउ ॥३४॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

बेट्टा-बेट्टी परिणाविज्जहिं। तेवि समाण धम्म-घरि दिज्जहिं।
विसमधम्म-घरि जइ वीवाहइ। तो सम्मत्तु सु निच्छइ वाहइ ॥६३॥
इय जिणदत्तुवएस-रसायणु। इह-परलोयह सुक्खह भायणु।
कण्णंजलिहिं पियंति जि भव्वइं। ते हवंति अजरामर सव्वइँ ॥८०॥
—उवएसरसायणु

(२) धर्मोपदेश

विक्कम संवच्छरि सय-बारह। हुयइ पणट्ठउ सुहु घरवारह।
इय संसारि सहाविण मंतिहि। वत्तहि सुम्मइ सुक्खु वसंतिहि ॥३॥

---

[1] विरहा गीत

सावयहँ जो जाणै, सावय अगम्म नहीं।
जिमि धनुधर उप्पज्जै, तिन समान नहीं ॥४३॥
इति युग-प्रवरह सूरिहि, सिरि जिनवल्लभहा।
न्याय'-अमय-रसायंद, बहुजन-दुर्लभहा ॥
तासु गुण-थुति बहुमानें, सिरि जिणदत्तगुरु।
करै सो निरुपम पावै, पद जिन-दत्त-गुरु ॥४७॥
—चाचरि

३—वेश्या-निंदा

लोचनार्थ जो नारि दारि'। सा नारी व्याधाहँ पियारि।
तेहि निमित्त श्रावक धन-फाडैं। जानें विवरें धर्महिं फोडैं ॥३३॥
बहुत लोग गणाध सों फेरहिं। जिन-मुख-पंकज विरला वाहहिं।
जन जिनभवनें शभायं जो आयउ। मरै सो तीक्ष्ण-कटाक्षें घायल ॥३४॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पांत मजबूत करो

बेटा-बेटी परनावीजे'। सोउ समानधर्म'-घरें दीजे।
विषम-धर्म-घरें यदि दीवाहै। तो सम्यक्त्व' सो निश्चय वाहै' ॥६३॥
इति जिनदत्त-उपदेश-रसायन। इह-परलोकह सुक्खह-भाजन।
कर्णाजलिहिं पियंति जे भव्यहँ। ते भवंति अजरामर सर्वें ॥८०॥
—उवएसरसायण

(२) धर्मोपदेश

विक्रम-संवत्सर सत-बारह। होइ प्रनष्टउ सुरा-घरवारह।
इति संसारें स्वभावें जानेंहि। वर्तें सुम्मनि सुक्खु वसंतेंहि ॥२॥

---

[1] नात=ज्ञातृ(-पुत्र) महावीर   [2] गणिका, दारिका   [3] विवाहिज्जै
[4] स—धर्मी   [5] जैनीपन   [6] बहाना, फेंकना

तह वि वत्त नवि पुच्छहि धम्मह । जिण गुरु मिलहि कज्जिण दम्मह ।
फलु नवि पावहि माणुस-जम्मह । दूरे होंति तिज्जि निव-मम्मह ॥४॥
मोह-निद्द जणु सुत्तु न जग्गइ । तिण उट्ठिवि सिव-मग्गि न लग्गइ ।
जइ सुहत्थु कुवि गुरु जग्गावइ । तुवि तव्वयणु तासु नवि भावइ ॥५॥
परमत्थिण ते सुत्तवि जग्गहिं । सुगुरु-वयणि जे उट्ठेंवि लग्गहिं ।
राग-द्दोस-मोंह 'वि जे गंजहि । सिद्धि-पुरवि ति निच्छइ भुंजहि ॥६॥
बहुय लोय लुंचियसिर दीसहिं । पर रागद्दोसिहिं सहुं विलसहिं ।
पढहिं गुणहिं सत्थइ वक्खाणहि । परि परमत्थु तित्थु नु न जाणहि ॥७॥
दुद्धु होइ गो-यक्किहि धवलउ । पर पेज्जंतउ अंतरु बहलउ ।
एक्कु सरीरि सुक्खु संपाडइ । अवरु पियउ पुणु मसु 'वि माडइ ॥१०॥
ईसर धम्म-पमत्त जि अच्छिहि । पाउ करेवि ति कुगइहिं गच्छहिं ।
धम्मिय धम्मु करंति जि मरिसहि । ते सुहु सयलु मणिच्छिउ लहिसहि ॥२३॥
कज्जउ करइ बुहारी बुद्धी । सोहइ गेहु करेइ समिद्धी ।
जइ पुण सावि जुयंजुय किज्जइ । ता किं कज्जा तीएँ सहिज्जइ ॥२७॥
इय जिणदत्तुवएसु जि निसुणहि । पढहि गुणहि परियाणवि जि कुणहि ।
ते निव्वाण-रमणि सहुँ विलसहि । वलिउ न संसारिण सहुँ मिलिसहि ॥३२॥

काव्यस्वरूपकुलक[1]

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लद्धउ माणुस-जम्मु महारहु । अप्पा भवसमुद्दि गउ तारहु ।
अप्पु म अप्पहु रायह रोसह । करहु निहाणु म सव्वह दोसह ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुलहउ मणुय-जम्मु जो पत्तउ । सह लहु करहु तुम्हि सुनिरुत्तउ ।
सुह-गुरु-दंसण विणु सो सहलउ । होइ न कीवइ बहलउ बहलउ ॥३॥

---

[1] अपभ्रंश-काव्य-त्रय, Gaikwad's Oriental Series. Vol. XXXVII, 1927

तँहां वात ना पूछैं धर्महँ। जिन-गुरु मीलहिँ कार्ये दामहँ।
फल ना पावैं मानुप-जन्मह। दूरे होंति त्याग शिव-शर्महँ ॥४॥
मोह-निद्र जनु सुत्तु न जागै। सो उट्ठिउ शिव-मार्ग न लागै।
यदि शुभार्थ कोंइ गुरु जग्गावै। तोंउ तद्वचन तासु ना भावै ॥५॥
परमार्थे ते सूतउ जागैं। सुगुरु-वचनें जे उठिया लागैं।
राग-द्वेष-मोंहउ जे गजें। सिद्धि-पुरंध्रि तें निश्चय भुंजें ॥६॥
वहुत लोग लुंचित-शिर दीसैं। पर राग-द्वेषहिँ सँग विलसैं।
पढ़ैं गुनैं शास्त्रहिँ वक्खानैं। पर परमार्थ-तीर्थ सों न जानै ॥७॥....
दुग्ध होंइ गो-यक्कतउ धवलउ। पर पीवंतै अंतर वहलउ।
एक शरीर सुक्खु स-पातै। अवर प्रियउ पुनि मासउ स्वादै ॥१०॥
ईश्वर-धर्म प्रमत्त जे आछहिँ[1]। पाप करिय ते कुगतिहिँ गच्छहिँ[2]।
धार्म्मिक धर्म करंत जें मर्पहिँ। ते सुख सकल मनीच्छित लभिहैं ॥२३॥
कार्य करै (जों) वुहारी[3] वुद्धी। सोहै गेह करेइ समृद्धी।
यदि पुनि सोउ युगयुग कीजै। ता का कार्य तीय साधीजै ॥२७॥
इति जिनदत्त-उपदेश जे सुनहीं। पढैं गुनैं परि-ज्ञान जें करहीं।
ते निर्वाण-रमणि-सँग विलसहिँ। वलेंउ न ससारे सँग मिलिसहिँ ॥३२॥
—काव्यस्वरूपकुलक

(३) दुर्लभ मानुप-जन्म

लाभेंउ मानुप-जन्म महारघु। आपें भव-समुद्रतें तारहु।
आपु न अर्पहु रागहँ रोपहँ। करहु निधान न सर्वहँ दोषहँ ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुर्लभ मानुप-जन्म जों पायउ। सह लघु करहु तुम्म सु-निरुक्तउ।
शुभ-गुरु-दर्शन विनु सो सहलउ। होइ न करतें वहलउ[5] वहलउ ॥३॥

---

[1] हैं   [2] जावेंगे   [3] वधू (गढवाली)   [4] मिलिहैं   [5] वहुत

सु वुच्चइ सच्चउ भासइ । पर-परिवायि-नियरु जसु नासइ ।
सव्वि जीव जिव अप्पउ रक्खइ । मुक्ख-मग्गु पुच्छियउ जु अक्खइ ॥४॥
विसमी गुरुगिरिहिँ समुट्ठिय । लोय-पवाह-सरिय कु पइट्ठिय ।
जसु गुरुपाउ नत्थि सोँ निज्जइ । तसु पवाहि पडियउ परिखिज्जइ ॥६॥
न मुणइ तयत्थु जो अच्छइ । लोय-पवाहि पडिउ सु'वि गच्छइ ।
जइ गीयत्थु कोवि त वारइ । ता त उट्ठिवि लउडइ मारइ ॥१६॥
तिव धम्मु कहिंति सयाणा । जिव ते मरिवि हुंति सुर-राणा ।
चित्तामोय करंत ट्टाहिय । जण तहिँ कय हवंति नट्ठाहिय ॥३१॥
—उवएस-रसायण

५ : बारहवीं सदी

§३०. हेमचंद्र सूरि

(कलिकाल-सर्वज्ञ) काल—१०८८-११७९[1], देश—धक्कलपुर (गुजरात) में जन्म, अनहिलवाडा पाटन (गुजरात) में साहित्यिक कार्य। कुल—मोढ

१—सामन्त-समाज

(१) राज-प्रशंसा

खीर-समुद्दिण लवण-जलहि, कुवलय-कुमुयहिँ ।
कालिंदी सुर-सिंधु जलिण, महु-महणु हरिण ॥

---

[1] सोलंकी (चालुक्य) अनहिलवाडा (गुजरात) के राजा कर्ण (१०७४-९१), जयसिंह सिद्ध-राज (१०९३-११४२), कुमारपाल (११४२-७३), अजयपाल (११७२-७४), मूलराज द्वितीय (११७६-७८) और भीमदेव भोला (११७८-१२२४) के समकालीन। कुमारपालके गुरु।

कइलासिण सरिसउ हू किरि, सो अंजण-गिरि ।
　　इह तुहु जस-सिरि धवलिओ, पहु कि पंडरु नहुरि ॥१२॥
जे तुह पिच्छहि वयण-कमलु, ससहर-मंडल-निम्मलु ।
　　जे विहु पालहिँ भिच्च-कम्मु, थुणहिँ जि निरुवमु विक्कमु ॥
जे विहु सासण धरहिँ, पायकमलु जे पणमहि ।
　　ता हंत लच्छी-विमुह, पहु-जस-धवलिय दिसि-मुह ॥१३॥
उक्करडा-खल-चउ-गज्जउ, चिरु जुज्झमणु ।
　　उन्नामउ सिर-कमरु म लज्जओं, थक्क महब्भर तुहु कट्टहिँ ।
　　अन्नुन्न ति-हुअणि कित्ति-धवल विसाओ तुह वट्टइ ॥१४॥
पहु ! तुह वेरि अरण्णि गय, निच्चु'वि निवसहिँ जिंव ससय ।
　　घण-कटय-दुस्सचरणि, तहिँ झंवडइ करीर-वणि ॥१६॥
जइ जाहि सुर-सरिअ जइ गिरि-निज्झर सेवहि, जइ पइसहि काणण-तरु-संडय ।
रिउ-निव तुवि नवि छुट्टहिँ पहु ! तुज्झ पयावहु, कालहु अडदीहि-हर-भुअ-दंडय ।५५।
　　—छन्दोनुशासन[1]

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जो मारिआ, वहिणि ! महारा कंतु ।
　　लज्जेज्जंतु वयंसियहु, जइ भग्गा घरु एँन्त ॥३५१॥
जहिँ कप्पिज्जइ सरिण सरु, छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
　　तहिँ तेहइ भड-घड-निवहि, कंतु पयासइ मग्गु ॥३५७॥
कंतु महारउ हलि सहिएँ ! निच्छइँ रूसइ जासु ।
　　अत्थिहिँ सत्थिहिँ हत्थिहिँ वि, ठाउ'वि फेडइ तासु ॥३५८॥
अम्हे थोवा रिउ वहुअ, कायर एव भणंति ।
　　मुद्धि निहालहि गयण-यलु, कइ जण जोण्ह करंति ॥३७६॥
खग्ग-विसाहिउ जहिँ लहहु, पिय ! तहिँ देसहिँ जाहुँ ।
　　रण-दुब्भिक्खे भग्गइ, विणु जुज्झें न वलाहुँ ॥३८६॥

---

[1] पृ० ३७ ख, ३८ क, ४१ क, ४५ ख

जिणो [illegible] मह-भड-कुड, जो भवण-गिरि ।

तह नव [illegible] निवड, प्रभु रा [illegible] नाम ॥१२॥

जो नव देव दल-कमल, [illegible]-निर्मल ।

जो विधि पावें भूलकर्म [illegible] जें निगम विषम ॥

जे विध नागल धरें पाद-कमल जे प्रणमें ।

[illegible] ! [illegible] प्रभु-[illegible] दिशिमुख ॥१३॥

उत्कण्ठा-[illegible] गर्जेउ, [illegible] ।

[illegible]-काचर ना नज्जउ, [illegible] नव निकटे ।

अन्योन्य विभुवने [illegible], विषादो नव याटे ॥१४॥

प्रभु नव वैरि [illegible], निवड निवर्ण जिमि [illegible] ।

[illegible], [illegible] करीर-वने ॥१६॥

यदि जावें गुरु-[illegible] यदि गिरि-निर्झर सेवें [illegible], यदि पइसें कानन-तरु-खडें ।

रिपु-नृप [illegible] नहिं छुटें प्रभु ! तुम्ह प्रतापहें, कालहु प्रति-दीर्घ-हर-भुज-दंडें ॥५५॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३७, ३८, ४१, ४५)

(७) वीर-रस

भल्ला हुआ जो मारिया, बहिनि ! हमारा कन्त ।

लज्जिज्जेहु वयस्यहिं, यदि भागा घर ऐन्त ॥३५१॥

जहँ कप्पिज्जै शरहिं शर, छिद्यै खड्गहिं खड्ग ।

तहँ तेहो भट-घट-निवहें, कंत प्रकाशै मग्ग ॥३५७॥

कन्त हमारो रे सखिय, निश्चै रूसै जासु ।

अस्त्रहिं शस्त्रहिं हाथियहिं, ठावहिं फोड़ै तासु ॥३५८॥

हम हैं थोडे रिपु बहुत, कायर एम भनति ।

मूढ निहारें गगन-तल, कवि जन जोन्ह करंति ॥३७६॥

खड्ग वेसाहिय जहँ लहउ, प्रिय ! तहँ देशहिं जाहु ।

रण-दुर्भिक्षे भागई, विनु युद्धेहिं वलाहु ॥३८६॥

स्तवें हाथी पइठें आता ज्योत्स्ना सेना

अब्भउ-वंचिउ बे पयइं, पेम्मु निअत्तइ जाव।
सव्वासण-रिउ-सम्भवहो, कर परिअत्ता ताव॥

हिअइ खुडुक्कइ गोरडी, गयणि घुडुक्कइ मेहु।
वासा-रत्ति पवासुअहं, विसमा सकडु एहु॥

अम्मि ! पओहर वज्ज मा, निच्चु जे संमुह थंति।
महु कंतहो समरंगणइँ, गय-घड भज्जिउ जंति॥

पुत्ते जाएँ कवण गुणु, अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भूंहडी,[1] चंपिज्जइ अवरेण॥

तं तेत्तिउ जलु सायरहो, सो तेवडु वित्थारु।
तिसहे निवारण पलुवि नवि, पर घुट्ठुअइ असारु॥३६५॥

महु कन्तहो गुट्ठ-ट्ठिअहो, कउ झुम्पडा वलंति।
अह रिउ-रुहिरे उल्हवइ, अह अप्पणे न भंति॥४१६॥

जइ भग्गा पारक्कड़ा, तो सहि ! मज्झु पियेण।
अह भग्गा अम्हहं तणा, तो ते मारिअ देण॥४१७॥

सामि-पसाउ सलज्जु पिउ, सीमा-संधिहिँ वासु।
पेक्खिवि बाहु-बलुक्कडा, धण मेल्लइ नीसासु॥४३०॥

—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-५२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)

कर-हय-थणहर-गलिअ-लोल-मणोहर-हारय।
गंडत्थल - लुलिअ - मइल-जडिल - कुंतल - भारय।
अणवरय-वाहणि-वड-पसूण सोण-विलोअण।
तुह हुअ नर-वइ-तिलय संपय वेरि वहू-यण॥६॥

जेत्थु गज्जहिँ मत्त-करि-णिवह. रंखोलहिँ जत्थु हय।
जेत्थु भिउडि-भीसण भमंति भड,
तहिँ तेहइ रणि वरइ विजय-लच्छि, पइँ पर समरोब्भड॥२६॥

जसु भुअ-वलु हेलुद्धरिअ-धरणि,
निसुणिवि वणयर - गण - उवगोउ - सुविक्कमु।

[1] पितृभूमि

'निगम-अर्चित सो पड़े प्रेम निवर्ते अव्व ।
सर्वाशन रिपु सम्भवहु कर परिवर्ते तव्व ॥

हृदय खुटुक्कै गोरडी, गगन घुडुक्कै मेह ।
वर्षा-रात्रि प्रवासुकहँ, विषमा संकट एह ॥

अम्म ! पयोधर वज्र मा, नित्य जे सम्मुख थनि[1] ।
मम कन्तहु समरांगणे गज-घट भाजेउ जानि ॥

पुत्रे जाये कवन गुण, अवगुण कवन मुएहिँ ।
जो बापेकी भूमिडी, चापिज्जै अपरेहिँ ॥

सो तेतउ जल सागरहँ, सो तेवड़[2] विस्तार ।
तृषहु निवारण तिलुव ना, पर धुंटतो असार ॥३६५॥

मम कंतहु गोष्ठ-स्थितहु, कैसे झोंपडा ज्वलनि ।
तहँ रिपु-रुधिरे बुझवै, तहँ आपने न भ्रान्ति ॥४१६॥

यदि भागा परकेरका, तो सखि ! मोर प्रियेहिँ ।
अो भागा हमकेरका, तो तें मारिय तेहि ॥४१७॥

स्वामि-प्रसाद सलज्ज प्रिय, सीमा-संधिहिँ वास ।
पेखिय बाहु-बलल्लडा, धनि मेलै निःश्वास ॥४३०॥

—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-५, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)

करहत-स्तन-धर गलिय लोल मनोहर हारय ।
गंडस्थले लुलित मइल-जटिल-कुतल भारय ॥

अनवरत-बाहुलि-वट-प्रसृत शोण-विलोचन ।
तव हुअ नरपति-तिलक संप्रति वैरि-वधू-जन ॥६॥

जहँ गर्जें मत्त-करि-निवहु (औ) कूदें यत्र हय ।
यत्र भृकुटि-भीषण भ्रमंति भट ।
तहँ तेही रणे वरे विजय-लक्ष्मि तें पर-समरोद्भवउ ॥२६॥

जासु भुजबलें हेला उद्धरेउ धरणि,
सुनिया वनचर-गण-उपगीत-सुविक्रम ।

---

[1] रहते [2] उतना (गढ़वाली)

अज्जवि हरिसिअ नव-दब्भंकुर-दभिण,
पयडहिं कुल-महिहर पुलउग्गम ॥४८॥
—छन्दोनुशासन[1]

(३) कु-नारी

जासु अंगहिं घणु नसा-जालु- जसु पिंगल-नयण-जुअो ।
जसु दंत परिरत्त-विअड्डुन्नय,
न धरिज्जइ दुह-करिणी मत्तकरिणि जिंव घरिणि दुन्नय ॥२७॥
गाँवि पट्टणि हट्टि चउहट्टि, राउलि देउलि पुरि जं दीसइ ।
लडह-अंगिअ विरहिद-जालएण, तं सा एक्कवि कय-वहु-रूव-कलिअ ॥३०॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३६ख)

(४) शृंगार-रस

विप्पिअ-आरउ जइवि पिउ, तोवि तँ आणहि अज्जु ।
अग्गिण दड्ढा जइवि घरु, तो तें अग्गि कज्जु ॥३४३॥
जिंव जिँव वंकिम लोअणहँ, णिरु सामलि सिक्खेइ ।
तिंव तिंव वम्महु निअय-सर, खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥३४४॥
तुच्छ-मज्झहें तुच्छ-जम्पिरहे,
तुच्छच्छ-रोमावलिहे तुच्छ-राय-तुच्छयर-हासहें ।
पिय-वयणु अलहंतिअहें, तुच्छकाय-वम्मह-निवासहें ।
अन्नु जु तुच्छउँ तहें धणहें, तं अक्खणउँ न जाइ ।
कटरि थणंतरु मुद्धडहें, जें मणु विच्चि ण माइ ॥३५०॥
फोडेंति जे हियडउँ अप्पणउँ, ताहँ पराई कवण घण ।
रक्खेज्जहु लोअहो अप्पणा, बालहें जाया विसम-थण ॥३५०॥

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४५क

आजउ हृपिय नव-दर्भाकुरके मिस,
प्रकटै कुल-महिधर पुलकोद्गम ॥४४॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३५, ३६, ४५)

(३) कु-नारी

जसु अंगहिँ घन नसा-जाल, जसु पिंगल-नयन-युग।
जसु दंत प्रविरल-विकटोन्नत,
न धरीजै दुख-करिणि मत्त-करिणि इव घरिणि दुर्नय ॥२७॥
गाँव पाटन हाट चौहट, रावल देवल पुर जो दीसै।
सुंदरांगी विरहेंद्रजालकेहिँ, तेहिँ सा एकउ कृत-बहुरूप-कलिता ॥३०॥
—वहीं (पृ० ३६)

(४) शृंगार-रस

विप्रियकारक यदपि पिउ, तउ तेहिँ आनहु आज।
आगिहिँ डाहा यदपि घर, तउ तेहिँ आगी काज ॥३४३॥
जिमि जिमि वंकिम लोचनहूँ, बहु-सांवारि सीखाय।
तिमि तिमि मन्मथ विजयशर, खर-पाथर तीखाय ॥३४४॥
तुच्छ मध्ये तुच्छ जल्पने,
तुच्छ[1]-अच्छ रोमावलिहे, तुच्छ-राग तुच्छतर हासे,
प्रियवचन अलभंतियहूँ, तुच्छकाय मन्मथ निवसहे।
अन्य जो तुच्छउ तेँहि धनिहि, सो भाषनउ न जाइ।
कटरि थनंतर मुर्धडहिँ, जो मन-बीच न माइ[2] ॥३५०॥
फोडहिँ जे हियडा आपनउँ, ताँह पराई कवन घृण।
राखीजहु लोगो! आपना वाला जाया विषम थन ॥३५०॥

---

[1] अल्प [2] समाइ

एक्कहिँ अक्खिहिँ सावणु अन्नहिँ भद्दवउ,
माहउ महिअल-सत्थरि गण्ड-त्थले सरउ ।
अंगिहिँ गिम्ह सुहच्छी-तिल-वणि मग्गसिरु,
तहे मुद्धहे मुह-पंकइ आवासिउ सिसिरु ।
हिअडा फुट्टि तडत्ति करि, काल-क्खेवें काइँ ।
देक्खउँ हय-विहि कहिँ ठवइ, पइँ विण दुक्ख-सयाइँ ॥३५७॥
जइ न सु आवइ दूइ ! घरु, काइँ अहो-मुहु तुज्झ ।
वयणु जु खंडइ तउ सहिएँ, सो पिउ होइ न मज्झु ॥
भमरु म रुण-झुणि रण्णडइ, सा दिसि जोइ म रोइ ।
सा मालइ देसंतरिअ, जसु तुहुँ मरहि विओइ ॥३६९॥
मुह-कवरि[1]-बन्ध तहे सोह धरहिँ, नं मल्ल-जुज्झ ससि-राहु करहिँ ।
तहे सहहिँ कुरल भमर-उल-तुलिअ, नं तिमिर-डिंभ खेल्लंति मिलिअ ॥३८२॥
बप्पीहा पिउ-पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास ।
तुह जलि महु पुण वल्लहइ, बिहुँवि न पूरिअ आस ॥
बप्पीहा कइँ बोल्लिएण, निग्घिण वार-इ-वार ।
सायरि भरिअइ विमल-जलि, लहहि न एक्कइ धार ॥३८३॥
भमरा ! एत्थुवि लिम्बडइ, केंवि दियहडा विलंबु ।
घण-पत्तलु छाया-बहुलु, फुल्लइ जाम कयंबु ॥३८७॥
केम समप्पउ दुट्ठु दिण, किध रयणी छुडु होइ ।
नव-बहु-दंसण-लालसउ, वहइ मणोरह सोइ ।
ओ गोरी-मुह-णिज्जिअउ, बद्दलि लुक्क मियंकु ।
अन्नुवि जो परिहविय-तणु, किह ठिउ सिरि-आणंद ॥
निरुवम-रसु पिएं पिअवि जणु, सेसहो दिण्णी मुद्द ।
भण सहि निहुअउँ तेंव मइं, जइ पिउ दिट्ठु सदोसु ॥४०१॥

एकहिं आंखें सावन, अन्यहिं भादों,

माधव महियल-साथरें गंडस्थलें शरदो।

अंगहिं ग्रीष्म शुभाक्षी तिल-वनें मार्गसिर,

नेहि मुग्धहें मुख-पकजे आवासिउ शिशिर।

हियड़ा फूट तडक्क करि, कालक्षेपे काइँ।

देखउँ हत-विधि कहँ थपै, तें विनु दुःख शताइँ ॥३५७॥

यदि न सो आवै दूति! घर, काइ अधोमुख तोर।

वचन न खंडै तव सखी, सो पिउ होइ न मोर॥

भ्रमर! न रुनझुन रणरणै, सो दिशि जोय न रोउ।

सा मालति देशांतरिय, जसु तुहु मरै वियोग ॥३६८॥

मुख कवरि-बन्ध तहं सोह धरहिं। जनु मल्ल-युद्ध शशि-राहु करहिं।

तहि सोभै कुरल[1]-भ्रमर-कुल तुलिय। जनु तिमिर डिभ खेलंति मिलिय ॥३८२॥

पप्पीहा पिउ-पिउ भनवि केतिक रोवै हताश।

तव जले मम पुनि वल्लभें, दोहूँ न पूरिय आश॥

पप्पीह का बोलियेंइ, निर्घृण वारवार।

सागरें भरियइ विमल जल, लहै न एकहु धार ॥३८३॥

भ्रमरा! इहै लिपटिया, किछु दीवसें विलम्बु।

घनपत्ता छाया-बहुल, फूलै जव्व कदंब ॥३८७॥

केमि समपंउ दुष्ट दिन, किमि रजनी यदि होइ।

नव-वधु-दर्शन-लालसउ, वहै मनोरथ सोइ॥

ओ गोरी-मुख-निर्जितउ. बादल लुक्कु मृगांक।

अन्यउ जो परिभविय तनु, किमि ठिउ श्री आनंद॥

निरुपम-रस पिउ पियवि जनु, शेपहों दीनी मुद्र।

भन सखि! निभृतउ तिमि मइँ, यदि पिउ दीस सदोस ॥४०१॥

---

1. ...

अन्नें ते दीहर-लोअण, अन्नु तं भुअ-जुअलु।
अन्नु सु घण-थण-हारु तें, अन्नु जि मुह-कमलु ॥
अन्नु' जि केस-कलावु, सुअन्नु जु पाउ विहि।
जेण णिअंविणि घडिअ स, गुण-लायण्ण-णिहि ॥
एसी पिउ रूसेउ हउँ, रुट्ठी मइँ अणुणेइ।
पग्गिँव एइ मणोरहइँ, दुक्करु दइउ करेइ ॥४१४॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४९-१५२, १५४, १५७, १५८, १६१-६२)

गयणुप्परि कि न चड़हिँ, कि नरि विक्खरहिँ दिसिहि वसु,
भुवण-त्तय-संतावु हरहि, कि न किरवि सुहारसु।
अधयारु कि न दलहिँ, पयडि उज्जोँउ गहिउल्लओँ,
किं न वरिज्जहिँ देवि सिरहँ, सइँ हरि मोहिल्लओँ।
कि न तणउ होहि रयणारहु, होहि किं न सिरि-भायरु।
तुवि चद निअवि मुहु गोरिअहि, कुवि न करइ तुह आयरु ॥५॥
परहुअ-पंचम-सवण-मभय मन्नउं सो किर,
नि भणि भणइ न किंपि मुद्ध-कलहंस-गिर।
[illegible] ज सा ससि-वयणि

अन्य सों दीरघ-लोचन, अन्य सों भुज-युगल।
अन्य सों घन-थनहार त, अन्यउ मुख-कमल ॥
अन्यउ केश-कलाप सों, अन्य जों पाव विधि।
जेहिँ नितंबिनि गढिय सों, गुण-लावण्य-निधि ॥
ऐसी पीउ रुपेउ हउँ, रूठी मोंहिँ अनुनेइ।
प्रायः इव एहि मनोरथहिँ, दुष्कर दैव करेइ ॥४१४॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४६-५२, १५४, १५७, १५८, १६१, १६२)

गगनोपरि कि न चढै कि नरे वीखरै दिशहिँ वस।
भुवनत्रय संताप हरै, कि न किरवि सुधारस।
अंधकार कि न दले, प्रकटि उज्जोंत ग्रहियुल्लउ।
की न वरिज्जै देवि-सिरहँ स्वयं हरि सोहिल्लउ।
कि न तनय होहि रत्नाकरइ, होहि चाहें श्रीभ्रातर।
तउ चंद्र देखि मुख गोरियहि, कोंउ न करै तव आदर ॥५॥
परभृत-पंचम श्रवण सभय मानउ सों फुर।
तो भनि भनै न किछुअ, मुग्ध कलहंस-गिरि।
चंद्र न देखन सक्कै जो सा शशिवदनि।
दर्पन मुंह न प्रलोकै कि मने मृगनयनि।
वैरिउ मनें मानिय कुसुम-शर, क्षण-क्षण सा वहु उत्त्रसै।
आश्चर्य रूपनिधि कुसुम-शर, तव दर्शन जो अभिलषै ॥६॥
यदि आ-झलकैं नयन दीर्घनयनि अभि-क्षण,
केतकि-कुसुमदलेहिँ भ्रमर विलसै तो जनु।
यदि तेँही मुखें भावें मंद हासउ चढई,
तो जनु हीरक-पदुमराग-संचय झडई।
यदि तेहि मधुर मृदु भाषिणिहि वचन-गुंफ नि-सुनीजै।
तो बध करीय जनु अमृत-रस कर्ण-पर्ण-पुटें पीजै ॥७॥
श्रवण-निहित-हीरक-हसंत कुंडल-युगल।
स्थूलामल-मुक्तावलि-मंडित-थनकमल।

सेअं-'सअ-पंगुरण वहल-सिरिहंड-रसु-ज्जल,
वहु-पहुल्ल-विअइल्ल-फुल्ल-फुल्लाविअ-कुंतल ।
नो पयड़ धाइ दंसण-जणिय-खल-यण-उर-भर-भारिअ,
अहिसरइ चंद-सुंदर निसिहिँ, पइँ पिअयम-अहिसारिआ ॥११॥

जइ तुह मुह करयलु उ मोडवि । चल्लिअ चीरंचलु अच्छोडवि ।
माणिणि ! तुवि पसाओं-करि सुम्मउ । पइँ पिइ उत्तावलिअ म गम्मउ ।

जइ किं वइवि संवह-पय-जुयलु, इह विहि वसिण विहट्टइ ।
ता तुज्झ मज्झु खीणतु खरउ, किं न खामोअरि ! तुट्टइ ॥१३॥

गोवी-अण-दिज्जंत-रासय निसुणंतहँ,
वासा-रत्ति पहुच्चइ पहिअहँ पवसंतहँ ।
निअ-वल्लह तिंव किंवइ हिअयंतरि निवडिअ,
जिंव जनह न वहंति चलण नांवइ निअडिअ ॥३॥

अहरुट्ट दलइ जवापसूण दंत-कुंद,
पाणि-चरण-नयण-वयण विअसि-आरविंद ।
कुसुम पर पच्चकग्वि सुंदरि ! तुज्झ देहु,
तुह तनु-मज्झ-देसु वहसि विवरीउ एहु ॥५॥

हंसि तहारओं गइ-विलासु पडिहासइ रित्तओं,
कोइल-रमणिइ तुहवि कंठु कुंठत्तणु पत्तओं ।
[illegible] [illegible] दोहल संपइ पूरंतिअ,
जं किर कुवलय-नयण एह हिंडइ गायंतिअ ॥८॥

[illegible]-नासय [illegible] गसितुल्लं वयणं,
अंगं चामीअरप्पहँ अहिणव-कमल-दल-नयणं ।
[illegible] [illegible] दसणेहिं विद्दुमं अहरं,
पेच्छंताणं पुणो पुणो, काण न हवइ मणं विहुरं ॥११॥

[illegible] [illegible] [illegible] गंड । तहि निम्मिय मय-नयणाइ गंड ।
[illegible] । कोमलु तह विरइओं एहु अंग ॥१४॥

श्वेतांशुक-प्रावरण-बहुल, श्रीखंड-रसोज्वल ।
बहुप्रफुल्ल विकचिल्ल-फुलन फुल्लाविय कुंतल ।
तो प्रकट धाइ दर्शन-जनित खल-जन उर-भर-भारिया ।
अभिसरै चंद्र-सुंदर निशिहिं, तैं प्रियतम अभिसारिया ॥११॥
यदि तुहँ मुख-करतल उ मोडवि । चल्लिय चीरांचले आ-छोडवि ।
मानिनि ! तव प्रसाद करि सुनऊ । तैं प्रिय उत्तावलिय न जावउ ।
यदि कि पतिउ संवह पदयुगल, इहँ विधि-वशेंहि वाटई ।
तो तव मध्य क्षीणतउ खरउ, कि न क्षामोदरि ! टूटई ॥१३॥
गोपी-जन दीजंत राशक नि-सुनंतहुँ ।
वासर-रात्रि पहूँचै पथिकहूँ प्रवसंतहुँ ।
निज-वल्लभ तिमि किमिवहि हृदयंतरें निवडिय ।
जिमि जनह न वहंति चरण नावै निगडिय ॥३॥
अधरोष्ठ दलै जवाप्रसून दंत कुंद,
पाणि-चरण-नयन-वदन विकसित-अरविंद ।
कुसुम पर प्रत्यक्षउ सुंदरि ! तव देह,
तव तनु-मध्यदेश वहुहु विपरीत एह ॥५॥
हंसि तुहारउ गति-विलासें प्रतिभासै रिक्तउ,
कोकिल-रमणिहि तोर कंठें कुंठत्वहिँ प्राप्तउ ।
विरहइ कंकेली दोहल संप्रति पूरंतिअ,
जो पुनि कुवलय-नयनें ! एह हिंडै गायंतिअ ॥८॥
भ्रूवल्लि-चापकं मनोभवहँ शशि-तुल्यंव्वदनं,
अंगे चामीकर-प्रभं अभिनव-कमलदल-नयनं ।
ताही हीरावली'व दंतपंक्ति विद्रुम अधरं ।
पेखंतेहिँ पुनी पुनि , काह न होई मन विधुरं ॥११॥
निश्चय करवि चंद दोंइ खंड । तहि निर्मित मदनयनइँ गंड ।
वरकुसुम लेपियउ गंध चंग । कोमल तिमि विरचिय एहु अंग ॥१४॥

कुमुअ-कमलहँ एक्क उप्पंति मउलेइ तुवि,
कमल-वणु कुमुअ-संडु निच्चुवि विअसइ।
स-च्छंद-विआरिणिअ चंद-जोण्ह कि मत्त-वालिआ ॥१६॥

मणहरु तुह मुह-सररुह, रयणीअर-विब्भमु धरइ ।
कामिणि हास-विलासु'वि, जोण्हा-पसरहु अणुहरइ ॥४४॥

कवणु सु धन्नउ जिण विणु, कामिणि कंकण हत्थओ विअलहिँ ।
अन्नु कि एँवड़ ससि-मुहि, हिंडइ उन्नमिहहिँ कर-कमलहिँ ॥५१॥

जइ गंगा-जलि धवलि, कालइ जउणा-जलि जइ खित्तअउ ।
राय-हंसि नहु वहु न तुट्टु, सुज्झत्तणु तुवि तेत्तउ ॥१०७॥

वयणु सरोजु नयण कुवलय-दल, हासु नव-फुल्लिअ मल्लि ।
कर-पाय असोअ-पल्लव-च्छाय, सहजि कुसुमाउह भल्लि ॥१०८॥

तुहुँ उज्जाणि म वच्चसु जइविहु, विलसइ मयणूसवु पवलु ।
गइ-नयणिहिँ लज्जीहइ तुह हंसीउलु सहि तह हरिण-उलु ॥८॥

पिउ आइउ निवडिउ पइहिँ, सपणय-वयणिहिँ, अणुणिवि माणु सुआविआ ।
उअ सिविणयभरि आलिंगिमि जांवहिँ तांवहिँ सहि ! हय कुक्कुडि रडिआ ॥२७॥

—छन्दोनुशासन (पृ० ३४क ख, ३६क, ४-क ख, ४२क, ४३ ख, ४४ख)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

[illegible] [illegible] धरणी-अलि इंदगोवया¹,
पाउस-सिरि नाउ पय जावय-विंदु लग्गया
[illegible] [illegible] [illegible] वहल-कंतिआ,
[illegible] जायरूव-निम्मिअव्व कंठिआ ॥७॥
[illegible] [illegible] [illegible] समहिओ,
आयण्णसु नंपय महिअलि जं विरइओ

¹ [illegible]

कुमुद-कमलह एक उत्पत्ति मुकुले तउ,

कमल-वन कुमुद-षंड नित्यहिँ विकासै।

स्वच्छंद-विहारिणिय चंद्र-ज्योत्स्न कि मत्त-वालिका ॥१६॥

मनहर तव मुख-सरुह, रजनीकर-विभ्रम धरइ।

कामिनि ! हास-विलासउ, ज्योत्स्ना-प्रसरह अनुहरइ ॥४४॥

कवन सोँ धन्यउ जिन विनु, कामिनि कंकण हस्तहँ विगलै।

अन्य कि एवं शशिमुखि, हिंडै उन्नमितइँ कर-कमलैँ ॥५१॥

यदि गंगा-जलेँ धवली, कालइ यमुना-जलेँ यदि क्षिप्तऊ।

राजहंसि नभ वहु न टूटु, शुद्धत्वेँ तव तेत्तऊ ॥१०७॥

वदन-सरोज नयन कुवलय-दल, हास नव-फुल्लिय मल्ली।

कर-पाद अशोक-पल्लव-छाय, सहजे कुसुमायुध भल्ली[1] ॥१०८॥

तुहुँ उज्जेनि न ग्रजहु जड़विहु, विलसै मदनोत्सव प्रवल।

गति-नयनेँहिँ लज्जीहै, तुहु हंसीकुल सखि तिमि हरिण-कुल ॥८॥

प्रिय आयउ नि-पडेँउ पदहिँ, स-प्रणय-वचनेँहिँ अनुनइ मान सोँ आविया।

मि स्वपने भरि आलिगउँ जौ लोँ, तौ लोँ सखि ! हत कुक्कुटि रटिया ॥२७॥

—छन्दो० (पृ० ३४, ३६, ४०, ४२, ४३, ४४)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

जै अरुण-कांति धरणीतलेँ इन्द्रगोपका,

पावस-श्री न्याइँ पद यावक-विन्दु लग्गया।

हउ विज्जु-लेख कल-कंतिय वहुल-कंतिया,

लक्खीजै जातरूप - निर्मितव्य कंठिया ॥७॥

त-'म्वुवाह वर्पतेहिँ पति समधिका,

आकर्णहु संप्रति महितलेँ जो विरचिया।

---

[1] भाला

हंस-हंकल-सद्दिण जं आसि णोहरु, दद्दूर-रडिआउलु निम्मिओ तं सरवरु ॥ ६ ॥

गहिरु गज्जइ धरइ मय - वारि, विहलं - घुलु नहु कमइ ।
दुन्निवारु दिसि-दिसि पलोट्टइ ! ओ मत्त-वालिय-सरिसु विसम-चेट्ठु पाउसु पयट्टइ॥ १८॥

गज्जइ घण - माला वणघणाह । नं मयण - निवइणो कुंजर - घड ॥६१॥

कुसुमग्गमु अज्जुण-केअइ-कुडयह । पेच्छिवि कहवि हु न हु रइ-मंडहिँ ।
नव - पाउसि पइसंतइ ओ जाइ । निअंत भमर दुओ हिंडहिँ ॥३७॥

वज्जहिँ गज्जिर-घण-मद्दल, नच्चहिँ नह-यल-अंगणि नव-चंचल-विज्जुल ।
गायहिँ सिहि इह संगीअउ, पाउस-लच्छिहिँ करइ जुआणह मण-आउल ॥४३॥

—छन्दोनुशासन[1]

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलकिंचिअइँ विसट्टहिँ, ससि-जोण्ह-समुज्जल रत्तडी ।
मल्लिअ पुल्लइँ परिमल-सारइँ, जउ तउ गय मग्गहु वत्तडी ॥११३॥
तुट्ठ मुहुलायन्न-तरंगिणिएँ, झलकंतउ कंति-करंविअओ ।
सोहइ निम्मल-वट्टुल-मंडलु, जल-मज्झि नाइ ससि-विविओ ॥११४॥

—छन्दो० (पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क)

(ग) हेमन्त-वर्णन

महु-रसु घुंटिउ जेहिँ जहिच्छइ, ते अलि दीसँत भमंत ।
मालइ-ओहुल्लणउँ करंतिण, कि सोँहिओँ पइँ हेमंत ॥१११॥

—छन्दो०[2]

(घ) वसंत-वर्णन

कि न फुल्लइ पाडल पर-परिमल । महमहेइ किँ न माहवि अविरल ।
नवमल्लिअ कि न दलइ पहल्लिय । कि उत्थरइ कुसुम-भरि मल्लिय ।

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क [2] पृ० ४२ ख

हंस-हंकल-शब्देंहिं जो अहेंउ नोहर, दर्दुर-रटनाकुल निर्मित सो सरवर ॥ ६ ॥

गंभिर गर्जै धरै मद - वारि, विह्वल नभ भ्रमई,
दुर्निवार दिशि-दिशि प्र-लोटै, ओ मत्त-वालिक-सदृश विषम-चेट पावस प्रवर्त्तै ॥१८॥

गर्जै घनमाला घनघनाइ, जनु मदन-नृपतिकर कुंजर-घट ॥ ६१ ॥

कुसुमोद्‌गम अर्जुन-केतकि-कुटजहें। पेखिय कदंबिउ नहि रति-मंडहिं ॥
नव-पावसें पइसंतइ ओ जाइ, देखंत भ्रमर दूत हिंडहिं ॥३७॥

बाजैं गज्जर-घन-मर्दल, नाचैं नभतल-आंगनें नव-चंचल-बिज्जुल।
गावैं शिखि इहैं संगीतउ पावस-लक्ष्मिहि करै युवानह मन-आकुल ॥४३॥

—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी भिलमिलिचितैं विलट्टें, शशि ज्योत्स्न-समुज्ज्वल-रातड़ी।
मल्ली फुल्लै परिमल सारैं, जो तो गय मागहु वातड़ी ॥११३॥
सव गुरु-लावण्य-तरंगिणिएँ, भलकंतउ कांति करंबितओ¹।
सोहै निर्मल-वर्त्तुल-मंडल, जल-मांझ न्याईं शशि-बिंबओ ॥११४॥

—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ग) हेमन्त-वर्णन

मधु-रस पोंटिउ जेहि पवेच्छहि, ते प्रति दिवस अनंत।
मालति-प्रोल्हलउ कन्नि, की नाविउ तैं हेमंत ॥१११॥

—छन्दो० (पृ० ४)

(घ) वसंत-वर्णन

को न फूलै पाटल पर-परिमल। कुन्दै को न मावइ पवित्र ॥
नव-मल्लिक को न करै परिमिया। को उन्मदै कुसुम-भरें भौंरिन।

¹ दुग्ध

दीहिय-तलाय-सर-तल्लडिहिँ। कि न पसाहि पउमिणि फुडइ।
तुवि जाइ जाय-गुण-संभरणु झाणु। कि भसलुहु मणि खुडइ ॥१२॥
सुणिवि वसंति पुर-पोढ-पुरंविहिँ रासु।
सुमरि विलडहि हूओ तक्खणि पहिउ निरासु ॥१५॥
मत्त-कोइल-नाय णंदीइ सिंगार-रसोग्गमिण, नच्चमाण-मायंद-पत्तहि।
अहिणिज्जइ मयण-जय-नाडउव्व, संपइ वसंतिण ॥१६॥
लुट्टिद्दुं चंदण-वल्लि-पल्लंकि सम्मिलिदु लवंग-वणि खलिदु वत्थु-रमणीय-कयलिहिँ।
उच्छलिदु फणि-लयहिँ घुलिदु सरल-कक्कोल-लवलिहिँ, चुंविदु माहवि-वल्लरहिँ।
पुलइद-काम-सरीरु भमर-सरिच्छउ संचरइ, रड्डउ मलय-समीरु ॥३१॥
माणु म मेल्हि 'गहिल्लिएँ निहुई होहि खणु,
उभयओँ चंदु पयट्टओँ रासावलय खणु।
दिक्खिसु एहिवि नयणिहिँ, पड हलि मयण-हय,
वल्लह पयह पडंति, भणंतिय वयण-सय ॥३॥
आमूलु वि वहु-पंकिण सँवलिअ सव्व-वार-पडिवोह सोहर-हिय।
कंटय-सय-संसेविअ-जल-सयण, जिण उववयणु न सोहहिँ कमल-वण ॥७॥
कोइल-कल-रवु चंदणु, चंदुज्जोअ-विलासु।
वल्लह-संगमि अमय-रसु, विरहिय जलिउ हुआसु ॥२६॥
जं सहि ! कोइल कलु पुक्कारइ, फुल्लु निलओ।
तं पत्तु वसंतु मासु, कामहु लीलालओ ॥६८॥
दीसइ उववणि, फुल्लिओ नाय-केसरो।
नं माहविण वण-सिरिहि दिण्ण-सेहरो ॥७२॥
कर असोअ-दलु महु-कमलु हसिउ नव-मल्लिअ।
अहिणव-वसंत-सिरि एह, मोहण-इल्लिअ ॥८६॥
पत्तउ एहु वसंतउ, कुसुमाउल-महुअरु।
माणिणि ! माणु मलंतउ, कुसुमाउह-सहयरु ॥६४॥

' छोटेसे घरमें, छोटी उमरकी घरवाली (गृहिणिके !)

दीर्घी-तलाव-सर-तालडिहिँ । की न प्रसाधि पद्मिनि फूटई ।
तहु जाति ! जात-गुण-संभरण ध्यान । की भ्रमरहु मणि खूटई ॥१२॥
सुनिय वसंते पुर-प्रौढ-पुरंध्रिय रास ।
सुमिरि विलटहि हुयउ तत्क्षण पथिक निराश ॥१५॥
मत्त-कोकिल-नाद-नंदी शृंगार-रसोद्गम्येँहि नृत्यमान माकंद-पंक्तिहिँ ।
अभिनीजै मदन-जयनाटकहँ, संप्रति वसंतेँही ॥१६॥
लोटिय चंदन-वल्लि-पर्यंकेँ सम्मिलिय लवंग-वनेँ स्खलिय वस्तु-रमणीय-कदलिहिँ ।
उच्छलिय फणि-लतहिँ घुरिय सरल-कंकोल-लवलिहिँ, चुंविय माधवि-वल्लरिहिँ ।
पुलकित काम-शरीर भ्रमर-सरीसउ संचरै, रोयउ[1] मलय-समीर ॥३१॥
मान न मेलि गृहिल्लिएँ, निभृता होहि क्षण,
उभयउ चंद्र प्रकटेउ, रासा-वलय[2] क्षण ।
देखिहु एहिहि नयनहिँ, तैँ री मदन-हत,
वल्लभ-पदहँ पडंति, भनंतिय वचन-शत ॥३॥
आमूलउ वहु-पंकेँहिँ सँवरिय, सर्व-द्वार-प्रतिवोध सोहर-हिय ।
कंटक-शत-संसेविय जल-शयन, जिन उपवचन न सोहैँ कमल-वन ॥७॥
कोकिल-कलरव चंदन, चंद-उदोत-विलास ।
वल्लभ-संगमेँ अमृत-रस, विरहे जलेँउ हुताश ॥२६॥
जो सखि ! कोकिल कल-पुक्कारै, फुलेँउ निलओ ।
सो आउ वसंत मास, कामहँ लीला-लयो ॥६८॥
दीसै उपवनेँ, फुल्लिय नागकेसरो ।
जनु माधवेँ वन-श्रीहिँ दियेँउ शेखरो ॥७०॥
कर अशोक-दल मुख कमल हसित नव-मल्लिय ।
अभिनव-वसंत-श्री एह, मोहनइल्लिय[3] ॥८६॥
आयउ एहु वसंतउ, कुसुमाकुल-मधुकर ।
मानिनि ! मान मलंतउ, कुसुमायुध-सहचर ॥६४॥

---

[1] चिल्लाया [2] रश्मिवलय [3] मोहिनी

घोलिर-नवपल्लवु, परिफुल्लिओं रेहइ असोअ-तरु।
विरइओं रम्मु नाइ, महु-मासिण कुसुमा-उहु-सेहरु ॥६८॥
—छन्दो०[1]

(४) विरह-वर्णन

जे महु दिण्णा दिअहडा, दइएँ पवसंतेण।
ताण गणंतिएँ अंगुलिउ, जज्जरिआउ नहेण ॥३३३॥
विरहानल-जाल-करालिअउ, पहिउ कोवि बुड्डिवि ठिअओ।
अनु सिसिर-कालि सअल-जलहु, धूमु कहन्तिहु उट्ठिअओ ॥४१५॥
पिय-संगमि कउ निद्दड़ी, पिअहों परोक्खहों केव।
मइँ विन्नि'वि विन्नासिआ, निद्द न एँव न तेँव ॥४१८॥
हिअड़ा पइ एँहु वोल्लिअओं, महु अग्गइ सय-वार।
फुट्टिसु पिएँ पवसंतिहउँ, भंडय ढक्करि-सार ॥४२२॥
सुमरिज्जइ तं वल्लहउँ, जं वीसरइ मणाउँ।
जहिं पुणु सुमरणु जाउँ गउ, तहों नेहहों कइँ नाउँ ॥४२६॥
हिअडा जइ वेरिअ घणा, तो किं अब्भि चडाहुँ।
अम्हाहीं वे हत्थड़ा, जइ पुणु मारि मराहुँ ॥
रक्खइ सा विस-हारिणी, वे कर चुंविवि जीउ।
पडि विंविअ-मुंजालु जलु, जेहिं अहाडिउ पीउ ॥
बाह-विछोडवि जाहि तुंह, हउँ तेवइँ को दोसु।
हिअय-ट्ठिउ जइ नीसरहि, जाणउँ मुंज स रोसु ॥४३६॥
—प्राकृतव्याकरण (१४७, १६५, १६६, १७०, १७३)

निक्कंदल-किय-कच्छ, नलिणि-वज्जिय-किय सरसरि,
निच्चंदण किय मलओं, तुहिण-वज्जिय किय हिमगिरि।

---

[1] ३४ख, ३५ख, ३६क-ख, ३७क, ३६ख, ४१क-ख, ४२क, ४५क

डोलिलय नवपल्लव, परिफुल्लिय राजै अशोक-तरु ।
विरचेँउ रम्य न्याइँ, मधुमासेँहिँ कुसुमायुध-शेखरु ॥९८॥
—छन्दो० (पृ० ३४-३७, ३९, ४१, ४२, ४५)

(४) विरह-वर्णन

जो मोँहिँ दिन्ना दिवसड़ा, दयितेँ प्रवसंतेइँ ।
ताह गनंतिउ अंगुलिउ, जर्जरियाउ नखेइँ ॥३३३॥
विरहानल-ज्वाल-करालियउ, पथिक कोउ बूडिय ठियउ ।
अनु शिशिर-कालेँ सकल-जलहु, धूम कहंतिउ उट्ठियउ ॥४१५॥
प्रिय-संगमेँ कहँ नीँदड़ी, प्रियह परोक्षहु केमि ।
मैँ दोउहि विन्यासिया, निद्र न एम तेमि ॥४१८॥
हियड़ा तैं ऍहु बोल्लियउ, मम आगे शतवार ।
फूटेँसु प्रिय प्रवसंतही, भंडक[1] ठिक्करि-सार ॥४२२॥
सुमिरज्जै तेँहिँ वल्लभउँ, जो, वीसरैं मनाउ ।
जहँ पुनि सुमिरन चलि गउ, तह नेहह की नाउँ ॥४२६॥
हियरा यदि वैरी घना, तो की नभहिँ चढाउँ ।
हमरो ही दो हाथड़ा, यदि पुनि मारि मराउँ ॥
राखै सा विष-धारिणी, दोउ कर चुंविय जीउ ।
प्रतिविंवित-मुंजाल जल, जेँहिं ले लीयउ पीउ ॥
बाँह विछोडिय जाहि तुहुँ, हउँ तेवइँ को दोप ।
हृदय-स्थित यदि नीसरैं, जानउँ मुंज सरोप ॥४३९॥
—प्राकृत-व्या० (पृ० १४७, १६५, १६९, १७०, १७३)

निर्-कंदल किय कच्छ, नलिनि-वर्जित किय सुरसरि ।
निश्चंदन किय मलय, तुहिन-वर्जित किय हिमगिरि ॥

---

[1] भांडा वर्त्तन ।

निप्पल्लव किय करि पयत्तु-कंकेल्लि-विडवि-सय,
पत्त-चत्त किय वाल-कयलि, अकुसुम किय तरु-लय ।
सिसिरोवयार किहिँ परियणिहिँ, णिम्मुत्तावलि किय भुवण ।
तो विहु न तीइ विरह-तुह भरि, खसइ दाह-दारुण-विअण ॥४॥

तरुणि - हूण - गंड-प्पहु - पुंछिअ - तिमिर - मसि,
उक्क - झलुक्का[1]- वडणु दुसहु मा करउ ससि ।
मलयानिलु मय-नयणि घुणिअ-कप्पूर-कयलि-वणु,
संधुक्किय-मयण-'ग्गि सहि ! इमा तुज्झ तवउ तणु ।
तणु-अंगि ! म खडहडि पडहि तुह, मयण-वाण-वेयण-कलह ।
चयमाणु माणि वलहिण सहुँ, चडि म जीव संसय-तुलह ॥१०॥

लायण्ण-विब्भमं तरंगतिहिँ । निद्दड्ढ-वम्म जिआवंतिहिँ ।
प्रेमि प्रियाहिँ जो पुलोइज्जइँ । ता मत्तलोइ सग्गु पाविज्जइ ॥१३॥

मत्त-महुअरि-तार-झंकार-कलयंठि-कलयलिहिँ, मयण-धणु-हडुंकार-ससिहिँ ।
कह जीवहुँ विरहिणिउ, दुर - देस - पवसंत - रमणिउ ॥२१॥

कुविदो मयणो महाभडो, वण-लच्छी अ वसंत-देहिआ ।
कह जीवउँ सामि ! विरहिणि, मिउ-मलयानिल-फंस-मोहिआ ॥५४॥

जलउ जइवि कुसुम-लया-हरु, तवइ चंदु जह गिम्हि दिवायरु ।
तुवि ईसा-भर-तरलिअ, पिअ-सहि वयणु न मन्नइ बालिअ ॥५७॥

जलउ सरोवरि नीलुप्पल-वणु ! वणि लय फुल्लिअ नहयलि हिम-किरणु ।
विरह-रहक्कइँ तुह तणु-अंगिहिँ, मुद्धय ! विणिम्मिओ जलु थलु नहु जलणु ॥३२॥

सइँ विज्जुल-अविउत्तउ तुहुँ जल-हर-करि, गुंदलु निद्दु न जाणसि विरहिअहँ ।
इअ भणि चिंतवि किंपि अमंगलु, दइअहुं अंसु-पवाहु पलट्टउ पँथिअहँ ॥४५॥

विरह रहक्कइँ मुद्धय न जंपइ, न हसइ जीवइ केवलु पिअ-पच्चासइ ।
अहवा किंपि उव्वायवण्णणु, कम्मिहुँ निच्छइँ मरिसहुँ तुहु जंसु नासइ ॥४६॥

---

[1] उल्का की तरह भक्से जलनेवाला, ऊक भरकानेवाला

विरह-विहुरिय चक्कमिहुणाइँ मिलिऊण साणंद, हुय तुट्ठ भमहिँ पहियण महियलेँ।
कोसिय[1]-कुलु ऍक्कु परिदुहिउ रविहिँ आरूढेँ नहयलेँ।
——णेमिणाह-चरिउ ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि संठिय मंजु सिंजंत भमरावलि सामलियदलि कुसुम-सहयार-मंजरि।
पसरंत हरिसुल्ल सिय पुलय भरेँण रेहंत सिरुवरि।
विरइवि करसंपुडु भणहिँ, उज्जाणिय आगंतु।
जह पहु हरिसिय भुवण-जणु, संपइ पत्तु वसंतु।
जमिह पसरिउ दइय-संगु'व्व मलयानिलु अंगसुहु पत्तविहवु पुणु कुसुम-परिमलु।
चारिज्जय तूर-रव-रम्मु फुरिउ कलयंवि-कलयलु।
पउमारुण कंकेल्लि-तरु-कुसुमइँ नयणसुहाइँ।
तवणिज्जुज्जल कुसुम-भरु हूय कोरिंट-वणाइँ।
जत्थ माहवि लइय तो भरिय सेहालिय कुंतलिय जालईय लहु सुरहि लइयवि।
भूयद्दुम मंजरिय वहुगुलुंव पायव असोयवि।
आलिंगिज्जहिँ पूगफलेँ, तरु कामुय सव्वंगु।
नागवल्लि तरुणिहिँ जणहँ, उज्जीविरिहि अणंगु॥
जहिँ पवालंकुरेँहिँ कयसोह डिंभाइँ'व तिलयकय गरुयमहिम कामिणि मुहाइँ'व।
वहुलक्खण चित्त-सय मणहराइँ नर-वइ-गिहाइँ'व।
उत्तिम नाइँ णवकय-महिमंडणाइँ वणाइँ।
विलसहिँ भुवणाणंदयर, नं नरनाहकुलाइँ॥
जहिँ दिज्जइ सियकुसुम कणियार-वणराइ कंचणमयव कुणइ पहिय हिययाण विब्भमु।
अहिकंखहिँ भुवणयले सयल-मिहुण नियदइय-संगमु।
सिज्जहिँ गामहिँ नच्चाविउ, पेज्जहिँ वरमहुराउ।
माणिज्जहिँ तुंगत्थणिउ, किज्जहिँ जल-कीलाउँ॥
—णेमिणाह-चरिउ[2]

---

[1] कौशिक—उल्लू [2] संधि ८

२—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जीएँ रयणिहिँ नियय तणु किरणमालच्चिय दीव सिव सोह मेतु मंगल-पईवय।
सवणाण विहूसणइँ नयणकमल विइ मेत्त मेवय।
गंडयलच्चिय तिमिर-हर, जगेँ पहु ससि-रवि-संख।
सवण जेँ अंदोलय ललिय, विहल महुहु आकंख॥
जणु सुहावहिँ मुहह निसास किं मलयानिल भरेण, दंतकिरण धवलहिँ किं चंदेण।
अहरो विहूरं जवइ जगु विकडण किं अंगरागेण।
रसण गउच्चिय मिउफरि, सूनपा-मयण मयणेज्ज।
नह-मणि-किरणच्चिय कुणहिँ, कुसुम वयारह कज्जु॥
तरल-नयणेहिँ कुडिल-केसेहिँ थण-जुयलेण, पुणु कठिण तुज्झ रुव मज्झपएसेण।
अच्चंतं धाउलिय देवपूय गुरु विणय हरिसेण।
इय सा सयलुवि जगु जिणइ, निय-गुण-दोस-सएण॥
—णेमिणाह-चरिउ[1]

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नील-कुंतल कमल-नयणिल्ल, बिंबाहरु सियदसणु, कंबुगीवु पुरु-अरुणि उरयलु।
जय दीहर-भुय-जुयल वयण ससि जिय कमल-उप्पल।
पउमदलाहरु करयलणु, नविय-कणय-गोरंगु।
अट्ट वरिस वउ पहु हुयउ, समहिय विजिय अणंगु॥
—वही[1]

(३) विवाह-महोत्सव

सा पहुणइ जाम समये सिविणहिँ सुहि-सज्जणहितसि, कुमरकुमरीण दोण्हवि।
पारद्ध विवाह-विहि नयण-सयर पहु दुहिय अच्चवि।

नियनिय जणयाणुग्गहिणु, कयसायर सिंगार।
लग्ग कुमारह पाणितलें, फुरिय मलय-पब्भार ॥

ता कुमारह वित्ति विवाहें पसरंत महूसवेण नयरलोउ सयलोवि सहरिसु।
आसीसहँ सय-सहस देइ कुणइ मंगलिय पगरेसें।

अह नरनाहें ण वित्थरें ण, निय-नयरंमि असेसें।
पारद्धउ वद्धावणउँ, तंमि विवाह विसेसें॥

वज्जंत गज्जंत बहुभेय-तूरं। लभिज्जंत दिज्जंत कप्पूर-पूरं।
पणच्चंत णच्चंत वेसा-समूहं। दसिज्जंत हिंडंत वावणयतूहं।

एंत गच्छंत चिट्ठंत बहुसज्जणं। लेंत वियरंत सुयसंत जण-रंजणं।
खंत पिज्जंत दिज्जंत बहुभक्खयं। लोय उल्लसिय बहुभेय मणसुक्खयं।
धावंत कीलंत वग्गंत खुज्जयगणं। वंत उट्ठंत निवटंत बालयजणं।

—णेमिणाह-चरिउ[1]

(४) नारी-विलाप

हरिण-णयणिय चंपयच्छाय ससि-सोमवयणंबुरुह, कुंद-कलिय-सम-दंत-पंतिया।
परिदेविय रव-भरिय धरणि गयण अंतरमय विय॥

कुट्टहिँ सिरु कर-मुग्गरिहिँ, पीडहिँ उरु वादाहिँ।
ताडहिँ वच्छोरुहवियउ, निय - करसाहाहिँ॥

रुयहिँ गायहिँ ललहिँ मुच्छहिँ सिक्कारहिँ पुक्कारिहिँ, सहिहि गहियउ उरें हार तोडहिँ।
उल्लूरहिँ चिहुर-भर कणय-रयण-वलयालि मोडहिँ॥

नग्गिवि नग्गिवि निय-पियय मह, गुणगणु तहिँ विलवंति।
जह स विहट्टिय तरु विहय, नियरु वि रोयावंति॥

—णेमिणाह-चरिउ[2]

---

[1] संधि ७ [2] संधि ८

निज निज जनकानुग्रहें उ, कृत - सादर - शृंगार ।
लाग कुमारह पाणितलें, फुरिय मलय पह्हार ॥
तो कुमार-कृत-विवाहें पसरंत महोत्सवें, नगर लोग सकलऊ सँहर्षेउ ।
आशीपहँ शत-सहस दें इ करैं मंगलिय प्रकर्षेउ ।
अथ नरनाथें विस्तरें, निज नगर ही अशेपें ।
प्रारंभेउ वधावनउ, तेहिँ विवाह - विशेषें ॥
वाजंत गाजंत वहुभेद-तूरं । लभिजंत दीयंत कर्पूर-पूरं ।
प्र-नाचंत नाचंत वैश्या-समूहं । द्रशिज्जंत हिंडंत वामन-समूहं ।
जांत आवंत तिट्ठंत वहुसज्जनं । लेंत वितरंत सुप्रशांत जनरंजन ।
खांत पीयंत दीयंत वहु-भक्षणं । लोक उल्लसिय वहुभेद मनसुक्खयं ।
धावंत क्रीडंत वलंत कुब्जक-गणं । वांत उट्ठंत निपतंत वालकजनं ॥

—वहीं

(४) नारी-विलाप

हरिन-नयनिय चम्पक-छाय शशि-सौम्य वदनांवुरुह, कुदकलिय-सित-दंत-पंक्तिया ।
परिदेवें उ रव-भरिय धरणि-गगन-अंतरमय इव ॥
कूटैं शिर कर - मुद्गरिहिँ, पीडैं उरु - पादाहँ ।
ताडैं वक्षोरुह विकट, निज (निज) कर-शाखाहिँ ॥
रोवैं गावैं ललैं मूर्छैं सीत्कारैं पुक्कारैं, सखिहि गहिउ उर-हार तोड़हीं ।
उल्लूरैं[1] चिकुर-भर कनक-रतन-वलयालि मोडहीं ।
सुमिर सुमिर निज-प्रियहं महाँ, गुण-गण तहँ विलपंति ।
जिमि स-तिरस्कृत-तरु विहग, नितरुउ रोआपंति ॥

—वहीं संधि ६

---

[1] नोचैं

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरलु तारुण्णु जल'व चवल संपयवि ।
इच्छ आयास मदुलह पुणु वंचियवि ॥
तप्पु विणस्सरु सयण नियय कज्जट्ठिया ।
विसम-परिणामु'वि हि कामिणि 'वि दुट्ठिया ॥
पिसुणवल पिच्छिणो महि दुराराहया ।
मणुवि मक्कड, मयच्छीउ तव्वाहया ॥
—वहीं

§३२. अज्ञात कवि

(वीसल-देव काल ११५३–६४)

(१) जगड्डू साहुके दानकी प्रशंसा

नउ करवाली मणियडा, ते अग्गीला च्यारि ।
दानसाल जगड्डू-तणी, दीसइ पुहवि मँझारि ॥११८॥
वीसलदे विरुत्र करइ-जगडु कहावइ जी ।
नु(उ) परीसइ फालिसिउँ, एउ परीसइ घी ॥११९॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कल्लिहिं वोर जि वीणती, अज्ज न जाणइ सख्ख ।
पुणरवि अडविहिं करि सुघर, न सहुँ एह अणक्ख ॥१३७॥
नर्मा गुणेण न उ कहवि तुंगिमा तुज्झ होइ ता होउ ।
तह तुह फलाण रिद्धी होही वीग्राणुसारेण ॥१३८॥
—उ० त०, पृ० ४६

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

ल तारुण्य जल इव चपल संपदउ ।
इच्छि आकाश मृदुलह पुनि वंचियउ ॥
ाप विनश्वर शयन निजय कार्य-ट्ठिया ।
विषम-परिणामउ हि कामिनिउ दुट्-ठिया ॥
पिशुन-खल प्रेक्षका महि दुराराधआ ।
मनउ मर्कट, मृगाक्षीउ तद्-वाधआ ॥
—वहीं

§ ३२. अज्ञात कवि

कृति—स्फुट

(१) जगडू साहुके दानकी प्रशंसा

ना करवाली मनियरा ते आगिल्ला चारि ।
दानशाल जगडूकेरी, दीसै पुहवि-मँझारि ॥११८॥
वीसलदे विरुदं करै, जगडु कहावै जीव ।
तू(तो) परसै फालसैं, एह परीसैं घीव ॥११९॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कालहिँ वोर जो वीनती, आजं न जानै कक्ख ।
पुनरपि अटविहिँ करिसु घर, ना सँग एह अनक्ख ॥१३७॥
भूमि गुणेहीं यदि कहवि तुंगिमा तुज्झ होउ ता होउ ।
तिमि तव फलाहँ ऋद्धी होही वीजानुसारेहीं ॥१३८॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१, ४२, ४६

§३३. आम भट्ट

काल, (जयसिंह—कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—अनहिलवाडा-

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गइंद डगमगिअ चन्द करमिलिय दिवायर,
डुल्लिय महि हल्लियहि मेरु जलझंपइ सायर।
सुहडकोडि थरहरिय कूरकूरंभ कडक्किअ,
अतल वितल धसमसिअ, पुहवि सहु प्रलय पलट्टिय ॥
गज्जंति गयण कवि आम भणि, सुरमणि फणिमणि इक्कहूअ।
मागहि हिमगहि मम गहि मगहि मुंच मुंछ जयसिंह तुह ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे रक्खइ लहुजीव वडवि रणि मयगल मारइ,
न पिइ अणग्गलनीर हेलि रायह संहाइ।
अवर न बंधइ कोइ नवर रयणायर बंधइ,
परनारी परिहरइ लच्छि पररायह रुंधइ।
कुमरपाल तोरि नडिइ फोडइ मत्तकडाहि जिमि,
जे जिणधम्म न मन्निगइं तीहवि चाडिसु तेम-तिम ॥२०४॥

—वहीं उ० त०, पृ० ६५

§ ३३. आम भट्ट

पाटन (गुजरात)। कुल—ब्राह्मण, राज-कवि। कृतियाँ—स्फुट

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गयंद डगमगिय चन्द करमिलिय दिवाकर,
डोलिय महि हल्लियह मेरु जल जंपै सागर।
सुभट-कोटि थरथरिय क्रूर-कूरम्भ कडक्किय,
अतल वितल धसमसिय पुहवि सँग प्रलय पलट्टिय।
गजँति गगन कवि आम भन, सुर-मणि फणि-मणि एक हुअ।
मागहि हिम गहि भम गहि मगहि मुंच मुंछ जयसिंह तुव ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे राखै लघुजीव वडउ रणें मदकगल मारैं,
न पिउ अनर्गल नीर हेरि राजहँ संहारैं।
अवर न वांधै कोइ स-घर रतनाकर वाँधै,
परनारी परिहरैं लक्ष्मि पर-राजहँ रुंधै।
कुमरपाल कोपी चढेउ फोडै सप्तकडाहि जिमि।
जो जिनधर्म न मानिहें, तेहहिँ चाढिसु ताम तिमि ॥२०४॥

—उपदेशतरंगिणी (पृ० ६४, ६५)

§ ३४: विद्याधर

काल—११८० (जयचंद ११७०-९४)। देश—कन्नोज। कुल—ब्राह्मण,

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा[1]

(वीर-रस)

चंदा कुंदा कासा, हारा हीरा तिलोअणा केलासा।
जेत्ता जेत्ता सेत्ता, तेत्ता कासीस जिण्णिआ ने कित्ती ॥७७॥ (१३७)

विसुह चलिअ रण अचलु, परिहरिअ हअ-गअ-वलु।
हलहलिअ मलअ णिवइ, जसु जस तिहुअण पिअइ।
वरणसि-णरवइ लुलिअ, सअल उवरि जस फरिअ ॥८७॥ (१४८)

भअ भंजिअ वङ्गा भग्गु कलिंगा, तेलंगा रण मुक्कि चले।
मरहट्ठा ढिट्ठा लग्गिअ कट्ठा[2], सोरट्ठा भअ पाअ पले।
चंपारण कंपा पव्वअ झंपा, ओत्था ओत्थी जीवहरे।
कासीसर राआ किअउ पआणा, विज्जाहर भण मंतिवरे ॥१४५॥ (२४४)

राअह भग्गंता दिगलग्गंता, परिहर हअ-गअ-घर-घरिणी।
लोरहि[3] भर सरवरु पअ अरु परिकरु, लोट्टइ पिट्टइ तणु धरणी।
पुणु उट्ठइ संभलि कर दंतंगुलि, वाल तनअ कर जमल करे।
कासीसरु राआ णेहलु काआ, करु माआ पुणु थप्पि धरे ॥१८०॥ (२८९)

जे किज्जिअ धाला जिण्णु णिवाला, भोट्टंता पिट्टंत चले।
भंजाविअ चीणा दप्पहि हीणा, लोहावल हाकंद पले।

---

[1] "The King's (Jaichandra's) minister Vidyadhara" the Hist. of Rashtrakuta, p. 128. [2] दिशा
[3] लोर (मल्लिका) आंसू

§ ३४. विद्याधर

राज महामंत्री।[1] कृतियाँ—स्फुट कवितायें[2]।

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा

(वीर-रस)

चंदा कुंदा कासा हारा हीरा त्रिलोचना कैलासा।
जेत्ता जेत्ता श्वेता, तेत्ता काशीश जीतिया तव कीर्त्ति ॥७७॥
विमुख चलिय रणें अचल, परिहरिय हय-गज-वल।
हलहलिय मलय नृपति, यॉसु यश त्रिभुवन पिवई।
वनरसि-नरपति लुलिय सकल-उपरि यश फुरिया ॥८७॥
भय भाजिय बंगा भागु कलिंगा, तेलगा रण मुचि चले।
मरहट्ठा दिट्ठा लागिय काष्टा, सौराष्ट्रा भय पाद पडे।
चंपारन कंपा पर्वत झपा, उट्ठी उट्ठी जीवहरे।
काशीश्वर गना कियेउ पयाना, विद्याधर, भन् मंत्रिवरे ॥१४५॥
राजा भागंता दिश-लागंता, परिहरि हय-गज-वर-घरनी।
लोरहिं भरु सरवर पद पर-परिकर, लोटै-पीटै तनु धरणी।
पुनि उट्ठै संभलि कै दंतांगुलि, वाल-तनय कर यमल करै।
काशीश्वर-राजा स्नेहल-काया, करु माया, पुनि थापि धरै ॥१८०॥
जेहिं कीजिय धारा जित्तु नेपाला, भोट्टंता पिट्टंत चले।
भंजावेउ चीना दर्पहिं हीना, लोहावले 'हा'क्रंदि पड़े ॥

---

[1] "सर्वाधिकार-भार-धुरंधरः।...चतुर्दशविद्याधरो विद्याधरः..।" प्रबंध-चिन्तामणि (मेरुतुंगाचार्य १३०४ ई०) पृष्ठ ११३-१४ (सिंघी जैन-ग्रंथ माला १, शांतिनिकेतन १९३२ ई०) The king's (Jaichanda's) minister Vidyādhara. Hist. of the Rashtrakutas (Altekar) p. 128

[2] "प्राकृत-पैंगल" (Biblio thica Indica) में संगृहीत। जिनमें कविका नाम नहीं, उनका कर्तृत्व संदिग्ध है।

ओड्डा उड्डाविअ कित्ती पाविअ, मोलिअ मालव-राअ-गणा ।
तेलंगा भग्गिअ पुणवि ण लग्गिअ, कासीराआ जअण [illegible] ॥१०८॥ (३१८)

झत्ति पत्ति पाअ भूमि कंपिआ, टप्पु खुंदि खेह सूर झंपिआ ।
गोलराअ-जिण्णि माण मोलिआ, कामरूअ-राअ बंदि छोलिआ ॥१११॥ (४२३)

भंजिआ मालवा गंजिआ [1]कण्णला, जिण्णिआ गुज्जरा लुटिआ कुंजरा ।
वंगला-[2]भंगला-ओड्डिआ मोड्डिआ, मेच्छआ कंपिआ कित्ति आ थप्पिआ ॥१२८॥(५६६)

रे गोड ! थक्कंति ते हत्थि-जूहाइ, पल्लट्टि जुज्झंतु पाइक्क-वूहाइ ।
कासीसु राआ सरासार अग्गे ण, की हत्थि की पत्ति की वीर-वग्गेण ॥१३२॥ (५५०)

§ ३५: शालिभद्र सूरि

काल—११८४ ई०। देश—गुजरात। कुल—. . .जैन साधु।

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखवि पुरह प्रवेसु, दूत पहूतउ रायहरें ।
सिउँ प्रतिहार प्रवेसु, पामिय नरवर-पय नमइ ॥६८॥

चउकिय माणिक-थंभ-, माहि वईठउ वाहुवले ।
रूपिहिँ जीसिय रंभ, चमरहारि चालइँ चमर ॥६९॥

मंडिय मणिमइ दंड, मेघाडंवर सिर धरिय ।
जस पयडे भुयदंडि, जयवंती जयसिरि वसइँ ॥७०॥

जिम उदयाचल सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटों ।
कस्तुरि कुसुम कपूर, कूचुंवरिं महमह(मह)ए ॥७१॥

[2] भग्गल—अंगदेश (भागलपुर प्रदेश)

ओड्डा उड्डापेँउ कीर्त्ती पायेँउ, मोडिय मालव-राज वले।
तेलंगा भागेँउ पुनहुं न लागेँउ, काशी-राजा जखन चले ॥१९८॥
भट्ट पत्ति[1]-पाद भूमि कंपिया, टाप खूँदि खेह सूर झंपिया।
गौड-राज जित्तु मान मोड़िया, कामरूप-राज वंदि छोड़िया ॥१११॥
भंजिया मालवा गंजिया कन्नडा, जित्तिया गुर्जरा लूटिया कुंजरा।
वंगला भंगला ओडिया मोड़िया, म्लेच्छया कंपिया कीर्तिया थापिया।१२८।
रे गौड ! थाकंति ते हस्ति-यूयाइँ, पल्लट्टि जूझंति पाइक्क इयूहाइँ।
काशीश राजा सरासार आगेहिँ, की हस्ति की पत्ति की वीर-वग्गेहिँ ॥१३२॥

§ ३५: शालिभद्र सूरि

कृति—बाहुबलिरास[2]

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

ँउपुरहँ प्रवेश, दूत वहूतउ राजघरेँ।
स्वयँ प्रतिहार प्रवेशु, पाइय नरवर-पद नमँ ॥६८॥
की माणिक-थंभ-, माँझ वईठउ बाहुबलि।
रूपे जैसी रंभ, चमरधारि चालँ चमर ॥६९॥
इत मणिमय दंड, मेघाडंबर पशर धरिय।
जसु प्रकटे भुजदंडेँ, जयवंती जयश्री वसिय ॥७०॥
मि उदयाचलेँ सूर, तिमि शिर सोहँ मणि-मुकुट।
कस्तुरि-कुसुम कपूर-, कच्चूमर महमह-महइ ॥७१॥

---

[1] प्यादा, पदाति   [2] "भारतीय-विद्या" (वर्ष २, अंक १) में मुनि
नविजय जी द्वारा पंद्रहवीं-सोलहवीं सदीके हस्तलेखके आधार पर सम्पादित

झलकै कुंडल कान, रवि-शशि-मंडित जनु अवर ।
गंगा-जल गजदान, ग्रंथित गुण-गज गुडगुडै ॥७२॥
उरवरें मोतीहार, वीर वलय करें झलझलै ।
नवल अंग शृंगार, खलकतो टोडर[1] वामए ॥७३॥
पहिरनि चादर चीर, कंकोलह करि माल करें ।
गुरुओ गुण-गंभीर, दीसें उ अपर कि चक्रधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ध्वनि ॥ रवि-उद्गमें पूरवदिशहिँ, पहिलें इ चालिय चक्र ।
धूनिय धरतल थरथरै, चलिय कुलाचल-चक्र ॥१८॥
पीछें प्रयाणा तव दियो, भुजवलि भरत नरेंद्र ।
पिडि पंचानन परदलहँ, धर-तल अपर सुरेंद्र ॥१९॥
वाजिय समभेंरि संचरिय, सेनापति सामंत ।
मिलिय महाधर-मंडलिय, ग्रंथित गुण गर्जंत ॥२०॥
गड़गड़तो गजवर गुड़िय, जंगम जिमि गिरिशृंग ।
शुंड-दंड चिर चालवैं, मोडैं अंगें अंग ॥२१॥
गंजैं फिरि फिर गिरि-शिखर, भंजैं तरुवर-डालि ।
अंकुश-वश आवैं नहीं, करें अपार अनाडि ॥२२॥
हीसैं घसमस हिनहिनैं, तरवर तार तुखार ।
स्कंदैं खुरलैं खेलइय, मनमाना असवार ॥२३॥
पाखर[2] पंख इव पाखेंरू, ऊड़ाऊड़ी जाइ ।
हाँफैं तडफैं श्वस-धसैं, जडैं जकारिय धाइ ॥२४॥
फिरैं फेंकारैं स्फोरणैं, फुर फेनावलि फार ।
तरल-तुरंगम समतुलैं, ताजिक तरल ततार ॥२५॥

---

[1] आभूषण [2] जीन

धडहडंत धर द्रम-द्रमिय, रह रुंधइँ रहवाट।
रव-भरि गणइँ न गिरि-गहण, थिर थोभइँ रहथाट ॥२६॥
चमर-चिन्ध-धज लहलहइँ, मिल्हइँ, मयगन्न माग।
वेगि वहंता तिहँतणउ, पायल न लहइँ लाग ॥२७॥
दडयडंत दह-दिसि दुसह, (प)सग्गिय पायक-चक्क।
अंगोअंगिहिँ अंगमडँ, अरियणि अन्नणि अगंत ॥२८॥
ताकइँ तलपइँ तलिमिलिडँ, हणि हणि हणि पभणंत।
आगलि कोइ न अच्छइ भलु, जे साहसु जूभंत ॥२६॥
दिसि दिसि दारक संचरिय, वेसर वहइँ अपार।
संप न लाभइँ सेनतणि, कोइ न लहइँ सुधि सार ॥३०॥
वंधव वंधवि नवि मिलइँ, वेटा मिलइँ न वाप।
सामि न सेवक सारवइँ, आपिहिँ आप वियाप ॥३१॥
गयवडि चडिऊ चक्कधरोँ, पिडि पयंड भुयदंड।
चालिय चहुँदिसि चलचलिय दिइँ देसाहिव दंड ॥३२॥
वज्जिय समहरि द्रमद्रमिय, घण नीनाद निसाण।
संकिय सुरवरि सग्ग सवेँ, अवरहँ कवण पमाण ॥३३॥
ढाक ढूक् त्रंवकतणइँ, गाजिय गयण निहाण।
पट् पंडह षंडाहिवहँ, चालतु चमकिय भाण ॥३४॥
भेरिय-रव-भर तिहुँ-भुयणि, साहित किमइँ न माइ।
कंपिय पय-भरि शेष रहु, विण साहीउ न जाइ ॥३५॥
सिर डोलावइ धरणिहिँ, टंकु टोल गिरिशृंग।
सायर सयलवि झलझलिय, गहलिय गंग-तरंग ॥३६॥
खर-रवि षुंदिय[1] मेहरवि, महियलि मेहंधार।
उजु-आलड आउध तणइँ, चलइँ राय खंधार ॥३७॥

---

[1] उच्चारण ख

वड़घड़ंत धर द्रमद्रमिय, रथ रुंधैं रथवाट।
रव-भरें गनें न गिरि-गहन, थिर स्तोभैं रथ ठाट ॥२६॥
चमर-चिन्ह-ध्वज लहलहैं, छोडैं मदगल मार्ग।
वेग वहंता तेहिकर, पायल न लहैं लाग ॥२७॥
दड़दड़ंत दशदिशि दुसह, पसरिय पायक[1]-चक्र।
अंगा-अंगी अंगमैं, अरिजनें अशनि अनंत ॥२८॥
ताकैं तडपैं तिलमिलैं, "हन हन हन" प्र-भनंत।
आगे कोइ न अहै भल, जे साहस जूभंत ॥२९॥
दिशिदिशि दारक संचरिय, वेसर[2] वहैं अपार।
शंक न लावै सेनते, कोंइ न लहैं सुधि सार ॥३०॥
बांधव बांधवें ना मिलैं, बेटा मिलैं न बाप।
स्वामि न सेवक सारखें, आपुहिं आपउ थाप ॥३१॥
गजपति चढेऊ चक्कवर, पीडि प्रचंड भुजदंड।
चालिय चहुँदिशि चलचलिय, दें इ देशाधिप
बाजिय भेरी द्रमद्रमिय, घनो निनाद निसान।
शंकित सुरवर स्वर्ग सब, अपरहैं कव.
ढाक-ढूक[3] त्र्यंबकतनइं[4], गाजिय गगन निधान।
पट् खंडहैं खंडाधिपहैं, चालत चमकिय म
भेरी-रव-भर तिहु भुवन, समुहा कतहुं न माइ[5]।
कंपित पदभरें शेप रहु, विन सावेंऊ न ज।
शिरें डोलावैं धरणिहीं, टुंक डोल गिरिशृंग।
सागर सकलउ झलझलिय उछलिय गंग-तरं
खर रवें खुंदिय मेघ रवि, महितल मेघन्वार।
ऋजुकालै आयुधन कर, चलै राज-खंवार[6] ॥

---

[1] प्यादा [2] खच्चर [3] आवाज [4] त्र्यंबककेरा [5] समाइ [6] स्कंधावार-सेना

मंडिय मंडलवइ न मुहें, ससि न कवइ सामन ।
राउत राउत-वट रहिय, मनि मुझइ मतिवंत ॥३८॥
कटक न कवणिहिं भरतणूं, भाजइ भेडि भउन ।
रेलइं रयणायर जमलें, राणोराणि नमंत ॥३९॥

ठवणि १० । तउ कोपिहिं कलकलिउ कालके(र)य कालानल,
कंकोरइ कोंग्रियऊ करमाल महाबल ।
काहल कलयलि कलगलंत भडङाधा मिलिया,
कलह तणइ कारणि कराल कोपिहिं पर जलिया ॥१२०॥
हुउउ कोंलाहल गहगहारि, गयणंगणि गज्जिय,
संचरिया सामंत सुहड सामहणिय सज्जिय ।
गडगडंत गय गडिय गेलि गिरिवर सिर ढालइं,
गूगलीय गुलणई चलंत करिय ऊलालइं ॥१२१॥
जुडइँ भिडइँ भडहडइँ खेदि खडखडइँ खडाखडि,
धणिय धुणिय धोसवइँ दंतु दो त (डातड़ात)डि ।
खुरतलि खोणि खणंति खेदि तेजिय तरवरिया,
समइँ धसइँ धसमसइँ सादि[1] पय सइँ पापरिया ॥१२२॥
कंधग्गल केकाण कवी करडइँ कडियाला,
रणणइँ रवि रण वखर सखर घण घाघरियाला ।
सींचाणा वरि सरइँ फिरइँ सेलइँ फोकारइँ,
ऊडइँ आडइँ अंगि रंगि असवार विचारइँ ॥१२३॥
धसि धामइँ धडहडइँ धरणि रवि-सारथि गाढा;
जडिय जोध जडजोड जरद सन्नाहि सनाढा ।
पसरिय पायल पूर कि पुण रलिया रयणायर,
लोह लहर वरवीर वयर वहवटिइँ अवायर ॥१२४॥

---

[1] सवार

मंडित मंडलपतिन मुखें, शशि न ऊवडें सामत ।
राउत[1] राउतपन-रहिय, मनें मोहैं मतिवंत ॥३८॥
कटकन कीनेंहि भरतको, भागे भीटिमडंत ।
रेलें रतनाकर युग, रानारान नमंत ॥३९॥

ठवनि १० । तव कोपेहिं कलकलेंउ कालकेरइ कालानल,
कंकोलइ कोरंविउ करमाल महावल ।
काहल कलकलें कलकलंत मुकुटाधर मिलिया,
कलहकेर कारण कराल कोपेहिं पर ज्वलिया ॥१२०॥
भयेंउ कोंलाहल गडगडाट, गगनंगण गजिय,
संचरिया सामत सुभट साधनिय सज्जिय ।
गडगडंत गज गुडिय गैल गिरिवर-शिर ढारैं,
गुग्गलीय हस्तिनि चलंत करिय उल्लालै ॥१२१॥
जुड़ें भिड़ें भट-भटहिं खेदि खड़खड़ें खड़ाखड़,
धनियधुनिय धूसवँ दंत दोऊ(त) तड़ातड़ ।
खुरतर क्षोणि खनंत खेदि त्याजिय तरवरिया,
शमैं धसइँ धसमसें सादि पदसँग पाखरिया ॥१२२॥
स्कंधाग्रेछल लगाम-करडै कडियाली,
रणणैं रवि रण वखर सखर घन घाघरियाला ।
सिचाना[2] वरसरइँ फिरैं सेलैं फुक्कारैं,
ऊड़ैं आड़ैं अंगें रंग असवार विचारैं ॥१२३॥
घसि धामैं घड़घड़ैं धरणि रवि-सारथि गड्ढा,
जटित जोध जटजूट जरद सन्नाह सनद्धा ।
प्रसरिय पायल पूर कि पुनि रलिया रतनाकर,
लोह लहर वरवीर वैर वधवटैं आया कर ॥१२४॥

---

[1] राजपुत्र　　[2] बाज

रणणिय रवि रण-तूर तार अंबक अहअहिया,
डाक-ढूक-ढम-डमिय डोल राउत रह रहिया ।
नेच निसाण निनादि (निनी) नीझरण निरंभिय,
रणभेरी भुकारि भारि भुयबलिहिं वियंभिय ॥१२५॥
चल चमाल करिमाल कुंत कड़तल कोदंड(उ),
झलकइँ सावल सबल सेल हल मसल पयंड(उ) ।
सिंगिणि गुण टंकार सहित वाणावलि ताणइँ,
परशु उलालइँ करि वरइँ भाला ऊलालइँ ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिडपाल डवतर कसबंधा,
साँगि सकति तरुआरि छुरिय अनु नागतिबंधा ।
हय खर रवि ऊछलिय खेह छाइय रविमंडल,
धर घूजइ कलकलिय कोल कोपिउ काहडुल[1] ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टंक टोल खेचर खलभलिया,
कडडिय कूरम कंध-संधि सायर झलहलिया ।
चल्लिय समहरि सेस सीसु सलसलिय न सक्कइ,
कंचणगिरि कंधार भारि कमकमिय कसक्कइ ॥१२८॥
कंपिय किन्नर कोडि पडिय हरगण हडहडिया,
संकिय सुरवर सग्गि सयल दाणव दडवडिया ।
अतिप्रलंब लहकइँ प्रलंब बलंधिध चहूँ दिसि,
संचरिया सामंत-सीस सीकिरिहिँ कसाकसि ॥१२९॥
जोइय भरह-नरिंद कटक मूँछह बल घल्लइ,
कुण वाहुबलि जेउ वरन मइँ सिउँ वलवुल्लइ ।
जइ गिरि कंदरि विचरि वीर पइसंतु न छूटइ,
जइ थलि जंगलि जाइ किम्हइ तु मरइ अपूटइ ॥१३०॥

---

[1] सन्दिग्ध

गय आगलिया गलगलंत दीजइँ हय लास-र,
हुइँ हसमस.......'भरहराय केरा आवास-र।
एक निरंतर वहइँ नीर एकि ईंधण आणईं,
एक आलसिइँ पर-तणुं पँगु आणिउँ तृण ताणइँ ॥१३३॥
एकि उतारा करिय तुरय तलसारे बांधइँ,
ऍक मरडइँ केकाण खाण इकि चारे रांधइँ।
ऍक भीलिय नयनीरि तीरि तेतिय बोलावइँ,
एक वारू असवार सार साहण वेलावइँ ॥१३४॥
ऍक आकुलिया तापि तरल तडि चडिय भँपावइँ,
ऍक गूडर सावाण सुहड चउरा दिवरावइँ।
—भरतेश्वर बाहुवली-रास

§३६. सोमप्रभ

काल—११९५। देश—अनहिलवाडा (गुजरात)। कुल—पोरवाल

१—नीति-वाक्य

वसइ कमलि कल-हंसी जीवदया जसु चित्ति।
तसु-पक्खालण-जलिण होसइ असिव-निवित्ति ॥ प्रस्ताव १(२६
आभरण-किरण दिप्पंत देह। अहरीकय सुरवहु-रूवरेह।
घण-कुंकुम-कद्दम घर-दुवारि। खुप्पंत-चलण नच्चंति नारि ॥ (३
तीयह तिन्नि पियारईं, कलि-कज्जलु-सिंदूर।
अन्नइ तिन्नि पियारइँ, दुद्धु जँवाइउ तूर ॥ (३
वेस विसिट्ठइ वारियइ, जइवि मणोहर-गत्त।
गंगाजल-पक्खालियवि, सुणिहि कि होइ पवि

नयणिहि रोयइ मणि हसइ, जणु जाणइ सउ तत्तु।
वेस विसिट्ठह तं करद, जं कट्ठह करवत्तु॥ (८६)
पडिवज्जिवि दय देव गुरु, देवि सुपत्तिहि दाणु।
विरइवि दीण-जणुद्धरणु, करि सकलउँ अप्पाणु॥ (१०७)
पुत्तु जु रंजइ जणय-मणु, थी आराहइ कंतु।
भिच्चु पसन्नु करइ पहु, इहु भल्लिम पज्जंतु॥
मरगय वन्नह पियह उरि, पिय चंपय-पह-देह।
कसवट्टइ दिन्निय सहइ, नाइ सुवन्नह रेह॥ (१०८)
हियडा संकुडि मिरिय जिम, इंदिय-पसरु निवारि।
जित्तिउ पुज्जइ पंगुरणु, तित्तिउ पाउ पसारि॥ (१११)
संसय-तुलहि चडावियउँ, जीविउ जाव जणेण।
ताव कि संपइ पावियइ, जा चिंतविय मणेण॥ (२४६)
रिद्धि विहूणह माणुसह, न कुणइ कुवि सम्माणु।
सउणिहि मुच्चइ फलरहिउ, तरुवरु इत्थु पमाणु॥
जइविहु सूरु सुरूवु विअक्खणु। तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खणु।
पुरिस गुणागुण-मुणण-परम्मुह। महिलह बुद्धि पयंपहिँ जंवुह॥ (३३१)
रावणु जायउ जहिँ दियहि, दह-मुह एक्क-सरीरु।
चिंताविय तइयहिँ जणणि, कवणु पियावउँ खीरु॥ (३६०)

२-सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलभद्र

पुरि चिट्ठइ पाडलियुत्त नामु। धण-कण-सुवन्न-रयणाभिरामु।
तहिँ नवमु नंद पालेइ रज्जु। पडिवक्ख-महीहर-हलण-वज्जु॥१॥
मुणि पत्त-कप्प-जल-सित्तु गत्तु। बालत्तणि जसु रोगेहि चत्तु।
तसु कप्पय मंतिहि वंसि हूओ। सगडालु[1] मति निववक्खु भूओ॥२॥

---

[1] शकटारि नन्द राजाका मंत्री

नयनें रोवै मनें हँसै, जनु जानै सब तत्त्व।
वेश विशिष्ट'हँ सो करै, जो काठहँ करपत्र ॥ (८६)
प्रतिपादन दयां देव गुरु, देव सुपात्रहँ दान।
विरचिय दीन-जनोद्धरन, करि सकलउँ अप्पान ॥ (१०७)
पुत्र जो रंजै जनक-मन, स्त्री आरावै कंत।
भृत्य प्रसन्न करै प्रभू, यही भला परि-अन्त ॥
मकंत-वर्ण प्रियह उरें, प्रिय चंपक-प्रभ देह।
कसौटियहँ दीनी मोंहै, नारि सुवर्णह रेख ॥ (१०८)
हियरा संकुचि कच्छु जिमि, इन्द्रिय-प्रसर निवारि।
जेतै पूरै प्रावरण, तेतै पाव पसार ॥ (१११)
संशय-तुलहिँ चढावियउ, जीवित जान जनेहिँ।
तव का संपत् पाइहै, जो चितविय मनेहिँ ॥ (२४६)
ऋद्धि-विहूनहँ मानुपहँ, न करै कोँइ सम्मान।
शकुना मुंचैं फल-रहित तरुवर इहाँ प्रमाण ॥
यद्यपि शूर सुरूप विचक्षण। तदपि सेवै लक्ष्मि प्रतिक्षण।
पुरुप गुणागुण-मनन-पराङ्मुख। महिलहँ बुद्धि प्रजल्पैं जो बुध ॥ (३३१)
रावण जायेँउ जमु दिनहिँ, दशमुख एक शरीर।
चिंतविया तहिया जननि, कौन पियाअउँ क्षीर ॥ (३६०)

२—सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलिभद्र

पुरि आहँ पादलिपुत्र नाम। धन-कन-सुवर्ण-रतनाभिराम।
तहँ नवम नंद पालेइ रज्ज। प्रतिपक्ष-महीधर-दलन-वज्र ॥१॥
मुनिपात्र-कल्प जल-सिक्त गात्र। वालत्वें जसु रोगेहिँ त्यक्त।
तसु कल्पक मंत्रिहि वंश हूअ। शकटारि मंत्रि नृप-चक्षु-भूत ॥२॥

---

[1] वेश्या

तसु थूलभद्दु सुओं आसु पढमु । मयणुव्व मणोहर रूव परमु ।
जो जम्म दियहि देवयहिं वुत्तु । इह होही नउदह-पुव्व-जुत्तु ॥३॥
सिरिउत्ति विइज्जउ आसि पुत्तु । नय-विणय-परक्कम-बुद्धि-जुत्तु ।
तह जक्खा-पमुह पसिद्ध पत्त । मेहाइ गुणिहिं भइणीउ सत्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य

कंचण कलसिहि जणि फलिय, सहइ लच्छिलय चित्त ।
कोसा वेसा पुव्वकय, सुकय जलिण जं एँव सित्त ॥६॥
रयणालंकिय सयल-तणु, उज्जल-वेस-विसिट्ठ ।
नं सुर-रमणि विमाण-गय, लोयण-विसइ-पविट्ठ ॥७॥
जसु वयण विणिज्जिउ नं ससंकु । अप्पाणु निसिहिं दंसइ स-संकु ।
जसु नयण-कंति-जिय-लज्ज-भरिण । वणवासु पवन्नय नाइ हरिण ॥८॥
जसु सहहिं केस-घण-कसण-वन्न । नं छप्पय मुह-पंकय-पवन्न ।
भुवणिक्क-वीर-कंदप्प-धणुह । संदरिम विडंवहि जासु भमुह ॥९॥
जसु अहर हरिय-सोहग्ग-सारु । नं विद्दुम[1] सेवइ जलहि खारु ।
जसु दंत-पंति सुंदेरु रुंदु । नहु सीओसहें तुवि लहइ कंदु ॥१०॥
असणंगुलि पल्लव नह पसूण । जसु सरल-भुयउ लयाउ नूण ।
घण-पीण-तुंग-थण-भार-सत्तु । जसु मज्झु तणुत्तणु नं पवत्तु ॥११॥

(३) वसन्त

अह पत्तु कयाइ वसंत समओं । संजणिय-सयल-जण-चित्त-पमओं ।
उल्लासिय-रुक्ख-पवाल-जालु । पसरंत-चारु-चच्चरिव्व मालु ॥१॥
जहिं वण-लय-पयडिय कुसुम-वरिस । महु-कंत समागय जणिय हरिस ।
रवमाण-चलिर-नवपल्लवेहिं । नच्चंति नाइ कोमल-करेहिं ॥२॥

नव-पल्लव-रत्त-असोअ-विडवि । महुलच्छिहि सउँ परिणयणु वडवि ।
जहिँ रेहहिँ नाइ कुसुंभ-रत्त । वत्थेहिँ नियंसिय सयल-गत्त ।।३।।
हसइ' व्व फुल्ल-मल्लिय-गणेहिँ । नच्चइ'व पवण वेविर-वणेहिँ ।
गायइ भमरावलि रविण नाइ । जो सयमवि मयणुम्मत्तु भाइ ।।४।।
घण मयण-महूसवि, पिज्जंतासवि, तहि वसंति जणचित्तहरि ।
कय-विसय-पसंसिहिँ नीओ' वयं सिहिँ, थूलभद्दु कोसाहि' घरि ।।५।। . .

(४) (वेश्या-) प्रेम

अवरुप्परु अणुराय गुणु, दोहिहिँ पयडंतीहिँ ।
थूलभद्द कोसहँ पढमु, किउ दूहत्तणु तीहिँ ।।१२।।
निम्मल-मुत्तिय-हारमिसि, रइय चउक्कि पहिट्ठ ।
पढमु पविट्ठहु हिय तसु पच्छा भवणि पविट्ठु ।।१३।।
चंदणु दंसिउ हसिय मिसि, इय कोसहिँ असमाणु ।
घरि पविसंतह तासु किउ, निय अंगिहि सम्माणु ।।१४।।
अक्ख-विणोइण ते गमहिँ, जा दुन्निवि दिण-सेसु ।
ता पच्छिम-दिसि कामिणिहि, अंकि निविट्ठु दिणेस ।।२३।।
सव्व-कला-संपन्नु रसिय, - जण - संतोसु कुणंतु ।
अमयमयइ कर-फंसि-सुहि, तहि कुमुइणि वियसंतु ।।२४।।
पारद्धु संगीउ तहिँ, कोस वेस नच्चिय वियक्खणि ।
रंजिय-मणु घणु दविणु, थूलभद्दु तसु देइ तक्खणि ।।
तयणंतरु अणुरत्तमण, मयण-पलंकि निसन्न ।
माणिय-मयण-विलास-सुह, दुन्नि'वि निद्द-पवन्न ।।२५।।

' कोशा गणिका

(२) चलु जीवउ जुव्वणु धणु सरीरु । जिम कमलदलग्ग-विलग्ग नीरु ।
अथवा इहत्थि जं किंपि वत्थु । तं सव्वु अणिच्चु हहा धिरत्थ ॥
पिइ माय भाय सुकलत्तु पुत्तु । पहु परियणु मित्तु सिणेह-जुत्तु ।
पहवंतु न रक्खइ कोवि मरणु । विणु धम्मह अन्नु न अत्थि सरणु ॥
रायावि रंकु सयणो वि सत्तु । जणओ तणऊ जणणि वि कलत्तु ।
इह होइ नडव्व कुकम्मवंतु । संसार-रंगि वहुरूव्वु जंतु ॥
एक्कल्लउ पावइ जीवु जम्मु । एक्कल्लउ मरइ विढत्त-कम्मु ।
एक्कल्लउं परभवि सहइ दुक्खु । एक्कल्लउ धम्मिण लहइ मुक्खु ॥
जहँ जीवह एडवि अन्नु देहु । तहिँ कि न अन्नु धणु सयणु गेहु ।
जं पुण अणन्नु तं एक्कचित्त । अज्जेसु नाणु दंसणु चरित्तु ॥
वस-मंस-रुहिर-चम्मट्ठि-वद्ध । नउ-छिड्डु-झरंत-मलावणद्ध ।
असुइ-स्सरूव-नर-थी-सरीर । सुइं वुद्धि कहवि मा कुणसु धीर ॥....
जह मंदिरि रेणु तलाइ वारि । पविसइ न किंचि ढक्किय दुवारि ।
पिहियासवि जीवि तहा न पावु । इय जिणिहि कहिउ संवरु पहाव ॥...
जहिँ जम्मणु मरणु न जीवि पत्तु । तं नत्थि ठाणु [1]वालग्ग-मत्तु ॥ (३११)....

(२) इन्द्रिय मारना

नहु गम्मु अगम्मु व किंपि गणइ । अव्वंभ कलुस अहिलास कुणइ ।
सकलत्ति वि हुंतइ महइवेस । पररमणि गमणि पयडइ किलेस ॥१२॥
निसिरम्मि निवाय वरग्गिसयडि । घण-घुसिण-तेल्ल-वहुवत्थ-सवडि ।
चंदण-रस-कुसुम-जलावगाह । धारागिहि गिभि महेइ नाइ ॥१३॥
पाउसि पय-पंक-पसंग [illegible] । वंछइ अच्छिद्द भवणयलु लद्धु ।
जइ कुणइ विविह-विसयाणुवित्ति । तेँह विहु न एहु पावेइ तित्ति ॥१४॥
[illegible] फासिंदिउ, वुहयण निंदिउ, करइ किंपि दुच्चरिउ तिहि ।
[illegible] जम्मिहि, पाडिओ कम्मिहि, नडहि विडंवण सामि जिह ॥१५॥

---

[1] बालकी नोकके बराबर भी

तह भक्खाभक्ख-विवेय-मूढु । रस-विसय-गिद्धि-दोलाधिरूढु ।
अविभाविय पेयापेय वत्थु । रसणुवि कुणेइ बहुविहु अणत्थु ॥१६॥
जं हरिण-ससय-संबर-वराह । वणि संचरंत अकयावराह ।
तण-सलिल-मत्त-संतुट्ठ चित्त । मम्मर-रव-सवणुब्भंत-नेत्त ॥१७॥
हिंसंति केवि मिगया पयट्ट । पसरंत - निरंतर - तुरयघट्ट ।
कर-कलिय-कुंत-कोदंड-बाण । संसय-तुल-रोविय-नियय-पाण ॥१८॥
जं गहिरि सलिल वियरंत मीण निक्करुण केवि निहणहिँ निहीण । (४२६)
जं लावय-तित्तिरि-दहिय-मोर । मारेंति अदोसवि केवि घोर ॥१६॥
तं रसणह विलसिउ, दुक्कय कलुसिउ, तुम्हहँ कित्तिउ कित्तियइ ।
जं वरिस-सएणवि, अइनिउणेणवि, कहवि न जंपिउ सक्कियइ ॥२१॥[1]

(३) नरक-भय

तह नरयवासि जं परवसेण । मइँ नरयवाल-मुग्गुर-हएण ।
अवगूढु वज्ज-कंटय-सणाहु । सिंवलितरु-जणिय-सरीर-बाहु ॥६८॥
कंदंतु कलुणु जं हढिण धरवि । खाविय नियमंसु भडित्तु करिवि ।
जं वेयण-विहुरिय-सव्व-गत्तु । हउँ पायउँ तडयउँ तंबु तत्तु ॥६९॥
जं पूय - रुहिर - वस - वाहिणीइ । मज्जाविउ वेयरणी - नईं ।
जं तत्त-पुलिणि चलउव्व भुग्गु । जं सूलवेह दुहु पत्तु दुग्गु ॥७०॥ (४३२)
जं वज्ज-जलण-जालोलि-तत्त । मइँ लोहमइय महिलावसत्त ।
जं महि हिमु कुसई खंडु करवि । उट्ठिओं खणेण पारउव्व मिलिवि ॥७१॥
जं कुंभिपाकि पक्कओं परद्धु । जं चंड-तुंड-पक्खीहि खद्धु ।
जं तिलु'व निपीलिउ लोहजंति । जं वसहि'व वाहिउ भरि महंति ॥७२॥
अच्छोडिओ' जं सिलउव्व सिलहिँ । करवत्ति भित्तु जं कँठ कयलहिँ ।
जं तलें'उ कढल्लिहिँ पप्पडु'व्व । सत्थेहि छिन्नु जं चिब्भडुव्व ॥७३॥
—कुमारपाल-प्रतिबोध[2]

---

[1] वहीं पृष्ठ ४२७ [2] पृ० ४३३

§ ३७. जिनपद्म सूरि

काल—१२०० ई०। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरिमिरि झिरिमिरि झिरिमिरि ए मेहा वरिसंति।
खलहल खलहल खलहल ए वादला वहंति।
झबझब झबझब झबझब ए वीजुलिय झबकइ।
थरहर थरहर थरहर ए विरहिणि मणु कंपइ ॥६॥
महुर गंभीर सरेण मेह जिमि जिमि गाजंते।
पंचबाण निय-कुसुम-बाण तिम तिम साजंते।
जिम जिम केतकि महमहंत परिमल विहसावइ।
तिम तिम कामिय चरण लग्गि निय रमणि मनावइ ॥७॥
सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायंते।
माण-मडप्फर माणणिय तिम तिम नाचंते।
जिम जिम जलभर भरिय मेह गयणंगणि मलिया।
तिम तिम कामीतणा नयण नीरहि झलहलिया ॥८॥
भास। मेहारव भर ऊलटिय, जिमि जिमि नाचइ मोर।
तिम तिम माणिणि खलभलइ, साहीता जिमि चोर ॥९॥

—थूलिभद्द-फागु[1]

२–सामन्त-समाज

(१) शृङ्गार-सजाव

अह सिंगारु करेइ वेस मोटइ मन ऊलटि ।
रइयरंगि बहुरंगि चंगि' चंदणरस ऊगटि ।
चंपय केतकि जाइ कुसुम सिरि पुंप भरेइ ।
अति आछउ सुकुमाल चीरु पहिरणि पहिरेइ ॥१०॥
लहलह लहलह लहलह एँ उरि मोतियहारो ।
रणरण रणरण रणरणएँ पगि नेउर सारो ।
गमग गमग गमग ए कानिहि वरकुंडल ।
झलझल झलझल झलझल ए आभरणहँ मंडल ॥११॥
मयण-खग्ग जिम लहलहंत जसु वेणी दण्डो ।
सरलउ तरलउ सामलउ रोमावलि दण्डो ।
तुंग पयोहर उल्लसइ सिंगार थपक्का ।
कुसुमबाणि निय अमियकुंभ किर थापणि मुक्का ॥१२॥
भास । काजलि अंजिवि नयणजुय, सिरि संथउ फाडेई ।
बोरियावडि कांचुलिय पुण, उरमंडलि ताडेई ॥१३॥
कन्नजुयल जसु लहलहंत किर मयण हिंडोला ।
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयणकचोला ।
सोहइ जासु कपोल पालि जणु गालि मसूरा ।
कोमलु विमलु सुकंठ जासु वाजइ संखतूरा ॥१४॥
लवणिम-रसभर कूवडिय जसु नाहिय रेहइ ।
मयणराउ किर विजयखंभ जसु ऊरु सोहइ ।

जसु नह-पल्लव कामदेव-अंकुसु जिम राजइ ।
रिमझिमि रिमझिमि पायकमलि घाघरिय सुवाजइ ॥१५॥

नवजोवन विलसंत देह नवनेह गहिल्ली ।
परिमल लहरिहि मदमयंत रइ-केलि पहिल्ली ।

अहरबिंब परवाल खण्ड वर-चंपावन्नी ।
नयन सलूणिय हावभाव बहुगुण संपुन्नी ॥१६॥
इय सिणगार करेवि वर, जव आवी मुणिपासि ।
जो एवा कउतिगि मिलिय, सुर-किंनर आकासि ॥१७॥
—वहीं पृ० ३९-४०

(२) हाव-भाव

नयणकडक्खिय आहणएँ वाँकड जोवन्ती ।
हावभाव सिणगार भंगि नवनविय करंती ।
तहवि न भीजइ मुणि-पवरो तउवेस बोलावइ ।
"तवणु तुल्लु तुह देह नाह ! महतणु संतावइ ॥१०॥
बारह वरिसहँ तणउ नेहु किणि कारणि छाडिउ ।
एवडु निठुरपणउ कइ मूसिउ तुम्ही मंडिउ ।
थूलिभद्द पभणेइ वेस ! अह खेदु न कीजइ ।
लोहिहि घडियउ हियउ मज्झ तुह वयणि न थीजइ ॥१९॥
मह विलवंतिय उवरि नाह अणुराग धरीजइ ।
रिसु पावसु-कालु सयलु मूसिउ माणीजइ ।
मुणि-वइ जंपइ वेस ! सिद्धि रमणी परिणेवा ।
मणु लीणउ संजम सिरी सुं भोग रमेवा ॥२०॥
—वहीं[1]

---

[1] पृष्ठ ४०

अनु नव-पल्लव कामदेव-अंकुश जिम राजै,
रिमझिम रिमझिम पादकमल घाघरिय सुवाजै ॥१५॥
नवयौवन विलसंत देह नवनेह-गहिल्ली,[1]
परिमल लहरेहि मदमदंत रतिकेलि पहिल्ली।
अधरबिंब पर-वाल-खंड वर-चंपा-वर्णा,
नयन सलोनिय हावभाव बहुगुण-संपुर्णा ॥१६॥
इमि शृंगार करेवि वर, जब आई मुनि पास।
जोयेवा कौतुक मिलेउ, सुर-किन्नर आकास ॥१७॥
—वही पृ० ३९–४०

(२) हाव-भाव

नयन-कटाक्षहें आहनई वाको जोयंती,
हाव-भाव शृंगार-भंगि नव-नविय करंती।
तवउ न वींधे मुनि-प्रवरो तव वेश्या बोलावै,
"तपन तुल्य तुव देह नाथ ! मम तनु संतापै ॥१८॥
बारह वर्षहें केर नेह केंहि कारण छण्डिउ,
एवड[2] निठुरपनइ का मोसे तुम मंडिउ[3]।"
थूलिभद्र प्र-भनेइ "वेश[4] ! अह खेद न कीजै,
लोहेहि गढियउ हृदय मोर, तुव वचन न विंधै ॥१९॥"
"मन विलपंतिय उपर नाथ ! अनुराग धरीजै,
ऐसो पावस-काल सकल मोसो मानीजै।"
मुनिपति जल्पै "वेश ! सिद्धि-रमणी परिणेवा।
मन लीनउ संयम श्री सों भोग रमेवा ॥२०॥"
—थूलिभद्द-फाग पृ० ४०

---

[1] ग्रहण किये [2] इतना [3] शुरू किया [4] वेश्या

जसु नख-पल्लव कामदेव-अंकुश जिमि राजै,
रिमझिम रिमझिम पादकमल घाघरिय सुवाजै ॥१५॥
नवयौवन विलसंत देह नवनेह-गहिल्ली,[1]
परिमल लहरेंहि मदमदंत रतिकेलि पहिल्ली।
अधरबिंब परवाल-खंड वर-चंपा-वर्णी,
नयन सलोनिय हावभाव बहुगुण-संपुर्णी ॥१६॥
इमि शृंगार करीय वर, जब आई मुनि पास।
जोयेवा कौतुक मिलें उ, सुर-किन्नर आकास ॥१७॥
—वही पृ० ३६–४०

(२) हाव-भाव

नयन-कटाक्षहँ आहनई वांको जोयती,
हाव-भाव शृंगार-भंगि नव-नविय करंती।
तवउ न वींधै मुनि-प्रवरो तव वेश बोलावै,
"तपन तुल्य तुव देह नाथ ! मम तनु संतापै ॥१८॥
बारह वर्षहँ केर नेह केहि कारण छड्डिउ,
एवड[2] निठुरपनइ का मोसे तुम मंडिउ[3]।"
थूलिभद्र प्र-भनेइ "वेश[4] ! इह खेद न कीजै,
लोहेँहि गढियउ हृदय मोर, तुव बचन न विंधै ॥१९॥"
"मम विलपंतिय उपर नाथ ! अनुराग धरीजै,
ऐसो पावस-काल सकल मोसो मानीजै।"
मुनिपति जल्पै "वेश ! सिद्धि-रमणी परिणेवा।
मन लीनउ सयम श्री सों भोग रमेवा ॥२०॥"
—थूलिभद्द-फाग पृ० ४०

---

[1] ग्रहण किये [2] इतना [3] शुरू किया [4] वेश्या

जसु नह-पल्लव कामदेव-अंकुसु जिम राजइ।
रिमझिमि रिमझिमि पायकमलि घाघरिय सुवाजइ॥१५॥
नवजोवन विलसंत देह नवनेह गहिल्ली।
परिमल लहरिहि मदमयंत रइ-केलि पहिल्ली।
अहरबिंब परवाल खण्ड वर-चंपावन्नी।
नयन सलूणिय हावभाव बहुगुण संपुन्नी॥१६॥
इय सिणगार करेवि वर, जव आवी मुणिपासि।
जो एवा कउतिगि मिलिय, सुर-किंनर आकासि॥१७॥
—वहीं पृ० ३९-४०

(२) हाव-भाव

नयणकडक्खिय आहणऍं वांकउ जोवन्ती।
हावभाव सिणगार भंगि नवनविय करंती।
तहवि न भीजइ मुणि-पवरो तउवेस बोलावइ।
"तवणु तुल्लु तुह देह नाह! महतणु संतावइ॥१८॥
बारह वरिसहँ तणउ नेहु किणि कारणि छाडिउ।
एवडु निठुरपणउ कइ मूसिउ तुम्ही मंडिउ।
थूलिभद्द पमणेइ वेस! अह खेदु न कीजइ।
लोहिहि घडियउ हियउ मज्झ तुह वयणि न भीजइ॥१९॥
मह विलवंतिय उवरि नाह अणुराग धरीजइ।
रितु पावसु-कालु सयलु मूसिउ माणीजइ।
मुणिवइ जंपइ वेस! सिद्धि रमणी परिणेवा।
मणु लीणउ संजम सिरी सुं भोग रमेवा॥२०॥
—वहीं[१]

§ ३८ः विनयचंद्र सूरि

कृति—नेमिनाथ-चतुष्पादिका[1]

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमर सुमिरिय गिरनार। सिद्धी राजल कन्य-कुमारि।
श्रावण श्रवणे कड़ुआ मेह। गर्जै विरहिन छीजै देह।
विज्जु झमक्कै राक्षसि जेम। नेमि विना सखि ! सहियै केम ॥२॥
सखी भनै "स्वामिनि ! मन झूर। दुर्जन करे न वाँछित पूर।
गयेँउ नेमि तव विवशेँउ काइ। आछै अन्यहुँ वरहुँ शताइँ ॥३॥"
बोलै राजल "तव एँहु वयन। नाही नेमि सम वर-रत्न।
धरै तेज ग्रह-गण सब ताउ। गगन न ऊगै दिनकर जाउ ॥४॥"
भादों भरिया सर पेखेइ। सकरुण रोवै राजल-देइ।
"हा एकलड़ी मैं निराधार। का उद्वेजिस करुणासार ॥५॥
भंनै सखी राजल मन रोइ। "नीठुर नेमि न आपन होइ।
सिंचिय तरुवर परि प्लवंति। गिरिवर पुनि करडेरा होंति ॥६॥
साँच्उ सखि ! वारि गिरि भिद्यंति। काह न भिद्यै श्यामल कांति।
घन वर्षन्ते सर फूटंति। सागर पुनि घन-ओघ डुलंति ॥७॥"
आश्विन मासहँ आँसु-प्रवाह। राजल मेलै[2] विन नेँमि नाह।
दहैं चंद चंदन हिम शीत। विनु भर्त्तारहँ सँगउ विपरीत ॥८॥
—चतुष्पादिका

"सखि ! ना क्षीणा नेमि हृदेश। मन आपनयौ तउ क्षय लेस।
जिन देखाड़ेँउ पहिलउ छेह[3]। न गणेँउ आठ भवांतर[4]-नेह ॥९॥
नेमि दयालू सखि ! निर्दोष। कीजे उग्रसेन पर रोष।
पशू भरायेँउ मूकेँउ वाड। मम प्रिय सरिसउ कियउ विगाड ॥१०॥

---

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह', G.O.S. Vol. XIII (वड़ोदा) 1920
[2] छोड़ै [3] आशा-भंग [4] जन्मांतर

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

काल—१२०० ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—. . .जैन साधु।

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमरु सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कन्न-कुमारि।
श्रावणि सरवणि कडुय मेहु। गज्जइ विरहिनि झिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम ॥२॥
सखी भणइ सामिणि मन झूरि। दुज्जण-तणा म वंछिति पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अछइ अनेरा वरह सयाइ ॥३॥
बोलइ राजल तउ इहु वयणु। नत्थी नेमी सम वर-रयणु।
धरइ तेजु गहगण सविताव। गयणु न उग्गइ दिणयरु जाव ॥४॥
भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि। सकरुण रोअइ राजलदेवि।
हा एकलडी मइ निरधार। किम ऊवेपिसि करुणासार ॥५॥
भणइ सखी राजल मन रोइ। नीठुरु नेमि न अप्पणु होइ।
सिंचिय तरुवर पारि पलवंति। गिरिवर पुणि कड-डेरा हुंति ॥६॥
साचउ सखि वरि गिरि भिज्जंति। किमइ न भिज्जइ सामलकंति।
घण वरिसंतइ सर फुट्टन्ति। सायरु पुण घण ओह डुलिंति ॥१७॥
आसोमासह अंसु-पवाह। राजल मिल्हइ विणु नमि नाह।
दहइ चंद चंदण हिम सीउ। विणु भत्तारह सउ विवरीउ ॥८॥
—चतुष्पादिका[1]

रंगि नवि भीना नेमि हिरेसि। मन आपणपउ तउ खय नेसि।
जिणि दिक्खाडिउ पहिलउ छोहु। न गणिउ अट्ठ भवंतर-नेहु ॥९॥
नेमि दयालु गनि निरदोसु। कीजइ उग्रसिण पर रोसु।
पसुय भराविउ मूकउ वाडु। मुझु प्रिय सरिसउ कियउ विहाडु ॥१०॥

---

[1] प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

कृति—नेमिनाथ-चतुष्पादिका[1]

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमर सुमिरिय गिरनार। सिद्धी राजल कन्य-कुमारि।
श्रावण श्रवणे कड़ुआ मेह। गर्जै विरहिन छीजै देह।
विज्जु झमक्कै राक्षसि जेम। नेमि विना सखि ! सहियै केम ॥२॥
सखी भनै "स्वामिनि ! मन झूर। दुर्जन करे न वाँछित पूर।
गयेँउ नेमि तब विवशेँउ काड। आछै अन्यहुँ वरहुँ शताइँ ॥३॥"
बोलै राजल "तव एँहु वयन। नाही नेमि सम वर-रत्न।
धरै तेज ग्रह-गण सब ताउ। गगन न ऊगै दिनकर जाउ ॥४॥"
भादों भरिया सर पेखेइ। सकरुण रोवै राजल-देइ।
"हा एकलड़ी मैं निराधार। का उद्वेजिस करुणासार ॥५॥
भनै सखी राजल मन रोइ। "नीठुर नेमि न आपन होइ।
सिंचिय तरुवर परि प्लवंति। गिरिवर पुनि करडेरा होंति ॥६॥
साँझउ सखि ! वारि गिरि भिद्यंति। काहु न भिद्यै श्यामल कांति।
घन वर्षन्ते सर फूटंति। सागर पुनि घन-ओघ डुलंति ॥७॥"
आश्विन मासहँ आँसु-प्रवाह। राजल मेलै[2] विन नेँमि नाह।
दहै चंद चंदन हिम शीत। विनु भर्त्तारहँ सँगउ विपरीत ॥८॥
—चतुष्पादिका
"सखि ! ना क्षीणा नेमि हृदेश। मन आपनयी तउ क्षय लेस।
जिन देखाड़ेँउ पहिलउ छेह[3]। न गणेँउ आठ भवांतर[4]-नेह ॥९॥
नेमि दयालू सखि ! निर्दोष। कीजै उग्रसेन पर रोष।
पशू भरायेँउ मूकेँउ वाड। मम प्रिय सरिसउ कियउ विगाड ॥१०॥

---

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह", G.O.S. Vol. XIII (बड़ोदा) 1920
[2] छोड़ै [3] आशा-भंग [4] जन्मांतर

कत्तिग क्षित्तिग उग्गइ संझ। रजमति झिज्झिउ हुइ अतिझंझ[1]।
राति दिवसु आछइ विलपंत। वलिवलि दय करि दयकरि कंत ॥११॥
नेमितणी सखि मूकि न आस। कायरु थग्गउ सो घरवास।
इमइ ईसि सनेहल नारि। जाइ कोइ छांडवि गिरिनारि ॥१२॥
कायरु किमि सखि नेमि जिणिंदु। जिमि रिणि जित्तउ लक्खु नरिंदु।
फुरइ सासु जा अग्गलि नास। ताव न भिल्लउ नेमिहि आस ॥१३॥
मगसिरि मग्गु पलोअइ वाल। इणयरि पभणइ नयण विसाल।
जो मइ मेलइ नेमि कुमार। तसुणी वेल वहुउ सवि वार ॥१४॥
एहु कयाग्रहु तउ सखि मिल्हि। करंसु काइ तिणि नेमिहि हिल्लि।
मंडि चडाविउ जो किर मालि। हे हे कु करइ रोहणि कालि ॥१५॥
अठभव सेविउ सखि मइ नेमि। तासु समाहउ किम न करेमि।
अवगन्नेसइ जइ मइ सामि। लग्गी आछिसु तोइ तसु नामि ॥१५॥
पोसि रोस सवि छोडिवि नाह। राखि राखि भइ मयणह पाह।
पडइ सीउ नवि रयणि विहाइ। लहिय छिद्द सवि दुक्ख अमाइ ॥१७॥
नेमि नेमि तू करती मुद्धि। जुव्वणु जाइ न जाणिसि सुद्धि।
पुरिस-रयण भरियउ संसारु। परणु अनेरउ कुइ भत्तारु ॥१८॥
भोली तउ सखि गरी गमारि। वारि अछंतइ नेमि कुमारि।
अन्न पुरिसु कुइ अप्पणु नडइ। गइवरु लहिउ कु रासभि चडइ ॥१९॥
माहमासि माचइ हिम रासि। देवि भणइ मइ प्रिय लइ पासि।
नइ विणु सामिय दहइ तुसारु। नवनव मारिहि मारइ मारु ॥२०॥
[illegible] सहू अरन्नि। हत्थि कि जामइ धरणउ कन्नि।
तउ न [illegible] जिमि माहरि माद। सिद्धि रमणि रत्तउ नमि जाइ ॥२१॥
[illegible] हियउमाहि। वाति पलीजउं किमहि लसाइं।
सिद्धि नार तउ काइ त चीह। सरसी जाउत उगसेंण-धीय ॥२२॥
फागुण [illegible] पत्त पडंति। राजल दुक्खि कि तरु रोयंति।
[illegible] तउ काइ न मूय[2]। भणइ विहंगल धारणि धूय ॥२३॥

---

[1] दुर्भर [2] मृत

कातिक क्षित्तिग ऊगै साँझ। रजमति छीजेउ होइ अति झाँझ।
राति-दिवस आछै विलपंत। "वलि वलि दयाँ करु दयाँ करु कंत" ॥११॥
नेमि केर सखि मुंचउ आश। कायर भागेँउ सो घर-वास।
एँहु ऐसीह सनेहल नारि। जाइ कोइ छाडिय गिरिनार" ॥१२॥
"कायर का सखि! नेमि जिनेंद्र। जिन रणेँ जीतेँउ लाख नरेन्द्र।
फुरै श्वास जौ आगल नास। तौ लोँ न छोड़उँ नेमिहि आश ॥१३॥"
मगसिर मार्ग प्रलोकै वाल। ऐसोँ प्रभनै नयन-विशाल।
"जो मोँहि मिलवै नेमिकुमार। तसु उपकार वहुउ सव वार" ॥१४॥
"एहु कुआग्रह तव सखि! मेलु[1]। करसि काह तिन नेमिहिँ हिल्ल।
मंडेँ चढ़ायेँउ जो पुनि माल। हे हे को करै टोअन[2]-काल" ॥१५॥
अठ भव सेवेँउँ सखि! मै नेमि। तसु ऊमाइ[3] किमि न करेमि।
अवश छिजीहै जो मोँहिँ स्वामि। लागी रहोँ तऊ तसु नाम" ॥१६॥
"**पूस** रोष सव छाड़हु नाह। राखु राखु मोहिँ पद-नह-पाँह।
पडै शीत ना रजनि विहाइ। लहिय छिद्र सव दुःख अमाइ" ॥१७॥
"नेमि नेमि तू करती मुग्धेँ। यौवन जाइ न जानसि शुद्ध।
पुरुप-रतन भरियउ संसार। परनहु अन्य कोँई भर्तार" ॥१८॥
"भोली तैँ सखि! खरी गँवारि। वर अच्छंते नेमिकुमार।
अन्य पुरुप कोँइ आपन नहई। गज-वर लहे कोँ रासभ चढ़ई" ॥१९॥
माघ मास मातै हिम-राशि। देवि भनै "मोँहि प्रिय लेउँ पास।
तव विनु स्वामिय! दहै तुषार। नवनव मारहि मारै मार" ॥२०॥
"एँहु सखि रोवसि जिमि आरण्येँ। हाथ कि जोये धरियौँ कर्णेँ।
तौ न पतीजसि हम्मर माइ। सिद्धि-रमणि-रातो नेँमि जाइ" ॥२१॥
कंत वसंतै हियरा-माँहि। बात पहीजौ किमिहि लसाइ।
सिद्धि जाइ तोहि काई भीय[4]। ओहि सँग जाऊ उगसेँन-धीय" ॥२२॥
फागुन पवना पर्ण पडंति। राजल दुःख कि तरु रोवंति।
"गर्भ गलिय हौँ काह न मूय।" भनै विहव्वल धारणि-धूय[5] ॥२३॥

---

[1] छोड [2] रक्षा, पहरा [3] वांछा [4] भय [5] पुत्री

अजिउ भणिउ करि सखि विम्भासि। अछइ भला वर नेमिहि पास।
अनुसखि मोदक जउ नवि हुंति। छुहिय सुहाली किन रुच्चंति ॥२४॥
मणह पासि जइ वहिलउ होइ। नेमिहि पासि ततलउ ना कोइ।
जइ सखि वरउँ त सामल-वीरु। घण विणु पियइ कि चातक नीरु ॥२५॥
चैत्र मासि वणसइ पंगुरइ। वणि वणि कोयल टहका[1] करइ।
पंचबाणि करि धनुप धरेवि। वेझइ माँडी राजल देवि ॥२६॥
जुट सखि! मातउ मासु वसंतु। इणि खिल्लिज्जइ जइ हुइ कंतु।
रमियइ नवनव करि सिणगारु। लिज्जइ जीविय जुव्वण-सारु ॥२७॥
सुणि सखि मानिउ मुझु परिणयणु। नवि ऊपरि थिउ बंधव-वयणु।
जइ पइवन्नइ चुक्कइ नेमि। जीविय जुव्वणु जलणि जलेमि ॥२८॥
वइसाहह विहसिय वणराउ। मयणमित्तु मलयानिलु वाइ।
फुट्टिरि हियडा माझि वसंतु। विलपइ राजल पिक्खउ कंतु ॥२९॥
सखी दुक्ख वीसरिवा भणइ। "संभलि भमरउ किम रुणझुणइ।
दीस पंचथिरु जोव्वणु होइ। खाउ पियउ विलसउ सहु कोइ ॥३०॥
रमणि पभणिय राजल-कन्न। जीह कंतु वसि ते पर धन्न।
जसु पउ न करइ किमइ सुहाडि। सा हउँ इक्क ज भुंडनि लाडि ॥३१॥
जिट्ठ विरहु जिमि तपइ सूरु। खण वियोगि सुसियं नइ पूरु।
सिसिणउ फुल्लिउ [illegible] विल्लि। राजल मूछी नेह गहिल्लि ॥३२॥
मूर्छा राणी [illegible] धाउं। पडियउ खंडउ जेवडु वाउ।
हरि मूछा चंदण पवणेहि। मलि आसासइ प्रिय-वयणेहि ॥३३॥
भणइ देवि [illegible] संसार। पडिम्वि पडिम्वि मइ जाउव सार।
[illegible] प्रभु [illegible]। [illegible] मरिसी गढि गिरिनारि ॥३४॥
आसाढह [illegible]। गज्ज विज्जु नवि अवगन्नेवि।
भणइ [illegible]। करिसि धम्मु सेविसु प्रिय पाय ॥३५॥
[illegible]। निय नेम नमिरिय गुणंति।
[illegible] ! [illegible]। [illegible] तउँ सुकुमार ॥३६॥
—नेमिनाथ-चतुष्पदिका[2]

[1] [illegible]   [2] पृष्ठ ९-१०

अजउ भनेँउ कर सखी विमंपि। अछै भलो वर नेमिह-पास।
"पुनि सखि। मोदक यदि ना होंति। छुधितेँ सोँ हारी किन रुच्चंति ॥२४॥
"मनह पास यदि जल्दी होइ। नेमिहिँ पास तेँतनउ ना कोइ।
यदि सखि! वरो त श्यामल-धीर। घन विनु पियै कि चातक नीर" ॥२५॥
चैत्र मास वनसपती अंकुरै। वन-वन कोयल टहका करै।
पंच-वान केँर धनुप धरेवि। वेधै लक्षिय राजल-देवि ॥२६॥
"जोँउ सखि! मातेँउ मास वसंत। इमि खेलीजै यदि होँइ कंत।
रमियै नव नव कर शृंगार। लीजै जीवित यौवन-सार" ॥२७॥
"सुनु सखि! मानेँहु मम परिणयन। ना ऊपर ठिय बाधव-वयन।
यदि प्रतिपन्ना चूकै नेमि। जीवित यौवन ज्वलनेँ जलेमि ॥२८॥
बैशाखह विहसिय वनराजि। मदनमित्र मलयानिल वाइ।
फुट्टिय हियरा माँझ वसंत। विलपै राजल पेखिय कंत ॥२९॥
सखी दुःख वीसरिवा भनई। "सुनु सुनु भ्रमरउ का रुनझुनई।
"दिवस पंच थिर यौवन होइ। खाहु पियहु विलसहु सब कोइ" ॥३०॥
रमण प्रशंसिय राजल-कन्य। "जाहि कंत वशेँ ते पर धन्य।
जसु पिय न करै किछुउ पुछारी। सो होँ एकइ फूट-लिलारी" ॥३१॥
जेठ विरह तप्पै जिमि सूर। घन-वियोगेँ सुखियो नदि-पूर।
पेखेँउ फुल्लिय चंपक-वेल्लि। राजल मूर्छी नेह-गहिल्लि ॥३२॥
"मूर्छी रानी हा सखि! धाव! पडियउ खंडह जेवड़ घाव।"
हरि मूर्छा चंदन पवनेहिँ। सखि आश्वासै प्रिय-वचनेहिँ ॥३३॥
भनै "देवि! विरती-संसार। परिख परिख मै जानेँउ सार।
निज प्रपन्नउ[१] प्रभु सम्हारि[२]। मोँहि लइ साथे गढ गिरनार ॥३४॥
आषाढ़ह दृढ हियइँ करेवि। गर्जै विज्जु सब अवगण नेवि।
भनै वचन उगसेनहँ जाय। करिसि धर्म सेविसि प्रिय-पाय ॥३४॥
"मिलिउ सखी!" राजल प्रभनंति। चना जेम न मिरिच खाचंति।
एकली अच्छ[३] सखि! झँख मन आल[४]। तप-दोहिल्लउ[५] तूँ सुकुमार ॥३५॥
—नेमि-चौपाई (पृ० ९-१०)

[१] होनेवाला पति [२] याद करके [३] हूँ [४] मिथ्या [५] दुर्लभ

§ ३६. चन्दबरदाई

चंदवरदाई। काल—१२०० ई०। देश—लाहौर-दिल्ली। कुल—भाट। कृति—पृथिवीराज-रासो[1]

१—हिमालय-वर्णन

सकल भूमि को भेद राज जानै ए भग्गै।
अति सु-विकट वन-जूह चढ़ै संग्राम न होई ॥
अश्व-पाय गज-पाय चढन किहि ठौर न कोई।
वनविकट जूह परवत गुहा वरवेहर वंकम विषम ॥
दारु भयानक अति सरल वर प्रस्तर जल नहि सुपम।
झरै झरनि झोरं-सु आघात सोरं जिने सद्द या सद्द ता अंग मोरं
हयं तज्जि राजं चलै हत्थ डोरं इथं इक्क पच्छी वियं जंन जोरं।
बजै सद्द-सद्दं परच्छंद उट्ठै सुनै कंन सोरं सुवीरज्ज छुट्टै
इकं होइ राजं पथं सन्त रुंधै दिये हत्थ तारी तिनं को न वूधै।

२—सामन्त-समाज

(१) राजा वीसलदेवकी प्रशंसा

धर्माधिगत रति जोग भोग पट पुंट णित्ति पग्गह सु-भोग
जग दुप्प वीर वीसल नरिंद महापाप रत द्रव्यान ग्रंथ

---

[1] वर्तमान रूप १६वीं सदीसे पहिलेका नहीं है।

भव भक्ति काम विलह नु कीन जिन अगुर घोर पनि द्रव्य लीन
संसार याग पुनि द्रव्य काज उपजाई मति अजमेर राज

कोऊ नु मोल गज किधो एक नायो न किन्ह फिरि सहर नेक
कागय अंध सुजक्ष्यो न काम हक अहक जोरि गिरि इक्क भाल

चलल्यो न राज नीतिह प्रमान आनीत वंधि नृप थान थान
सुजक्ष्यो न अम्म चलल्यो प्रमान मुक्तो निगम्म करि अगम-मान

भव लोह छोह छंडिय नु-कित्ति मुक्क्यो ध्रंम आध्रंम जिति
दरवार अतिथि दीने न कोइ अप्प-मुह कित्ति संभरे लोइ

चौसठि वरस वर राज कीन पायो न पुण वर सुवप हीन

—पृथ्वी०रासो—पृ० ७८-७६

आनन्द अग्ग पर इन्द्र सम ध्रंम्म नंद जस उव्वरै।
अजमेर नयर अरिजेर कारि विमल राज वीसल करै॥

वर पट्टन अट्टन अमित समित वेद फुनि राज।
समय अंत वीसल सिरह धर्यो छत्र सम साज॥

—पृ० रा०—पृ० ६१

(२) शृंगार-रस

रतिराज ष जोवन राजत जोर, चंप्यो सिसिरं उर सैसव-कोर।
उनी मधि मझखि मधू धुनि होइ, तिन उपमा वरनी कवि कोइ।

सुनी वर आगम जुव्वन वैन, नव्यो कवहू न सुउद्दिय मैन।
कवहूँ ढुरि अंन न पुच्छत नैन, कहो किन अव्व ढुरी ढुरि वैन।

ससि रोरन सैसव दुंदुभि वज्जि, उयै रतिराज सजोवन सज्जि।

कही वर श्रोन सुरंगिय रज्जि, भये नर दोउ वनंवन भज्जि।

इय मीन नलीन भये रत रज्जि,

भय विभ्रम भाइ परी नहि नंजि।

सुनि प्रथम वालिय रूप, वरवाल लच्छिन रूप।

अहिसंधि सैसंव-याल, अजु अरक राका हाल।

सैसव सुसूर समान, वयचंद चढ़न प्रमान।

सैसव्व जोवन एल, ज्यों पंथ पंथी मेल।

परि भोंह भवर प्रमान, वै वुद्धि अच्छरि आन।

द्रिग स्याम सेत सुभाग, सावक्क मृग छुटि वाग।

विय दृगन ओपम कोउ, सिसभ्रंग पंजन होउ।

वरवरन नासिक राज, मनि जोति दीपक लाज।

गरिसियां पतंग नसाव, ओपंम दे कवि आव।

नासिक्क दीपन साल, झँप दत पंजन-वाल।

थिय वरन जोवन सेव, ज्यों दंपती हथलेव।

वैसंधि संधिय चिद, ज्यों मत्त जुरहि गुविंद।

[illegible] रोमराज बिसाल, मनो अगि उग्गिय वाल।

कुच तुच्छ तुच्छ समूर, मनों कामफल-अंकूर।

[illegible] ओपम एह, सो जनक नृप कर देह।

अर छिन थक्कत तेह, मनों काम द्रप्पन देह।

[illegible] बंध, ज्यों वृद्ध बाल विबंध।

[illegible] संधि संधि प्रामन, ज्यों सूर ग्रहन प्रमान।

यें गह ससि गिलि नूर, नव ग्रह (प्र)मत्त करूर।

परवाल यें सधि एह, सिक्कार काम करेह।

ननकरे ससलसि दंडि, नितरंक दीन नमडि।

कर्‌यो सुह्लांन कामिनी, दिपंत मेघ दामिनी।

सिंगार षोडसं करे, सुहत्त दर्पनं धरे।

बरन्न वारि वासनं, तिलक्क भाल भासनं।

दुनैन धंन अंजए, चलं चलंत पंजए।

सुहंत श्रोन कुंडलं, ससी रवी कि मंडलं।

सुमुत्ति नास सोभई, दसंन दुत्ति लोभई।

अनेक जाति जालितं, धरंत पुप्फ मालितं।

झंकार हार नोपुरं, घमंकि घुघरं घुरं।

विलेपि लेपचंदनं, कसी सु कंचुकी घनं।

सुछुद्र घंटि घंटिका, तमोल आय अंटिका।

कनक्क नग्ग कंकनं, जरे जराइ अंकनं।

विसाल बानि चातुरी, दिपंत रंभ आतुरी।

अनेक दुत्ति अंगकी, कहंत जीभ भंगकी।

निसि थट्टिय-फट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ।

सैसव में जुव्वन कथ्थ, तुच्छ तुच्छ दरसाइ।

दक्षिन वृत्त सुनाभि, तुंग नासा गजगमनी।

सासनि गंध रुपं जु चारु, कुटिल केस रतिरमनी।

बरजंघन मृदुपथ सुरंग, कुरंग लज्जे छबिहीनं।

(३) युद्ध

(क) वीर-रस

हत्थ हत्थ सुज्झै न, मेघ डंभरि मंडि रज्जी ।
निसि निसीथ अंतरो, भान उत्तरि सथ सज्जी ॥
बिज्ज बीर झलकंत, पवन पच्छिम दिसि बज्जै ।
मोर सोर पप्पीह, अवनि सक्कित घन गज्जै ॥
बंधे जु सिलह निसि सत्तमिलि, सधिय पंग दरवार दिसि ।
चामंडराय दाहर ननै, लरन लोह कड्ढे तिरसि ॥
पन्यें भौं संग्राम, अग्ग अपछर विच्यारिय ।
पुच्छै रंभ मेनिका, अज्ज चित्त किमि भारिय ॥
ता उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय ।
रथ्थ वैठिअौ थान, सोभ तह कंज न पाइय ॥
भर सुभर परे भारत्थभिरि, ठाम ठाम चुग जीत संवि ।
उथकीय पंथ हल्लै चल्यो, सुथिर सभो देखिय नभ ॥

(ख) रण-यात्रा

[illegible] अपार प्रमान, हल्के हलंत गज नग-समान ।
[illegible] सकुल चितहि न चित, निरिमान वन्त गुन धरत तत्त ।
[illegible] निस्तार, [illegible] कंक ।
[illegible] मुमिया मगंक सब लगत पाय ।
[illegible] अप्रमान, मानों कि मेरि पारसा भान ।

पंगह सुवीर गढ़ करि गिरद्द, जनु सर्वरि परस चंदा सरद्द ।
गोरी नरिंद हय-गय-सुभर, सजि आयौ उप्पर सुभ्रय ।
चैत मास रवि तीज, सेन पप्पह कल चंदह ।
भयो मुदिन मध्यान, चढ्यो प्रथिराज नरिंदह ॥
कटक सवर हिल्लोर, भार सेसह करि भग्गिय ।
चढि सामंत सकज्ज, नद्द सुर श्रंमर जग्गिय ॥
गज रोर सोर बंधे घटा, सिलह बीज सिल कावलिय ।
पप्पीह चीह सह नाड सुर, नदि घघ्घर मैलान दिय ॥

(ग) युद्ध-वर्णनं

पंग जंगं पुलं । कूह मच्ची हुलं ॥ सार तुट्टे पलं । बग्ग मच्चे घलं ॥
हाल हालाहलं । सोव्व वित्थौ तलं ॥ गिद्ध कोलाहलं । श्रंत दंती रुलं ॥
उद्ध पीयं छलं । चर्म अस्ति तलं ॥ वीर निद्धी चलं । सिद्ध ठट्टे रुलं ॥
संभु मालं गलं । ब्रम्ह चिंता चलं ॥ भूत वित्ता तलं । पत्थ पारथ्थलं ॥
देव देवानलं । फट्टि फारक्कलं ॥ घाय बज्जे घल । सूर घुम्मै रुलं ॥
तार चौसट्ठिलं । वाइ भूतं तलं ॥ रीति पच्छी पिनं । तार आयासनं ॥
सूर उग्यौ ननं । कोट चड्ढे फनं ॥
जहाँ उत्तरचो साहि चिन्हाव मीरं । तहाँ नेज गड्यो ढढुक्के पुंडीरं ॥
करी आन साहाब सावंधि गोरी । धकी धींग धिगं धकावै सजोरी ॥
दोऊ दीन दीनं कढ़ी वंकि अस्सि । किधौं मेघमें बीजु कोटिं निकस्सि ॥
किए सिग्घरं कोरता सेल अग्गी । किधौं बद्दरं कोर नागिं न नग्गी ॥
हवक्के जु मेछं भ्रमंतं ज छुट्टै । मनो घेरनी घुम्मि पारेव तुट्टै ॥
उरं फुट्टि बरछी वरं छब्बि नासी । मनो जालमें मीन अद्धी निकासी ॥

लटक्के जुरं नं उडै हंस हल्लै । रसं भीजि सूरं चवग्गान षिल्लै ॥
लगे सीस नजा भ्रमें भेजि तथ्थें । भषे वाइसं भात दीपत्ति सथ्थें ॥
करैं मार मारं महावीर धीरं । भए मेघधारा बरष्षंत तीरं ॥
परे पंच पुंडीर सा चंद कढ्यौ । तवै साहि गोरी स चन्हाव चढ्यौ ॥
घर घरकि धाहर करवि काइर रसमिसू रस कूरयं ॥
गजघंट घनकिय, रुद्र भनकिय, पनकि संकर उद्दयो ।
रननंकि भेरिय कन्ह हेरिय, दंति दान धनंदयौ ॥
वरं बंबरं चोरं माही ति साई । हले छत्र पोतं चले यार धाई ॥
वुले सूर दृक्के दहक्के पचारं । घले वथ्थ दोऊ धरं जा अषारं ॥
उतंमंग तुट्टै परै श्रोन धारी । मनो दण्ड सुक्की अगीवाइ वारी ॥
नचै कंधबंधं दकै सीस भारी । तहाँ जोग-माया जकी सो बिचारी ॥
सोलंकी माधव नरिंद, पान पिलजी मुख लग्गा ।
सवर वीररस वीर, वीर बीरा रस पग्गा ॥
दुअन वुउव जुध तेग, दुहुँ हत्थन उब्भारिय ।
तेग तुट्टि चालुक्क, वथ्थ परिकड्ढि कटारिय ॥
लइ वग्ग कैमास वीरं अमानं । धमंके धरा गोम गण्णे गुमानं ॥
उतें उणरी बाग तत्तार पानं । मिले हिंदु मीरं दोऊ दीन मानं ॥
बजे रान गिवू सु माहग्र वज्जै । गजे सूर सूरं असूरं सुभज्जै ॥
चढे व्योम विम्मान देपंत देवं । बढ़े स्वामि-कज्जै सुसज्जै उभेवं ॥
छुटे नाल गोला हवाई उढंगं । नछत्रं मनों जानि तुट्टे निहंगं ॥
कराल्यं चले वान वानं कमानं । भई अंव-धुंवं न सुज्झै सु भानं ॥
मिले गज्ज नेजं गनेजं अपारं । गनाहं फटै हीय होवंत पारं ॥
मद मत्त दंतं उपारै मसंदं । मनो मिल्लिया पव्व उप्पालि कंदं ।

मचं हूक हूकं वहै सार-धारं। चमक्कैं चमक्कैं करारं करारं ॥
भभक्कै भभक्कै बहै रत्तधारं। सनक्कै सनक्कै वहै बान-भारं ॥
हयक्कै हयक्कै वहै नेल भेनं। कुकैं कूक फूटी सुरत्तान ढालं ॥
चकी जोगमाया सुरं मण-भानं। वहै चट्ट-चट्ट उघट्टं उलट्टं ॥
फुलट्टा धरं मण-भ्रणं उछट्टं। दउंनकं वजै सेन सेना सुघट्टं ॥

(घ) युद्धमें छल

छल तक्यो श्रीरांम, मेल सायर नल बंध्यो।
छल तक्यो सुग्रीव, वालिजिउ ताउह संध्यो ॥
छल तक्यो लछिमना, सूरमंडल अलि बेध्यो।
छल तक्यो नरसिंघ, अग्गकस नष उर छेद्यो ॥
छलबल करंत दूषन न कोइ, किस्न कन्नह कंनह करिय।
सोमेस राज तकि अण बिधि, रत्तिवाह छलमन धरिय ॥

३—कविका संदेश

(भाग्यवाद)

नर करनी कछु और, करै करता कछु औरै।
अनचिंतन करै ईस, जीय सुनर औरै दौरै ॥
रचे रचन नर कोरि, जोरि जम पाइ वस्त सह।
छिनक मध्य हरि हरै, केलि किरतव्य क्रम्मइह ॥
प्रथिराज गमन देवास दिसि, व्याह विनोद सुमंडिजिय।
अनचिंति जग्गि गज्जन वलिय, आनि उतंग सु कंक किय ॥
जु कछू लिप्यो लिलाट, सुप्प अरु दुःप समंतह।
धन विद्या सुन्दरी, अंग आधार अनंतह ॥
कलप कोटि टरि जाहिं, मिटै न न घटै प्रमानह।
जतन जोर जो करै, रंच न न मिटै विनानह ॥

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मइं अमुणंते अक्खर विसेसु, न मुणमि पवंधु न छंद-लेसु ।
पद्धडिया वंधें सुप्पसणउ, अवगमउ अत्थु भव्वयणु तण्णु ।
हीणक्खउ मुणे वि इयरु तत्थु, संभवउ अण्णु वज्जें वि अणत्थु ।

२—सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इह-जउणा-णइ-उत्तर-तडित्थ । मह-णयरि रायवड्डिय[1] पसत्थ ।
घण-कण-कंचण-वण-सरि-समिद्ध । वाणुण्णयकर-जण-रिद्धि-रिद्ध ॥
किम्मीर-कम्म णिम्मिय रवण्ण । सट्टल सत्तोरण विविह-वण्ण ।
पंडुर पायारुण्णइ समेय । जहि सहहि णिरंतर सिरिनिकेय ॥
चउहट्ट चच्चरू दाम जत्थ । मग्गण-गण-कोलाहल समत्थ ।
जहिँ विवणे विपणे घण कुप्पभंड । जहि कसिअहिँ णिच्च पिसंडि खंड ॥
णिच्चिच्च-याण-संमान-सोह । जहिँ वसहि महायण सुद्धवोह ।
ववहार चार सिरि सुद्ध लोय । विहरहिँ पसण्ण चउवण्ण लोय ॥
जहिँ कणयचूड मंडण विसेस । सिंगार-सार-कय निरवसेस ।
सोहग्ग लग्ग जिणधम्म सील । माणिणि-णिय-पइ-वय-वहण-लील ॥
जहि पण्ण पऊरिय पण्ण साल । णायर-णरेहि भूसिय विसाल ।
थिय जिण विउज्जल जणियसम्म । कूडग्ग धयावलि-रुद्ध-धम्म ॥
चउ मालुण्णय-तोरण-सहार । जहिँ सहहिँ सेय सोहण-विहार ।
जहिँ दविणंगण वहि पेम छित्त । लावण्ण-गुण्ण-वण लोलचित्त ॥
जहि णयउ चाउ कुसुमाल भेउ । दुज्जण सखुद्द खल पिसुण एउ ।
ण वियंभहिँ कहिमि न धणविहीण । दविणड्ढ णिहिल णर धम्मलीण ॥
पेम्मागुरत्त परिगलिय गव्व । जहिँ वसहिँ वियक्खण मणुवसव्व ।
वावार गव्व जहिँ सहहिँ णिच्च । कणयंवर भूसिय राय-भिच्च ॥
तंबोल-रस-रंगिय धरग्ग । जहि रेहहिँ वारुण सयल मग्ग ।

---

[1] रायबा गांव

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मैं प्रबुभता अक्षर-विशेष । न बुझौं प्रबंध न छन्दलेश ।
पद्धतिका[1] बधं सुप्रसन्न । प्रथमर्मे भव्यजन ग्रर्थं तूर्ण ॥
हीनाधिउ जानी उत्तर तत्र । नभवउ ग्रन्थ वर्द्धेउ ग्रनर्थ ।

२-सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

जहँ यमुना नदि उत्तर तटस्थ । महनगरि रायभा(हँ) प्रशस्त ।
धन-कण-कंचन-धन-नारि-समृद्ध । दानोन्नत कर-जन-ऋद्धि-वृद्ध ॥
किर्मीरि[2] कर्म निर्मित रमण्य । न'ट्टल स-तोरण विविधवर्ण ।
पाडुर प्राकार-उन्नति समेत । जहँ रहैं निरंतर श्रीनिकेत ॥
चौहट्ट चर्चर-उद्दाम यत्र । मांगन-गण-कोलाहल-समर्थ ।
जहँ विपणि विपणि घन कुप्यभाड । जहँ कसियैं नित्य पिपग-खंड ॥
निश्चिन थान गुम्मान नोह । जहँ वसैं महाजन शुद्ध-बोध ।
व्यवहार चारु श्री शुद्धलोक । विहरैं प्रसन्न चौवर्ण लोक ॥
जहँ कनकपट्ट-मंडन विशेष । शृंगार-सार कृत-निरवशेष ।
सौभाग्य लग्न जिन-धर्मशील । मानिनि निजपति वच-वहन-शील ॥
जहँ पण्य प्रपूरिय पण्यशाल । नागर-नरेहिँ भूपित विशाल ।
ठिय जिन बिंबोज्ज्वल जनित शर्म । कूटाग्र ध्वजावलि रुद्ध धर्म ॥
चतुशालोन्नत तोरण स-हार । जहँ ग्रहैं श्वेत शोभन विहार ।
जहँ द्रविणांगन बहि[3] प्रेमक्षेत्र । लावण्यपूर्ण घन लोलचित्त ॥
जहँ चण्ड चारु कुसुमाल भेव । दुर्जन स-क्षुद्र खलपिशुन एव ।
न विजृंभै कतहुँ न धनविहीन । द्रविणाढ्य निखिल नर धर्मलीन ॥
प्रेमानुरक्त परिगलित-गर्व । जहँ वसैं विचक्षण मनुज सर्व ।
व्यापार सर्व जहँ सर्वैं नित्य । कनकांबर-भूपित राजभृत्य ॥
तांबूल रग-रंगिय'धराग्र । जहँ राजैं सारुण सकल मग्ग ।

---

[1] चौपाई [2] चित्रविचित्र [3] बाहर

(२) राजा (आहवमल्ल)की प्रशंसा

तहिँ णरवइ आहवमल्ल एउ । दारिद्द समुद्दत्तरण-सेउ ॥

घत्ता । उव्वासिय-पर-मंडलु दंसिय-मंडलु, कास-कुसुम-संकास-जसु ।
छल-वल-सामत्थें णीइ णयत्थें, कवण राउ उवमियइ तसु ॥

णिय-कुल-कैरव-सिय-पयंगु । गुण-रयणाहरण-विहूसियंगु ।
अवराह-वलाहय-पलय-पयणु । मह-माग-गण-पडिदिण्ण-तवणु ॥

दुव्वसण-सोस-णासण-पवीणु । किउ अखलिय-सजस मयंक सीणु ।
पंचंग-मंत-वियरण-पवीणु । . . . .

माणिणि-मण-मोहणु-मयर-केउ । णिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ ।
रिउ-राय-उरत्थल दिण्ण हीरु । विसमुण्णय-समरें भिडंत वीरु ॥

खग्गग्गि-डहिय-पर-चक्कवंसु । विपरीय-वोह-माया-विहंसु ।
अतुलिय-वल खल-कुल-पलयकालु । पहु-पट्टालंकिय विउल भालु ॥

सत्तंग-वज्ज-धुर दिण्णु खंधु । संमाण-दाण-पोसिय सवंधु ।
णिय-परियण-मण-मीमसण-दच्छु । परिवसिय-पयासिय-केर कच्छु ।

करवाल-पट्टि-विप्फुरिय जीहु । रिउ दंड चंड सुंडाल सीहु ।
अइ-विसम-साह-सुद्दामधामु । चउ-सायरंत-पायडिय-णामु ॥

णाणा-लक्खण-लक्खिय सरीरु । सोमुज्जव(ल) सामुद्दय गहीरु ।
दुप्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-मल्ल । हम्मीर[१]-वीर-मण-नट्ठ-सल्ल ॥

चउहाण-वंस-णागरस-भाणु । मुणियइँ न जासु भुय-वल-पमाणु ।
चउसीदि-खंड-विण्णाण-कोसु । छत्तीसाउह(प)यउण समोसु ॥

साहस-समुद्दु बहुरिद्धि रिद्धु । अरि-राय-विसह संफल-पसिद्धु ।

घत्ता । गलिय सामणु परबल तासणु, ताण-मडल उव्वासणु ।
जस पसर पयासणु णव जल-हरसणु, दुण्णय वित्ति पवासणु ॥

---

[१] रणथम्भोरवाले

(२) राजा (आह्वमल्ल)की प्रशंसा

तहँ नरपति आह्वमल्ल एव। दारिद्र्य-समुद्रोत्तरण-सेतु।

घत्ता। उद्भासित परमंडल देखिल मंडल, काशकुसुम-संकाश-यशू।

छलबल-सामर्थ्यें मीनिनवार्यें, कवन राव उपमियै तसू॥

निज-कुल-कैरव-वित-पतंग। गुण-रत्नाभरण-विभूषितांग।

अपराध वलाहक प्रलय-पवन। मय'-मार्गगण प्रतिदत्त तपन॥

दुर्व्यसन शोष-नाशन-प्रवीण। जिउ अ-चलित स्वयश-नयक सैन्य।

पंचांग मंत्र-विचरन प्रवीण। ....

मानिनि मन-मोहन मकरकेतु। निरुपम अविरल गुण-मणि-निकेत।

रिपु-राज-उरस्थलें दीन हीर। विपिमोन्नत समरें भिडंत वीर॥

खड्गाग्नि-दग्ध-पर-नृपवंश। विपरीत बोध-माया विध्वंस।

अतुलित-बल खलकुल-प्रलयकाल। प्रभु पट्टालंकृत विपुल भाल॥

सप्तांग-राज्य-धुर दीनु कंध। सम्मान-दान-पोषित स्वबंधु।

निज-परिजन-मन-मीमांस-दक्ष। परिखसिय-प्रकाशिय-केर कक्ष॥

करवाल पट्ट विस्फुरति जीह। रिपुदंड-चंड-शृगाल-सींह।

अतिविषम साहसोद्दाम-धाम। चतुसागरांत प्राकटित नाम॥

नाना लक्षण-लक्षित शरीर। सोमोज्ज्वल सामुद्र'व गभीर।

दुष्प्रेक्ष्य म्लेच्छ रणरंग-मल्ल। हम्मीर-वीर मन-नष्ट-शल्य॥

चौहान-वंश-तामरस-भानु। वुझियै न जासु भुजबल-प्रमाण।

चौसट्ठि खंड विज्ञानकोश। छत्तीसायुध प्रकटन समोप'॥

साधन-समुद्र बहु-ऋद्धि-ऋद्ध। अरिराज-विपह संफर' प्रसिद्ध।

घत्ता। क्षत्रिय-शासन परबल-आशन आण मंडल-उद्भासनऊ।

यश-प्रसर-प्रकाशन नव जलधर सन, दुर्नयवृत्ति प्रवासन॥

---

[1] मन्मथ [2] समूह [3] जहरमोहरा

(३) रानी (ईसरदे)की प्रशंसा

तहों पट्ट महाएवी पसिद्ध । ईसरदे पणयणि पणय-विद्ध ।
णिहिलंतेउर मज्झएँ पहाण । णिय पइ मण-पेसण सावहाण ।
सज्जण-मण-कप्प महीय साह । कंकण केऊरंकिय सुवाह ।
छण-ससि-परिसर संपुण्ण-त्रयण । मुक्कमल कमलदल सरल गयण ।।
आसा सिंधुर गइ गमण लील । वंदियण-मणासा दाण-सील ।
परिवार भार धुरधरण सत्त । मोयइ अंतर-दल ललिय गत्त ।।
छद्दंसण चित्तासा विसाम । चउ सायरंत विक्खायणाम ।
अहमल्ल-राय-पय भत्तिजुत्त । अवगमिय णिहिल विण्णाणसुत्त ।।
णियणंदणाहँ चिंतामणीव । णिय धवलग्गिह सरहंसिणीव ।
परियाणिय-करण-विलासकज्ज । रूवेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज ।।
गंगा-तरंग कल्लोल माल । समकित्ति भरिय ककुहंतराल ।
कलयंठि-कंठ कलमहुर-वाणि । गुणगरुअ रयण उप्पत्ति खाणि ।
अरिराय विसह संकरहो सिट्ठ । सोहग्ग-लग्ग गोरिव्व दिट्ठ ।।

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्ल[1]-राय-महमंति सुद्धु । जिण-सासण-परिणइ गुणपवद्धु ।
कण्हडु-कुल कइरव सेयभाणु । पहुणा समज्ज सव्वहँ पहाणु ।।
गंजोल्लिय मणु लक्खणु वहूउ । सीयरिउ कव्व करणाण रूउ ।
णियघरें पत्तउ वणगन्ध हत्थि । मयमत्तु फुरिय मुहल्ह गभत्थि ।।
थगि ठुयउ स-सर दसदिसि भरंतु । मणि कोण पडिच्छइ तहों तुरंत ।
सुयस्सण राउ घरइं तवेइ । भणु कवणु दुवार कवाड देइ ।।
पर्याणिय ययगलिणा चातुरंग । धण-कण-कंचण-संपुण्ण चंग ।
पर समुद्द एंत पेच्छिवि सवारु । भणु कवणु वप्प झंपइ दुवारु ।।

[1] आहवमल्ल राजा

(३) रानी (ईश्वरदेवी)की प्रशंस

तह पट्ट महादेवी प्रसिद्ध । ईश्वरदे प्रणयिनि प्रणय-विद्ध ।
निखिलान्तःपुर-मध्ये प्रधान । निज पति-मन-प्रेषण सावधान ॥
सज्जन-मन कल्प-महीपहार । कंकण-केयूरांकित सुबाहु ।
क्षण-शशि-परिसर-संपूर्ण-वदन । मुक्त'मल कमलदल सरल-नयन ॥
आगाशिखुर गज-गमनलील । वंदिजन-मनाशा-दानशील ।
परिवार-भार-धुर-धरन शक्त । मोचे अंतरदल ललित-गात्र ॥
छेन्दर्शन चित्ताशा-विश्राम । चतुसागरांत-विख्यात-नाम ।
अहमल्ल-राय-पद-भक्तियुक्त । अवगमित[1]-निखिल-विज्ञान-सूत्र ॥
निजनंदनो(द) चिंतामणी'व । निज-धवलगेह-सरहंसिनी'व ।
परि-जानिय करन विलासकाज । रूपेहिं जीत सूत्राम[2]-भार्य ॥
गंगा-तरंग-कल्लोलमाल । समकीर्त्ति भरिय ककुभान्तराल ।
कलकंठि-कंठ कलमधुर-वाणि । गुणगरुव रतन-उत्पत्ति-खानि ॥
अरिराज विपह शंकरहों शिष्ट । सौभाग्यलग्न गौरी'व दृष्ट ॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्लराय महाँमंत्रि शुद्ध । जिन-शासन-परिणय-गुण-प्रवद्ध ।
कान्हउ-कुल-कैरव-स्वेतभानु । प्रभुहें समाज सव्वंहें प्रधान ॥
गंजोल्लिय मन लक्षण बहूव । स्वीकारिउ काव्य-करणानुरूप ।
निज-घरें आयउ वन गंध-हस्ति । मदमत्त फुरिय मुखरुह-गभस्ति ॥
वश हुयउ स्व स्वर दशदिशि-भरंत । मन कोन प्रतीच्छै तह तुरंत ।
सुप्रसन्न राव धरई तवेइ । भनु कौन दुवार-किवाड़ देइ ।
जानीय वचन लिन चातुरंग । धन-कन-कंचन-संपूर्ण चंग ॥
घर समुँह आइ पेखेवि सवार । भनु कौन वप्प झंपइ दुवार ।

---

[1] ज्ञात   [2] इन्द्र

चिंतामणि-ह्राडय-निवड-जडिउ । पज्जहइ कवणु सइँ हत्थ चडिउ ।
घर रंगुप्पण्णउ कप्प-रुक्खु । जलें कवणु न सिंचइ जणिय सुक्खु ॥

सयमेव पत्त घरु कामधेणु । पज्जहइ कवणु कय-सोक्खसेणु ।
चारण-मुणि-तेएँ जित्त भवइ । गयणाउ पत्त किर कोण णवइ ॥

पेऊस पिंड केँर पत्तु भव्वु । को मुयइ निवे(इय) जीवियव्वु ।
अह्वमल्ल-राय-कर-विहिय-तिलउ । महयणहँ महिउ गुणगरुअ-णिलउ ।

सो साहु पइट्ठवु जणिय-सेउ । सिवदेउ साहुकुल-वंस-केउ ॥

घत्ता । जो कण्हडु पुव्वुत्तउ, पुण्णपउत्त, महिमंडलि विक्खायउ ।
आहवमल्ल-णरिंदहु, मण-साणंदहु मंतत्तण पइभायउ ॥

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

पिया तस्स सल्लक्खणा लक्खणड्ढा । गुरूणं पए भक्ति काउं वियड्ढा ।
स भत्तार-पायारविंदाणुगामी । घरारंभ-वावार-संपुण्ण-कामी ॥

गुणायार चारित्त-चीरंक-जुत्ता । सुचेयाण गंधोदएणं पवित्ता ।
[illegible]-कासार-सारा-मराली । किवा-दाण संतोसिया वंदिणाली ॥

[illegible] सुवाया अचंचल-चित्ता । [illegible]मारामरम्मा मए वालणित्ता(?) ।
[illegible] मुहंभोय-संपुण्ण जुण्हा । पुरग्गो महासाहु सोढस्स सुण्हा ॥

[illegible] [illegible]-मुत्तंबुधारा । सइत्तत्तणे मुद्ध-सीयप्पयारा ।
जहा [illegible]'नुगामी भवाणी । जहा सव्व वेदहिँ सव्वंग वाणी ॥

जहा [illegible] रामा । रमा दाणवारिस्स संपुण्ण-कामा ।
जहा [illegible] मणा । महड्ढा सपुण्णस्स सारस्स रण्णा ॥

[illegible] । [illegible] साहा जहा [illegible]सा ।

---

[1] [illegible]

चिंतामणि हाटक निवह जड़िउ । प्रज्जहैं कौन सँग हस्त चढ़िउ ॥
घर रंग् उत्पन्नउ कल्पवृक्ष । जल कौन न सींचै जनित सुक्ख ।
स्वयमेव प्राप्त घर कामधेनु । प्रज्जहैं कौन कृत-सौख्य-सेन ॥
चारण मुनि-तेजे जेंत्त हवै । गगनाहु आउ फुर को न नवै ।
पीयूष-पिंड करें पाइ भव्य । को मुंचै निवेदिय जीवितव्य ॥
अहमल्ल राय-कर-विहित-तिलक । महाँ जनरु महित गुण-गरुव-निलय ।
सो साहु पईठउ जनित-सेतु । शिवदेव साहु कुल-वंश-केतु ॥ (१४ ख)
घत्ता । जो कान्हड पूर्वो-'क्तउ'पुण्य-प्रयुक्तउ महिमंडल विख्यात यऊ ।
अहमल्ल-नरेन्द्रह, मन-सानंदह, मंत्रित्वन प्रति-भातयऊ ॥ (१५ ख)

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

प्रिया तासु सुल्लक्षणा लक्षणाढ्या । गुरूणां पदे भक्ति-करणे विदग्धा ।
स्वभर्त्तार पादारविन्दानुगामी । घरारंभ व्यापार संपूर्ण कामी ॥
शुभाचार चारित्र चीरांकयुक्ता । सुचेतन्न गंधोदकेहीं पवित्रा ।
स्वप्रासाद-कासार-सारा मराली । कृपादान-संतोषिया वंदिताली ॥
प्रसन्ना सुवाचा अचंचल्ल-चित्ता । रमा राम रम्या मदेवाल-नेत्रा ।
खलों-को मुखाम्भोज संपूर्णज्योत्स्ना । पुराग्रोमहासाहु सोढ़ाकों सुन्हा[१] ।
दया-वल्लरी-मेघ-मुक्तांवुधारा । सतीत्वत्तने शुद्ध-सीत-प्रकारा ।
यथा चंद्रचूड़ानुगामी भवानी । यथा सर्व वेदेहिं सर्वांग वाणी ।
यथा गोत्र निर्दारिणहिं रंभा राामा । रमा दानवारी कि संपूर्ण कामा ।
यथा रोहिणी ओषधीशाह संगी । महाढ्या सँपूर्णाहु साराहु रानी ॥
यथा सूरिकी मुक्तिवेदी मनीषा । कृशानार्क स्वाहा यथा रूप मीसा । (१६ ख)

§ ४१: जज्जल

कुल—हम्मीरका मंत्री और सेनापति।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा)

मुंचहि सुंदरि ! पाव अर्पहि हँसियाउ सुमुखि खड्गहँ मे।
काटिय म्लेच्छ शरीरहँ पेखिहँ वदनहँ तुम्ह ध्रुव हम्मीरो ॥१२७॥
पगभर दरमरु धरणि तरणि रह धूलिय झंपिय,
कमठ-पीठ टरपरिय मेरु-मंदर-शिर कंपिय।
क्रोधि चलिय हम्मीर वीर गज-यूथ-सँयुत्ते,
कियउ कष्ट "हाक्रंद" मूछि म्लेच्छनके पुत्ते ॥९२॥
पेन्हेँउ दृढ सन्नाह बाँह ऊपर पक्खर दइ,
बंधु समझि[1] रण धँसेँउ स्वामि हम्मीर वचन लइ।
उज्वल नभ-पथ भ्रमेँउ खड्ग, रिपु शीशहि डारेउ,
पक्कड़-पक्कड़ ठेलि-मेलि पर्वत उच्छालेउ।
हम्मीरं-कार्यं उज्जल भनइ, क्रोधानल-मुख महँ ज्वलउ,
सुल्तानशीश करवाल दइ, त्यागि कलेवर दिवु चलउ ॥१०६॥
ढोला मारिय दिल्लि महँ मूछिय म्लेच्छ शरीर,
पुर[2] जज्जल्ला मंत्रिवर चलिय वीर हम्मीर।
चलिय वीर हम्मीर पाद-भर मेदनि कंपै,
दिग-मग-नभ अंधार धूलि सूरज-रथ झंपै।
दिग-मग-नभ अंधार आनि खुरसान कें ओल्ला[3],
दर मरि दमसि विपक्ष मार दिल्ली महँ ढोल्ला ॥१४७॥

---

[1] मीर मुहम्मदशाह और उनके साथियोंको हम्मीरने शरण दिया था, जिस पर अलाउद्दीनसे विरोध हो गया। [2] आगे [3] स्वामी

सहस मअमत्त गअ लाख लख पक्खरिअ ,
साहि दुइ साजि खेलंत गिंदू ।
कोप्पि पिअ ! जाहि तहि थप्पि जसु विमल महि ।
जिणइ णहि कोइ तुअ तुलक-हिंदू ॥१५७॥ (२६२)

घर लग्गइ आगि जलइ धह धह ,
कइ दिगमग णह-पह अणल भरे ।
सव दीस पसरि पाइक लुलइ धणि ,
थणहर जहण दिआव करे ।

भअ लुक्किअ थक्किअ वइरि तरुणि ,
जण भइरव भेरिअ सद्द पले ।
महि लोट्टइ पिट्टइ रिउ-सिर टुट्टइ ,
जक्खण वीर हमीर चले ॥१६०॥ (३०४)

खुर खुर खुदि खुदि महि घघर रव कलइ ,
ण ण ण णगिदि करि तुरअ चले ।
ट ट टगिदि पलइ टपु धसइ धरणि वपु ,
चकमक करि वहु दिसि चमले ।

चलु दमकि दमकि दलु चलइ पइक वलु ,
धुलकि धुलकि करि करि चलिआ ।
वर मणु सअल कमल विपख हिअअ सल,
हमिर वीर जव रण चलिआ ॥२०४॥ (३२७)

जहा भूत वेताल णच्चंत गावंत खाए कबंधा ,
सिआ फार फेक्कार हक्का रवन्ता फुले कण्णरंधा ।
कआ टुट्ट फुट्टेइ मत्था कबंधा णचंता हसंता ,
तहा वीर हम्मीर संगाम-मज्झे तुलंता जुझंता ॥१८३॥ (५२०)

वीं सदीका पूर्वार्घ । देश—युक्त-प्रान्त या विहार ।

१—सामन्त-समाज

युद्ध-वर्णन

चलइ, गिरि खसइ हर खलइ,
 ससि घुमइ अमिअ वमइ, मुअल जिवि उट्ठए ।
खसइ, पुणु ललइ पुणु घुमइ,
 पुणु वमइ जिविअ विविह, परि समर दिट्ठए ॥१६०॥ (२६६)
अ तरणि लुक्किअ, तुरअ तुरअहि जुज्झिआ ।
 रह-रहहि मीलिअ धरणि पीलिअ, अप्प-पर णहि बुज्झिआ ॥
ाइअ पत्ति जाइउ, कंप गिरिवर-सीहरा ।
उच्छलइ साअर दीण काअर, वइर वड्ढिअ दीहरा ।१९३। (३०९)
पव्वआ पलंतआ ।
 कुम्म-पिट्ठि कंपए, धूलि सूर झंपए ॥५९॥ (३७८)
ढुक्कंता, विप्पक्खा मज्झे लुक्कन्ता ।
णिक्कंता जंता धावंता, णिम्भंती कित्ती पावंता ॥६७॥ (३७८)
पी-जूहा देक्खीआ,
 णीला-मेहा मेरु-सिंगा पेक्खीआ ।
ग्गे खग्गा राजंता,
 णीला-मेहा-मज्झे विज्जू णच्चंता ॥११३॥ (४२५)
कोहा अप्पा-अप्पी गव्वीआ,
 रोसा रत्ता सव्वा गत्ता सल्ला मल्ला उट्ठीआ ।

§ ४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

कुल—दर्बारी, भगत। कृतियाँ—स्फुट कवितायें[1]।

१—सामन्त-समाज

(१) युद्ध-वर्णन

थहि ललै महि चलै गिरि खसै हर स्खलै,
ससि घुमै अमिय वमै मुअल जीइ उट्ठए।
पुनि धँसै पुनि खसै पुनि ललै पुनि घुमै,
पुनि वमै जीविता विविध परि समर दृप्टए ॥१६०॥
गज-गर्जहि ठुक्किय तरणि लुक्किय तुरग-तुरगहि जूझिया,
रथ-रथहि मेलिय धरणि पेलिय, आप पर नहि बूझिया।
बल मिलै आइय पत्ति[2] जाइय, कंप गिरिवर शीखरा,
उच्छलै सागर दीन कातर वैरि वाढिय दीघरा ॥१६३॥
कुंजरा चलंतआ पर्वता पडंतआ।
कूर्म पृष्ठ कंपए, धूलि सूर झंपए ॥५६॥
उन्मत्ता योधा ढुक्कंता, विप्पच्छा मध्ये लुक्कंता।
निष्कांता जांता धावंता निभ्रांती कीर्त्ती पावंता ॥५७॥
ठावें ठावें हस्ति यूथा देखीया,
नीला मेघा मेरु-शृंगा पेखीया।
वीरा-हस्ता-अग्रे खड्गा राजंता,
नीला-मेघा-मध्ये विज्जू नाचंता ॥११३॥
मत्ता योधा बाढ़े क्रोधा आपे-आपा गर्वीया,
रोपा रक्ता सर्वा गात्रा शल्या भल्ला उट्ठीया।

---

[1] "प्राकृत-पैंगल" में संगृहीत, पृष्ठ कविताओंके अन्तमें—कोष्ठकमें। [2] प्यादा

हत्थी-जूहा सज्जा हूआ पाए भूमी कंपंता,
लेही देही छड्डो ओड्डो सव्वा सूरा जप्पंता ।१५७।(४८३)
झत्ति जोइ सज्ज होइ गज्ज वज्ज तंखणा,
रोस-रत्त सव्व-गत्त हक्क[1] दिज्ज भीसणा ।
धाइ आइ खग्ग पाइ दाणवा चलंतआ,
वीर-पाअ णाअराअ कंप भूतलंतगा ॥१५६॥ (४८५)
चलंत जोह मत्त-कोह रण्ण-कम्म-अग्गरा,
किवाण-वाण-सल्ल-भल्ल-चाव-चक्क-मुग्गरा ।
पहार वार धीर वीर वग्ग मज्झ पंडिआ,
पअट्ठ ओट्ठ कंत दंत तेण सेण मंडिआ ॥१६६॥.(४६६)
उम्मत्ता जोहा उट्ठे कोहा ओत्था-ओत्थी जुज्झंता,
मेणक्का रंभा णाहं दंभा अप्पा-अप्पी बुज्झंता ।
धावंता सल्ला छिण्णे कंठा मत्था पिट्ठी पेरंता,
णं सग्गा मग्गा जाए अग्गा लुद्धा उद्धा हेरंता ॥१७५॥ (५०७)

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जिण वेअ धरिज्जे महिअल लिज्जे, पिट्ठिहि दंतहि ठाउ धरा ।
रिउ-वच्छ विआरे छल तणु धारे, बंधिअ सत्तु सुरज्जहरा ।
कुल खत्तिअ कप्पे तप्पे दहमुह कप्पे, कंसअ केसि विणासकरा ।
करुणा पअले मेछह विअले सो, देउ णराअण तुम्ह वरा ॥२०७॥ (५७०)

(२) राम-स्तुति

जग्ग अ-उहि सिर जिणि लिज्जिउ, तज्जिअ रज्ज वणंत चलेविणु ।
सोअर सुंदरि संगहि लग्गिअ, मारु विराध कवंध तहा हणु ।

---

[1] आह्वान, ललकार

हस्ती-यूथा सज्जा हुआ पायें भूमी कंपंता,
"जेही देही छाडो ओडो" सर्वा शूरा जल्पंता ॥१५७॥
भट्ट योधा सज्ज होइ, गर्ज वज्ज तत्क्षणा।
रोष-रक्त सर्वगात्र हांक दीजें भीषणा।
धाइ आइ खड्ग पाइ दानवा चलंतआ।
वीरनाद नागराज कंप भूतलन्तगा ॥१५९॥
चलंत योध मत्त क्रोध रन्न-कर्म आगरा।
कृपाण-बाण-शल्य-भल्ल-चाप-चक्र-मुग्दरा ॥
प्रहार-वार-धीर-वीर-वर्ग-मांझ-मंडिता।
प्रदष्ट-ओष्ट-कांत-दंत तेन सेनां मंडिता ॥१६९॥
उन्मत्ता योद्धा उट्ठे क्रोधा उट्ठा-उट्ठी जुज्झंता,
मेनका-रम्भा-नाथं दम्भा अप्पा-अप्पी बुज्झंता।
धावंता शल्या छिन्ना कंठा मत्था पीठी पड्डंता,
जनु स्वर्गी-मार्गी जाये अग्गा-लुब्धा उर्ध्वं हेरंता ॥१७५॥

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जेहि वेद धरिज्जे महितल लिज्जे, पीठहि दंतहि ठावें धरा।
रिपु-वक्ष विदारे छल-तनु धारे, बंधिय शत्रु स्वराज्य हरा ॥
कुल-क्षत्रिय तापे दशमुख कप्पे[1], कंसय केशि विनाश करा।
करुणा प्रकटे म्लेच्छहें विदले, सो देउ नरायण तुम्ह वरा ॥२०७॥

(२) राम-स्तुति

बापह उक्ति शिरे जिनि लिज्जिउ। त्यागिय राज्य वनंत चलेविऊ।
सोदर सुंदरि संगहि लग्गिय। मार विराध कवंध तथा हन ॥

मारुइ मिल्लिअ वालि विहंडिअ, रज्ज सुग्गीवह दिज्ज अकंटअ ।
बंधु समुद्द विणासिअ रावण, सो तुम्ह राहव दिज्जउ णिब्भअ ॥२११॥ (५७६)

(३) कृष्ण

अरे रे वाहहि काण्ह णाव छोडि, डगमग कुगति ण देहि ।
तइ इत्थि णइहि संतार देइ, जो चाहहि सो लेहि ॥६॥
जिणि कंस विणासिअ कित्ति पआसिअ, मुट्ठि-अरिट्ठि विणास करे, गिरि हत्थ धरे ।
जमलज्जुण भंजिअ पअभर गंजिअ, कालिअ-कुल संहार करे, जस भुअण भरे ।
चाणूर विहंडिअ णिअ-कुल मंडिअ, राहा-मुह महु-पाण करे, जिमि भमर वरे ।
सो तुम्ह णराअण विप्प-पराअण, चित्तह चिंतिअ देउ वरा भअ-भीअ-हरा ॥२०७॥
भुवण-अणंदो तिहुअण कंदो । भमरसवण्णो स जअइ कण्हो ॥४६॥
परिणअ ससिहर-वअणं, विमल-कमल-दल-णअणं ।
विहिअ-असुर-कुल-दलणं, पणमह सिरि-महुमहणं ॥१०६॥[1]

(४) शंकर-स्तुति

जा अद्धंगे पव्वई, सीसे गंगा जासु ।
जो लोआणं वल्लहो, वंदे पाअं तासु ॥८२॥ (१४३)
जसु सीसहि गंगा गोरि अधंगा, गिव पहिरिअ फणि-हारा ।
कंठ-ट्ठिअ वीसा पिंधण दीसा, संतारिअ संसारा ।
किरणावलि कंदा वंदिअ चंदा, णअणहि अणल फुरंता ।
सो संपअ दिज्जउ बहु सुह किज्जउ, तुम्ह भवाणी-कंता ॥६८॥ (१६६)
रण दक्ख दक्ख हणु जिण्णु कुसुम-धणु, अंधअगंध विणास करु ।
सो रक्खउ संकरु असुर-भअंकरु, गिरि-णाअरि अद्धंग-धरु ॥१०१॥ (१७२)
जो वंदिअ सिरगंग हणिअ अणंग, अद्धंगहि परिकर धरणु ।
सो जोउ-जण-मित्त हरउ दुरित्त, संकाहरु संकर चरणु ॥१०४॥ (१७६)

---

[1] पृष्ठ १२, २३४, ३६५, ४२१

मारुति मेंल्लिय बालि विघट्टिय, राज सुग्रीवहिं दिज्ज अकंटक ।
वंध समुद्र विनाशिय रावण, सो तोंहुँ राघव दिज्जिउ निर्भय ॥२११॥

(३) कृष्ण

अरे रे चालहि कान्ह नाव, छोटि डगमग कुगति न देहि ।
तै एहि नदिहि संतार देइ, जो चाहि सो लेहि ॥६॥
जिन कंस विनाशिय कीर्त्ति प्रकाशिय, मुष्टि अरिष्ट विनाश करे, गिरि हाथ घरे ।
यमलार्जुन भंजिय पदभर गंजिय, कालिय-कुल-संहार करे, यश भुवन भरे ।
चाणूर विखंडिय निज-कुल मंडिय, राधामुख मधु-पान करे, जिमि भ्रमरवरे ।
सो तुम्ह नरायण, विप्र-परायण, चित्ते चिंतित देहु वरे, भय-भीति-हरे ॥२०७॥
भुवन-अनंदा त्रिभुवन कंदा । अमर-सवर्णा स जयतु कृष्णा ॥४६॥
परिणत-शशिधर-वदनं, विमल-कमल-दल-नयनं ।
विहित-असुरकुल-दलनं, प्रणमहु श्री मधुमथनं ॥१०॥

(४) शंकर-स्तुति

जेंहि अधंगे पार्वती, शीशे गंगा जासु ।
जो लोकन्न कर वल्लभ, वंदे पादहँ तासु ॥८२॥
जसु सीसहिं गंगा गौरि अधंगा, शिव पहिरिय फणिहारा,
कंठे ठिय वीपा पहिरन दीशा, संतारिय संसारा ।
किरणावलि कंदा वंदिय ,चंदा, नयनहिं अनल फुरंता,
सो संपति दिज्जउ वहु-सुख किज्जउ, तुम्ह भवानी कंता ॥६८॥
रण-दक्ष दक्ष हनु, जित्तु कुसुमवनु अन्ध-क-अंध विनाश करो ।
सो रक्षउ शंकर असुर-भयंकर, गिरि-नागरि-अर्धांग-घरो ॥१०१॥
जो वंदिय शिर गंग हनिय अनंग, अर्धंगहि परिकर घरणू ।
सो योंगि-जन-मित्र हरहु दुरित्त, शंकाहर शंकर-चरणू ॥१०४॥

जसु कर फणिवइ-वलअ तरुणिवर तणुमहँ विलसइ,
णअण अणल गल गरल विमल ससहर सिर णिवसइ।
सुरसरि सिर महँ रहइ सअल जण-दुरित-दमण कर,
हसि ससिहर हरउ दुरित, वितरह अतुल अभअवर ॥१११॥ (१६०)
जाआ जा अद्धंग सीस गंगा लोलंती, सव्वासा पूरंति सव्व-दुक्खा तोलंती।
णाआ राआ हार दीस वासा भासंता, वेआला जा संग णट्ठ दुट्ठा णासंता।
णाचंता कंता उच्छवे ताले भूमी कंपले,
जा दिट्ठे मोक्खा पाविज्जे, सो तुम्हाणं सुक्ख दे ॥११६॥ (२०७)
सिर किज्जिअ गंगं गोरि अधंगं, हणिअ अणंगे पुर-दहणं।
किअ फणवइ हारं तिहुअण सारं, वंदिअ छारं रिउ-महणं।
सुर सेविअ चरणं मुणिगण सरणं, भव-भअ-हरणं सूलधरं।
साणंदिअ वअणं सुंदर-णअणं गिरिवर-सअणं णमह हरं ॥१६५॥ (३१३)
जसु मित्त धणेसा ससुर गिरीसा, तहविहु पिंधण[1] दीस।
जह अमियह कंदा णिअलहि चंदा, तह विह भोअण वीस।
जइ कणअ-सुरंगा गोरि अधंगा, तहविहु डाकिणि संग।
जो जसुहि दिआवा देव सहावा, कवहु ण हो तसु भंग ॥२०६॥ (३३८)
गवरिअ-कंता अभिणउ संता। जइ परसण्णा दिअ महि धण्णा ॥४८॥ (३६५)
पिंग-जटावलि-ठाविअ गंगा, धारिअ णाअरि जेण अधंगा।
चंदकला जसु सीसहि णोक्खा, सो तुह संकर दिज्जउ मोक्खा ॥१०५॥ (४१७)
बालो कुमारो स छमुंडधारी, उप्पाउ-हीणा हउँ एक्क णारी।
अहंणिसं खाहि विसं भिखारी, गई भवित्ती किल का हमारी ॥१२०॥
सुअ देव दुरित्त गणा हरणा चरणा, जइ पावउ चंदकलाभरणा सरणा।
परिपूरइ संजिअ सोहमणा भवणा, सुह दे महु सोक विणास मणा समणा ॥१५५॥
[illegible] किज्जिअ टोप्पर, कंकण बाहु किरीट सिर।
जसु कण्णहि कुंडल णं रविमंडल, ठाविअ हार फुरंत उरे।

---

[1] पीसाण, पीसण

जसु कर फणिपति वलय, तरुणि-वर तनुमहँ विलसइ,
नयन अनल गल गरल विमल शशधर शिर निवसइ।
सुरसरि शिरमँह रहै सकल-जन-दुरित-दमनकर,
हसि शशिधरः हरहु दुरित, वितरहु अतुल अभय वर ॥१११॥
जाया अर्धांग शीशे गंगा, लोलंती, सर्वाशा पूरंति सर्वं दुक्खा तोडंती।
नागा-राजा हार दिशा वासा भासंता, वेताला जा संग नष्ट दुष्टा नाशंता।
नाचंता कंता उत्सवे ताले भूमी कंपरे।
जा देखे मोक्षा पाइज्जा, सो तुम्हा कहँ सुक्ख दे ॥११६॥
शिर किज्जिय गंगं गोरि अर्धंगं, हनिय अनंगं पुर-दहनं।
किय फणिपति हारं त्रिभुवन सारं, वंदिय छारं रिपु-मथनं।
सुर-सेवित-चरणं मुनिगण-सरणं भवभय-हरणं शूलधरं।
सानंदित वदनं सुंदर-नयनं, गिरिवर-शयनं नमहु हरं ॥१६५॥
जसु मित्र धनेशा ससुर गिरीशा, तेहि विध पेन्हन दीश।
जिमि अमृतह कंदा नियरइ चंदा, तेहि विध भोजन वीष॥
यदि कनक-सुरंगा गौरि अर्धंगा, तेहि विध डाकिनि संग।
जो यशह दियावा देव स्वभावा, कवहु न हो तसु भंग ॥२०६॥
गौरिय कंता अभिनव शांता यदि परसन्न देँहुँ मोँहि धन्ना ॥४८॥
पिंग-जटावलि थापिय गंगा, धारिय नागरि जिनि अर्धंगा।
चंद्रकला जसु शीशहिं नोखा, सो तेहिँ शंकर दिज्जउ मोक्षा ॥१०५॥
वालो कुमारो स छ-मुंड-धारी, उत्पाद-हीना हौँ एक नारी।
अहर्निशा खाइ विषं भिखारी, गती हुवैया फुर का हमारी ॥१२०॥
तव देव ! दुरित्त-गणा-हरणा-चरणा, यदि पावउँ चंद्र कला-भरणा-शरणा।
परिपूजउँ त्यागिय लोभमना भवना, सुख दे मोंहि शोक-विनाश मनः शमना ॥१५५॥
प्रभु ! दीजिय वज्रहि सृज्जिय टोप्पर[1] कंकण वाहु किरीट शिरे,
प्रति कर्णहि कुंडल जनु-रवि मंडल, थापिय हार फुरंत उरे।

---

[1] शिरस्त्राण

पइ अंगुलि मुद्दरि हीरहि सुंदरि, कंचण रज्जु सुमझ्झ तणू ।
तसु तूणउ सुंदर किज्जिअ मंदर, ठावह वाणह सेस घणू ।।२०६।।
जअइ जअइ हर वलहअ विसहर तिलइअ सुंदर चंदं मुणि आणंदं जणकंदं ।
वसह-गमणकर तिसुल-डमरु-धर, णअणहि डाहु अणंगं सिर गंगं गोरि अधंगं ।
जअइ जअइ हरि भुअजुअ धरु गिरि, दहमुह कंस विणासा पिअवासा सुंदर हासा ।
वलि छलि महि हरु असुर विलयकरु, मुणिजणमाणसहंसा पिअ सुहभासा उत्तमवंसा
।।२१५।।[1]

३—कविका संदेश

सन्तोष-और निराशा-वाद

सेर एक्क जइ पावउ घित्ता । मंडा वीस पकावउ णित्ता ।
टंकु एक्क जउ सेंधव पाआ । जो हउ रंको सो हउ राआ ।।१३०।। (२२४)
राआ लुद्ध समाज खल, वहु कलहारिणि सेवक धुत्तउ ।
जीवण चाहसि सुक्ख जइ, परिहर घर जइ वहुगुण-जुत्तउ ।।१६६।। (२७७)
पंडव-वंसहि जम्म धरीजे । संपअ अज्जिअ धम्मक दिज्जै ।
सोउ जुहुट्ठिर संकट पावा । देवक लेक्खिल केण मेंटावा ।।१०१।। (४१२)
सो जण जणमउ सो गुण-मंतउ । जो कर पर-उवआर हसंतउ ।
जे पुण पर-उपआर विरुझ्झउ, ताक जणणि किण थक्कउ वंझउ ।।१४६।। (४७०)

§ ४३: हरिब्रह्म

काल—तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध (चंडेश्वर-मंत्रीका काल)[2]। देश—विहार

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

जहा सरअ-ससि-विंव, जहा हर-हार-हंस ठिअ,
जहा फुल्ल सिअ कमल, जहा सिरि-खंड खंड किअ ।

---

[1] पृष्ठ ४३५, ४८०, ५७३, ५८६ [2] चंडेश्वर मिथिला-नेपाल के राजा हरिसिंह (१३१४-२५) के मंत्री थे, जिन्होंने "कृत्यरत्नाकर", "कृत्य-चिन्तामणि", "दानरत्नाकर" आदि ग्रंथ लिखे ।

शीश-[illegible] [illegible] [illegible] सुन्दर, [illegible] सुभग तनू।
गमु सुनहु सुन्दर [illegible] मदन, भावइ भावइ [illegible] धनू ॥२०९॥
[illegible] [illegible] [illegible] सागर, [illegible] सुन्दर चरणे मुनि-मानस जनकंदे।
भूषन-[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] शिर गंग गौरि पथमं।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पद लिखि, [illegible] त्रिभुवना सुन्दर-[illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] पद [illegible] कर, मुनि-जन-मानस-हंसा त्रिभुवनाधिपतिनयना
॥२१५॥

३—कविका संदेश

सन्तोष और निराशावाद

पेट एक यदि पावउँ कूरा, भंजा भाँग पकावउँ तिसरा।
टका एक यदि मेंगा पावा, जौं हौं रंकउ तो हौं राजा ॥१३०॥
राजा सुख समाज सब, कछु [illegible] सेवक पुनेउ।
सेवक [illegible] सुख [illegible], [illegible] पर यदि बहु-गुण-युक्तउ ॥१६९॥
पंडव-वंशहि जन्म धरीजे, संपति अर्जिय धर्म कौं दीजे।
सोउ युधिष्ठिर संकट पावा। देवकि लिखल कौन मिटावा ॥१०१॥
सो जन जनमेउ सो गुणवंतउ। जो हर पर-उपकार हसंतउ।
जो पुनि पर-उपकार विरुद्धउ। ताहि जननि किनु थाकेउ[1] बाँझउ ॥१४९॥

§ ४३: हरिब्रह्म

(?)। कुल—ब्रह्मभट्ट (?), राजदर्बारी। कृतियाँ—स्फुट[2]

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

यथा शरद-शशि-बिंब यथा हर-हार-हंस ठिय।
यथा फुल्ल-सित-कमल, यथा श्रीखंड-खंड किय।

---

[1] रहेउ [2] "प्राकृत-पैंगल" पृष्ठ १८४

जहा गंग-कल्लोल, जहा रोसाणिअ रुप्पइ,
जहा दुद्धवर सुद्ध फेण फँफाइ तलप्पइ।
पिअपाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुअ हसइ जह तरुणि जण।
वरमंति चंडेसर कित्ति तुअ, तत्थ पेक्ख हरिवंभ भण ॥१०८॥ (१८४)

§ ४४: अंवदेव सूरि

काल—१३१४। देश—अन्हिलवाडा (गुजरात[1])। कुल—वैश्य(?),

१—सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)की प्रशंसा

जिणि दिणि दिनु दक्खाउ, समरसीहि जिण धम्मवणि।
तसु गुण करउँ उदोउ, जिम अंधारइ फटिकमणि ॥
सारणि अमियतणीय, जिणि वहाँवी मरुमंडलिहिँ।
किउ कृतजुग अवतारु, कलिजुगि जीवउ वाहुवले ॥
ओसवाल कुलि चंदु, उदयउ एउ समान नहिँ।
कलिजुगि कालइ पासि, छेदीयउ सचराचरहिँ ॥....
रतन कुक्षि कुलि निम्मलीय भोली पुतुजाया।
सहजउ साहणु समरसीहु वहु पुन्निहि आया ॥
बहु अलगद सुविचार चतुर सुविवेक सुजाण।
रत्न परीक्षा रंजवइ राय अउ राण ॥
नउ डंगल नियकुल पईव ए पुत्र सधन्न।
रूपवंत अउ सीलवंत परिणाविय कन्न ॥
सामन्तसुनि आवास कियउ अणहिलपुर नयरे।
पुन्न लहर जिम रयण माहि नर समुद्दह लहरे ॥
—समर-रास (पृ० २७-२९)

---

[1] "प्राचीन-गूर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. XIII.

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ)की प्रशंसा

तहि अच्छइ भूपतिहि भुवण-सतखंड-पसत्थो ।
विश्वकर्म विज्ञानि करिउ धोइउ निय हत्थो
अमिय सरोवरु सहसलिगु इकु धरणिहिँ कुडलु ।
कित्तिथंभु किरि अवरदेसि मागइ आखंडलु ।
अज्जवि दीसइ जत्थ-धम्मु कलिकालि अगंजिउ ।
आचारिहिँ इह नयर-तणइ सचराचरु रंजिउ ॥
पा[1]तसाहि [2]सुरताण भीवु तहिँ राजु करेई ।
अलपखानु हींदूअह लोय धणु मानु जु देई ॥
साहु राय देसलह पूतु तसु सेवइ पाय ।
कलाकरी रंजविउ खानु वहु देइ पसाय ॥
मीरि मलिकि मानियइ समरु समरथु पभणीजइ ।
पर-उवयारिय माहि लीह जसु पहिलिय दीजइ ॥

२-(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगलि मुनिवर-संघु सावय जणा । तिलु न पिरइ तिम मिलिय लोय घणा ॥
मादल धंग थिणा ध्रुणि वज्जए । गुहिर भेरीय रवि अंबरे गज्जए ॥
नयर पाटणि नयउ रंगु अवतारिएँ । सुखिहिँ देवालय संखारी-संचारिएँ ॥
धरि वदमणि करि केवि समाहिया । समरगुण रंजिउ विरलउ रहियउ ॥
सवणु कान्हु दुइ संघपति चालिया । हरिपालो लंडुको महाधर दूढ़ थिया ॥
सालिग नाग अभंग नादि काहल दुन्दुडिया ।
घोडे चडइ सल्लार सार राउत सींगडिया ।
[illegible] आंधि वेगि धाधरि रवु झमकइ ।
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ॥

---

[1] बादशाह [2] सुलतान

सिजवाला धर धडहडइ वाहिणि वहु वेगे।
धरणि धडक्कइ रजु उडए नवि सूझवि मागे ॥
हय हींसइ आरसइ करह वेगि वहइ वइल्ल।
सादकिया थाहरइ अवरु नवि देई वुल्ल ॥
निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु।
पावल पाउ न पामियए वेगि वहइ सुखासण ॥
आगे वाणिहि संचरए संघपती साहु देसलु।
वुद्धिवंतु बहुपुंनिवंतु परिकमिहिँ सुनिश्चलु ॥
पाछे वाणिहि सोमसीहु साहुसहजा पूतो।
सांगणु साहु दूणिगह पूतु सोमजिनि जुत्तो ॥
जोड करी असवार माँहि आपणि समरागरु।
चडिय हींड चहुगमे जोइ जो संघ असुहकरु ॥
सेरीसे पूजियउ पासु कलिकालिहिँ सकलो।
सिरखेजि थाइउ धवलकए संघु आविउ सयलो ॥
धंधूकउ अतिक्रमिउ ताम लोलियाणइ पहूतो।
नेमि भुवणि उछवु करिउ पिपलालीय वत्तो ॥
—वहीं (पृ० ३२-३३)

३—ग्रंथ-रचना-काल

संवच्छरि इक्कहुत्तरए थापिउ रिसहजिणिंदो।
चैत्रवदि सातमि पहुतवरे नंदऊ ए नंदउ ए नंदउ जा रवि चंदो ॥
पासड सूरिहिं गणहरह नेउअगच्छ निवासो।
तसु सीसहिं, अंबदेव सूरिहिं रचियउ ए रचियउ ए रचियउ समरारासो ॥
—समररासो[1]

---

[1] पृष्ठ ३७

§ ४५: अज्ञात कवि

काल—१३०० (ई०), देश—गुजरात।

१—कक्का[1]

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कत्थ वच्छ कुवलय-नयण, सालिभद्द सुकुमाल।
भद्दा पथणइ देव तुहु, कह थिउ इत्तिय वार॥
खरउं कुड्डु ता पुत्त कहि, का देसण किय वीरि।
कवण अत्थु वरवाणिइउ, कंचणगोर सरीरि॥
खार समुद्दहर आगलउ, माहर कढिउ संसारु।
संजमपवहण हीण तसु, कियइ न लब्भइ पारु॥
गमयमत्त वीरिय पवर, जे जगि पुरिस पहाण।
सालिभद्द भद्दा भणइ, संजमु सोहइ ताण॥
घण कुंकुम चंदण रसिण, तुह तणु वासिउ वच्छ।
वयह परीसह किम सहिसि, मुणि गंगाजल सच्छ॥
नविवउ लिज्जइ तरुण पणि, सालिभद्द सुकुमाल।
मड्ड कुलमंडल कुलतिलय, कुलपईव कुलबाल॥
चरणु लेगिजइ पुत्त तुहु, नंदणनीय पवीण।
रोअंती भद्दा भणइं, मइं किम मेल्हिसि दीण॥
छण मयलंछण समवयण, तुह भज्जा बत्तीस।
ते विलवंती पेमभरि, किम कारिसि कुलईस॥
जणणि भणइ मा बालपणु, नां पुत्तह पडिबंधु।
नालमइ बुल्लाविअउ, वछु उन्नाडइ कंधु॥

---

[1] [illegible]

झलकंतउ कंचणघडिउँ, सत्तभूमि पासाउ ।
विहवउ कोडाकोडि धण, कहि कोइँ ऊणउ ठाउ ॥
नरवइ सेणिउ तुम्ह पहु, सुरगोभद्दु सुताउ ।
नित्तु नवएँ आभारणू, कहि को चित्तिविसाउ ॥
टलटलेसि धम्मत्थ पुण, धम्मगहिल्ला बाल ।
धम्म करेवा महु समउ, तुहु धणु रक्खण बाल ॥
ठणकइ पुत्तसु चित्तिमहु, पुत्त विहूणिय नारि ।
विहविह मुन्चइ दुहु सहइ, दीणी परघर वारि ॥
डरपिसि सुणियइ सीहसरि, निसुणिसि सिव-फिक्कार ।
भुक्खिउ तिसिइउ वच्छ, तुह किम हिंडिसि नार ॥
ढलइँ चमर-वर पुत्त तुहु, सीस धरिज्जइ छत्तु ।
मणि सीहासणि वइठणउँ, किणि कारणि वइचित्तु ॥
नवउँ अंतेउरु नवउँ घरु, नवजोवणु नवरंगु ।
सालिभद्दु नवकणयतणु, ढलकरि चरण पसंगु ॥
तरुअरतलि आवासु मुणि, भिक्खह भोयणु पाणु ।
भूमंडलि आसणु सयणु, वच्छ चरणु दुहठाणु ॥
थल-डूंगर पाहणसघण, कक्कर कंट तुसार ।
पाणह वज्जिय गुरि सहिउ, हिंडिसि केम कुमार ॥
दहविह धम्मु करेसि किम, किम सोसिसि निय अंगु ।
वच्छ तहं ता दोहिलउँ, होसिइ तुह सीलंगु ॥
धम्मु किउ जिम रिसहजिणि[1], तिम किज्जइ सुअ इत्थु ।
पहिलउं साम्निहिं पसरिउ, अंतिय थासिउ तित्थु ॥
नवकम्पगिहि पूरिया, नन्दण कोमल केस ।
केलगि वालई वासिया, किम उद्धरिसि असेस ॥

---

[1] एक तीर्थंकर

झलकंतउ कंचन गढ़िय, सप्तभूमि प्रासाद।
विभवउ कोटाकोटि धन, कहँ कोँउ ऊनउ ठाँव ॥
नरपति श्रेणिक तुम्ह प्रभु, गुरुगोभद्र सुताउ।
नित्य नवं आभारणू, कहँ को चित्त-विषाद ॥
टलटलेसि धर्मार्थं पुनि, धर्म-महिल्ला बाल।
धर्म करेवा मम समय, तुव धन-रक्षण-काल ॥
ठापे पुत्र नोँ चित्त मेँ, पुत्र विहूनी नारि।
विभवहिँ मुचं दुख सहै, दीनी परघर वारि ॥
डरपसि सुनिया सिंहस्वर, नि-सुनिय शिवां-फेक्कार।
भुखिय तृषितउ वत्स तुहुँ, किमि हिंडीयसि नार ॥
ढलेँ चमर-वर पुत्र ! तव, सीस धरिज्जै छत्र।
मणिसिंहासनेँ बइठनउ, किन कारण वैचित्र ॥
नव अंतःपुर नवघर, नवयोवन नवरंग।
शालिभद्र नवकनकतनु ढलकर चरण-प्रसंग ॥
तरुवरतल आवास मुनि, भिक्षहँ भोजन-पान।
भूमंडल आसन-शयन, वत्स ! चरण दुख-थान ॥
थल डूँगर पाहन सघन, कंकड कंट तुषार।
पनहो वजिय गोड सन, हिंडसि केम कुमार ॥
दशविध धर्म करेसि किमि, किमि शोपसि निज अंग।
वत्स ! तहाँतहँ दोहलउ, होँइहै तुव शीलांग ॥
धर्म करेँउ जिमि ऋषभ जिन, तिमि कीजै सुत अत्र।
पहिले सरिसिहिँ पसारियुउ, अंते पायेउ तीर्थ ॥
नवकर्पूरहिँ पूरिया, नन्दन ! कोमल केश।
केतकि वालेँ वासिया, किमि उद्धरिसि अशेष ॥

पट्टंसुग्र तइँ पहरियां, रसियउ दिव्व ग्रहारु ।
सुग्र उव्वासिहिँ सोसिया, केम करेसि विहारु ॥
फणि-रायह सिरिपुत्त मणि, मुल्लेणय वहुमुल्लु ।
सा गिण्हंता पाणहर, संजम-भरु तस तुल्लु ॥
वत्तीसहँ पल्लंकि तउं, सयण करइ नितु जाय ।
'डूंगरि कासुगि करिसि किम, वलि किज्जउँ तह काय ॥
भमिसि विहारिहि भारिग्रग्रो, नंदण तं सुकुमाल ।
वीर जिणंदह चरणु पुणु, मुणि वावन्नउँ फालु ॥
मयलंछण जिमि तारयहँ, सयलहँ किल भत्तारु ।
तं वत्तीसह वहुग्ररहं, एक्कु देव ग्राधारु ॥
यइ तउँ संजमु लेसि सुग्र, मेल्हिवि सयलु सिणेहु ।
ता गोभद्दु ग्रभागिहउ, हा धिगु छुड्डउ गेहु ॥
रहि रहि नंदण वयणु सुणि, मामा मइँ संतावि ।
तुह विणु नितु कुण पूरिसइ, मुक्काहरणहँ वावि ॥
लडकइँ सउँ संजमु लियल, नंदसेणु मुणिराउ ।
सो संजमुपव्वइय सुग्र, भोगह कम्मपसाय ॥
वन्झ ति नारी दुक्खिनिहि, जाहँ न कंतु न पुत्तु ।
मुहुतइं नंदण जाइयइँ, हिव ग्राविऊँ निरुत्त ॥
सहसाकारिहिँ गहियवउ, सुयइ कंडरिएण ।
नंदण तेणय नरइदुह, पामिय भट्ठवएण ॥
पलह मणोरह पूजिसइँ, सज्जण होसिइ सोसु ।
नन्दण तुं थाडसि समणु, एँउ मह्रु कम्महँ दोसु ॥
ममल देह कप्पड समल, रत्तिदिवस गुरुग्राण ।
होइसइं तुव भद्दा भणइ, पर-ग्राइत्त पवाण ॥

पट्टांशुक तैं पहिरिया, रसियउ दिव्य-अहार।
सुत उपवासें हि शोपिया, केम करेसि विहार॥
फणिराजह श्रीपुत्र मणि, मूल्येनउ वहुमूल्य।
सो गृहणंतें प्राणहर, संयमभर तसु तुल्य॥
वत्तीसहँ पल्लंग तैं, शयन करै नित जाय।
डूंगरि कासुग[1] करिसि किम, वलि किज्जउँ तह काय॥
श्रमसि विहारें भारिअउ, नंदन सो सुकुमार।
वीरजिनेंद्रहँ चरण पुनि, मुनि वावनऊ फाल[2]॥
मृगलांछन जिमि तारकहँ, सकलहँ कर भर्त्तार।
तिन वत्तीसहँ ववुअरहँ, एक देव आधार॥
यदि तैं संयम लेसि सुत, मेलिय[3] सकल सनेह।
ता गोभद्र अभागिहउ, हा धिग छूटेंउ गेह॥
रहि रहि नंदन वयन सुनि, मा मा मैं संताप।
तुह विन नित को पूरिहैं, मुक्ताभरणहँ वापि॥
लडकें सँग संयम लियउ, नंदसेन मुनिराव।
सो संयम प्रव्रजिय सुत, भोगहँ कर्म प्रसाद॥
वत्स तें नारी दुःखिनी, जाहँ न कंत न पुत्त।
मम तें नंदन जाइइहि, क्यों आवेंऊँ निरुत्त[4]॥
सहसा कारेंहिं गहियऊ, मुनिय कंडरीकेहिं[5]।
नंदन! ताते नरक-दुख, पाइय भ्रष्टव्रतेहिं॥
खलह मनोरथ पूजिहै, सज्जन होंइहै शोप।
नंदन! तूँ होयेंउ श्रमण, एँहु मम कर्महँ दोष॥
साँवर देह कलपउ सँवर, रातदिवस गुरुज्ञान।
होइहै तू भद्रा भनै, पर-आयत्त-पराण॥

---

[1] कायोत्सर्ग=खड़े वैठे ध्यानावस्थ होना [2] छलाँग
[3] छोड़ [4] निरर्थक [5] कंडरीककी कथा

हसत रोअंता पाहुनउ, तहाँ हसंता .होउ।
शालिभद्र संयम लियँ, मम बूझिहै प्रमोह ॥
—शालिभद्र-कक्का (पृ० ६२-६७)

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

कीत्ति मा सलहिज्जै जा सुनीय आपनेहि कानेहिँ।
पाछे मुये प'सुंदरि ! सा कीर्त्ती होहु न होहु ॥१२॥
यश-सहित जो नर हुआ रवि पहिला ऊगंत।
युग्गां जाते दीहड़े[1], गिरि-पत्थरा ढुलति ॥१३॥
कीरति हंदा कोटडा पाड्या ही न पडंति ॥
—उपदेशतरंगिणी (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर सूरि

कृति—नेमिनाथ-फाग[2]।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

श्यामल कोमल केशपाश जनु मोरकलाप।
अर्धचंद्रसम भाल मदनपोसै भउवाहँ ॥

---

[1] दिवस [2] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. III

वंकुडिया लोय भुंहडियहं भरि भुवणु भमाडइ।
लाडी लोयण लह कुडलइ सुर सग्गह पाडइ॥
किरि ससिबिंब कपोल कन्नहिं डोल फुरंता।
नासावंसा गरुड-चंचु दाडिमफल दंता॥
अहर पवाल तिरेह कंठु राजल सर रूडउ।
जाणुवीणु रणरणइं जाणु कोइलटहकडलउ॥
सरल तरल भुय वल्लरिय सिहण पीण घण तुंग।
उदरदेसि लंकाउलिय सोहइ तिवल-तरंगु॥
कोमल विमल नियंब बिंब किरि गंगा-पुलिणा।
करि-करऊरि हरिण जंघ पल्लव करचरणा।
मलपति चालति वेलहीय हंसला हरावइ।
संझारागु अकालिवालु नहकिरणि करावइ॥
सहजिहिं लडहीय रायमएँ सुलखण सुकुमाला।
घणउं घणेरउं गहणगहए नवजुव्वण बाला॥
भंभरभोली नेमि, जिण वीवाह सुणेई।
नेहगहिल्ली गोरडी, हियडाई विहसेई॥
सावण सुकिल छट्ठि दिणि बावीसमउ जिणंदो।
चल्लइ राजल परिणयण कामिणि नयणाणंदो॥
—नेमिनाथ-फाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किम किम राजलदेवितणउ[1] सिणगारु भणेवउ।
चंपइगोरी अइधोई अंगि चंदनु लेवउ॥
खुंपु भराविउ जाइ कुसुमि कसतूरी सारी।
सीमंतइ सिंदूररेह मोतीसरि सारी॥

---

[1] रानी

वांकडिया लिय भौंहडियहँ भर भुवन भ्रमाडइ ।
तारी लोचन लह कुडले[1] सुस्वर्गहँ पातै ॥
जनु शशिबिंब कपोल कर्ण हिंडोल फुरंता ।
नासावंशा गरुड-चंचु, दाडिमफल दंता ॥
अधर प्रवालहँ रेख, कंठ राजल सर रुडऊ[2] ।
जनु-वीणा रणरणं, जान कोंइलटहकलऊ[3] ॥
सरल तरल भुजवल्लरीय, थन-पीन-तुंग ।
उदर-देशें लंका सोहै त्रिवली तरंग ॥
कोमल विमल नितंब बिंब जनु गंगापुलिना ।
करि-कर उरुयुग हरिन-जंघ पल्लव कर-चरणा ॥
मलपति[4] चालति वेलीइव हंसला हरावै ।
संध्याराग अकाल वाल नखकिरण करावै ॥
सहजें सुंदर-राजमति, सुलखन सुकुमारा ।
घनउँ घनेरउ गहगहे, नवयौवन वाला ॥
भंवलभोली[5] नेमि जिन वीवाह सुनेइ ।
नेह गहिल्ली गोरडी हियरेई विहसेइ ॥
श्रावण शुक्ला छट्ठ दिन, वीई सवउँ जिनेन्द्र ।
चल्लै राजल परिणयन, कामिनि नयनानंद ॥
—नेमिनाथफाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किमि किमि राजलदेवि केर शृंगार भनेवउ ।
चंपकगोरी अतीधौत अंग चंदन लेंपेवउ ॥
खोंप भरावेउ जाति-कुसुम कस्तूरी सारी ।
सीमंतें सिंदूर-रेख मोतीसर सारी ॥

[1] कटाक्ष [2] सुन्दर [3] टहकना [4] मस्त [5] भोली-भाली

नवरंगी कुंकुमि तिलय किय रयणतिलउ तनु भाले ।
मोती कुण्डल कन्नि थिय बिम्बालिय कर जाले
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुंहकमलि तंबोलो ।
नागोदर कठलउ कंठि अनुहार बिरोलो।
मरगद जादर कंचुयउ फुड फुल्लह माला ।
करें कंकण मणि-वलय चूड खलकावइ बाला
रुणुझुणु रुणुझुणु रुणुझुणएँ कडि घाघरियाली ।
रिमझिमि रिमझिमि रिमझिमएँ पयनेउर जुयली
नहि आलत्तउ वलवलउ सेअंसुय किमिसि ।
अंखडियाली रायमइ प्रिउ जोअइ मनरसि
—वही (पृ० ८३-८

नवरंग कुंकुम तिलक किय रतन तिलक तसु भाले ।
मोती कुंडल कर्णे ठिय विवालिय कर जाले ॥
नरतिय कज्जल-रेख नयनें मुखकमल तंबूलो ।
नागोदर कंठलउ कंठ अनुहार विरोलो ॥
मरगत-जादर[1] कंचुकहउ फुर फूलहँ माला ।
करहीं ककण-मणिवलय चूड खड़कावै वाला ॥
रुनझुन-रुनझुन-रुनझुनै कटि घाघरियाली ।
रिमझिम-रिमझिम-रिमझिमै पद नूपुर युगली ॥
नखें अलक्तक वलवलउ श्वेतांशु-विमिश्रित ।
अंखड़ियाली राजमति प्रिय जोवै मन रसि[2] ॥

—वहीं (पृ० ८३-८४)

हिन्दी काव्य-धारा

परिशिष्ट

— १ —

ग्रंथ, जिनसे सहायता ली गई

— २ —

कवियोंका कालक्रम, उनकी रचनाएं

— ३ —

देहाती और तद्भव शब्द

— ४ —

सम-सामयिक राजवंश



परिशिष्ट १

निम्नलिखित ग्रंथों, संग्रहों और साहित्य-पत्रों (Journals)से सामग्री र की गई—

पुरातत्त्व निबंधावली—राहुल सांकृत्यायन। इंडियन प्रेस (प्रयाग)से प्रकाशित।

सिद्धोंके दोहे—The Journal of Department of Letters, Calcutta University के Vol. XXVIII में।

चर्यापद—J. D. L., Cal. के Vol. XXX में।

स्वयंभू रामायण (हस्तलिखित)—भांडारकर इन्स्टीटयूट, पूनामें सुरक्षित।

गोरखबानी—हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग)से प्रकाशित; १९९९ वि०सं०।

सावयधम्म दोहा।

महापुराण—पुष्पदंत; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचंद्र दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-मालामें सम्पादित, तीन जिल्द (१९३७, १९४०, १९४१ ई०)।

जसहरचरिउ—पुष्पदंत; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार)में सम्पादित (१९३१ ई०)।

नायकुमारचरिउ—पुष्पदंत; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा देवेंद्र-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार)में सम्पादित। (१९३३)।

परमात्मप्रकाश दोहा और योगसार दोहा—योगींदु; ए० एन्० उपाध्ये द्वारा श्रीरायचंद-जैन-शास्त्रमाला (बंबई)की १०वीं ग्रंथसंख्या (१९३० ई०)।

११. पाहुड़दोहा—रामसिंह; करंजा-जैन-ग्रंथमालामें प्रकाशित।

१२. भविसयत्तकहा—धनपाल; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़, बड़ोदा द्वारा प्रकाशित (१९२३ ई०)।

१३. प्रबंधचिंतामणि—मेरुतुंगाचार्य; मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित और विश्वभारती, शांतिनिकेतनसे प्रकाशित।

१४. संदेशरासक—अब्दुर्रहमान; 'भारतीय विद्या'में मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित (मार्च १९४२ ई०)।

१५. प्राकृतपैंगल—चंद्रमोहन घोष द्वारा Bibliothica Indica में सम्पादित (१९०२ ई०)।

१६. करकंडुचरिउ—कनकामरमुनि; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा कारंजा-जैन-ग्रंथमालामें सम्पादित (१९३४ ई०)।

१७. प्राचीनगुर्जरकाव्यसंग्रह—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदासे प्रकाशित (१९२७)।

१८. अपभ्रंशकाव्यत्रय—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदासे प्रकाशित (१९२७ ई०)।

१९. प्राकृतव्याकरण—हेमचंद्र सूरि; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा सम्पादित और मोतीलाल लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित (१९२८ ई०)।

२०. छंदोऽनुशासन—हेमचंद्र सूरि; देवकरण-मूलचंद (बंबई) द्वारा प्रकाशित (१९१२ ई०)।

२१. नेमिनाथचरित—हरिभद्र सूरि; डाक्टर हर्मन् याकोबी द्वारा सम्पादित।

२२. उपदेशतरंगिणी—रत्नमंदिरगणि; धर्माभ्युदय प्रेस, बनारससे प्रकाशित।

२३. कुमारपालप्रतिबोध—सोमप्रभ सूरि; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदासे प्रकाशित (१९२० ई०)।

२४. पृथ्वीराजरासो

२५. अनुव्रतरत्नप्रदीप—लक्खण; (अप्रकाशित) भारतीय विद्याभवन, बंबईमें सुरक्षित।

परिशिष्ट २

कवि और उनकी कृतियाँ; उनके समसामयिक राजा आदि

आठवीँ शताब्दी

कवि	कृतियाँ
सरहपा—७६० ई०	उपदेशगीति दोहाकोष
	तत्त्वोपदेशशिखर ,,
	भावनाफल दृष्टिचर्या ,,
	वसंत तिलक दोहाकोष
	महामुद्रोपदेश ,,

कवि	कृतियाँ
	सरहपादगीतिका
शवरपा—८८० ई० धर्मपाल (७७०-८०६)	चित्तगुह्यगंभीरार्थगीति
	महामुद्रावज्रगीति
	शून्यतादृष्टि
	षडंगयोग
	सहजसंवरस्वाधिष्ठान
	सहजोपदेश स्वाधिष्ठान
स्वयंभूदेव—७९० ई० ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४)	हरिवंशपुराण
	रामायण (पउरचरिउ)
	स्वयंभूछंद
भूसुकपा—८०० ई० धर्मपाल-देवपाल (शांतिदेव) (७८०-८०६-४९)	सहजगीति

नवीं शताब्दी

लुईपा—८३० ई० धर्मपाल-देवपाल	अभिसमय-विभंग
	तत्वस्वभावदोहाको
	बुद्धोदयभगवदभिस
	गीतिका
विरूपा—८३० ई० देवपाल (८०६-४९)	अमृतसिद्धि-दोहाको
	कर्मचंडालिका- ,
	विरूप-गीतिका
	विरूप वज्र-गीतिक
	विरूपपदचतुरशीति
	मार्गफलान्वितावचा
	सुनिष्प्रपंचतत्त्वोपदे
डोम्बिपा—८४० ई० देवपाल	अक्षरद्विकोपदेश

कवि	कृतियाँ
	गीतिका
	नाडीबिंदुद्वारे योगचर्या
दारिकपा—८४० ई० देवपाल	महागुह्यतत्त्वोपदेश
	तथतादृष्टि
	सप्तम सिद्धान्त
गुंडरीपा—८४० ई० देवपाल	गीति
कुक्कुरीपा—८४० ई० देवपाल	योगभावनोपदेश
	स्रवपरिच्छेदन
कमरिपा—८४० ई० देवपाल	असम्बंधदृष्टि
	असम्बंधसर्गदृष्टि
	गीतिका
कण्हपा—८४० ई० देवपाल	गीतिक
	महाढुंढन
	वसंततिलक
	असम्बंधदृष्टि
	वज्रगीति
	दोहाकोष
गोरखनाथ—८४५ ई० देवपाल	गोरखवानी
	वायुतत्त्वोपदेश
टेंडणपा—८४५ ई० देवपाल-विग्रहपाल (८०६-४९-५४)	चतुर्योगभावना
महीपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल (८५०-५४-९०८)	वायुतत्त्व
	दोहागीतिका
भादेपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	चर्यापद (गीति)
धामपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	कालिभावनामार्ग
	सुगतदृष्टिगीतिका
	हुंकारचित्तविंदुभावनाक्रम

दसवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
देवसेन—९९३ ई०	सावयधम्मदोहा
तिलोपा—९६० ई० राज्यपाल-गोपाल द्वि० विग्रह-पाल द्वि० (९०८-४०-६०-८०)	निवृत्तिभावनाक्रम करुणाभावनाधिष्ठान दोहाकोष महामुद्रोपदेश
पुष्पदंत—९५९-७२ ई० राठौड़ कृष्ण-खोट्टिग तीं०-(९३९-६८-७२)	महापुराण (आदिपुराण उत्तरपुराण) यशोधरचरित नागकुमारचरित
शांतिपा—१००० ई० विग्रहपाल-महीपाल (९६०-८८-१०३८)	सुखदुःखद्वयपरित्यागदृष्टि
योगींदु—१००० ई०	परमात्मप्रकाशदोहा योगसारदोहा
रामसिंह—१००० ई०	पाहुडदोहा
धनपाल—१००० ई०	भविसयत्तकहा

ग्यारहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
अज्ञातकवि—१००० ई० भोज (१००९-४२)	फुटकर रचनाएँ
अब्दुर्रहमान—१०१० ई०	संनेहरासय (संदेशरासक)
बब्बर—१०५० ई० कर्ण कलचुरी (१०४०-७०)	फुटकर रचनाएँ
कनकामर—१०६० ई०	करकंडचरिउ
जिनदत्तसूरि (१०७५-११५४)	चाचरि उपदेशरसायन कालस्वरूपकुलक

बारहवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
हेमचंद्र सूरि—११७६ ई० कर्ण, जयसिंह, कुमारपाल आदि सोलंकी राजाओंके समकालीन	प्राकृतव्याकरण
	छंदोनुशासन
	देशीनाममाला
हरिभद्र सूरि—११५९ ई० जयसिंह-कुमारपाल (१०९३-११४२-७३)	णेमिणाहचरिउ
अज्ञात कवि—वीसलदेव (११५३-६४) ·	फुटकर (उपदेशतरंगिणीसे)
आम भट्ट—जयसिंह-कुमारपाल	,, ,,
विद्याधर—११८० ई० जयचंद (११७०-९४)	स्फुट कविताएँ
शालिभद्र सूरि—११८४ ई०	बाहुबलिरास
सोमप्रभ—११९५ ई०	कुमारपालप्रतिबोध
जिनपद्म सूरि—१२०० ई०	थूलिभद्द फाग
विनयचंद्र सूरि—१२०० ई०	नेमिनाथ चतुष्पादिका
चंदवरदाई—१२०० ई०	पृथिवीराज रासो

तेरहवीं शताब्दी

लक्खण—१२५७ ई०	अणुवयरयण पईव (अनुव्रतरत्नप्रदीप)
जज्जल—१२९० ई० हम्मीर (१२९२-९९)	फुटकर (प्राकृतपैंगलसे)
कुछ और अज्ञात कवि . . . तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध . . .	फुटकर रचनाएँ
हरिब्रह्म . . . तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध . . . मिथिला-नेपालके राजा हरिसिंहके मंत्री चंडेश्वरके आश्रित	फुटकर कविताएँ
अंबदेव सूरि—१३१४ ई०	समररास
अज्ञात कवि—१३०० ई०	शालिभद्रकक्का (बारहखड़ी)
,, ...	फुटकर(उपदेशामृततरंगिणीसे)
राजशेखर सूरि—१३१४(?) ई०	नेमिनाथ फाग

परिशिष्ट २

कुछ खास देहाती और तद्भव शब्द